# मरुत् सूक्तों का आलोचनात्मक अध्ययन

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिये प्रस्तुत]

**शोध प्रबन्ध**


निर्देशक

**डॉ० चन्द्र भूषण मिश्र**

रीडर

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

अनुसंधानकर्ता

**संगम लाल मिश्र**

एम०ए०

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद


**विजया दशमी १९९०**

## पुरोवाक्

विश्व में भारतवर्ष की गौरवमयी प्रतिष्ठा में वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय तथा भारतीय संस्कृति का अद्वितीय योगदान रहा है तथा यह पूर्णत: सत्य है कि भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के व्योमचुम्बी विकास में प्रयाग की पावनी वसुन्धरा त्रिपथगा की अनिर्वर्णनीय महिमा एवम् भरद्वाज-मण्डन मिश्र, कुमारिल भट्ट प्रभृति सारस्वत उपासकों का विश्वविश्रुत योगदान सर्वातिशायी रहा है । विश्वविद्यालयीय छात्र जीवन में प्रवेश करते ही यशस्वी प्राध्यापकों के व्याख्यानों एवं उनके साहचर्य से सारस्वत उपासना करने की सतत प्रेरणा प्राप्त होती गई और शनै:शनै: सारस्वत उपासना की भावना भी दृढ़ होती गयी तथा मेरे मन में शोध-कार्य सम्पन्न करने की उत्कण्ठा समुद्भूत हुई । परि-णामत: स्नातकोत्तर उपाधि प्रथम श्रेणी में आर्जित करने के अनन्तर सारस्वत उपासना के अग्रिम चरण के रूप में चिरकाल से उश्वसित तथा अध्ययनकाल से ही वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन में विशेष रुचि जागृति होने के फलस्वरूप कान्तदर्शी, मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की ऋत-म्भरा देवी वाक् की ज्योतिर्मयी ज्ञानराशि ऋग्वेद पर शोध करने की उत्कण्ठा सहजत: मुखर हो उठी और श्रद्धेय पूज्य गुरुवर्य डा० चन्द्रभूषण मिश्र, रीडर संस्कृत विभाग के निर्देशन में "मरुत् सूक्तों का आलोचनात्मक अध्ययन" पर शोध प्रारम्भ करने का निर्देश मिला ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लेखन में अद्यावधि पूज्यपाद गुरुवर्य डा० चन्द्रभूषण मिश्र के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने समय-समय पर अहर्निश अपने वैदुष्यपूर्ण निर्देशन के द्वारा शोधकर्ता के मार्ग को न केवल प्रशस्त किया प्रत्युत् शोध-प्रबन्ध में अपेक्षित संशोधन एवं परि-वर्द्धन करके सुयोग्य निर्देशक एवं गुरु के महनीय दायित्व का पूर्णरूपेण निर्वाह किया । एत-दर्थ पूज्यतम गुरुदेव के पुनीत चरणों में अतीव कृतज्ञतापूर्वक श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ क्योंकि इसके अतिरिक्त अकिंचन शोधकर्ता के पास और है ही क्या ? वैदिक वाङ्मय एवं उच्च शिक्षा के प्रति क्षणप्रतिक्षण रुचि प्रादुर्भूत करने वाले एवं अपने वैदुष्यपूर्ण निर्देशन से सतत प्रेरितकर्ता श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव डा० हरिशंकर त्रिपाठी, रीडर, संस्कृत विभाग के प्रति भी हृदयेन अतीव ऋणी हूँ जिनके वात्सल्यमयी प्रेरणा एवं दर्शन से विद्यानुरागिता की सतत प्रेरणा प्राप्त होती रही है ।

संस्कृत विभागाध्यक्ष परम श्रद्धेय गुरूवर्य डॉ० सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव एवं प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय का भी अतीव आभारी हूँ जिनके शुभाशीष एवं महती कृपा से यह शोधप्रबन्ध पूर्ण हो सका तथा एक विनीत शिष्य के रूप में विनम्रभाव से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

उच्च शिक्षा के प्रति शास्वत जागरूकता प्रादुर्भूत करने वाले, पूज्य अग्रज श्री नन्द लाल मिश्र, "डिप्टी रेंजर" (उप वनराजि अधिकारी) के अनिर्वचनीय असीम वात्सल्य का आजीवन ऋणी हूँ जिन्होंने समुचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था का महत्वपूर्ण दायित्व वहन किया तथा जिनका स्नेह संवलित निर्देशन मुझे पदे-पदे प्राप्त होकर प्रेरणादयी रहा।

पूज्य मातुल: श्री अम्बिका प्रसाद मिश्र "प्र० कर सहायक " आयकर विभाग भारत सरकार तथा परम पूज्या भगिनी (बहन) श्रीमती रमा दीक्षित "मुख्य व्यवस्थापिका" "प्रगति मंजूषा" प्रतियोगी मासिक पत्रिका का विशेष रूप से हृदयेन कृतज्ञ हूँ, जिनके अप्रतिम, महनीय, स्नेहिल वात्सल्यपूर्ण प्रोत्साहन के फलस्वरूप प्रस्तुत शोध प्रबंध पूर्णरूपेण सम्पादित हो सका। अतएव आप दोनो के प्रति मैं विनम्रता पूर्वक श्रद्धावनत हूँ।

इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में जिन मनीषियों के ग्रन्थो का मैंने उपयोग किया है उन सबके प्रति मैं हृदय से विनत हूँ। कतिपय स्नेही मित्रों एवं आत्मीय जनो के सहज स्नेह भी मुझे शोधकार्य के लिए सतत् प्रेरणादायी रहे उनके प्रति साधुवादपूर्वक धन्यवाद ज्ञापित करना अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

शोध-प्रबन्ध के स्वच्छ सुन्दर एवं आकर्षक टंकण के लिए श्री राम बरन यादव को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अतः वैदिक वाड्मय की अस्मिता को दृष्टिपथ मे रखते हुए बौद्धिक, मौलिक आलोचना भाषा की प्रगति के उद्देश्य का एक मूलभूत तत्व संस्कृत प्रेमी जनो की सेवा में सस्नेह सादर समर्पित कर रहा हूँ।

---

विदुषांवशंवद:

(संगम लाल मिश्र)
शोध- छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबादविश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

विजयदशमी, 1990.

## शब्द संकेत

| | | |
|---|---|---|
| अ० | : | अदादिगण |
| अ०को० | : | अमर कोष |
| अग्नि० | : | अग्निपुराण |
| अथर्व० | : | अथर्ववेदसंहिता |
| अनु० | : | अनुवादक |
| अवे० | : | अवेस्ता |
| आ० | : | आत्मनेपद |
| आदि० | : | आदिपुराण |
| इण्डि०मा० | : | इण्डियन माइथालाजी |
| उ०पु० | : | उत्तम पुरुष, उभयपदी, उव्वट |
| उत्तर० | : | उत्तरकाण्ड, उत्तरपुराण |
| ऋ० | : | ऋग्वेद |
| ऋ०सं० | : | ऋग्वेद संहिता |
| ए०व० | : | एकवचन |
| ऐ०आ० | : | ऐतरेय आरण्यक |
| ऐ०ब्रा० | : | ऐतरेय ब्राह्मण |
| टे० | : | ओरिजिन संस्कृत टैक्स्ट |
| कर्ण | : | कर्णपर्व |
| का०सं० | : | काण्व संहिता |
| कूर्म | : | कूर्म पुराण |
| ग०उ० | : | गरुण उपनिषद् |
| गेल्ड० | : | के०एफ० गेल्डनर |
| गो०ब्रा० | : | गोपथ ब्राह्मण |
| ग्रि० | : | टी०एच० ग्रिफिथ |
| च० | : | चतुर्थी |
| छा०उ० | : | छान्दोग्योपनिषद् |
| ज०ज०आ०सो० | : | जर्नल आफ द अमेरिकन सोसायटी |
| ज०बा०यू० | : | ज० आफ द बाम्बे यूनिवर्सिटी |
| जु० | : | जुहोत्यादिगण |
| जै०ब्रा० | : | जैमिनीय ब्राह्मण |
| जै०सू० | : | जैमिनीय सूत्र |
| तु० | : | तुदादिगण |
| तृ० | : | तृतीया |

| | | |
|---|---|---|
| तै0आ0 | : | तैत्तिरीय आरण्यक |
| तै0उ0 | : | तैत्तिरीय उपनिषद् |
| तै0सं0 | : | तैत्तिरीय संहिता |
| द ऋ0र0 | : | द रिलीजन आफ द ऋग्वेद |
| द्वि0 | : | द्विवचन, द्वितीया |
| निघं0 | : | निघण्टु |
| निरु0 | : | निरुक्त |
| प0 | : | पञ्चमी, परस्मैपद |
| पद्म0 | : | पद्मपुराण |
| पा0धा0पा0 | : | पाणिनि धातु पाठ |
| पा0सू0 | : | पाणिनि सूत्र |
| पी0 | : | पीटर्सन |
| पु0 | : | पुल्लिंग |
| प्र0 | : | प्रथमा, प्रश्नोपनिषद् |
| प्र0सं0 | : | प्रथम संस्करण |
| पृ0 | : | पृष्ठ संख्या |
| ब0ब0 | : | बहुबचन |
| बृ0उ0 | : | बृहदारण्यकोपनिषद् |
| भविष्य0 | : | भविष्यत् पुराण |
| भ्वा0 | : | भ्वादिगण |
| म0पु0 | : | मध्यम पुरुष |
| मत्स्य0 | : | मत्स्य पुराण |
| मनु0 | : | मनुस्मृति |
| महा0 | : | महाभारत |
| मही0 | : | महीधर |
| मु0 | : | मुद्गल |
| मै0 | : | ए0ए0 मैक्डोनेल |
| मै0उ0 | : | मैत्रायणी उपनिषद् |
| मैक्स0 | : | एफ0 मैक्समूलर |
| मै0सं0 | : | मैत्रायणी संहिता |
| मो0वि0 | : | मोनियर विलियम्स |
| म्योर | : | जे0 म्योर |
| यजु0 | : | यजुर्वेद |
| यास्क0 | : | यास्क |

| | | |
|---|---|---|
| रिली0फि0उ0 | : | रिलीजन आफ द फिलासफी ऑफ उपनिषद् |
| ल0सा0लै0 | : | लैक्चर्स आफ द साइंस आव लैंग्वेज |
| वा0सं0 | : | वाजसनेयि संहिता |
| वाच0 | : | वाचस्पत्यम शब्दकोष |
| वि0 | : | एच0एच0 विल्सन |
| विष्णु0 | : | विष्णु पुराण |
| वें0 | : | वेंकट माधव |
| वै0दे0 | : | वैदिक देवशास्त्र |
| वै0पु0 | : | वैदिक पुराण |
| वै0मा0 | : | वैदिक माइथालाजी |
| वै0री0 | : | वैदिक रीडर |
| वै0व्या0 | : | वैदिक व्याकरण |
| वै0श0को0 | : | वैदिक शब्दकोष |
| द हि0ऋ0 | : | द हिम्स आफ ऋग्वेद |
| श0ब्रा0 | : | शतपथ ब्राह्मण |
| शल्य0 | : | शल्य पर्व |
| शु0य0 | : | शुक्ल यजुर्वेद |
| ष0 | : | षष्ठी विभक्ति |
| स0 | : | समास, सप्तमी |
| सम्बो0 | : | सम्बोधन |
| सं0इं0डि0 | : | संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी |
| सं0हि0को0 | : | संस्कृत हिन्दी कोष |
| सा0 | : | सायण |
| स्कन्द0 | : | स्कन्दस्वामी |
| Av. | : | Avesta |
| ABORI | : | Anuals of the Bhandarker Oriental Research Institute Poona. |
| A.Up. | : | Aitraya Upanisad |
| Indo-Eur | : | Indo-European |
| Rv. | : | Rigveda |
| Skt.Gr. | : | Sanskrit Grammer |
| S.B. | : | Satpath Brahman |
| S.M. | : | Sama Veda |
| Trans. | : | Translation |
| Zd. | : | Zand. |
| J.G.R.I. | : | Journal of Ganganath Jha ...arch ...nstitute, Allahabad. |

## विषय-सूची

## अध्याय प्रथम

## विषय परिचय एवं वैदिक देवताओं का वर्गीकरण

## विषय प्रवेश

मानव स्वभावत: चिन्तनशील विवेकशील प्राणी है । विश्व का विशाल वाङ्मय उसके अनेक युगों के अनवरत प्रगाढ़ चिन्तन की ही अमूल्य निधि है । समस्त वाङ्मय शास्त्र और काव्य के भेद से दो भागो में विभक्त है ।[1] शास्त्र वाङ्मय के अन्तर्गत अपौरुषेय वेद (मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) वेदांग तथा पौरुषेय पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा एवं स्मृतितंत्र आदि विद्यास्थान आते है जिनकी समवेत संज्ञा "चतुर्दश विद्यास्थान" है ।[2] काव्य वाङ्मय के अन्तर्गत दृश्य और श्रव्य काव्यों के समस्त भेद स्वीकार किये गये हैं तथा इसे सकल विद्या स्थानैकायतन पन्द्रहवाँ विद्यास्थान बताया गया है ।[3] ये ही विद्यास्थान सम्पूर्ण त्रैलोक्य । भूर्भुव. स्व: । को परिव्याप्त किये हुए हैं ।[4]

अपौरुषेय वेद प्रकृति सहचरी के सुरम्य अंचल में बसे हुए शमप्रधान तपोवन में त्याग और सन्तोष का अक्षय पाथेय लेकर आजीवन तपस्या करने वाले परिणत प्रज्ञद्रष्टा ऋषियों द्वारा तप.पूत सिद्धावस्था में प्रशान्त अन्त:करण में साक्षात्कृत ज्योति:स्वरूप मंत्रों के पुण्यागार हैं जिन्हें समस्त विद्यास्थानों का उद्गम स्थल बताया गया है । यह तथ्य न केवल श्रुतीतर मनुस्मृति प्रभृति स्मृतियों से ही प्रमाणित होता है ।[5] प्रत्युत श्रुतियों में

---

1. इहहि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यंचेति-राजशेखर, का0मी0 द्वि0अ0 पृ0 4.

2. सच्च द्विधा अपौरुषेयं पौरुषेयं च । अपौरुषेयं श्रुति: । सा च मंत्रब्राह्मणे । ----- चत्वारो वेदा: । ------- शिक्षाकल्पो व्याकरण निरुक्तं छन्दो ---- इत्याचार्या: । ------- आन्वीक्षिकी, मीमांसा स्मृति तन्त्रमिति चत्वारि शास्त्राणि । ------ वही पृ0 4-6.

3. तानीमानि चतुर्दश विद्यास्थानानि यदुतचत्वारो वेदा. इत्याचार्या. । सकलविद्यास्थानैकायतनं पंचदशं काव्यं विद्यास्थानम् । वही, पृ0 7-8.

4. तान्येतानि कृत्स्नामपि भूर्भुव: स्वस्त्रयीं व्यासज्य वर्तन्ते । वही, पृ0 7.

5. य: कश्चितकस्यचिद्धर्मो परिकीर्तित: ।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि स: ।। मनु0 पृ0 216.
आदौ वेद गिरो दिव्या यत: सर्वा प्रवृत्तय: ।वही, पृ0 216.

ऋग्वेद के अन्तर्गत दैवीवाक्तत्व के इस व्योमभेदी उद्घोष से भी प्रमाणित हो रहा है । मैं स्वयं कहती हूँ देव और मानव मेरी उपासना करते हैं ------- मैं जिसको चाहती हूँ उसे उग्र, ॥ओजस्वी॥ कर देती हूँ उसको ब्रह्म, आत्मतत्वज्ञ, वाक्तत्वज्ञ, ----- मेधावी बना देती हूँ । मैं वायुतुल्य सर्वत्र गतिशील हूँ ------- विद्यमान हूँ ।[1]

'वेद' विश्व के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थरत्न हैं और वेदों में सर्वाधिक प्राचीन है ऋग्वेद । विभिन्न देवताओं के सदृश मरुत् विषयक देवों तथा ऋग्वेद के अन्तर्गत सूक्तों की तथाकथित अनेक विशेषताओं उसके अन्य देशों के साथ सम्बन्ध आदि का चित्रण मिलता है । इन सम्बन्धों में प्रमुख हैं -

भारत-यूरोप देववाद - विश्व के अन्य मानव समुदायों में भारत-यूरोपीय जन की कल्पना का श्रेय तुलनात्मक भाषा विज्ञान को है । भारत से आयरलैण्ड तक विस्तृत संस्कृत ईरानी, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन ने स्पष्ट कर दिया कि इन सभी भाषाओं का मूल एक ऐसी भाषा रही होगी जो आज विद्यमान नहीं है । न उसका कोई नमूना ही उपलब्ध है परन्तु इनकी तुलना से उसके रूप का अनुमान किया जा सकता है ।

भाषाशास्त्र के साथ ही पुराकथा शास्त्र तथा देवशास्त्र ने अपने तुलनात्मक अध्ययनों से अभिहित कर दिया कि न केवल भाषा में ही प्रत्युत देवकल्पना, धार्मिक विश्वासों और सामाजिक रीति-रिवाजों में भी इन भारत यूरोपीय जनों में अद्भुत साम्य है । स्वयंदेव शब्द इन सभी भाषाओं में विद्यमान है - सं० देव प्राचीन ईरानी दएव, अवेस्ता- दत्य, प्राचीन ग्रीक देउआस ॥परवर्ती रूप थेओउस॥ लैटिनदेहउस् गाथिक दीवुस प्राचीन जर्मन ते वा आदि । कुछ देवों यथा द्यौस्-पितर्, ग्रीक, जेउस्-पातेर, लैटिन ज्यूपिटर आदि के नामों में भी अद्भुत साम्य प्रदर्शित है ।

--------------------

1. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
पुरो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूत ॥ ऋग्वेद 10.125.5,8

भारत ईरानी देववाद

भारत-यूरोपीय जन की प्रमुख दो शाखायें ईरान और भारत में ईरानी आर्य और भारतीय आर्य के रूप में प्रतिष्ठित हुई । विभाजन के पूर्व इन भारत-ईरानी आर्यों ने अपने भारत योरोपीय मूल से प्राप्त देव सम्बन्धी धारणाओं के विकास का अनुमान ऋग्वेद संहिता के साथ प्राचीन ईरानी की एकमात्र उपलब्ध कृति "अवेस्ता" के तुलनात्मक अध्ययन से होता है । ईरान में जरथुस्त्र (660 से 583 ई0पू0) के धार्मिक सुधार के परिणामस्वरूप उनके द्वारा प्रवर्तित "मज्दयस्नी" धर्मग्रन्थ अवेस्ता में पूर्ववर्ती देवों का लोप और अनेक देवों की स्वरूप कल्पना में मौलिक परिवर्तन हो गया फिर भी अग्नि, वायु, आप, मित्र आदि देव यहाँ समान रूप से विद्यमान हैं ।

भारत में आर्यजन की देव-कल्पना का विकास

भारत ईरानी परम्परा से अपने देव विषयक रिक्थ को भारतीय आर्यों ने अपने गहन चिन्तन से परिपुष्ट किया जिसका प्राचीनतम विवरण ऋग्वेद संहिता में उपलब्ध है । इसमें संकलित ऋचाओं का संहितीकरण जब भी हुआ हो, इतना तो सुनिश्चित है कि इसमें संकलित सामग्री अनेकानेक सदियों के चिन्तन की परिधायिका है । इसका स्थूल प्रमाण यह है कि बर्हिष् पर हविष् रखकर देवता का आह्वान कर देवता को हविष् निवेदित करने के साधारण ढंग से "सप्तहोता" तथा 16 ऋत्विजों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञ का संकेत हमें ऋग्वेद संहिता में मिल जाता है ।

इस विकास क्रम में देव कल्पना का प्रचुर विस्तार हुआ । एक अग्नि ही वृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, नराशंस, तनूनपात, अज, एकपाद जैसे विविध नामों से परिकल्पित हुआ। यही बात अन्य देवों के सम्बन्ध में भी है । विकास क्रम का इससे अधिक रोचक पक्ष यह है कि प्राचीन प्राधान्य देवों को धीरे-धीरे लुप्तप्राय एवं प्रथमतः गौण रूप से स्मृतदेवों को प्राधान्य प्राप्त करते देखते हैं । त्रित तथा आप्त्य ईरानी प्रतिरूप थ्रित और आथव्य से प्रकट होने वाले भारत ईरानी काव्य के देव हैं जो ऋक्संहिता में नाममात्र के रह गये हैं । इसके "वरुण" राजा" विशेषण के साथ स्मृत हैं और उत्तर पूर्व एशिया

माइनर में बोगाज-क्योइ नामक स्थान से प्राप्त मितन्नी या मर्यन्नी अभिलेखों में वरुण देवता की विद्यमानता इनके प्राचीन प्रभुत्व का प्रमाण है। परन्तु ऋग्वेद में वरुण देव को विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त न होकर एक जलाभिमानी देवता के रूप में अभिहित होते हुए धीरे-धीरे एक कोने में जा पड़े। इसके विपरीत इन्द्र का वर्चस्व निरन्तर बढ़ता गया और अन्ततः देवगण में इनका प्राधान्य स्थापित हो गया। यद्यपि प्रति द्वन्द्वी के रूप में विष्णु ने इन्द्र को उसके सर्वोच्चासन से उतारकर स्वयं यह आसन ग्रहण कर लिया।

देवों के स्वरूप कल्पना के साथ-साथ देव और यजमान के सम्बन्धों का विकास वैदिक वाङ्मय में निरन्तर परिलक्षित होता है। एक स्थिति में मानवदेव शक्ति से अभिहित होकर श्रद्धावनत देवता की स्तुति कर रहा है, और अगली स्थिति में यजमान को अनुभव होता है कि उसके मंत्र देवता को शक्ति प्रदान करते हैं और अन्ततः देव ब्रह्म के वशीभूत हो जाते हैं।

वैदिक देवताओं में मरुद्गण

ऋग्वेद संहिता में वैदिक देवों के मध्य मरुद्गण अति विशिष्ट स्थान रखते हुए बहुवचन में स्मृत गण-देवता हैं और ऐसे गण-देवता जिनमें न कोई बड़ा है और न कोई छोटा। यद्यपि बहुवचनान्त अन्य देव जैसे ऋभवः आदित्याः, विश्वेदेवाः आदि है परन्तु घटकों की समानता तथा अनिश्चित संख्या का वैशिष्ट्य अन्य किसी में नहीं है। दूसरा वैशिष्ट्य यह है कि ये रुद्र, अग्नि, वायु तथा इन्द्र से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध हैं। कहीं रुद्रियाः, रुद्राः [रुद्र के पुत्र] कहे गये तो कहीं वायु इनका जन्मदाता तो कहीं अग्नि। अन्ततः ये इन्द्र के अनुगामी बन गये हैं और मरुत्वान् विशेषण अधिक स्थलों में इन्द्र के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। फिर परवर्ती वाङ्मय में ये "देवविश" कहे गये।

ऋग्वेद संहिता में अनेकानेक ऋचाओं में किसी भी महत्वपूर्ण देव के समान यज्ञ में आकर हविष् ग्रहण करने के लिए आहूत ये अपनी स्थिति में रोचक परिवर्तन के परिचायक हैं। पुनः इन्हें अग्नि अथवा इन्द्र के साथ सोमपान के लिए बुलाया गया है और अंतत परवर्ती साहित्य में कतिपय प्रसंगों में इन्हें "अहुतवाद" कह दिया गया है।

वैदिक देवशास्त्र के अध्येता विद्वानों का ध्यान मुख्यत: वरुण इन्द्र, अग्नि, रुद्र, अश्विनों जैसे देवों पर ही केन्द्रित रहा और मरुद्गण जैसा कि उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है विद्वानों का अधिक ध्यान आकर्षित नहीं कर पाये । इन्द्र के सहायक के रूप में इन्हें देखते हुए विद्वानों ने इनके स्वरूप विकास पर वैसा ध्यान नहीं दिया जैसा अपेक्षित था । इसकी एक झलक डा० पी०एस० देशमुख के ग्रन्थ

प्रकाशक आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन 1933 के इस अनूदित उद्धरण में मिल जायगी। देवों का यह वर्ग जो हमेशा बहुवचन में उल्लिखित हुआ है, ऋग्वेद में विशेष प्रमुख हैऔर वहाँ तैंतीस प्रमुख तथा कतिपय अन्य सूक्तों में देवों के साथ स्तुत हुआ हैं । इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य इन्द्र की उनके युद्ध में सम्बन्धी पराक्रमों में सहायता करना है । और मुश्किल से ही प्रभावित करने वाले व्यक्तित्व से सम्पन्न स्वतन्त्र देवों, की सी स्थिति प्राप्त कर पाये हैं । परिणामत: धार्मिक दृष्टिकोण से इनका बहुत अधिक महत्व नहीं है ।

उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ में यहाँ इतना ही वक्तव्य है कि इन्द्र के अनुचर बन जाने पर भी मरुद्गण भारतीय मानस में किसी न किसी रूप में सदैव विद्यमान रहे हैं । महाभारत, रामायण और पुराणों में मरुत्सम्बन्धी आख्यान इसके प्रमाण हैं । आधुनिक काल तक में "मारुति" के रूप में द्गण का एकत्व में परिकल्पित रूप टिका हुआ है । इन्द्र के अनुचर के रूप में भी ये बहुत संघर्ष के बाद ही आ पाते हैं और इस संघर्ष का अध्ययन स्वयं में भारतीय देवशास्त्र के इतिहास का एक रोचक अंग है ।

## प्रस्तुत अध्ययन की रूपरेखा

वैदिक वाङ्य के अन्तर्गत ऋग्वेद में सायण, वेंकट, माधव, मुद्गल प्रभृति भारतीय विद्वानों के साथ मैक्समूलर, मो०वि०, मैक्डोनेल, विल्सन, ग्रिफिथ आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उल्लिखित मरुत् सूक्तों पर प्राप्त सामग्री को ही अपने अध्ययन का प्रमुख रूप से आधार बनाया । प्रस्तुत अध्ययन में पूरे वैदिक वाङ्मय में मरुत सूक्तों की

आलोचना को लक्ष्य रखकर यह प्रयास किया गया है कि प्रस्तुतअध्ययन मनीषी विद्वज्जनों के साथ-साथ सुधी-जन पाठकों के लिए सदुपयोगी सिद्ध हो, और तदनुसार मरुत् सूक्तों का अवलम्बन सम्बन्धी सामग्री, पाँच दृष्टिकोणों से इस शोध-विषय का अध्ययन किया गया जो अनुसंधान की दृष्टि से अपने ढंग का सर्वथा मौलिक प्रयास है :-

1. वैदिक देवताओं का वर्गीकरण,
2. वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, वैदिक कर्मकाण्डों एवं मरुद्गण का अन्य देवों के साथ सम्बन्ध का पुराशास्त्रीय अध्ययन ।
3. भाषा बोध हेतु ऋग्वेदीय प्रमुख 33 मरुत् विषयक मंत्रों का पौरस्त्य एवं पाश्चात्य मनीषियों के मतानुसार अर्थ निर्धारण एवं भाषाशास्त्रीय समालोचनात्मक अध्ययन ।
4. क्रमागत वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति ।
5. अन्त में उपर्युक्त सभी अध्यायों में तथ्यसामग्री के विश्लेषण से प्राप्त परिणामों को लेकर मरुद्गण के स्वरूप-विकास का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है और इसी प्रसंग में इनके सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मतों का पर्यालोचन कर निष्कर्ष के तौर पर मरुतों के रोचक इतिहास को तथ्य परिपुष्ट तर्कसंगत ढंग से क्रमबद्धरूप में प्रस्तुत किया गया है ।

## 6. वैदिक देवताओं का वर्गीकरण

ऋग्वेद में धर्म का प्रधान विषय प्रकृति पूजा है अतएव ऋग्वेद संहिता में प्राकृतिक शक्तियों को देवता के रूप में स्वीकार किया गया है ।[1] वैदिक देवताओं का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :-

संख्या के आधार पर

ऋग्वेद[2], यजुर्वेद[3] एवं अथर्ववेद[4] में देवताओं की संख्या 33 अथवा त्रिभि: एकादश कही गई है । इसी संख्या को अनेक स्थानों पर ग्यारह का तीन गुना के रूप में निरूपित किया गया है । ऋग्वेद[5] के ही एक मन्त्रानुसार ॥ देवता स्वर्ग में ॥ अन्तरिक्ष में । जल ।[6] एवं ॥ देवता पृथ्वी पर रहते हैं ।

------------------

1. आर्थर बेरीडेल कीथ - The Religion and philosophy of the Veda and Upanishads डॉ० सूर्यकान्त । अनुवादक । वैदिक धर्म और दर्शन, भाग 2, पृष्ठ 79.
2. पत्नीवता त्रिंशतं त्रींश्चदेवाननुष्वधमा वह मादयस्व । ऋ०सं० 3/6/9.
3. त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापति:परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् । यजु० ।4.3।
4. यस्य त्रयस्त्रिंसद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिता: । अथर्व० ।0.7.13
5. ये देवासो दिव्येकादशस्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ऋ०सं० ।.।39.।।
6. अप्सुक्षितो महिनेकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् । ऋ०सं० ।.।39.।।

6. ए०बी० मैक्डॉनेल : वैदिक माइथालॉजी में ऋग्वेद के मंत्र ।.।39.।। में "अप्सुक्षित:" का अर्थ "जल" करते हैं । डॉ० सूर्यकान्त ।अनुवादक। वै०दे० पृ० 36; रामकुमार राय ।अनुवादक। वै०पुरा० पृ० 33.

शतपथ ब्राह्मण में संदर्भित है कि 12 आदित्य 11 रुद्र एवं 8 वसु हैं। द्यौ तथा पृथ्वी को मिलाकर कुल 33 देवता हैं। केवल प्रजापति नामक एक नवीन देवता का आविर्भाव हुआ, इससे उनकी संख्या 33 के स्थान पर 34 हो गई है।[1] उपर्युक्त ब्राह्मण में अन्य स्थलों पर याज्ञवल्क्य ने देवताओं की संख्या 303 या 3003 भी बताई है।

ऋग्वेद में प्रयुक्त हुए उनके नामों की संख्या के आधार पर देवताओं को निम्न लिखित 5 श्रेणियों में विभाजित किया गया है[2]:-

1. इन्द्र, अग्नि, सोम।
2. अश्विन्, मरुत्, वरुण।
3. उषस्, सविता, बृहस्पति, सूर्य, पूषा।
4. वायु, द्यावा-पृथिवी, विष्णु, रुद्र।
5. यम एवं पर्जन्य।

उपर्युक्त ये देवगण कभी एकल प्रस्तुत होते हैं और कभी अन्य देवताओं के साथ प्रस्तुत होते हैं। इस आधार पर इनका वर्गीकरण त्रिविभागों में किया जा सकता है।

1. एकल देवता

जिस देवता की स्तुति अकेले की जाती है। वह एकल देवता की श्रेणी में गिना जाता है। यथा-द्यौ, वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषा, विष्णु, विवस्वान्, उषस्, अश्विन्, इन्द्र, त्रित, आप्त्य, अपांनपात्, मातरिश्वा, अहिर्बुध्न्य, अजएकपाद, वायु,

-------------------

1. श०ब्रा० 4.5.7.2, 5.1.2.13 आदि।
2. डा० सूर्यकान्त, अनुवादक, वैदिक देवता पृ० 39,
   डा० रामकुमार राय, अनुवादक, वैदिक पुरा० पृ० 36.

पर्जन्य, आप: नदियाँ, पृथिवी, अग्नि, बृहस्पति, सोम क्तुदेव, त्वष्टा, विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अनुमति, अरमति, सुनृता, असुनीति, निऋति, काम, काल, प्राण, अदिति आदि तथा देवियाँ सरस्वती, रात्रि, वाक्, पुरंधि, राका, कुहू, अश्विनी आदि है ।

2. <u>युगल देवता</u>

युग्म रूप में जिन देवताओं को स्तुति होती है वे इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं । यथा मित्रावरुणा, इन्द्राग्नी, इन्द्रावरुणा, द्यावापृथिवी, इन्द्रासोमा, इन्द्राबृहस्पति, इन्द्राविष्णु, इन्द्राभूषणा, सोमारुद्रा, अग्नीपर्जन्या, अग्नीसोमा, इन्द्रनासत्या, इन्द्रा-पर्वता, पर्जन्यावाता, उपासनक्ता, नक्तोषाता, सूर्योमासा, सूर्याचन्द्रमसा, इन्द्रवायु आदि हैं ।

3. <u>गण देवता</u>

ऐसे वे सभी देवगण जिनकी स्तुति सामूहिक रूप से होती है वे इस श्रेणी के अन्त-र्गत आते हैं । यथा-मरुद्गण, रुद्रगण, आदित्यगण, वसु-गण, साध्य, अङ्गिरस, ऋभु, विश्वेदेवा: ‹विश्वेदेवा:› आदि ।

## 2. स्थान के आधार पर

यास्क[1] एवं अन्य विद्वानों के मतानुसार देवताओं का विभाजन स्थान के आधार पर निम्नवत् किया जा सकता है .-

---

1. त्रित एव देवता ------------------- द्युस्थान: । निरुक्त 7.5
   डा0 सूर्यकान्त, वै0दे0 पृ0 37-38.
   रामकुमार राय, वै0परा0 पृ0 34-35.

1. द्युस्थानीय देवता

यथा-द्यौ, वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, पूषा, विवस्वान, आदित्य-गण, उषस्, अश्विन आदि ।

2. अन्तरिक्ष स्थानीय देवता

यथा-इन्द्र, त्रित, त्रित, आप्त्य, अपानपात्, मातारिश्वा, अहिर्बुध्न्य, अज-एकपाद, रुद्र, मरुत् वायु-वात, पर्जन्य, आप: आदि ।

3. पृथिवी स्थानीय देवता

यथा-नदियाँ, पृथिवी, अग्नि, वृहस्पति, सोम आदि ।

### 3. महान देवता एवं लघु देवता

वैदिक देवताओं का वर्गीकरण उनकी आपेक्षिक महत्तानुसार भी किया जा सकता है । यह वर्गीकरण महान एवं लघु तथा युवा एवं वृद्ध के रूप में है ।[1]

### 4. स्त्री देवता एवं पुरुष देवता

वैदिक देवताओं का वर्गीकरण स्त्री एवं पुरुष देवता के रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

---

1. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम: आशिनेभ्य: ।
   यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायस: शंसमा वृक्षि देवा: ॥

ऋ०सं० 1.27.13

1. स्त्री देवता - उषस् ।
2. पुरुष देवता - इन्द्र ।

## भौतिक देवता एवं मानसिक देवता

वैदिक देवताओं के भौतिक एवं मानसिक स्वरूप के आधार पर निम्नवत् वर्गीकरण किया जा सकता है :-

1. स्थूल । मूर्त । देवता ।
2. भावात्मक । अमूर्त । देवता ।[1]

## याज्ञिक एवं अयाज्ञिक देवता

वैदिक देवताओं को याज्ञिक एवं अयाज्ञिक देवता के आधार पर निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. याज्ञिक देवता - इन्द्र ।
2. अयाज्ञिक देवता - अपां नपात ।

ब्लूमफील्ड[2] ने वैदिक देवताओं को निम्नलिखित 5 वर्गों में विभाजित किया है :-

1. प्रागैतिहासिक काल के देवता - यथा - द्यौ, वरुण, मित्र, अर्यमा ।

---

1. डा० रामकुमार राय, वै०पुरा०, पृ० 218.
   डा० सूर्यकान्त, वै०दे०, पृ० 300-336.

2. कीथ : रिली०फि०उ० एवं इण्डि०मा० ।

2. पारदर्शी अथवा स्पष्ट देवता, यथा-अग्नि, उषस्, वायु, सूर्य ।
3. अल्प पारदर्शी या अर्द्ध स्पष्ट देवता यथा-विष्णु ।
4. अपारदर्शी अथवा अस्पष्ट देवता, यथा - इन्द्र, वरुण, अश्विनौ ।
5. अमूर्त भावात्मक एवं प्रतीकात्मक देवता, यथा-प्रजापति, बृहस्पति, विश्वकर्मा, काल, श्रद्धा, काम एवं निऋति आदि ।

कीथ[1] महोदय ने वैदिक देवताओं को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया है :-

1. द्यु, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी स्थानीय महान देवता ।
2. लघु प्रकृति देवता ।
3. भाव देवता ।
4. विभिन्न दिव्य प्राणियों का वर्ग ।

---

1. रिलीजन एण्ड फिलॉसफी आव द वेद एण्ड उपनिषद्, द्वारा ए0बी0 कीथ का हिन्दी अनुवाद, वैदिक धर्म और दर्शन, अनुवादक डॉ0 सूर्यकान्त, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963.

"मरुतों का वैशिष्ट्य"

## ऋग्वेद में मरुद्गण

वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद संहिता को सर्वाधिक असंदिग्ध प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। यद्यपि इसमें वर्णित 1028 सूक्तों (11 बालखिल्य सूक्तों सहित) में सभी सूक्त सर्वप्राचीन नहीं हैं तथापि इन सूक्तों में अधिकांशत: प्राचीन अवश्य हैं।[1] ऋग्वेद संहिता के इन सूक्तों में कालक्रम का पौर्वापर्य है।[2] क्योंकि ऋषि परिवारों की अनेक पीढ़ियों ने इनका प्रणयन (अथवा साम्प्रदायिक दृष्टि से कहें तो दर्शन) किया है।[3]

---

1. द्रष्टव्य - Pt. Chetresh Chandra Chattopadhyaya, "The Place of the Rigveda Samhita in the Choronology of Vedic literature." (Proceedings and the translations of the Eight All.' India Orienteal Conf. Pt. II, P 35.1).

2. संकलित सूक्तों के काल का पौर्वापर्य विद्वानों ने अनेक दृष्टियों से किया है - डा० एस०के० बेल्वल्कर ने अपने लेख Literary strata in the Rgveda (Proceedings and the Translations of the Second Oriental Conf. Calcutta, 1922, PP. 16.
में लिखा है कि वैदिक निघण्टु के एकपदिक काण्ड में संकलित शब्द जिन ऋचाओं में आये हों उन्हें परवर्तीकाल की रचना स्वीकार करना चाहिए।

3. भारतीय आस्तिक परम्परा वेदों को किसी की रचना नहीं मानती प्रत्युत उसके अनुसार ऋषियों ने वेदों का दर्शन किया। महर्षि जैमिनि प्रणीत पूर्वमीमांसा (1.1.127-32) में वेद के अपौरुषेयत्व की स्थापना की गई है। परन्तु स्वयं ऋग्वेदसंहिता की अनेक ऋचाओं में ऋषियों द्वारा मन्त्र निर्माण की चर्चा की गई है, उदाहरणार्थ द्रष्टव्य - ऋ० सं० 1.20.1, 38.8, 47, 47.2, 60.3, 61.14, 62.13 आदि।

जर्मन विद्वान Walter/Wills ने अपनी पुस्तक में शैली को आधार मानकर सूक्तों के कालक्रम के पौर्वापर्य का निर्णय करने का प्रयास किया जिसकी Franklin Edgerton Journal of the American Oriental Society Vol. 49 - में कड़ी समालोचना की है । ई०वी० अर्नाल्ड ने अपनी पुस्तक Vedic Meter में छन्दों को आधार मानकर सूक्तों की प्राचीनता अथवा अपेक्षाकृत अर्वाचीनता का निर्धारण करने का प्रयास किया है । उपर्युक्त इन सभी प्रयत्नों की समीक्षा करते हुए पं० क्षेत्रेशचन्द्र भट्टोपाध्याय ने ऊपर वर्णित अपने लेख 'The Place of the Rg-veda Samhita in the Choronology of Vedic literature' में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि सूक्तों के पौर्वापर्य का निर्णय विचारों के विकास को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । जैसे कि जिन सूक्तों में विकसित यज्ञ संस्था सम्बन्धी वर्णन मिले उन्हें निश्चय ही परवर्ती मानना चाहिए ।

अतः इन सूक्तों में हमें वैदिक देवों के स्वरूप और महत्त्व में हमें क्रमिक क्रमिक परिवर्तन लक्षित होता है ।[1]

ऋग्वेद संहिता में मरुतों से सम्बन्धित कुल पूरे-पूरे 34 सूक्त हैं ।[2] जो

---

1. "To say it in a world, what renders these hymns so valuable for us is that we see before us in them a mythology in the making", A History of Indian litt. by M. Winternitz, p.75.

2. Macdonal ने Vedic Mythology P. 77 में मरुत देवता के ऊपर केवल 33 सूक्तों का ही उल्लेख किया है । परन्तु यह नहीं बताया कि ये सूक्त कौन-कौन हैं । सम्भवतः उन्होंने 7.59 को नहीं स्वीकार किया क्योंकि अनुक्रमणी में इसका देवता मरुत तथा रुद्र बताया गया है । परन्तु इसमें केवल एक ही 'ऋक्' (अन्तिम बारहवीं) 'रु' के लिए है, अतः इस सूक्त को भी मरुत सूक्त कहना उचित है ।

मण्डलानुसार निम्नवत हैं ।

1.37-39; 464; 85-88; 166-168; 171; 172;

2.34, 5.52-59; 61; 87; 6.66; 7.56-59;

8.7; 20; 94; 10.77.78.

यद्यपि अन्य देवताओं के सूक्तों के साथ भी मरुत सम्बन्ध ऋचायें उपलब्ध होती हैं जो मण्डलानुसार निम्नवत हैं -

1.6.4, 6, 8, 9; 15.2; 136 7; 139.8; 171.1.2;

2.30.11; 36.2; 3.26/4-6; 5.3.3; 83-6; 6.48.11-15;

20; 21; 7.104-18.

दो सूक्त 1.19 और 5.60 में मरुतदेवता अग्नि के साथ स्तुत हुए हैं और इन्द्र तथा अन्य देवों के साथ अनेक सूक्तों में हैं । जिनका विस्तृत वर्णन आगे यथा-स्थान किया गया है ।

## यजुर्वेद में मरूद्गण

यजुर्वेद की विभिन्न शाखाओं में मरुत देवता का उल्लेख प्राप्त होता है । ये मंत्र कर्मकाण्ड में विभिन्न स्थलों पर विनियुक्त हैं । मरुतों को रूद्र की सन्तान कहा गया है । मरुतगण के एक स्थान पर 'नीलग्रीवो विलोहित:' के रूप में पहचाना गया है ।[1] इन्हें रूद्र के साथ उदरनील और पृष्ठ लोहित बताया गया है ।[2]

'मरुत' देवता का विशेष आकर्षण उनके देवतावाची 'मरुत्' शब्द के सर्वत्र बहुवचन के प्रयोग से है ।[3] अत: परिलक्षित होता है कि इनकी कल्पना समूह देवता के रूप में की गई है । इनके समूह के लिए प्राय: गण[4] व्रात[5] अथवा शर्ध शब्द[6] का

---

1. असौ यस्ताम्रो अरूण उत बभ्रु: सुमङ्गक: । यजु० सं० 14.61
2. असौ यो वसर्पति नीलग्रीवो विलोहित: । यजु० सं० 16.74
3. वैदिकपादानुक्रमकोशे - सम्पा० विश्वबन्धुशास्त्री, होशियारपुर में मरुत शीर्षक के अन्तर्गत सभी प्रविष्टियाँ बहुवचन में हैं ।
4. ऋ० सं० 1.38.15; 87.4; 3.36.6; 5.52.13; 14; 54.10, 11; 56.1; 58.1, 2; 7.58.1, 94.12; अथ० सं० 13.4; 7.82.3; तै०सं० 7.12
5. ऋ० सं० 1.85.4,3.26.6; 5.53.11
6. 1.37.4, 4.5; 64.1; 2.30.11; 5.52.8; 53.10; 11; 54.1, 6; 56.9-87; 7; 10.103-9;

प्रयोग अलग-अलग किया गया है । ऋग्वेद व अथर्ववेद में कुछ स्थलों पर इनके लिए 'ग्राम' शब्द भी प्रयोग में मिलता है, जैसे - 'अरिष्ट ग्रामा:' 1.166.6; अखण्डित अथवा अक्षत समूहवाले (मरुत) तथा किन्हीं स्थलों पर 'मरुतां विश:' (5.56.1) आदि का भी वर्णन मिलता है । मरुतों को वृषव्रातास: (1.85.4) शक्तिशाली समूह वाले, वृषा त्राण:' (1.87.4) शक्तिशाली समूह तथा युवा गण: (1.87.4) यौवन सम्पन्न समूह कहा गया है । मरुतों के समूह के लिए 'सुमारुतम्'[1] शब्द का प्रयोग भी हुआ है और मरुतों को 'गणाश्रिय:'[2] कहा गया है ।

---

1. ऋ0 सं0 10.77.1; 2;

2. ऋ0 सं0 1.64.9;
   5.60.8;
   8.23.4

मरुत देवता के इस समूह में इनकी संख्या के विषय में ऋग्वेद संहिता, अथर्व-वेद संहिता तथा यजुर्वेद की संहिताओं (कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं के मन्त्र भाग) में कोई निश्चयात्मक कथन उपलब्ध नहीं होता प्रत्युत इनके समूहवाची शब्द कहीं-कहीं बहुवचन में प्रयोग से, यथा- महः शर्धांसि' (ऋ0 सं0 5.87.7) अथवा मरुतां गणाः (अथ0 सं0 13.4) तथा इसके अभ्यास से यथा - व्रातं व्रातं, गणं गणं सुशस्तिभिरग्नेः भूमिंमरुतामोजईमहे' (ऋ0 सं0 3.26.6) अथवा शर्धं-शर्धं व एषां व्रातं व्रातं गणङ्गणं सुशस्तिः । अनुक्रामेमधीतिभिः ।' (ऋ0 सं0 5.53.11) । तो यही धारणा बनती है कि ऋषियों की दृष्टि में मरुतों की संख्या गणनातीत है । यह धारणा ऋषि के इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि मरुद्गण जलतरंगों के समान सहस्रो अर्थात् असंख्य हैं (सहस्रियासो अपांनोमयः ऋ0सं0 1.168.2) एक स्थल पर (ऋ0सं0 5.57.17) इनके सात गुना सात ('सप्तमे सप्तशाकिनएकमेकं शता ददुः' होने की बात उल्लिखित की गई है । यहाँ ऋषि का उद्देश्य इनकी संख्या का निर्धारण नहीं अपितु इनकी अत्यधिक संख्या की ओर संकेत करना ही है जिसके फलस्वरूप मरुतों से प्राप्त उपहारों की विपुलता का भान कराया जा सके ।[1] इसी प्रकार ऋ0सं08.96.8

---

2. उद्धरणीय है -

The number of the Mounts, on the other hand always remains indescriminate, with this - Praviso that we must not understand 5.52.17 in the sense that the groups of the seven maruts have each given a hundred treanores. In any case this fixed number is an entirely isolated fact and it is much more unstable than the number of twenty three given to the Videvedevas, 8.35.3 or simply to the Devas." By A Bergaine.

Vedic Religion (Eng. Translation by V.G. Parangpe, PP. 380-81).

में इनकी संख्या तीन गुना साठ बतायी गयी है । ❨त्रिषष्ठिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियास:❩" । परन्तु यहाँ उस्रा इव राशय: कह देने से ऋषि को इनकी अत्यधिक संख्या का ही बोध होता है ।[1] ऋग्वेद संहिता 1.136.6 में इन्द्र को तीन गुना सात तत्वों के साथ ❨त्रिसप्त: शूर सप्तभि:❩ से मरुद्गण अभिप्रेत है । यह बात ❨अथर्ववेद संहिता 13.1.3❩ में त्रिसप्तासो मरुत: इस कथन से पुष्टि हो जाती है । मरुतों की संख्या के सम्बन्ध में इस वैविध्य से यही प्रतीत होता है कि ऋषि मरुतगण की संख्या की अधिकता ही द्योतित करना चाहते हैं ।

मरुत् देवता के संघ का सर्वाधिक वैशिष्ट्य यह है कि इनमें सब पूर्णत: समान हैं । 'मरुद्गण समान वयस', समान नीड वाले, समान यश वाले 'सवयस: सनीला: समान्या मरुत:' ऋ0 सं0 1.165.1 हैं । ये समान मन वाले 'समना:[2] अथवा सम-न्यव: हैं । ये बलिष्ठ ❨मरुद्गण❩ साथ-साथ उत्पन्न हुए, साथ-साथ बढ़े ❨साकं जाता सुभ्व: साकमुक्षिता:' ऋ0 सं0 5.55.3❩ हैं । अतएव समान जन्मा होने के कारण मरुदगण समान बन्धु हैं । ❨'सजात्येन मरुत: सबन्धव:' ❨ ऋ0 सं0 8.20.21 और जुड़वाँ के ❨बच्चों❩ समान सुन्दर ❨'यमा इव सुसदृशा:' ❨ऋ0 सं0 5.57.4❩ हैं । इनमें न कोई किसी से बड़ा है ❨अज्येष्ठा: ऋ0 सं0 5.59.6 अथवा अज्येष्ठास:' ऋ0 सं0 5.60.5❩ न कोई किसी से छोटा है ❨अकनिष्ठास:' ऋ0 सं0 5.59.6, 5.60.5❩ और न कोई बड़े छोटे के बीच में ❨अमध्यमास:' ऋ0सं0 5.59.6❩ हैं । ये समान आभूषण धारण करते हैं । ❨'समानमञ्जेषामे' ऋ0 सं0 8.20.11 तथा एक साथ ही प्रयत्नशील होते हैं । ❨'सरभस:' ऋ0 सं0 5.54.10❩ और इनमें परस्पर कभी भी संघर्ष नहीं होता ❨'नकिष्टनूषु येतिरे' ऋ0 सं0 20.12❩ । अतएव मरुतों की उपमा

---

1. इस प्रसंग में ऋ0 सं0 5.56.5 तुलनीय है -

   मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवांसर्गमिव ह्वये' जहाँ मरुतों के समूह को गायों के झुण्ड के समान 'पुरुतमं' कहा गया है ।

रथ चक्र के अरों से दी गई है । रथ चक्र के अरों के सदृश इनमें कोई अन्तिम नहीं है ('अरा इवेद चरमा' ऋ0 सं0 5.58.5; 'अराणां न चमस्तदेषाम्' ऋ0 सं0 8.20.14) । यथा रथचक्र की नाभि में सभी अर समान भाव से जुड़े होते हैं तथैव इनका (मरुतों) का संघ है । ('रथानां न येऽराः सनाभयः' ऋ0 सं0 10.78.4) मरुतों की समानता द्योतित करने के लिए एक स्थल पर इनकी उपमा दिनों से भी दी गई है । जैसे एक के बाद एक दिन चढ़ता है और काल चक्र में ये दिन समान रूप से ग्रथित होते हैं उसी प्रकार ये मरुत हैं । ('अहेव प्र प्रजायन्ते' ऋ0 सं0 5.58.5) ।

मरुतों के जन्म माता पिता, पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि के सन्दर्भ में वैदिक संहिताओं में कतिपय उद्धरण प्राप्त होते हैं । मरुतों को रुद्रस्य सूनवः[1] (रुद्र का पुत्र) रुद्रस्य भार्याः[2], रुद्रस्य पुत्राः[3], रुद्रियासः[4], रुद्रासः[5], रुद्राः[6], रुद्रियाः[7]

---

1. ऋ0सं0 1.64.12, 85.1; 6.66.11; 8.20.17
2. ऋ0 सं0 1.64.2, 7.56 ।
3. ऋ0 सं0 7.66.3
4. ऋ0 सं0 1.38.7; 5.57.7, 58.7; 7.56.22
5. ऋ0 सं0 1.39.4, 85.2; 5.57.1, 87-7, 8.20.2
6. ऋ0 सं0 1.39.4; 2.34.9; 5.60.6; 8.7.12
7. ऋ0 सं0 2.34.10; 3.26.5: 8.20.3

अथवा किन्हीं स्थलों पर केवल रुद्रस्य[1] शब्दों का ही प्रयोग किया गया है । इनकी माता का नाम 'पृश्नि:' अथवा 'पृश्निगो:' बताया गया है और इसीलिए इन्हें पृश्निमातर:[3], पृश्निगर्भा[4] अथवा गोमातर:[5] कहा गया है । एक स्थान पर एक बार इन्हें गोबन्धव:[6] भी कहा गया है । ऋषि गृत्समद की धारणा है कि रुद्र ने पृश्नि के 'ऊधसे' (थनों) से मरुतों को उत्पन्न किया है ।[7] ऋषि श्यावाश्व ने नाटकीय ढंग से मरुतों के माता-पिता का वर्णन इन शब्दों में किया है - 'उन प्रभावयुक्त सूरियों मरुतों ने अपनी बन्धुता के विषय में पूछे जाने पर मुझसे यह बताया

---

1. ऋ०सं० 5.59.8; 8.85 5;

2. ऋ०सं० 1.38.4; 85.1; 89.7; 5.57.2,3, 8.7.3, 17.

3. अथर्व०सं० 4.27.2; 5.21.11; 13.1.3;

4. ऋ०सं० 1.123.1; तै०सं० 1.4.8.1; वा०सं० 7.16; ।
   सायण पृश्निगर्भा में पृश्नि का अर्थ आदित्य अथवा सूर्य की सतरंगी रश्मियाँ किया और पृश्निगर्भा से जलों का अर्थ किया है । उव्वट तथा महीधर ने भी यही अर्थ ग्रहण किया है । परन्तु सा० अन्य सभी प्रसंगों में पृश्नि का अर्थ शबलवर्णा गौ ही किया है । अत: पृश्नि गर्भा से मरुतों का अर्थ उचित मालूम होता है ।

5. ऋ० सं० 1.85.3

6. ऋ० सं० 8.20.8

7. रुद्रो यद्वो मरुतो वक्षसो वृषाजनि पृश्न्या शुक ऊधनि ।
   ऋ० सं० 2.34.2

कि पृश्नि जागय इनकी माता है और शक्तिशाली रूद्र पिता है ।[1] इसीलिए सुजात (सुखातास:[2] अथवा सुजाता:) कल्याणी माता वाले भद्रजानय:)[3] सुन्दर माता वाले (सुमातर:)[4] कहे गये हैं । पृश्नि ने इन्हें महान् युद्ध के लिए जन्म दिया ।[6]

मरूतों को रूद्र का पुत्र कहा गया । इस विमर्श पर आगे विस्तृत चर्चा रूद्र के साथ उनके सम्बन्ध के साथ की जायगी । यहाँ यह विचारणीय है कि 'पृश्निगो:' से ऋषियों का आशय क्या है । यास्क ने निरू0 10.39 में पृश्निगर्भा: का अर्थ 'प्राष्टवर्णगर्भा: ' अर्थात् विविधवर्णवाले (संभवत: मेघ) के गर्भ में स्थित किया गया है । पृश्नि शब्द का यह अर्थ ग्रीक कृष्णवर्ण से भी समर्थित होता है । 'गो: ' शब्द का प्रयोग मेघ के लिए भी किया गया है ।

---

1. प्र ये मे वन्धवेषे गावोचन्त सूरय: पृश्निवोचन्त मातरम् ।
   अधा पितरमिष्मिणं रूद्रं वोचन्त शिक्वस: । ऋ0 सं0 5.52.16

2. ऋ0सं0 5.57.5; 59.6; 8.20.8

3. ऋ0सं0 1.88.3; 166.12

4. ऋ0सं0 5.61.4

5. ऋ0सं0 10.78.6

6. ऋ0 सं0 3.1.168.3
   'बब 'असूत पृश्निर्महते रणाय' ।

इस मेघ रूपी गाय का दूध वृष्टि के रूप में प्रकट होता है ।[1] अत. पृश्नि-गो: [शबलवर्णा गायें] से अर्थ प्रभंजन मेघ ही हो सकता है जो शबलवर्ण होता है । अत: पृश्निमातर: व गोमातर: जैसे विशेषणों से ऋषि का अभिप्राय मरुतों का सम्बन्ध झंझावात से जोड़ना प्रतीत होता है ।

ऊपर वर्णित मरुतों के माता पिता के सम्बन्धों के अतिरिक्त उन्हें वाणी के पुत्र [सूनवो गिर:] 1.37.10] द्युलोक के पुत्र [दिवस्पुत्रास: ऋ0 सं0 10.77.2] ऊँचाई की सन्तान [प्रवतोनपात[3] अथर्व0 1.26.3] तथा माता सिन्धु के पुत्र [सिन्धु-

---

1. उदाहरणार्थ मरुतों के लिए कहा गया है कि वे दिव्य थनों को दुहते हैं और भूमि को जल से सींचते हैं [दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिपिन्वन्ति पयसा परिज्रय: ऋ0 सं0 1.64.5] ये दिव्य थन पृश्नि [मेघ] के ही हैं । अधोलिखित मंत्र में भी पृश्न्या: दुग्ध से वृष्टि का ही अर्थ है -

   सकृद्ध द्यौरजायत सकृतभूमिरजायत ।
   पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥
   ऋ0सं0 11.482

2. सायण ने सूनवो गिर: का अर्थ वाच उत्पादक: अर्थात् वाणी उत्पन्न करने वाले किया है । इन्हें अनेक स्थलों पर 'गायक' कहा गया है [अर्किण: 1.38.1, अर्चिन: 2.34.1 आदि] कम से कम दो स्थलों पर [1.6.6 तथा 9.63.10] स्वयं गिर: शब्द का स्तोतार: अर्थ स्पष्ट है । अत: मरुतों को सूनवो गिर: कहने से इनका नाम गायक स्तोता ही प्रकट होता है ।

3. नपात् शब्द का अर्थ सन्तति पुत्र है । द्रष्टव्य अग्नि का पर्याय 'अपांनपात् जलों का पुत्र, अवे0 अपंमनपा ।

मातर:[1] ऋ0सं0 10.78.6 भी कहा गया है । ये कथन वस्तुत: इनके गायक, दिव्य, उन्नत तथा नदियों से सम्बद्ध रूप को ही स्पष्ट करते हैं । इसी प्रकार ऋषि गृत्समद ने इनको भरत अर्थात् अग्नि के पुत्र (भरतस्य सूनव.[2] ऋ0 सं0 2.36.2) कहकर इनके, इनके अग्नि के समान देदीप्यमान रूप को ही प्रकाशित किया है ।

परन्तु ऋषि नोधा गौतम की दृष्टि में मरुद्गण किसी अन्य से नहीं प्रत्युत स्वयं अपने से साथ-साथ उत्पन्न हुए । (साकं जज्ञिरे स्वधाया दिवो नर: ऋ0 सं0 1.64.4 और इसका समर्थन ऋषि अगस्त्य इन्हें अपने से ही उत्पन्न (स्वजा: ऋ0सं0 1.168.2) कहकर करते हैं । कतिपय इसी तरह का भाव ऋषि मधुछन्दा ने भी इन शब्दों में प्रकट किया है - 'अप्रकाश में प्रकाश तथा अरूप में रूप को

---

1. बर्गे Bergaigne ने सिन्धुमातर: का अर्थ Who have the celestial river for their mother किया है और इस दिव्य नदी में पृश्नि का संकेत समझा है ।(Vedic Religion P. 407) परन्तु यहाँ सिन्धु से सिन्धु नदी का अर्थ भी सम्भव है और तब सिन्धुमातर: से मरुतों का सिन्धुनद के समीपस्थ प्रदेश से सम्बन्ध संकेतित होता है । द्रष्टव्य - MaxMuller. Vedic Hymns Part I, P. 418.

2. वेंकट माधव ने इस भरतस्य सूनव: का अर्थ आदित्यस्य सूनव: किया है । ऋग्वेदे विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, भाग 3 पृ0 1261 तथा सायण ने रुद्रस्य पुत्रा: अर्थ किया है (ऋग्वेद वैदिक संशोधन मण्डल, पूना) । परन्तु ऋ0 सं0 1.96.3 में भरतम पद अग्निम् का विशेषण है और यहाँ सायण ने इसकी व्याख्या हविषो भर्तारम् की है ।

प्रकट करते हुए हे नरों तुम । उषाओं के साथ उत्पन्न हुए । तदनन्तर अपने स्वभावानुरूप यज्ञिय नाम धारण कर पुनः गर्भत्व को प्राप्त हुए ।[1] ऋषि वशिष्ठ ने इनको रुद्र के पुत्र ‖रुद्रस्य मर्याः ऋ0 सं0 7.56.1‖ कहकर भी इनके जन्म की अपरिज्ञेयता इन शब्दों में स्पष्ट की है । वस्तुतः इनके जन्म को कोई नहीं जानता । ये स्वयं ही एक दूसरे के जन्मस्थान को जानते हैं ।[2] अतः स्पष्ट है कि वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मरुद्गण अजन्मा ही है । उनके माता-पिता की कल्पना तो केवल उनके विशिष्ट गुणों को प्रभावकारी ढंग से प्रकट करने का एक कवित्वमय अलंकार पूर्ण ढंग मात्र है ।

मरुतों की सहचरी के रूप में ऋषियों ने 'सरस्वती' 'इन्द्राणी' तथा 'रोदसी' का उल्लेख किया है । ऋषि वशिष्ठ ने एक स्थल पर सरस्वती को मरुत्सखा ‖ऋ0 सं02.96.2‖ कहा है तथा एक अन्य प्रसंग में कहा है कि सरस्वती मरुतों को आनन्दित करें । ‖सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ऋ0 सं0 7.39.5‖ । ऋक्संहिता के दशम मण्डल के प्रसिद्ध 'वृषाकपि सूक्त' ‖10.86‖ की नौवीं ऋक् में इन्द्राणी स्वयं को मरुत्सखा कहती है । 'उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः '‖ परन्तु मरुतों का सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रोदसी अर्थात् 'विद्युत'[3] के साथ बतलाया गया है ।

---

1. कर्तु कृण्वन्नकेतवे पशोमर्या अपेशसे । ऋ0सं0 1.63.
   समुषद्भिरजायथाः ॥ ऋ0 सं0 1.6.3

2. नकिर्ह्येषां जनूंषि वेदते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ ऋ0सं0 7.56.2

3. वेद में रोदसी शब्द दो प्रकार का है । एक आद्युदात्त रोदसी जो द्विवचन का रूप है और जिसका अर्थ द्यावा पृथिवी है तथा दूसरा रोदसी अन्तोदात्त है जिसका अर्थ विद्युत है । मरुतों के प्रसंग में यही अन्तोदात्त अर्थ प्रयुक्त हुआ है परन्तु पदपाठ में भूल से कहीं कहीं इसके साथ भी इति लगा दिया गया है ‖ऋ0सं0 1.167.4; 10.92.11‖ ।

सम्बन्ध की घनिष्ठता के वर्णन से प्रतीत होता है कि ऋषियों ने रोदसी को मरुतों की पत्नी के रूप में कल्पना की है । ऋषि अगस्त्य मरुतों की इस घनिष्ठ सहचरी की ओर प्रथमतः इन शब्दों में संकेत करते हैं - 'जिन (मरुतों) से सुघड़, ओजस्विनी (घृताची) स्वर्णवर्णा (विद्युत) पीछे लटके भाले के समान (उपरा न ऋष्टिः)[1] प्रच्छन्न रूप से साथ चलती 'गुहा चरन्ती' मनुष्य की पत्नी के समान सभा में प्रयुक्त होने वाली (विदथ्या) प्रकाशवती वाणी के समान संश्लिष्ट है ।[2]

ऋषि श्यावाश्व आत्रेय की दृष्टि में रोदसी मरुतों के रथ पर आरूढ़ होती है ।[3] ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य ने भी रोदसी को मरुतों के मध्य प्रकाश के समान स्थित बताया है ।[4]

---

1. ऋ0सं0 1.167.3; सायण ने 'उपरा न' का अर्थ मेघ मालेव किया है परन्तु यह प्रस्तुत प्रसंग में ठीक नहीं लगता है । (See - MaxMuller 'Vedic Hymns Part I, P. 276, Note No. 3.

2. परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः न रोदसी अपनुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ऋ0सं0 1.167.4
यहाँ (रोदसी-रोदसीम्) इस सूक्त की ऋक् 6.6.7 में भी मरुतों के साथ रोदसी के साहचर्य की चर्चा है ।

3. रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥
ऋ0 सं0 5.56.8

4. त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ऋ0सं0 6.66.6
5. यहाँ दूसरे पाद में रोदसी आद्युदात्त यथावर-पृथिवी-वाचक है और तीसरे पाद में रोदसी अन्तोदात्त विद्युत वाचक है ।

यजुर्वेद की संहिताओं में एक स्थान पर मरुतों के एक पुत्र 'ऊर्ध्वनमस्' का उल्लेख हुआ है ।[1] ऊर्ध्वमनस् से ऋषि को क्या अभिप्रेत है यह स्पष्ट नहीं होता क्योंकि इसका उल्लेख केवल एक बार ही हुआ है ।

अथर्ववेद संहिता में मधुकशा को मरुतों की पुत्री कहा है ।[2] सूक्त के वर्णन से विदित होता है कि मधुकशा की कल्पना वृष्टि के अपर पर्याय के रूप में की गई है ।[3]

---

1. अर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ।

   तै०सं० 1.3.9

2. अग्नेर्वातान् मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रानप्तिः'

   अथ० 9.1.3, 10

3. ऋ०सं० 1.22.3 में अश्विनों की मधुमती कथा की चर्चा है -

   "या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती
   तया यज्ञं मिमिक्षितम् ।।"

मरुद्गण ऊँचे कद वाले (ऋष्वास:[1] अथवा ऋष्वा:[2]) हैं। इसीलिए इन्हें ऊँचाई की सन्तान (प्रवतो नपात्)[3] कहा गया है। ये उत्तुंग हैं।[4] मरुतों का गण चिर युवा है। (युवा स मारुतो गण: ऋ०सं० 5.61.13)। अत: सदैव नया नया सा प्रतीत होता है (गणं मारुत नव्यसीनाम्[5] ऋ०सं० 5.53.10) ऋषिगण मरुतों को युवान:[6] अथवा यून:[7] विशेषण के साथ स्मरण करते हैं। मरुतों से बुढ़ापा हमेशा दूर रहता है, ये अजरा:[8] हैं इसीलिए ये अमृता:[9] भी हैं और इन्हें अमरनाम पाया है (अमृतं नाम भेजिरे) ऋ०सं० 5.75.5)

शाश्वत यौवन सम्पन्न मरुद्गण स्वभावत: देदीप्यमान है। इनके लिए

---

1. ऋ०सं० 1.64.2
2. ऋ०सं० 5.52.6, 13
3. अथ० 1.26.3
4. वृहदुक्षा: ऋ०सं० 3. 26.4
5. वर्गे ने Bergainge ने इसका अर्थ The Groups of Mounts belonging the new (mothers) किया है (Vedic Religion, P. 410, Note 3) परन्तु सायण का अर्थ 'नूतनानाम्' MaxMuller द्वारा भी समर्थित है। (Vedic Hymns Part I, P. 323, Verse 10, Note 1)
6. ऋ०सं० 1.64.3; 5.57.8; 8.20.17, 10
7. ऋ०सं० 8.20.19;
8. ऋ०सं० 1.64.3
9. ऋ०सं० 5.57.9; 58.8;

स्वभानव:[1] स्वर्का:[2], स्वरोचिष[3] शब्द प्रयुक्त हुए है। ये सुन्दर कान्तियुक्त चित्रभानव:[4] हैं एवं ऋषि अगस्त्य की दृष्टि में तो 'अहि' सदृश दीप्त ('अहिभानव')[5] है। अहि का अर्थ यहाँ मेघ से है और मेघ की कांति विद्युत ही है अतएव ये विद्युत-प्रभा सम्पन्न् हैं। इसी प्रकार की उपमा ऋषि गृत्समद भी इन्हें विद्युत सदृश चमकते हुए कहकर (अभ्रिया[6] न द्युतयन्त: ऋ0सं0 2.34.2) कहकर दी है। अत: ये शुभ्र (शुभ्रा:[7] अथवा शुभ्रास:[8]) है और तारों भरे आकाश में दूर से ही परिलक्षित होते हैं (दूरे दृशो ये दिव्या इव स्तृभि:)[9] ऋ0सं0 1.166.11।

मरूद्गण स्वर्ण वर्ण हैं।[10] और 'पिशे' नामक मृग के समान सुवर्ण पिशा इव

---

1. ऋ0सं0 1.37.2, 5.53.4, 5 54.1, 8.20.4
2. ऋ0सं0 5.87.5
3. अथ0 7.24.1; 82.3
4. ऋ0सं0 1.64.7; 85.11
5. ऋ0सं0 1.172.1
6. सायण ने अभ्रिया का अर्थ अभ्रेषु भवा: विद्युत: किया है जो द्युतयन्त के साथ उचित लगता है।
7. ऋ0सं0 1.99.5; 85.3; 167.4; 7.56.16; 8.7.2, 14, 25, 27.
8. ऋ0सं0 2.36.2
9. यही बात द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त्र: ऋ0सं0 2.34.2 में भी मिलती है।
10. हिरण्यवर्णान् (मरूत:) ऋ0सं0 2.34.11;
    हिरण्यया: 5.87.5

सुपिशः 1.64.8 है । ये अरुणवर्ण 'अरुणप्सवः'[1] हैं और गृह स्थित नवजात शिशुओं से शुभ्र हैं । (हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्राः 7.56.16) इनके देदीप्यमान रूप को देखकर लोग कह उठते हैं । देखो, इन पारावतों (परदेशियों) को देखो ।[2]

मरुद्गण अग्नि सदृश द्युतिमान है (अग्नयो न शोशुचन्निधाना' 6.66.2) यज्ञाग्नि की लपटों जैसे धधकते और अग्नि की जिह्वा सदृश लपलपाते हैं ( 'त्विषीमन्तो अध्वरस्येव विद्युत तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्नेः' 6.66.10) । स्वदीप्ति से अग्नि की जिह्वाओं जैसे है 'अग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः 10.78.3 । ये अग्नि सदृश शोभाधारी 'अग्निश्रियाः'[3] व 'अग्निभ्राजसः'[4] हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जन्म लपटो' अथवा 'दीप्ति' से हुआ है ('भ्राजज्जन्मानः'[5]; 'शुचिजन्मानः'[6] ।

सूर्य सदृश प्रभावान होने के कारण मरुतों की उपमा सूर्य देव से दी गई है 'शुचयः सूर्या इव' ऋ०सं० 1.64.2 । वे सूर्य के नर (स्वर्णरः ऋ०सं० 5.54.10) हैं और सूर्य रश्मि सदृश प्रभायुक्त हैं । विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः ऋ०सं० 5.55.3 । वे सूर्य सदृश देदीप्यमान त्वचा वाले (सूर्यत्वचः[7] अथवा सूर्यत्वचसः[8]) हैं ।

---

1. ऋ०सं० 8.7.7
2. अधा परावता इति चित्रा रूपाणि दश्यां, ऋ०सं० 5.52.11
3. ऋ०सं० 8.26.5
4. ऋ०सं० 5.54.11
5. ऋ०सं० 6.66.10
6. ऋ०सं० 7.56.12
7. ऋ०सं० 7.59.11
8. अथ० 1.26.3

मरुद्गण उज्ज्वल वर्ण हैं ॥चन्द्रवर्णा: ऋ0सं0 1.165.12॥ । दीप्तियुक्त उज्ज्वल वर्ण धारण किया है ॥'सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुवेशसम्' ऋ0सं0 2.34.12॥ एवं सौन्दर्य को धारण किया है ॥'श्रियो दधिरे' 1.85.2॥ । ऋषि वशिष्ठ के शब्दों में मरुद्गण शोभा से सर्वाधिक शोभित तथा सौन्दर्य से ओतप्रोत हैं ॥'शुभा शोभिष्ठा: श्रिया संम्मिश्ला:' 7.56.6॥ ।

अन्य देवों की भाँति वैदिक ऋषियों ने मरुतों को भी यदाकदा बौद्धिक ऋषियों तथा मानसिक गुणों से मण्डित बताया है । ये धीरे ॥'धीरा:' ऋ0सं0 3.26.6॥; मनीषी मनीषिभि: ऋ0सं0 5.57.2 तथा मनीषा से 'शुचयो मनीषा' ऋ0सं0 6.66.11 हैं । ये बुद्धिमान हैं ।[1] मरुद्गण ऋत से उत्पन्न ॥'ऋतजाता: ऋ0सं0 5.61.14॥ हैं और इसीलिए ऋत को जानने वाले ॥'ऋतज्ञा:'[2] हैं । ये कवि हैं[3], पावक हैं[4] और इन दिव्य गुणों को धारण करने के कारण नेता ॥प्रणेतार: 5.61.15॥ हैं ।

---

1. प्रचेतस: ऋ0सं0 1.64.8, 8.7.12;
   विचेतस: ऋ0सं0 5.54.13

2. ऋ0सं0 5.61.14

3. ऋ0सं0 5.52.13; 57.8; 58/83, 8;
   अथ0 4.27.13

4. पावकास: ऋ0सं0 1.64.2;
   पावका: ऋ0सं0 7.56.12, 57.5

मरुतों के देदीप्यमान स्वरूप को देखकर वैदिक ऋषि उनकी उपमा अग्नि अथवा सूर्य से देने पर भी अधूरा ही समझते हैं और सम्भवत: इसी कमी को पूर्ण करने के लिए वे मरुतों के लिए नानाविध आभूषणों से अलंकृत शब्द का प्रयोग करते हैं। ऋषि श्यावाश्व आत्रेय के शब्दों में 'समृद्धवरों के समान अपनी शक्ति से अपने शरीर को स्वर्णालङ्कारों से सजाये हैं। ‹वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्व: पिपिश्रे' ‹ऋ०सं० 5.64.8› ऋ०सं० 5.60.4। ऋषि गौतम की दृष्टि में सर्पणशील मरुद्गण ‹मेले ठेले में जाती हुई स्त्रियों के समान› हैं। ‹प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तय:'[1] ऋ०सं० 1.85.1›। एक अन्य सूक्त में ऋषि गौतम को आभूषणों से सजे मरुद्गण तारों भरे आकाश से लगते हैं ‹अञ्जिभिव्यनिश्रे केचिदुस्रा इव स्तृभि: 1.87.1› ऋषि अगस्त्य का कहना है कि जब ये मरुद्गण कहीं प्रस्थान करते हैं तो शरीर को

---

1. जनयो न सप्तय: का अर्थ मैक्समूलर ने Vedic Hymns Part I, Page 126 Those who glance forth like wives and yoke fellows किया है और इसकी विस्तृत टिप्पणी करते हुए ‹वही पृष्ठ 128-129›। जनय: को सप्तय: का विशेषण मानकर घोड़ों की स्त्रियाँ अर्थात् घोड़ियाँ जैसे अर्थ का खण्डन कर 'सप्तय:' शब्द को उसके व्युत्पत्त्यर्थ में ग्रहण करने का समर्थन किया है और सप्तय: शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ 'Yoke follows' किया है। सायण द्वारा गृहीत व्युत्पत्त्यर्थ सर्पणशील अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है तथा लुडविग ने die renner तथा मैक्डॉ० ने भी A vedic Reader for students Page 22 पर 'the racers' अर्थ किया है। मैक्समूलर ने ऋ० सं० से ऐसा कोई स्थल उद्धृत नहीं किया है जहाँ दो उपमेयों के मध्य 'इव' अर्थ वाले 'न' का प्रयोग कर दो उपमाएँ प्रकट की गई हों जैसा कि मैक्समूलर ने 'जनयो: न सप्तय:' के अर्थ में स्वीकार किया है। अत: मैक्सम्यूलर की अपेक्षा सायण का अर्थ अधिक उचित प्रतीत होता है।

अलंकृत कर ‖'तन्व शुम्भमाना:' ऋ0सं0 1.165.5‖ चलते हैं । ऋषि गृत्समद ने भी इनको आभूषण प्रिय ‖अञ्जिषु प्रिया उते ऋ0सं0 2.36.2‖ कहा है । ऋषि श्यावाश्व इन्हें 'अलङ्कृत नर' व्यक्ता नर: ‖ऋ0सं0 7.56.1‖ के रूप में स्मरण करते हैं और उन्हें ये ‖मरुद्गण‖ यक्षों सदृश परिलक्षित होते हैं । ‖यक्ष दृशो[1] न शुभयन्त मर्या:' ऋ0सं0 7.56.16‖ ऋषि कण्व घौर: नो मरुद्गणं के आभूषणों को कर्ण के कवच-कुण्डल के समान जन्मजात स्वीकार किया है ‖साकं वाशीभिराञ्जिभि: अजायन्त स्वभानव:' ऋ0सं0 1.37.2‖ ।

विविध प्रकार के आभूषणों का भी उल्लेख मिलता है । इन्हें बड़ों वाले[2]

---

1. सायण ने यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या: का अर्थ 'यक्षस्योत्सवस्य दृष्टारो मनुष्या इव शोभन्ते' किया है । इस पद में सायण ने 'यक्ष' को यज् से व्युत्पन्न मानकर ऐसा अर्थ किया है । परवर्ती काल में 'यक्ष' एक देवयोनि-विशेष बन गये हैं । Grassman ने वैदिक भाषा में √यक्ष् धातु की कल्पना कर इसको प्राचीन हाइ जर्मन(Jagon) से सम्बद्ध बताते हुए इसका अर्थ 'झपटना', 'तीव्रगति से पीछा करना' किया है जो मरुद्गण के प्रसंग में सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

2. सायण ने 'खादि' का अर्थ कहीं खाद्य: ‖द्रष्टव्य 1.166.6 में‖ आभूषण विशेष ‖वहीं‖ तथा कहीं भक्षयिता ‖द्रष्टव्य 1.87.6 में सुखादय: का शोभनस्य हविषो भक्षयितार:‖ और आडिन: का अर्थ 'शत्रूणां खादका:' तथा वैकल्पिक रूप से 'कटक-युक्त' ‖युद्वा खाद: कटकम्‖ तद्युक्ता: ------- 2.34.1 की व्याख्या में किया है । पुन: सा0 5.54.11 में खादय: का अर्थ कटका: तथा 5.87.1 में 'आभरण विशेषा' करते हैं । खादि शब्द के सभी प्रसंगों को ध्यान में रखने पर आभरण अर्थ सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है इसलिए यहाँ इसका अर्थ बड़ा ‖कटक‖ किया गया है ।

(आडिनः ऋ0 2.34.2), सुन्दर कड़ों वाले (सुखादयः ऋ0 1.87, 87.6), मजबूत कड़ों वाले (वृषखादयः ऋ0 1.64.10)और शुभ्र कड़ों वाले (शुभ्रखादयः) ऋ0 8.20.4 कहा गया है । इन कडों को हाथों में (कलाइयों में) आदिहस्तम् गणम् ऋ0सं0 5.58.2) पैरों में (पत्सुखादयः ऋ0सं0 5.54 11) पहनते है तथा कंधों पर असंष्वा व प्रपथेषु खादयः ऋ0सं0 1.166.9 तथा असंष्वा मरुतः खादयो वः ' ऋ0सं0 7.56.13) लटका लेते हैं ।

मरुतों का द्वितीय आभूषण 'रुक्म' हैं जिसका प्रयोग प्रायः बहुवचन में मिलता है ।[1] इसलिए इन्हें रुक्मशोभितः वृक्षःस्थल वाले (रुक्मवक्षस) कहा गया है । रुक्मों को ये वक्षःस्थल पर धारण करते हैं । (वक्षःसुरुक्ममम्) परन्तु एक अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है कि 'रुक्म' इनकी भुजाओं पर शोभित है (विभ्राजन्ते रुक्माणो अधि बाहुहु । (ऋ0सं0 8.20.11) । सायण ने 'रुक्म' का अर्थ 'हार' किया है ।[2] निघण्टु में 'रुकमः', 'हिरण्य' के पर्याय में प्रयुक्त हुआ है ।[3] आश्वलायन श्रौतसूत्र 9.4 में 'रुक्म' का अर्थ 'होता' को दिया जाने वाला गोल आकार का आभूषण प्रयुक्त मिलता है ।

---

1. ऋ0सं0 1.64.4; 166.10; 5.54.11; 7.56.13 आदि । परन्तु एक वचन में भी इसका प्रयोग मिलता है जैसे 1.88.2 आदि में ।

2. 1.64.4 की व्याख्या में 'रुक्मान् रोचमानात् हारान्' अर्थ किया है परन्तु 1.166.10 में सायण ने 'रुक्माः' का अर्थ सुवर्ण रत्नादि निर्मितानि आभरणानि' किया है ।

3. निघण्टु अध्याय 1, खण्ड 2.

एक अन्य स्थल पर मरुतों को सुन्दर निष्क धारण करने वाले भी कहा गया है ‡ 'सुनिष्का उत स्वयं तन्व: शुम्भमाना: ' ऋ0सं0 7.56.11‡ निष्क भी एक प्रकार के हार हैं । ऋ0सं0 5.53.4 में मरुतों को मालाओं से अलङ्कृत बताया गया है ।

सिर पर सोने का मुकुट धारण करने के कारण मरुद्‌गण को स्वर्ण मुकुट वाले ‡हिरण्यशिप्रा:[1]‡ ऋ0सं0 2.34.3; 8 कहा गया है ।

ऋषि श्यावाश्व आत्रेय ने इस मंत्र में मरुतों को परुष्णी[2] ‡देदीप्यमान वस्त्र‡ पर ऊनी वस्त्र धारण किये हुए बताया है । ‡ 'उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यव: ऋ0सं0 5.52.9‡ एक अन्य स्थल पर वे इनके सुनहरे वस्त्रों की चर्चा करते हैं ‡हिरण्य-यान प्रत्यक्तां अमुग्ध्वम्' ऋ0सं0 5.55.6‡ । अत: स्पष्ट है कि मरुतों की हिरण्य-मयी दीप्ति ही यहाँ ऋषि की दृष्टि में उनके सुनहरे वस्त्र हैं । एक अन्य स्थल पर ऋषि श्यावाश्व वर्षा को ही मरुतों के वस्त्र के रूप में देखकर ‡वर्णनिर्णिज: ऋ0सं0 5.74‡ नामक विशेषण से मण्डित करते हैं । ऋषि अगस्त्य के अनुसार मरुद्‌गण अपने कन्धों पर शुक्ल वर्ण मृगचर्म ‡असंष्वेतो: ' ऋ0सं0 1.166.10‡ धारण करते हैं ।[2]

---

1. सा0 ने 'परुष्णी' का अर्थ पंजाब की नदी इरावती जो आजकल रानी के नाम से अभिहित है, किया है । मैक्समूलर इसको पृश्नि का पर्याय मानते हैं और राथ ने इसका अर्थ प्रस्तुत प्रसंग में मेघ किया है । द्रष्टव्य Vedic Hymns P. 315, by Max.Muller.

2. सा0 ने 'एत: ' का अर्थ 'शुक्लवर्णमाला' किया है । परन्तु राथ ने कुछ विशेष प्रकार के मृगचर्म अर्थ किया है जो प्रस्तुत प्रसंग में अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । Mayrhofor ने भी 'A concise Etymological Sanskrit Dictionary में 'एत: ' का अर्थ 'A kind of antelope' किया है ।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मरूद्गण अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित योद्धाओं की भाँति परिलक्षित होते हैं। ऋषि वशिष्ठ के शब्दों में अपने रूक्मों, आयुधों और बलिष्ठ अंगों से जिस प्रकार मरूद्गण सुशोभित होते हैं ऐसा अन्य कोई देवता नहीं ॥मतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः' ऋ0सं0 7 57.3॥ ये आयुध इनके शरीर की शोभा को द्योतित करते ही हैं साथ ही इनके रथों में भी रखे रहते हैं ॥नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वाव: श्रीरधि तनूषुपिपिशे: ऋ0सं0 5.57.6॥ रथों में अधिक मात्रा में रखे ये आयुध परस्पर टकराते हैं ॥विश्वानिभद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ऋ0सं0 1.166.9॥ इसीलिए इन्हें सुन्दर आयुध वाले ॥स्वायुधास: ऋ05.87.5; 7.56.11॥ कहा गया है। इन आयुधों पर नियंत्रण होने के फलस्वरूप ये इनका स्वेच्छानुसार प्रयोग करते हैं। ॥अनुस्वधामायुधैर्यच्छमाना: ऋ0 सं0 7.56.13॥ ।

मरुतों के आयुधों में सर्वाधिक चर्चित हथियार '<u>भाला</u>' होने के कारण इन्हें ऋष्टियों से प्रकाशित बताया गया है। ॥वि ये भ्राजन्ते सुमखास: ऋष्टिभि:॥[1] और इनके लिए ॥भ्राजदृष्टय:॥[2] चमचमाते भालों वाले ब्र विशेषण प्रयुक्त हुआ है। भाले

---

1. सा0 ने ऋष्टिभि: का अर्थ यहाँ पर आयुध किया है परन्तु इसके अवेस्ता प्रतिरूप अर्शनिशे का अर्थ भाला ही होता है इसलिए यहाँ यही अर्थ ग्रहण करना समीचीन होता है। द्रष्टव्य - Mayrhofer - 'A concise Etymological Sanskrit Dictionary'.

2. ऋ0सं0 164.11; 87.3; 164.4;
 2.34.5; 5.55.1; 10.78.7

लेकर गमन करते हैं, (ऋष्टिभिर्यामन् - 2.36.2) तथा उसे कन्धे पर टिकाये रखते हैं (अंसेष्वेषां निमिमृक्षुऋष्टयः' ऋ०सं० 1.64.4)[1] और अपने रथ पर भी रखे ह रहते हैं। इस कारण रथों के साथ 'ऋष्टिमत' विशेषण प्रायः प्रयुक्त हुआ है ('रथेभिर्याति ऋष्टिभिर्मद्भिः' ऋ०सं० 1.88.1) जब ये भालों को आगे की ओर करके चलते हैं तब इनका प्रयाण देखते ही बनता है - चित्रों वो यामः प्रयतास्वष्टिषु' ऋ०सं० 1.166.4) ।

अनेक स्थलों पर मरुद्गण विद्युतरूपी ऋष्टि वाले कहे गये हैं (ऋष्टिविद्युतः ऋ०सं० 1.168.5; 5.52.13) इससे स्पष्ट है कि ऋषियों ने विद्युत की ही इनकी ऋष्टि से कल्पना की है। पीछे कहा जा चुका है कि मनिष्ठ इनकी सहचरी है जो विद्युत का ही अपर पर्याय है। एक स्थल पर इनसे संश्लिष्ट संभवतः 'रोदसी' की उपमा 'धष्टि' से दी गई है। अतः प्रतीत होता है कि 'एषामंसेषु रम्भिणी व रारभे[2], ऋ०सं० 1.168.3 में पत्नी के समान इनके कन्धों से टिकी यह विद्युत रूपिणी ऋष्टि ही है। ऋ०सं० 5.54.11 में विजलियों को इनकी मुष्टि में पकड़ा गया है (विद्युतो गभस्त्योः) ।

---

1. सा० ने निमिमृक्षु का अर्थ निमृष्टाः स्थिताः बभूवुः किया है। मैक्स० इसका अर्थ टुकड़े-टुकड़े करना करते हैं और ऋगंश का अर्थ The spears of their shoulders found to pieces' किया है।
   Vedic Hymns P. 112 By MaxMuller.

2. सा० ने रम्भणीव का अर्थ पोषिदिव किया है जो मैक्सम्यूलर को भी स्वीकार करते हैं। यह 'योषित्' रोदसी ही है - ऐसा "जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुकारोदसी नृमणाः।" ऋ० 1.167.5 से भी स्पष्ट है।

   See Vadic Hymns, Vol.I, Page 283, By MaxMuller.

वज्र को भी धारण किये हुए मरुद्गण का वर्णन उस समय मिलता है जब ऋषि वशिष्ठ मरुतों से प्रार्थना करते हैं कि उनसे चाहे जो भी अपराध हो गया हो, वे अपना वज्र उनसे दूर ही रखें ।[1] और उनके शत्रु को अपने तपिष्ठ वज्र से मार डालें ।[2] (हन्मत्) । ऋषि अगस्त्य ने मरुतों को ठोस पदार्थों को भी भंगुर के समान तोड़ने वाला बताया है । (यच्चायावपथ विथुरेवसंहित - ऋ०सं० 1.168.6) । अगस्त्य ने भी मरुतों से अपना वज्र दूर रखने की प्रार्थना की है ।[3] ऋषि पुनर्वत्स कण्व ने मरुतों को 'वज्र हस्ते:' (ऋ०सं० 8.7.32) कहा है ।

मरुतों के एक अन्य आयुध 'वाशी:' का बहुधा उल्लेख हुआ है ।[4] ये मरुद्गण वाशियों सहित उत्पन्न हुए ।[5] सायण ने वाशी: का अर्थ युद्ध घोष करके यह कारण दिया है कि निघण्टु में वाशी: को 'वावन' के पर्यायों में गिना जाता

---

1. अधकसा वो मरुतो विद्युतस्तु यद्व आगः पुरुषता करोम । ऋ०सं० 7.56.4

2. द्रुहः पाशान्प्रति समुवीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तनातम् । ऋ०सं० 7.59.8

3. आरे सावः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
   आरे अश्मा यमस्यथा ॥ ऋ०सं० 1.172.2

4. ऋ०सं० 1.37.2, 88.3;
   6.53.4

5. ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः ।
   अजायन्त स्वभानवः ॥
   ऋ० सं० 1.37.2

है । (निघ० 5.11.11) परन्तु एक अन्य स्थान पर (ऋ० 1.88.3) पर सायण ने वाशी: का अर्थ 'शत्रुओं को ललकारने वाला' आरा नामक आयुध किया है। (शत्रुणामा, कोशकमाराख्यस्तयुधम्) ।

कतिपय स्थानों पर मरुतों को धनुष, वाण और निषङ्ग से सज्जित बताया गया है।[1] एक स्थान पर इनके हाथ में तलवार की भी चर्चा की गई है। (हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च संदधे ऋ०सं० 1.168.3) । इनकी उपमा कवचधारी योद्धाओं से की गई है - (वर्मण्वन्तो न योधा: ऋ० 10.78.3) । कण्व घोर प्रार्थना करते हैं कि आपके आयुध शत्रुओं को परास्त करने तथा प्रतिरोध करने में स्थिर हों। (स्थिरावः सन्त्वायुधापराणुदे वीळु उत प्रतिष्कभे' ऋ० 1.39.2) ।

मरुद्गण रथों पर शोभित हैं।[2] मरुतों का समूह एक ही रथ पर न सवार होकर अलग-अलग रथों पर सवार होता है इसीलिए श्यावाश्व ऋषि ने उनके रथों के

---

1. वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिण: सुधन्वान् इषुमतो निषङ्गिण: ।।
   स्वश्वा: स्थ सुरथा: पृश्निमातर: स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ।।
   (ऋ० 6.57.2)

2. कीळं व: शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्
   कण्वा अभि प्रगायत ।।
   (ऋ०सं० 1.37.1)

झुण्ड का उल्लेख किया है ॥शर्ध रथानाम्' ॥0सं0 5.53.10॥, परन्तु यत्र-तत्र 'मारुत रथे' का एकवचन में भी प्रयोग हुआ है ।[1] इनके रथ सुन्दर होने के कारण इन्हें सुन्दर रथवाले ॥सुरथा: ऋ0 5.57.2॥ कहा गया है । इसके साथ ही इन्हें सुनहरे रथ वाले ॥हिरण्यरथा: ऋ0सं0 5.57.1 तथा देदीप्यमानरथ वाले ॥युवा स मारुतो गणस्त्वेष रथो अनेश्च: ऋ0सं0 6.61.13॥ कहा गया है । क्योंकि इनके रथों पर विद्युत्न तस्थौ मरुतो रथेषु वलै:॥ ऋ0सं0 1.64.9॥ और इसलिए इनके रथ विद्युन्नत कहे गये हैं । ॥आ विद्युन्मद्भिर्मरुत: स्वर्कै: रथेभिर्यात्' ऋ0सं0 1.88.1॥ इनके रथ अग्नियों के समान अपनी ही दीप्ति से देदीप्यमान हैं ॥'आ अग्नयो न स्वविद्युत: स प्र स्यन्द्रासो धुनीनाम् ऋ0सं0 5.87.3 ॥ ।

मरुतों के रथ चक्र भी स्वर्णिम हैं 'हिरण्य चक्रान्' ॥मरुत:॥ ऋ0सं0 1.88.5 और इनके रथ की पंचिया ॥हाल॥ भी स्वर्णिम हैं ॥हिरण्ययेभि: पविभि: पयोवृध: ऋ0सं0 1.66.11॥ परन्तु ये स्वर्णिम पवियाँ वज्र सी कठोर हैं और शत्रु को कुचलने में समर्थ हैं । रथ की पवि से मरुद्गण भूमि पर प्रहार करते हैं 'पव्या रथस्य जङ्-घनत भूमे ऋ0सं0 1.88.2 और अद्रि को चकनाचूर कर डालते हैं 'अथ पव्या रथा-नामद्रिं भिन्दत्योजसा" ऋ0सं0 5.52.9॥ पवि के किनारे बड़े पैने हैं 'पविषु क्षुरा अधि' ॥ऋ0सं0 1.166.10॥ । मरुतों के रथ को कठोर पवि वाला कहा गया है वीळुपवि: ॥ऋ0सं0 5.58.6; 8.20.2॥ । इनके रथ की नाभि सुदृढ होने के कारण वृषनाभि रथेन वृषनाभिना' ऋ0सं0 8.20.10॥ कहा गया है । इनके रथ का अक्ष दोनों चक्रों को एक साथ जोड़े रहता है । 'अक्षो वश्चक्रा समया वि ववृते ॥ऋ0सं0 1.166.9॥ ।

---

1. ऋ0 1.167.5; 5.56.8

मरुतों के रथों में घोड़े जुड़ते हैं । यद् युञ्जते मरुतो रुक्म वक्षसो श्वान् रथेषु भग आ सुदानव:' (ऋ०सं० 2.34.8) अत: इन्हें घोड़े जोतने वाले कहा गया है (अश्वयुज: (ऋ०सं० 5.42.2) । इनके रथ के घोड़े अरुणवर्ण अथवा विशङ्वर्ण (विङ्गलवर्ण) हैं । ते स्पगोभिर्वरमा पिकड्मे शुभं क यान्ति रथतूर्भिरश्व: (ऋ० सं० 1.188.2) अत: मरुतों को पिशङ्गाश्वा: अरुणाश्वा:' ऋ०सं० 5.57.4 बताया गया है । इन घोड़ों के खुर स्वर्णिम हैं (अश्वैहिरण्यपाणिभि: देवास उपगन्तन् ऋ० सं० 8.7.27) । ये दृढ़ खुरों वाले हैं - 'वीलुपाणि'[1] ऋ०सं० 1.38.11) । मरुतों के घोड़ों के लिए प्रयुक्त 'स्वश्वा:' ऋ० 5.37.2 तथा 7.56.1 विशेषण से स्पष्ट है कि इनके रथों में जुड़ने वाले घोड़े बहुत ही सुन्दर हैं । घोड़े बलिष्ठ होने के कारण मरुतों का रथ बलिष्ठ घोड़ों वाला 'वृषणश्व' ऋ०सं० 8.20.10) कहा गया है ।

मरुतों के वाहनों के सम्बन्ध में पृषदश्व: ऋ०सं० 2.87.4, 2.34.4 प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है चितकबरे घोड़ों वाले अथवा चितकबरे हरिणों के वाहन वाले । अनेक स्थलों पर इनके वाहनों को चितकबरी हरिणियां[2] बताया गया है (पृषती) । इन हरिणों के आगे एक रोहित वर्ण हरिण जुता होता है 'उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहित:[3] ऋ०सं० 1.39.6) ।

---

1. घोड़ों के प्रसंग में पाणि का अर्थ खुर करना ही उचित प्रतीत होता है । यह अर्थ हिरण्येयेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वै: अर्थात् द्रुत खुरों वाले घोड़ों द्वारा भी स्पष्ट हो जाता है । अत: सायण का पाणि द्वारा मरुतों के हाथों का अर्थ लेना उचित नहीं प्रतीत होता ।

2. ऋ०सं० 1.37.2, 68.8; 2.34.3; 5.58.6 आदि ।

3. सा० ने प्रस्तुत प्रसंग में प्रष्टि का अर्थ प्रष्टि: एतत्संज्ञको वाहनत्रय मध्यवर्ती युग विशेष: किया है परन्तु सा०ने ही ऋ०सं० 8.27.28 में प्रष्टि: का अर्थ प्रमुखे युज्यमान: अर्थात् सबके आगे जुता हुआ किया है और यह अर्थ प्रस्तुत ऋक् में भी ठीक बैठता है ।

इनकी लगामें भी मजबूत ॥दृढ़॥ हैं 'रथारश्मान: ॠ0सं0 5.87.5॥ ॠषि श्यावाश्व ने मरुतों को घुड़सवार के रूप में चित्रित किया है। वे कहते हैं हे मरुतों कहाँ है ? तुम्हारे घोड़े, कहाँ हैं ? लगामें, तुम कैसे आये ? ॥घोड़ों की॥ पीठ पर काठियाँ हैं नाक में लगाम हैं। इस वर्णन में मरुद्गण घुड़सवार प्रतीत होते हैं। मरुतों के हाथ में कोड़ा ॥कशा॥ हैं। ॠषि कण्व घौर को इनके कोड़े की कड़क सुस्पष्ट सुनाई देती है।[1]

मरुतों के वाहन तीव्र वेग वाले हैं 'सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वान:' ॠ0सं0 1.87.3॥ ये द्रुतगामी अश्वों वाले हैं 'आश्वश्व'।[2] इनके चितकबरे हरिणों की चाल मन के वेग जैसी है 'मनोजुव ॠ0सं0 1.85.4; । ॠषि श्यावाश्व आत्रेय के शब्दों में ॥मरुतों ने॥ हवाओं को ही अश्व के रूप में धुरी में जोत लिया है। वातान् ध्यश्वान् धुर्या युयुजे' ॠ0सं0 5.85.7॥ । वस्तुत: वायु ही मरुतों का वाहन है जिसकी कल्पना अश्व अथवा पृषती बात ॠषि भारद्वाज बार्हस्पत्य ने इन शब्दों में कही है। मरुतों! तुम्हारी गाड़ी में भले ही हरिण या घोड़े न जुते हो वह भले ही सारथी रहित हो और उसमें लगामें भी न हों परन्तु वह रुके बिना अन्तरिक्ष के मध्य अपने मार्ग पर तीव्रगति से पृथ्वी और द्युलोक के मध्य चलती है।[3] ॥ॠ0 5.58.1॥

---

1. क्व वो श्वा: क्वा इ भीशव: कथं केश कथा यय।
   पृष्ठे सदा नसोर्यम: । ॥ॠ0 सं0 5.61.2॥ ।

2. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
   नि यामन चित्रमृञ्जते ॥ ॠ0सं0 1.37.3

3. ॠ0 10.78.5; इष्मिण: द्रुतगति से आगे बढ़ने वाले ॠ0 1.87.6; 5.87.5:, 8.56.11; ध्यान: त्वरित गति से चलने वाले 2.34.4; 2.34.11; घष्णु क्षिप्र 1.64.12 तुरास: त्वरित 1.166.14; तुरण्यव: प्रबल वेग से बढ़ने वाले ॠ0सं0 1.134.5; त्वेषयामा: 1.166.5 प्रचण्ड गतिवाले 1.139.9; 87.7 ; 7.56.14; प्रयज्यव: अनुधावन करने वाले ॠ0 1.64.11; मखा: ॥द्रुत॥ 1.64.7,85.6; रघुष्यद: तीव्रगति से फिसलते हुए 1.64.12; विवार्षणि: गतिशील ॠ0सं0 5.52.33॥ ।

वायु को मरुतों का वाहन ही नहीं कहा गया है (ऋ0सं0 5.58.7 प्रत्युत प्रचण्ड वेग में इनकी उपमा भी वायु से दी गई है। ये वायु के समान स्वेच्छा से प्रयाण करने वाले हैं वातासो न स्वयुज: ऋ0सं0 10.78.2। तथा वायु के समान प्रचण्ड घोष करते हुए झपटने वाले हैं। 'वातासोन ये धुनयो जिगलव:' 10.78.3

मरुतों के लिये प्रयुक्त विशेषणों से इनकी द्रुतगति तथा प्रचण्ड वेग को स्पष्ट किया गया है। इनको अयास: अथवा अत्यारए (गतिशील) आशव: क्षिप्र गति वाले तथा स्पन्द्रास: झपटते हुए ऋ0सं0 8.20.10 कहा गया है। इन उपर्युक्त विशेषणों की भरमार असंदिग्ध रूप से प्रकट कर देती है कि वैदिक ऋषि की कल्पना में मरुतों के साथ उनका प्रबल वेग अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

वैदिक ऋषियों ने ऐसा माना है कि मरुद्‌गण तेज उड़ान में पक्षियों के समान है।[1] इसी कारण इन्हें कहीं-कहीं गृध्रा:[2] अथवा श्येना:[3] कहा गया है। गमन-काल के प्रचण्ड वेग में मरुतों के घोड़े कभी थकते नहीं और त्वरित गति से गन्तव्य तक पहुँच जाते हैं। प्रबल वेग की शक्ति के कारण ये अन्तरिक्ष को भी नाप डालते

---

1. वयो न ये श्रेणी: पप्तु रोजसान्तान् दिवो बृहत: सानुनस्परि।
ऋ0 सं0 5.59.7

2. ऋ0 सं0 7.56.3; 10.77.5

3. न वो श्वा: अथपन्ताह सिस्रत: सद्यो अस्याध्वन: पारमश्नुथे।
ऋ0 सं0 5.54.10

हैं 'उतान्तरिक्षे ममिरे व्योजसा' ऋ0 सं0 5.55.2 । इनके प्रयाण को पर्वत और नदियाँ नहीं रोक पाते और ये जहाँ चाहते हैं पहुँच जाते हैं ।[1] इनके प्रबल वेग की उपमा ढलान से बहते जल से भी दी गई है । मरुतों के प्रबल वेग से पृथ्वी यों काँप उठती है मानों उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे ।[2] ओषामज्येषु विथुरे रेजते भूमि यामेषु युद्ध युज्जते शुभे ऋ0सं0 1.87.3 और द्युलोक वर्ती पाषाण ॥मेघ॥ और पर्वत श्रृंखलाओं को भी ये कँपा देते हैं । अश्मान चित् स्वयं पर्वतं गिरिं प्रच्यावयन्ति यामभिः ऋ0सं0 5.56.4 । इन्हें अपनी चाल के लिए प्रसिद्ध बताया गया है ॥यामश्रुत ऋ0सं0 5.52.15॥ क्योंकि इनकी विचित्र चाल घरों में रहने वाले लोगों को डराने वाली ही नहीं है ॥भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वा यामः प्रयतास्वृष्टिषु' ऋ0सं0 1.166.4 अपितु शोभायुक्त भी है और इसीलिए इनको शुभं यावान[3] ऋ0सं0 1.89.7 विशेषण से भी सुशोभित किया गया है ।

---

1. न पर्वता न नद्यो वरन्त वो,
   यत्रा चिध्वं मरुतो गच्छेयदु तत् ॥
   ऋ0 सं0 5.55.7

2. सायण ने विथुरा का अर्थ वियुक्ता जाया किया है परन्तु ऋ0सं0 1.87.1 में स्वयं मरुतों के लिए अविथुरा विशेषण आया है जिसका अर्थ सायण ने अवियुक्ताः सप्तगण रूपेण संघी भूता इत्यर्थः किया है । अतः विथुरा का अर्थ टूटे हुए, टुकड़े टुकड़े हुए ही प्रसंगानुकूल लगता है । अवेस्ता में अइविथुर का अर्थ भी अटूट है ।

3. ऋ0सं0 6.61.13 में मरुतों के गण को शुभंयावा कहा गया है ।

वैदिक संहिताओं में मरुतों से सम्बन्धित बहुत ही कम मन्त्र होंगे जिनमें मरुतों के बल पराक्रम का वर्णन न किया गया हो । वैदिक ऋषियों के द्वारा इनकी शक्ति, ओज व पराक्रम का अधिकाधिक वर्णन मिलने से वैदिक देवगणों में मरुद्गण इन्द्र के प्रतिस्पर्धी से मालूम पड़ते हैं । मरुतों के बलपौरुष से वैदिक ऋषि कितने अभिभूत हैं यह तथ्य वैदिक संहिताओं में प्रयुक्त उन विशेषणों से स्पष्ट हो जायगा जो उनकी शक्ति की ओर इंगित करते हैं । निम्नांकित विशेषण पद ध्यान देने योग्य हैं -

(1) नर[1] - मरुतों को नर विशेषण से प्राय: विभूषित किया गया है और इन स्थलों[2] पर नर: शब्द का अर्थ मनुष पुरुष ही नहीं है प्रत्युत पौरुषयुक्त बलशाली पुरुष अथवा शूर से है । उदाहरणार्थ - को वो वर्षिष्ठ आ नारो दिवश्चर ग्मश्च धूतय:, यत् सीमन्तं न धूनुथ । हे शूरो ! तुम जो द्युलोक और पृथ्वी को कँपाने वाले हो, जो (पृथ्वी और द्युलोक) को वस्त्र के छोर के समान कँपाते हो, तुममें बलिष्ठ कौन है । (ऋ0सं0 8.37.6) ।

मरुतों के शिरों में पौरुषयुक्तविचार भरे हैं 'नृम्णा शीर्षसु ऋ0सं0 5.57.6 इनके रथ भी पौरुष तथा साहस से भरे हैं । साकं नृम्णै: पौंस्येभिश्च भुवने ऋ0 सं0 6.66.2 । इसीलिए मरुतों से पौरुष की याचना की जाती है 'सा विट सुवीरा

1. मिलाइये, अवेस्ता ना, नर, फारसी-नर अरमेनियन-अइर, ग्रीक-आनेर, अलबानियन-न्यैर । द्रष्टव्य - Mayrhofer - 'A concise Etymological Sanskrit Dictionary.

2. ऋ0सं0 1.37.7; 86.8; 195.11; 5.53.15; 54.10; 59.3; 61.1; 7.59.4; 8.20.10; 16.

मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ऋ०सं० 7.65.5 । पौरुष सम्पन्न होने के कारण मरुतों को नृमणा: 'पौरुषयुक्त विचार वाले कहा गया है ऋ०सं० 1.167.5 ।

वैदिक ऋषियों ने मरुतों के शुष्म अर्थात् बल की चर्चा की है । वे इनके उग्र बल से सुपरिचित हैं । पद्मा हि रुद्रियाणांशुष्ममुग्रमरुतां शिमीवतताम्' ऋ० सं० 8.20.3 । उनकी दृष्टि में इनके बल शुभ्र हैं 'शुभ्रो व: शुष्म: ' ऋ० सं० 7.56.8 । शुष्मयुक्त होने के कारण इन्हें मरुतों को शुष्मिण: अर्थात् बलशाली कहा गया है और ऋषिगण इस शुष्मी मरुद्गण के लिए मन्त्रों का उद्घोष करते हैं । 'प्र व: शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥' ऋ० सं० 1.37.4 । शुष्मी मरुतों से ऋषिगण शुष्मीपुत्र की याचना करते हैं 'अस्मे वीरो मरुत: शुष्मस्तुजानां यो असुरो विधर्ता ॥' ऋ० सं० 7.56.24

वैदिक संहिताओं में मरुतों के लिए 'उग्रा: ' बलशाली अथवा भयंकर विशेषण अधिकाधिक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है । 'उग्र' शब्द का बलशाली अर्थ ऐसे उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि त उद्ग्रा: शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके । ऋ० सं० 6.66.6 । यहाँ इन्हें शवसा, उग्रा: अर्थात् बल से शवसा बलशाली कहा गया है । इसी प्रकार भयंकर अर्थ इस उद्धरण में स्पष्ट है - 'उग्रं व: ओज: स्थिरा शवांसि' ऋ० सं० 7.56.7 । हे मरुतों । तुम्हारा ओज भयंकर है,

---

1. वैदिक निघण्टु में शुष्म शब्द बल के पर्याय में पठित है निघण्टु 2.9 इसमें मत्वर्थीय इनि् प्रत्यय लगाने पर शुष्मिन् रूप सम्पन्न हुआ ।

2. मिलाइये - अवेस्ता-उग्रा=शक्तिशाली ।

तुम्हारी शक्तियाँ स्थिर हैं। मरुतों को 'उग्र-बाहव:' (बलशाली भुजाओं वाले) भी कहा गया है। (ऋ०सं० 8.20.12)।

मरुतों के गण को तुविष्मान अर्थात् बलशाली कहा गया है। (ऋ० सं० 7.56.7, 58.1) मरुद्गण तुविष्मान ही नहीं अपितु 'तुविजात' अर्थात् शक्ति से उत्पन्न (ऋ० सं० 1.168.6) भी हैं। इनको 'तुविद्युम्नास:' अर्थात् शक्ति से जगमगाते' (ऋ० सं० 1.88.3) अथवा 'तुविद्युम्ना: (ऋ० सं० 5.87.7) भी कहा गया है। ये 'तुविमन्यव:' अर्थात् दृढ़ विचारों वाले (ऋ०सं० 7.58.2) बताये गये हैं और बलवती वाणी वाले होने के कारण इन्हें तुविस्वन: (ऋ०सं० 1.166.1) अथवा तुविस्वनि: (ऋ० सं० 5.56.7) कहा गया है।

मरुद्गण के सम्बन्ध में धृष्णु शब्द साहस, शक्ति तथा साहसिक बलशाली दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। 'साहस' (धृष्णुना) तथा बल (शवसा) से प्रबल शूशुवांस: वे (मरुद्गण) शत्रुओं को साहसपूर्वक (धृषता) समुद्र के समान घेरते हैं। (ऋ० सं० 1.167.9) तथा हे ऋषि। उपहारों के लिए (दाना) मरुतों के पास (ऐसे) जाओ जैसे कोई स्त्री (अपने) मित्र के पास (जाती) है और ओज से बलवान अथवा

---

1. ऋ०सं० में 'तव' का प्रयोग शक्तिशाली होने के अर्थ में मिलता है - द्रष्टव्य ऋ० सं० 10.59.1 में 'तवीति'। सम्भवत: इसी का वैकल्पिक रूप 'तुव' भी है जिससे 'तुविष्यत्' शब्द बना है। अवेस्ता में भी तब का प्रयोग मिलता है जिसका लिट का रूप वहाँ पर 'तूतव' है।

2. द्रष्टव्य - अवेस्ता-दर्शि, दर्शुं:

ग्रीक - थ्रासुश् द्रष्टव्य - Mayrhofer - Mayrhofer - 'A concise Etymological Sanskrit Dictionary में 'धृष्णु' के मध्य (अन्दर)।

साहसिक ﴾धृष्णव ओजसा﴿ है मरुतों । हमारी स्तुतियों से स्तुत होकर तुम द्युलोक से भी वहाँ चले जाओ ﴾ऋ0 सं0 5.52.14﴿ ।

उपर्युक्त इन दोनों प्रसंगों में धृष्णु शब्द के ये दोनों अर्थ स्पष्ट हैं । धृष्णव ओजसा के समस्त रूप 'धृष्णवोजस:' ﴾ऋ0सं0 2.34.1﴿ को भी मरुतों का विशेषण बताया गया है । मरुद्गण स्वयं तो 'धृष्णु' होने के साथ-साथ 'धृष्णु सेना:' ﴾ऋ0सं0 6.66.6﴿ साहसिक सेना वाले' भी हैं । तथा साहसिक के अर्थ में मरुतों के लिए 'धृषद्विन:' ﴾ऋ0सं0 5.52.2﴿ तथा 'आधृष' ﴾ऋ0सं0 1.39.4﴿ विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं ।

अन्य देवों की भाँति मरुतों के लिए भी एक स्थल पर 'असुरा:' विशेषण प्रयुक्त हुआ है ﴾1.64.2﴿ और एक दूसरे स्थल पर मरुतों से असुर-पुत्र की प्रार्थना की गई है - अस्मे वीरो मरुत: शुष्म्यस्तु जानां यो असुरो विधर्ता । ﴾ऋ0 सं0 8.56.24﴿ ।

ऋग्वेद में एक स्थल पर मरुद्गणों को 'घोरा:'[2] अथवा प्रचण्ड कहा गया

---

1. ऋ0सं0 में शक्तिशाली अर्थ में 'असुर' शब्द का जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ इसकी व्युत्पत्ति असु ﴾प्राण﴿ - र ﴾मत्वर्थीय﴿ करना युक्ति-युक्त प्रतीत होता है । उणादिसूत्रों में 'असेरुरन' ﴾उ0सू0 1.42﴿ के अनुसार अस् में उरन् प्रत्यय लगाया गया है, परन्तु यह बहुत बाद की कल्पना-प्रसूत व्युत्पत्ति प्रतीत होती है ।

2. द्रष्टव्य - गाँथिक गाडर्स - भयंकर,
   Mayrhofer - 'A concise Etymological Sanskrit Dictionary.

है §1.167.4§ । तथा दो स्थानों पर इन्हें 'घोरवर्पस:' अर्थात् भयंकर आकृति वाले विशेषण से विभूषित किया गया है । §1.19.5; 54.2§ रुद्र के पुत्रों के लिए ये विशेषण सर्वथा उपयुक्त हैं ।

ऋ0सं0 में एक स्थल पर मरुतों को 'अध्रिग्राव: पर्वता इव' §ऋ0सं0 1.64.3§ पर्वतों के समान दुर्धर कहा गया है । पर्वतों से तो उपमा दिये जाने से तो अध्रिगु का अर्थ 'दृढ़' स्थिर ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है ।

मरुतों को 'रिशादस'[1] अर्थात् शत्रु को चबाने वाले कहा गया है । ऋषि कण्व और कहते हैं - हे शत्रुओं के भक्षण कर्ता §मरुतों ।§ न द्युलोक में और न पृथ्वी पर ही तुम्हारा कोई शत्रु विदित है §न हि व: शत्रुर्विविदे अधि द्यापि न भूम्यां रिशादस:' ऋ0सं0 1.39.4§ । ऋषि वशिष्ठ कहते हैं - हे तपाने वाले अपनी सहायता §शक्ति§ से शत्रुओं को खाने वाले मरुतों । यहहविष् तुमहारी है, इसका आस्वादन लें §मान्तपना इदं हविर्मुरुतज्जुजुष्टन । युमकोती रिशादस: ॥' §ऋ0 सं0 8.59.9§ । ऋषि स्यूमरश्मि भार्गव ने मरुतों की उपमा शत्रुओं का भक्षण करने वाले मदों से दी है §'रिशादसो न मर्या:' ऋ0सं0 10.77.3§ तथा इन्हें श्येनों के समान प्रसिद्ध शत्रुभक्षणकर्ता 'श्येनासो न स्वयशसो रिशादस:' ऋ0 सं0 10.77.5 कहा गया है ।

---

1. द्रष्टव्य - अवेस्ता - द्रिगु निर्बल-यिम् द्रिगुव्यो ददत् वास्तारम् §जो निर्बलों को सहायता प्रदान करता है ।

'अहुनवइर्य मंत्र' ।

मरुद्गण के लिए 'मायिन' विशेषण का प्रयोग ऋग्वेद संहिता में दो स्थलों पर हुआ है (1.64.7 तथा 5.58.2) । सायण ने इन स्थलों पर इसका अर्थ प्रज्ञा-वान किया है परन्तु एक अन्य स्थल (1.39.2) पर मायिन: (षष्ठी एकवचन) का अर्थ 'छद्म-चारिण:' किया है । मैक्समूलर इसका अर्थ (Powerful)करते हैं । वस्तुत: 'माया' से ऋक्संहिता में रहस्यात्मिका गुप्त शक्ति अथा मन्त्रात्मिका शक्ति अभिप्रेत है । अत: मरुतों के सम्बन्ध में 'मायिन्' शब्द का अर्थ रहस्यात्मिका शक्ति से युक्त करना ठीक होगा ।

वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मरुतों को 'तवस:' अर्थात् बलिष्ठ कहा गया है (ऋ0 सं0 1.166.8) और वे समृद्धि के लिए मरुतों के बलिष्ठ गण (तवसं गणम्) का आश्रय लेते हैं (ऋ0 सं0 1.64.12) मरुद्गण अपने रथों पर बलिष्ठ होते हैं ('तवसो रथेषु' ऋ0 सं0 5.60.4) ऋषि नोधा गौतम की दृष्टि में मरुद्गण 'स्वतवस:'[1] अर्थात् अपने आपसे बलिष्ठ है (ऋ0 सं0 1.64.7) ।

'तवस्' के समान ही मरुतों के लिए 'तविष्' (बलिष्ठ) विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है (अथ0 4.15.2) एक ऋक् में मरुतों के गण को 'तविषीमत' अर्थात् बलशाली कहा गया है (तम् नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे, गणं मारुतं नव्यसीनाम्' (ऋ0 सं0 5.58.1) और एक अन्य ऋक् में मरुतों को तविषीयव: अर्थात् बढ़ते बल वाले कहा गया है । 'यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम्' । निपर्वता अहासता ।। (जैसे ही बढ़ते बल वाले मरुतों ने अपना गमन-मार्ग पहचान लिया, पर्वत (मेघ) झुक गये ।
ऋ0 सं0 8.7.2) ।

---

1. मायेति ज्ञान नाम । मायिन: प्राज्ञा: (ऋ0सं0 1.64.7) ।
   मायिनं प्रज्ञावन्तम् (ऋ0सं0 5.58.2) ।

मरुतों को ऋ0सं0 1.64.9 में 'शूरा' विशेषण से सुशोभित बताया गया है तथा अनेक स्थलों पर 'शूरो' से इनकी उपमा दी गई है। 'शूरो' के समान युयुत्सु' ‡शूरा इवेद्युधय: ऋ0 सं0 1.85 'शूराइव प्रयुध:' ऋ0सं0 5.59.5‡। ये मरूद्गण विजयी शूरों के समान प्रकाशित होते हैं ‡'जिगीवांसो न शूरा अभिद्यव: ऋ0 सं0 10.78.4‡।

ऋ0 संहिता के 1.64.8,9 सूक्त में मरुतों को अहिमन्यव: कहा गया है। ये बल से अहिमन्यु है। अहिमन्यु का अर्थ साँप जैसी ‡डसने वाली‡ बुद्धि वाले हैं। सायण ने शवसा के साथ इस विशेषण की संगति इस प्रकार उत्पन्न की है - 'बलेन आहनशीलमन्यु युक्ता:। यद्विषय: कोपो जायते तस्य हनेन समर्था इत्यर्थ:।'

ऋ0 संहिता 1.64.10 में मरुतों को 'अनन्तशुष्मा:' ‡अनन्तबल वाले‡ कहा गया है।

ऋक्संहिता 1.64.11 में मरुतों को 'ध्रुवच्युत:' अर्थात् ध्रुवों, स्थिरों को गिराने वाले कहा गया है। वैदिक ऋषियों द्वारा मरुतों के ध्रुवच्युत रूप का बहुश: वर्णन किया गया है - मरुतों! जैसा तुम्हारा बल है उससे तुमने जनों ‡लोगों‡ को कँपा दिया, पर्वतों को हिला दिया। ‡मरुतों युद्ध वा बलं जनां अचुच्यवीतन, गिरीरंच्युच्यवीतन ॥ ‡ऋ0 सं0 1.37.12‡। हे नरों! जब तुम, जो स्थिर है, उसको मार गिराते हो, जो भारी है उसको पटक देते हो, तब तुम पृथिवी की वनराजियों के बीच से, पर्वत घाटियों के बीच से गमन करते हो ‡ परा ह यत् स्थिरं दृश नरो वर्तयथा गुरु। वियाथन वनिन: पृथिव्या व्याशा: पर्वतानाम् ॥ ‡ऋ0सं0 1.39.3‡, ये मरुद्गण पृथिवी के और द्युलोक के समस्त दृढ़ पदार्थों को अपनी शक्ति से गिरा देते हैं ‡'दृलहा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्रच्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना' ऋ0 सं0 1.64.3‡ मरुद्गण अपने ओज से अच्युतों ‡न डिगने वालों‡ को डिगा देते हैं ‡'प्रच्यावयन्ति अच्युता चिदोजसा' ऋ0सं0 1.85.4‡, और ये मरुद्गण अच्युत

ध्रुवों, न डिगने वाले स्थिर पदार्थों॰ को गिरा देते हैं 'उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि' ॰ऋ० सं० 1.167.8॰ चमकते भालों वाले, शक्ति-पुत्र, धूलरहित मरुतों ने दृढ़ों को भी गिरा दिया । ॰'अरेणवस्तु विजाता अचुच्यवुर्दृलहानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टय:' ॰ऋ०सं० 1.168.4॰, अजेय ॰मरुद्गण॰ पर्वतों को कंपा देते हैं ॰'प्रवेपयन्ति पर्वता अदाभ्या' ॰ऋ० सं० 3.26.4॰, ॰तुम्हें॰ हविष् उत्पन्न करने वाले को धन देने के लिए ॰हे मरुतों॰ तुम द्युलोक को, पर्वतों को हिला देते हो, ॰तुम्हारे॰ भय से वन-प्रदेश तुम्हारा रास्ता छोड़ देते हैं, हे पृश्निपुत्रों । उग्रो । जब तुम विजय के लिए ॰अपने रथों पर॰ चितकबरी ॰पृषती:॰ घोड़ियों को जोतते हो तो तुम पृथ्वी को कँपा देते हो ॰धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया । कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातर: यदुग्रा: पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ॰ऋ०सं० 5.57.3॰, ॰उग्र मरुतों॰ तुम्हारे भय से बन झुक जाते हैं, पृथिवी और पर्वत काँप उठते हैं 'वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवीं चिद् रेजते पर्वतश्चित् । ॰ऋ०सं० 5.60.2॰ और ॰मरुद्गण॰ स्थिरों को झुकाने वाले हैं ॰स्थिरा चिन्नमयिष्णव:' ॰ऋ० सं० 8.20.1॰ । इस प्रकार के वर्णनों से सूक्त भरे पड़े हैं । 'दृढच्युत्' के समान ही मरुतों को 'पर्वतच्युत्' 5.54.3 तथा धन्वनच्युत् अर्थात् आकाश हिलाने वाले ॰ऋ० सं० 1.168.5॰ विशेषणों से अलंकृत किया गया है ।

दृढच्युत् का बहुत कुछ समानार्थक 'धूतय:' ॰कँपाने, हिलाने वाले॰ विशेषण भी मरुतों के लिए बहुधा: प्रयुक्त हुआ है ।[1]

---

1. ऋ०सं० 1.37.6, 39.1, 10.64.5, 87.3, 168.2,
   5.54.4, 61.14, 7.58.4, 8.20.16

ऋक्संहिता 1.64.11 में मरुतों के लिए 'दुध्रकृत:' विशेषण प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ सायण ने दुध्रं दुष्टानां धारयितारमात्मानं कुर्वाणा:' यद्वा । दुर्धरमन्यै-र्धर्तुमशक्यमात्मानं कुर्वाणा:' किया है । परन्तु 'दुर्ध' का सम्बन्ध तदुध - 'कँपाना से स्पष्ट है ।[1] अत: इसका अर्थ 'कँपाने वाले' ही उचित प्रतीत होता है ।[2]

मरुतों के लिए 'धृष्वय:' विशेषण अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है ।[3] जिसका अर्थ सायण ने घर्षणशीला: महीरुहशिलोच्चयादेर्भञ्जका इत्यर्थ:' किया है और धृष् धातु से इसका सम्बन्ध स्पष्ट होने के कारण यह अर्थ सर्वथा उचित प्रतीत होता है ।[4] मैक्समूलर ने जो इसका अर्थ 'Wild'[5] तथा 'मेयरहोफर' ने 'lively wanto' किया है वह कल्पना मात्र है ।

मरुतों के लिए 'मखा:' ऋ0 सं0 1.64.11 तथा 'सुमखा:' ऋ0 सं0 5.87.7 अथवा 'सुमखास:' ऋ0 सं0 1.95.4 विशेषण प्रयुक्त हुए हैं । सायण ने

---

1. ह्विटनी के अनुसार दुध् संभवत: √धृञ् विकम्पते का अभ्यस्त रूप है ।
   Make everything to reel' Vadic Hymns Part I .
   Whitney-'Roots verbs forms and primary Derivations of the Sanskrit language.
2. मैक्सम्यूलर ने इसका अर्थ Make everything to reel'Vadic Hymns Part I. पर ऋ0सं0 1.64.11 के अनुवाद में ।

3. ऋ0सं0 1.85.1, 166.2

4. ह्विटनी ने 'धृष्णी' शब्द को √धृष् से ही निष्पन्न माना है । Whitney - Roots Verb form and primary Derivations of the Sanskrit language' पृष्ठ 43 पर ghrs के अन्तर्गत

5. Vadic hymns Part I. पृष्ठ 126 पर ऋ0सं0 1.85.1 के अनुवाद में तथा पृष्ठ 209 पर ऋ0सं0 1.166.2 के अनुवाद में ।

मखा: का अर्थ 'मख इति यज्ञ नाम'। तद्नत: किया है, जो मरुतों के प्रसंग में अ अनुचित तो नहीं है परन्तु 'रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्य: ऋ0 सं0 6.66.9 में मख का MaxMuller[1] द्वारा समर्थित अर्थ 'Powerful Champion अधिक उपयुक्त मालूम होता है।

ऋक्संहिता के सूक्त 2.34.12 में मरुतों को 'मह:' महान शक्तिशाली विशेषण से विभूषित किया गया है। एक अन्य स्थल पर इन्हें 'महान्तो महना' अर्थात् शक्ति से महान कहा गया है। इसी से सम्बद्ध एक विशेषण 'महिष्टास:' शक्तिशाली इनके लिए ऋ0सं0 1.64.7 में प्रयुक्त हुआ है और एक अन्य विशेषण 'विमहस:' शक्तिशाली से भी ये स्मरण किये गये हैं। ऋ0सं0 1.86.1, 87.4 एक ऋक् में इनको 'विद्युन्महस:' विद्युत की शक्ति वाले कहा गया है ऋ0सं0 5.54.3।

'शवस' शब्द बलवाची है।[2] इससे बना यह विशेषण सत्यशवस यथार्थत: शक्ति-सम्पन्न मरुतों के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋ0सं0 1.86.8, 9; 5.52.8। शवस् से बना एक अन्य विशेषण 'असामिशवस:' पूर्ण शक्ति वाले भी एक ऋक् में 5.52.5 मरुतों के लिए आया है तथा इसी अर्थ में इन्हें 'वृद्धशवस:' 5.87.6 भी कहा गया है।

---

1. Vadic Hymns, Part I, Page 269
   पर ऋ0सं0 6.66.9 के अनुवाद में।

2. निघण्टु 2.9

अत्यधिक शक्तिसम्पन्न अर्थ वाले प्रत्यक्षस:[1] विशेषण से मरुतों को स्मरण किया गया है । ऋ0सं0 1.87.1, 87.4 ।

ऋक्संहिता 1.171.6 में मरुतों को 'सहीयस:[2] अर्थात् सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न कहा गया है । अथर्वसंहिता 4.26.6 में मरुद्गण को सहस्वत् शक्तिशाली कहा गया है ।

मरुतों के गण को एक ऋक् में 'ऋभ्वस:' अर्थात् महान् प्रभु कहा गया है । 'शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम्' ऋ0सं0 5.52.8 ।

ऋक् संहिता के सूक्त 5.52.17 में प्रयुक्त 'शाकिन:'[4] शब्द से मरुद्गणों का अर्थ प्रतीत होता है सप्त मे सप्त शाकिन: एकमेकं शतं ददु: । ऋ0सं0 5.52.17 सायण ने शाकिन: का अर्थ 'सर्वमपि कर्तुं शक्ता:' किया है ।

---

1. प्र + त्वक्षस् । तुलनीय - अवेस्ता - 'थ्वखशह' शक्तिशाली वैदिक निघण्टु में 'त्वक्षस्' को बल के पर्यायों में पढ़ा गया है । निघ0 2.9

2. वैदिक निघण्टु में 'सहस' बल के पर्यायों में परिगणित है - निघ0 2.9

3. तुलनीय ग्रीक - आर्फेइस (OPOEUS) महान - द्रष्टव्य Mayrhaber - 'A Concise Etymological Sanskrit Dictionary, P. 124.

   में 'ऋभु' के अन्तर्गत ।

4. ह्विटनी ने भी इस शब्द को 'शक्' से निष्पन्न माना है । Whitney - Roots verbs forms etc.P.169 पर cak के अन्तर्गत ।

मरूतों के लिए 'शिक्वस:'[1] अर्थात् समर्थ विशेषण प्रयुक्त हुआ है ॥ऋ० सं० 5.52.16; 54.4॥ ।

ऋ० सं० 1.37.9 में मरूतों को 'वृद्धवयस:'[2] ॥बढ़ी चढ़ी शक्ति वाले॥ कहा गया है ।

एक ऋक् में मरूतों के लिए 'रभसा:'[3] अर्थात् प्रचण्ड विशेषण प्रयुक्त हुआ है ॥5.54.3॥ और ऋ० सं० 5.85.5 में इन्हें रभिष्ठा:' ॥प्रचण्डतम॥ कहा गया है ।

रभस सदृश अर्थ में ही मरूतों के लिए 'अमवत्'[4] ॥प्रचण्ड, बलिष्ठ॥ विशेषण का प्रयोग किया गया है ।

अप्रतिहत शक्ति के कारण मरूद्गण 'भीमा:'[5] कहे गये हैं । ये व्याघ्रों के समान भीषण 'मृगा न भीमा: ॥ऋ०सं० 2.34.1॥ हैं, मरूद्गण अपनी प्रचण्ड शक्ति

---

1. ह्विटनी तथा मैक्समूलर ने 'शिक्वस' को शक् से ही व्युत्पन्न माना है । द्रष्टव्य - पृ० 169 पर शक् के अन्तर्गत तथा मैक्स० - वै०हि० पृ० 318 पर 'शिक्वस' पर टिप्पणी ।

2. नपुं 'वयस्' शक्तिवाचक है । यह वी गतिव्याप्ति प्रजनकान्त्यसनखादनेषु' इन विविध अर्थों में माना गया है । प्रस्तुत शब्द में 'असन्' अर्थात् फेंकने वाला अर्थ प्रतीत होता है ।

3. मैक्स० ने इसका अर्थ 'Robust Vigorous' किया है । ॥वै०हि० भाग 1, पृष्ठ 325 पर 5.54.3 के अनुवाद में ।

4. मिलाइये - अवेस्ता - अमवन्तम शक्तिशाली ।

5. ऋ०सं० 1.38.7, 5.58.1; 6.87.5; 6.66.6; 8.20.7

से भीषण ‹मरुतस्त्वेष्येण भीमास: ऋ०सं० 7.58.2› हैं । इनका प्रहार वृषभ के ‹प्रहार के› समान 'भीमायु:' अर्थात् भयंकर ‹दुध्रो गो खि भीमयु: ऋ०सं० 5.56.3› होता है । मरुद्गण भीमसदृश अर्थात् देखने में भयंकर ‹ऋ०सं० 5.56.2› भी हैं ।

बलशाली अर्थ में मिमीक्त[1] विशेषण अनेक ऋचाओं में प्रयुक्त हुआ है ।

पौरुष और बल का अभिव्यंजक 'वृषन्[2] विशेषण मरुतों के लिए प्रायश: प्रयुक्त हुआ है । ये 'वृषण:' कहे गये हैं, और इनका समूह 'वृषागण:' ‹ऋ०सं० 1.87.5› कहा गया है । ऋषि नोधा गौतम समृद्धि के लिए मारुतं गणं वृषणम्

---

1. ऋ०सं० 1.85.12, 1.165.1, 7.56.18, 20.11, 8.58.6, 8.7.33, 8.20.19

2. मैक्स० के अनुसार 'ऋजीषिन्' ऋज् से निष्पन्न है और इन्होंने इस धातु का अर्थ 'to strive, to Yearn' किया है और इसकी तुलना ग्रीक - ओरेगेइन 'OP r lv' से की है । वै०हि० भाग 1, पृ० 122 टिप्पणी 5. ह्विटनी ने भी 'ऋजीष्' शब्द की व्युत्पत्ति ऋज् से की है और इस धातु का अर्थ direct stretch attainकिया । ‹ह्विटनी Roots, verbs forms etc. P.15) सायण आदि भारतीय भाष्यकर 'ऋजीष' का अर्थ रस निकालने के पश्चात् बचे हुए सोम के अंश से करते हैं । इस बचे हुए अंश से तृतीय सवन होता है । उन्हें ऋजीषिण विशेषण से युक्त कहा गया है । परन्तु यह विशेषण इन्द्र के लिए भी बहुधा प्रयुक्त हुआ है । अत: 'ऋजीषिन्' पद का मूल अर्थ 'ऋज्' से निष्पन्न होने पर - प्रबल, प्रचण्ड, करना उचित प्रतीत होता है ।

{ऋ० सं० 1.64.12} स्मरण करते हैं । ऋषि विन्दु अथवा पूदक्ष सोमपान के लिए 'मारुत गणं वृषणम्' {ऋ० सं० 8.94.12} का आह्वान करते हैं । ऋषि सोभरि काण्ड मरुतों के पौरुषयुक्त गण के लिए {वृष्णेशर्धाय ऋ० सं० 8.20.9} हविष् प्रदान करने का आग्रह करते हैं । इनकी दृष्टि में मरुद्गण 'वृषप्सव:' अर्थात् पौरुषयुक्त आकृति वाले हैं {ऋ० सं० 8.20.7} । ऋषि अगस्त्य की दृष्टि में ये 'वृषमना:' {पौरुषयुक्त विचारों वाले} भी हैं {ऋ० सं० 1.167.7} ।

मरुतों को ऋजीषिण: अर्थात् प्रचण्ड विशेषण से भी विभूषित किया गया है,[1] जो ऋक्संहिता में प्रमुखतया 'इन्द्र' का विशेषण है ।

पौरुष, बल पराक्रम तथा प्रचण्डता सूचक उपर्युक्त विशेषणों की विविधता और संख्या में अधिकता स्वयं में इस बात का प्रमाण है कि वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मरुद्गण बलापौरुष के प्रतीक है ।

पौरुष के अनुरूप मरुतों की वाणी सशक्त होने के फलस्वरूप ऋ०सं० 1.166.1 में उन्हें सशक्त वाणी वाले कहा गया है और ऋषि श्यावश्व आत्रेय के शब्दों में, हे मरुतों ! तुम्हारे गर्जन से प्रवृद्ध मेघ {पर्वत} भयभीत हो जाता है और द्युलोक के छोर काँप उठते हैं {पर्वतश्चिन्महिवृद्धो बिभाय दिवश्चित् सानु रेजते स्वने व:' {ऋ० सं० 5.60.3} । ये मरुत् सिंह सदृश गर्जना करते हैं 'सिंहा न हेषक्रतव:' {ऋ० सं० 3.26.5} तथा अपने घोष को चारों ओर प्रसरित करते हैं 'स्वरन्ति घोषं विततम्' {ऋ० सं० 5.54.12} । जब ये प्रयाण करते हैं तब इनका विजय घोष वज्र निर्घोष सा गूँज उठता है 'जयतामिव तन्युतुर्मरुतामेति घृष्णुयायच्छुभं याथना नर: ।' {ऋ०सं० 1.23.11} प्रयाण करते हुए मरुतों का प्रचण्ड गर्जन चतुर्दिक सुनाई पड़ता है {प्रतिघो-

---

1. ऋ०सं० 1.64.12, 87.1, 2.34.1

राणामेतानामयासो मरुतां शृष्व आयताभुपब्दिः' ऋ0सं0 1.169.7॥ ।

मरुतों के गर्जन के सन्दर्भ में ऋषि अगस्त्य ने इस प्रकार से व्याख्या की है - मरुद्गण मेघों की वाणी उच्चरित करते हैं ॥अभ्रिया वाचमुदीरयन्ति ऋ0 सं0 1.168.9॥ से स्पष्ट है कि मेघों का गर्जन ही मानों मरुतों का उद्घोष है । अथर्वसंहिता 4.15.4 में भी इनको घोषिणः कहा गया है ।

मरुतों की सहचरी के रूप में ऋषि अगस्त्य ने 'सभावती विदथ्या वाक्' की उपमा दी है ॥सभावती विदथ्येव संवाक् ऋ0 सं0 1.167.3॥ मरुतों की वाणी के सन्दर्भ में ऋषियों की इस कल्पना ने मरुतों को गायक तथा स्तोता के रूप में प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी होगी । जहाँ एक ओर वे सिंह सा गर्जन करते वाले हैं वहीं साथ ही वे मन्द स्वर वाले सुजिह्व तथा मुख से गान प्रकट करने वाले ॥सुजिह्वतः स्वरितार - आसंभिः ऋ0 सं0 1.166.11॥ भी हैं । अतः ऋषियों को कहीं ये वाण[2] नामक वाद्य-यन्त्र बजाते हुए ॥धमन्तो वाणम् ऋ0सं0 1.85.10॥ अथवा भूमि[3]

---

1. मिम्यक्ष येषु सुधिता सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
   गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव संवाक् ॥ 1.167.3

2. सायण ने वाण शब्द का अर्थ 'शतसंख्याभिः तन्त्रीभिर्युक्तम् वीणाविशेषम्' किया है ॥ऋ0सं0 1.85.10॥ परन्तु वाणम् के साथ धमन्तः का प्रयोग यह संकेत कर रहा है कि यह वाद्य फूँककर बजाया जाने वाला है । पुनश्च वाणम् शब्द से ही सम्बद्ध वाणी शब्द भी है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि का तात्पर्य यहाँ गल-प्रदेश अथवा इसमें अवस्थित स्वर तंत्रियों (Vocal Chords) से हैं ।

3. सायण ने भूमि का अर्थ भूम्याख्यः वीणा विशेष किया है ॥ऋ0 सं0 2.34.1॥ MaxMuller ने भूमि का अर्थ Cloud बताया है । वैदिक हिम्न्स भाग । पृष्ठ 298-299 में टिप्पणी देखें । Vedic Hymns, P. 298-99.

§भूमिं धमन्त: ऋ0सं0 2.34.1§ दिखाई पड़ते हैं । अथर्व0सं0 4.15.3 में गायत्र: विशेषण से संबोधित किया गया है तथा पर्जन्य को सम्बोधितकर कहा गया है कि §"मारुता: पर्जन्य घोषिण: पृथक अथर्व0 4,15.4§ । इन्हें विरप्शिन:§गायक§ विशेषण से भी अलंकृत किया गया है §ऋ0सं0 1.64.10; 87.1; 166.8§ । ऋक् संहिता 1.37.10 में इन्हें 'सूनवो गिर' §वाणी के पुत्र§ भी कहा गया है ।

मरुद्गण गायक के साथ-साथ नर्तक भी है । ऋषि सोभरि काण्व ने §नृतव: 8.20.22§ नाचने वाले कहा है । नृत्य का सचित्र वर्णन ऋषि श्यावश्व के शब्दों में इस प्रकार है - 'छन्दोबद्ध पदन्यास वाले उद्घोष करते हुए, ये गायक उत्स §जल-स्रोत-मेघ§ के चारों ओर नाचने वाले§हैं§ §ऋ0सं0 5.52.12§ । यहाँ पर मरुतों को मेघ को घेरकर नृत्य करना वर्षा के दृश्य का ही कवित्वमय वर्णन है ।

वैदिक ऋषियों ने जहाँ एक ओर मरुतों को प्रचण्ड वेग से सृष्टि को कँपाने वाले के रूप में देखा है वहीं इन्हें क्रीळ, §ऋ0सं0 1.37.15§ अथवा 'क्रीडी' §1.87.3§ अर्थात् खिलाड़ी के रूप में भी देखा है । ऋषि अगस्त्य के शब्दों में §जैसे पिता अपने§ पुत्र के लिए मधु §मधुर पदार्थ§ जुटाते हैं, §इसी प्रकार अपने याचकों के लिए§ मधु लाने वाले खिलाड़ी मरुद्गण विदथों §यज्ञों§ में क्रीडा करते हैं 'नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उपक्रीलन्ति क्रीला विदथेषु घृष्वय:' §ऋ0 सं0 1.166.2§ । ऋषि श्यावश्व मरुतों की क्रीडा को इस रूप में देखते हैं - मरुतों ! ऋषियों से युक्त होकर जब तुम क्रीडा करते हो तो तुम सब मिलकर जलों के समान दौड़ लगाते हो §यत् क्रीकथमरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यंचो धवन §ऋ0 सं0 5.60.8§ । स्पष्ट है कि वृष्टि के साथ - साथ चारों ओर उफान के साथ बहती जलधाराओं के रूप में ऋषि को मरुतो की क्रीडा के दर्शन हो रहे हैं । ऋषि वशिष्ठ को मरुतों की क्रीडा स्तनपायी बछड़ों की उछलकूद सी लगती है - 'द्रुतगामी §अश्वों§ के समान क्षिप्रगति युवा, यक्षों से दिखाई देने वाले मरुद्गण घर में स्थित बच्चों के समान शुभ्र हैं और दूध पीते बछड़ों के

समान क्रीडा करते हैं। 'अत्यासो न ये मरुत: स्वंचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या: । ते हर्म्येष्ठा: शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीलिन: पयोधा: ।। ऋ0सं0 7.56.16। ऋषि स्यूमरश्मि भार्गव के शब्दों में मरुद्गण क्रीडाशील बच्चों के समान (शिशवो न क्रीडय: ऋ0सं0 10.78.6) हैं।

प्रचण्ड शक्ति वाले मरुद्गण मनुष्यों के मित्र सहायक व रक्षक हैं। ऋषियों ने उन्हें नृषाच: (ऋ0सं0 1.64.9) अर्थात् मनुष्यों के मित्र के रूप में देखा है। ये स्वतन्त्र शक्ति वाले रुद्र (मरुद्गण) नमन करने वाले के पास अपनी सहायता के साथ पहुँचते हैं। ये हविष् प्रदान करने वाले की कभी अवहेलना नहीं करते। "नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम्" (ऋ0सं0 1.166.2)। ये मरुद्गण जो मर्त्य को हानि से बचाते हैं मनुष्यों को पीसदयों से रक्षा करते हैं (विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिष: (ऋ0सं0 5.52.4) ये तत्काल सहायता पहुँचाने वाले (सद्य ऊतय: 5.54.15) हैं। स्वाभाविक है कि मनुष्यों के ऐसे मित्रों, सहायकों के सभी क्रिया कलापों में ऋषियों को आकर्षक क्रियाओं के दर्शन हुए और इसीलिए उनका भयंकर निनाद युक्त प्रचण्ड वेग उनके बच्चों अथवा बछड़ों की क्रीडा सा तथा सिंहनाद सा उनका घोष मधुरगीत सा प्रतीत हुआ और ऋषियों ने मरुतों की गायक नर्तक और क्रीडक के रूप में कल्पना की है।

ऋषियों ने मरुतों को 'अनवभ्रराधस:'[1] अर्थात् अनन्त सम्पत्ति वाले कहा है। अपने याजकों के लिए मरुद्गण की सम्पत्ति का यह अक्षय भण्डार सदैव उन्मुक्त रहता है और इसीलिए ऋषियों ने उन्हें 'सुदानव:'[2] (उदार, शोभन दानी) विशेषण के साथ स्मरण किया है।

---

1. ऋ0सं0 1.166.7, 2.34.4, 5.57.5
2. ऋ0सं0 1.39.10, 172.1,2,3, 7.59.10, 8.7.12,19,20, 8.20.18,23, 10.78.5

मरुतों का यह दान उस प्रभूत वृष्टि के रूप में होता है जो उनके याजकों की अन्नसम्पदा को बढ़ाने वाले होती है। इसलिए मरुतों को पुरीषिण: ‡भूमि जोतने वाले‡ पद से सम्बोधित करते हुए ऋषि श्यावाश्व हैं - हे मरुतों। किसानों। समुद्र से वृष्टि को उठाकर ‡हमारी धरती पर‡ वर्षा हो' ‡'उदीरयथा मरुत: समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिण:'‡ ऋ0 सं0 5.55.5 और‡हे मरुतों।‡ जिस वृष्टिरूपिणी कृपा से तुम ‡अपने याजकों के‡ पुत्र-पौत्रों के लिए अक्षीयमाणा धान्य बीजों का वहन करते हैं। ‡उसी कृपा से‡ हममें भी वे पदार्थ निहित कीजिए, जिनकी हम कामना करते हैं - धन, पूर्णायु, सौभाग्य ‡येन तोकायतनयाय धान्यबीजं वहध्वे आक्षितम्। अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम्॥ ‡ऋ0 सं0 5.53.13‡।

वैदिक संहिताओं में मरुत्सम्बन्धी कतिपय मंत्र ही है जिनमें मरुतों द्वारा वृष्टि किये जाने की ओर किसी न किसी रूप में संकेत न किया गया हो अपितु वस्तुस्थिति यह है कि अधिकांश मन्त्रों में मरुतों के बल पराक्रम के प्रभावकारी वर्णन के साथ साथ उनके वृष्टि कर्म का भावपूर्ण वर्णन भी किया गया है। स्पष्ट है कि ऋषियों की दृष्टि में मरुतों का प्रमुख कर्म वृष्टि लाना ही है। मन्त्रों में मरुतों के लिए अनेक ऐसे विशेषण प्रयुक्त हुए हैं जो उनके वृष्टि कर्म से सम्बद्ध हैं। इनमें से निम्नलिखित बहुधा प्रयुक्त हुए हैं -

मरुद्गणों को एक ऋक् में ‡5.54.2‡ में उदन्यव: अर्थात् जल के इच्छुक अथवा जल का अन्वेषण करने वाले कहा गया है - 'मरुतों। तुम्हारे देदीप्यमान, जल का अन्वेषण करने वाले, अन्न की वृद्धि करने वाले, घोड़े जोतने वाले, चारों ओर से ढूँढने वाले ‡प्राण यहाँ आवें‡ ‡प्र तो मरुतस्तातिषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुज: परिज्रय:'‡

अथर्वसंहिता के एक मंत्र 18.2.22 में मरुतों को उदप्लुत: अर्थात् जल छिड़कने वाले कहा गया है।

ऋ0सं0 5.58.3 में मरुतों को उद्वाहस: अथवा 'उद्वाहा' ॥अथर्व0 2.22॥ अर्थात् जल का वहन करने वाले कहा गया है । ऋषि श्यावाश्व प्रार्थना करते हैं कि जल का वहन करने वाले तुम्हारे गण, वे समस्त मरुद्गण, जो वर्षा को प्रेरित करते हैं आज यहाँ आये । 'आवो यन्तूदवाहसो अद्यवृष्टिं ये विश्वे मरुतों उन्नति ।' ॥ऋ0 सं0 5.58.3॥ ।

ऋषि स्यूमरश्मि भार्गव की दृष्टि में मरुद्गण 'वरेयवो न घृतप्रुष:' अर्थात् उपहार देने के इच्छुकों के समान घृत[1] ॥वर्षा॥ छिड़कने वाले ॥ऋ0सं0 10.78.4॥ हैं ।

मरुतों के लिए जीरदानव:[2] अर्थात् तीव्रवर्षा लाने वाले विशेषण बहुधा प्रयुक्त हुए हैं - ऋ0 सं0 2.34.4, 54.9, 53.5 आदि । ऋषि अगस्त्य ने तो अपने मरुत् सूक्तों ॥2.165-168॥ में विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्' ॥हम अन्नपूर्ण तीव्र वर्षा वाले वाड़े प्राप्त करें ।

---

1. वैदिक निघण्टु में 'घृत' शब्द उदक के पर्यायों में पठित हैं । ॥निघ0 1.12.॥

2. सायण ने जीरदानु का अर्थ 'जयशीलदानम्' किया है ॥ऋ0सं0 1.165.15॥ पर सा0भा0 । परन्तु जीरशब्द का अर्थ तीव्र, सक्रिय, होता है और इस अर्थ में इसकी तुलना अवेस्ता 'जीर' अर्थात् 'तीव्र' तथा लिथुआनी Gyra अर्थात् तीव्र से की जा सकती है - द्रष्टव्य - Mayrhofer - 'A concise Etymological Sanskrit Dictionary', Page 438 on Jirah'
अत: जीरदानुं का अर्थ तीव्रवृष्टि का दान करने वाले अथवा तीव्र वृष्टि के दान से युक्त ठीक लगता है ।

द्रप्सिन:[1] शब्द ऋषि नोधा गौतम की दृष्टि में वर्षा की धारायें विखेरने वाले' विशेषण से मण्डित है। उनकी दृष्टि में द्युलोक के दीर्घ काल वृषभ, रुद्र के यौवन सम्पन्न पुत्र (मर्या) शक्तिशाली (असुरा:) निर्दोष सूर्य जैसे पावक तथा दीप्त, जल धारायें बिखेरने वाले (द्रप्सिनः) भूतगणों जैसे घोर आकृति वाले (मरूद्गण) उत्पन्न हुए (ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणा रूद्रस्य मर्या असुरा अरेपस: । पावकास: शुचय: सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो: घोरवर्पसा ॥ ऋ0सं0 1.64.2

ऋक्सूक्त 2.34.1 में ऋषि मृत्समद ने मरुतों को 'धारावरा:'[2] अर्थात् वृष्टि वाले कहा है।

ऋक्सूक्त 2.34.13 में ऋषि गृत्समद ने ही मरुतों को 'निमेघमाना:'[3] मेघे से जल ढालते हुए) कहा है।

---

1. सायण ने द्रप्सिन: का अर्थ वृष्ट्युदकविन्दुभिर्युक्ता: किया है (ऋ0सं0 1.64.2 सा0भा0) मैक्समूलर ने भी Scattering rain drops अर्थ स्वीकार किया है - वैदिक हिम्न्स भाग 1, पृष्ठ 106, 1.64.2 के अनुवाद में।

2. सायण ने धारावरा: का अर्थ उदक धारण अन्तरिक्षमावृण्वन्त: किया है (ऋ0सं0 2.34.1-सा0भा0) । मैक्समूलर ने भी इसका अर्थ Charged with rain किया है Vadic Hymns Part I, Page 295 पर 2.34.1 के अनुवाद में।

3. सायण ने निमेघमाना: अर्थ नितरां मेघाद्दुदलं चिन्तयन्त: किया है। (ऋ0सं0 2.34.13 सा0भा0) - ऋगर्थदीपिका - सम्पादित डा0 लक्ष्मण स्वरूप, 2.34.13 की टीका। मैक्समूलर ने भी इसका अर्थ Streaming down किया है। Vadic Hymns Part I.

ऋषि स्यूमरश्मि भार्गव ने मरुतों को एक ऋक् 10.77.5 में 'परिप्रुष:'[1] ॥वृष्टि बिखेरने वाले॥ कहा है ।

ऋक् संहिता 5.57.4 में ऋषि श्यावश्व आत्रेय ने मरुतों को वर्णनिर्णिज[2] अर्थात् वृष्टि से आच्छादित कहा है ।

मरुतों के वृष्टिकर्म की ओर ऋषियों ने न केवल तत्सम्बन्धी विशेषणों द्वारा ही संकेत किया है प्रत्युत् उपमाओं आदि के द्वारा उसका प्रभावकारी वर्णन भी किया है । अपने प्रचण्ड वेग के साथ मरुतों का मेघों पर आघात करना और उन्हें छितराना, ऋषि कण्व घौर ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई वृषभ ॥बछड़ा॥ गायों के मध्य क्रीडा कर रहा हो और वृष्टि प्रदान करने वाले इस दृश्य की ओर मुग्ध भाव से देखते हुए कहते हैं, 'गायों के मध्य वृषभ के समान ॥मेघों के मध्य॥ खिलाड़ी मरुद्गण की प्रशंसा करो जो ॥मरुतों का गण वृष्टिरूपी॥ रस के आस्वादन से बढ़ता है । प्रशंसा गोष्वन्ध्यं क्रीकं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ॥ऋ0सं0 1.37.5॥।

---

1. सायण ने परिप्रुष: का अर्थ परितो गन्तार: किया है । ॥ऋ0सं0 10.77.5 सा0 भा0॥ । परन्तु धातु पा0 में प्रुष 'स्नेहसेचनपूरणेषु' अर्थों में कही गई है । प्रस्तुत प्रसंग में सेचन वाला अर्थ ठीक लगता है । मैक्समूलर ने भी परिप्रुष: का अर्थ Scattering moisture किया है । Vedic Hymns Part I, Page 412 10.77.5 के अनुवाद में ।

2. सायण ने वर्णनिर्णिज: का अर्थ वृष्टे: शोधयिता निर्णिमिति रूपनाम' निघ0 3.7 वर्षमेव रूपमं येषा ते तादृशा: । वृष्टिप्रदा इत्यर्थ: किया है । ॥ऋ0सं0 5.57.4॥ ।

मेघों पर मरुतों का झपटना ऋषि श्यावाश्व को भी वृषभ का गायों पर झपटने जैसा लगा । वे कहते हैं - झपटते वृषभों के समान वे [मरुद्गण] काली गायों [मेघों][1] पर कूद पड़ते हैं और तब हम द्युलोक तथा पृथिवी पर मरुतों की शक्ति के वर्णन करते हैं। "ते स्वन्द्रासो व उक्षणा अति स्कन्दन्ति शर्वरः । मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ।। ऋ0 सं0 5.52.3 ।। ऋषि मेधा गौतम की दृष्टि में रथ की पवियों से मेघों को टुकड़े-टुकड़े पर छितराना ऐसा लगा जैसे प्रयाण करती सेनाएं अपने पदचापों से रजकणों का ढेर उड़ाती हैं । वे कहते हैं जलों की वृद्धि करने वाले [मरुद्गण] प्रयाण करते [सैनिकों के समान अपने रथों की] समय स्वर्णिम पवियों से पर्वतों [मेघों] को उछालते हैं । "हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृधः उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान्' [ऋ0 सं0 1.64.11] । अपने प्रचण्ड वेग से मरुद्गण मेघों को कंपा देते हैं [प्रवेपयन्ति पर्वतान् ऋ0 सं0 8.7.4] और उन्हें वृष्टि के रूप में भूमि पर गिरा देते हैं [प्रच्यावन्ति यामभिः ऋ0सं0 1.37.11, 5.56.4] ।

मरुतों का प्रयाण वृष्टि को लाने वाला है, इसकी तो ऋषियों ने पदे-पदे चर्चा की है । 'शुभ्र [मरुद्गण] जल विखेरते चलते हैं [यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः' 8.7.28] ऋषि श्यावाश्व आत्रेय के शब्दों में नवयौवन-सम्पन्न शक्तिशाली मरुतगण पीछे पीछे, [हे मरुद्गण । तुम्हारे रथ समूह के पीछे वृष्टि चलती है । "तवः शर्धरथानां त्वेषगणं मारुतं नव्यसीनाम् अनुप्रयन्ति वृष्टयः' । ऋ0सं0 5.53.10]

---

1. सायण ने शर्वरी का अर्थ 'शर्वर्यो रात्रयः । 'कालावयवानित्यर्थः' किया है [ऋ0 सं0 5.52.3] । परन्तु मरुतों को इस ऋक् में जो स्पन्द्रासो न उक्षणः कहा गया है, उसको परिलक्षित करते हुए 'शर्वरी' के रूप में ऋषि का अभिप्राय 'कृष्णावर्णा गायों' से प्रतीत होती है ।

मरुतों द्वारा वृष्टि का लाया जाना अनेक ऋषियों को ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेघ द्युलोक का 'ऊधस' ॥थन॥ है और मरुद्गण इस अधस को दुहते हैं और पृथ्वी को पयः ॥वर्षा॥ से आच्छन्न कर देते हैं । ऋषि गोतम के शब्दों में कँपाने वाले ॥मरुद्गण॥ द्युलोक के ऊधस् ॥मेघ॥ को दुहते हैं और पृथ्वी पर चतुर्दिक दूध ॥वृष्टि॥ का छिड़काव कर देते हैं ॥जुहन्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः॥ ॥1. 64. 5॥ । ऋषि पुनर्वत्स काण्व की दृष्टि में ये 'ऊधस' पृश्नियों के हैं जिनसे वे इन्द्र के लिए मधु वर्षा करती है और इस मधु को उत्स ॥कूप॥ कबन्ध ॥मशक, पानी से भरा चर्मपात्र॥ और उद्रन् ॥पानी भरा घड़ा या पात्र॥ इन तीन रूपों में प्रकट करती है । 'त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु । उत्सं कबन्धमुद्रिणम् ॥ 8. 7. 10 ॥ इसी कल्पना को दृष्टि में रखते हुए ऋषि गृत्समद मरुतों से प्रार्थना करते हैं कि चमकते भालों वाले मरुतों ! मधु ॥सोम॥ का आनन्द लेने के लिए अपने नीड़ों की ओर गमन करते हंसों के समान तुम एक साथ अक्षत मार्गों से अपनी चमकती हुई भरे थनों वाली ॥पृश्नियों॥ के साथ आओ । 'इन्धन्वभिर्धेनुभिः रप्शदूधभिरध्वस्मभिः-पथिभिभ्राजदृष्टयः । आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ॥ऋ०सं० 2. 34. 5॥ भरे थनों वाली गायों के साथ आने का अर्थ मेघों का वृष्टि के साथ आने से ही हो सकता है ।

द्युलोक के 'ऊधस' को दुहने के अतिरिक्त वैदिक ऋषि ने मरुतों द्वारा वृष्टि किये जाने को अन्य अनेक रूपों में कल्पना की है । ऋषि नोधा गोतम के ही शब्दों में, विदथोंमेंशक्तिशाली, दानशील, मरुद्गण, घृतयुक्त ॥उर्वरक॥ पयस जैसे जलों को छिड़क देते हैं, मानों वे दानशील मेघरूपी वेगवान् अश्व को वर्षा करने के लिए चारों ओर घुमा रहे हों ॥अथवा पानी के॥ अक्षय ॥कोश तथा॥ गरजते जलस्रोत ॥अथवा कूप, उत्स॥ को दुह रहे हों । ॥पिन्वन्त्यपो मरुतो सुदानव पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः॥ अत्यं न मिहे विनियन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्तिस्तनयन्तमक्षितम् ॥ ऋ०सं० 1. 64. 6॥। ऋषि गोतम को प्रतीत हुआ मानों मरुतों ने उनकी प्यास बुझाने के लिए कुएँ को ही

उलट दिया हो ॥जिह्मं नुनुद्रे वृतं तया दिशा सि चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ॥ऋ0सं0 1. 85. 11॥ ऋषि गोतम को एक अन्य स्थल पर मरुतों के द्वारा वर्षा का दृश्य ऐसा प्रतीत हुआ मानों उन्होंने अपने रथों से जल से परिपूर्ण थैले पृथ्वी पर उड़ेल दिये हों हे मरुतों। चाहे जिस भी मार्ग पर जब तुम पक्षियों के समान महवरों के बीच अपना मार्ग पहचान लेते हो ॥अर्थात् मेघरूपी गहवर को चीर अपना मार्ग बना लेते हो॥ तब तुम्हारे रथों पर ॥रखे॥ जलपात्र चारों ओर बिखर पड़ते हैं और तुम अपने स्तोता के लिए मधुपूर्ण घृत ॥वृष्टि॥ उड़ेल देते हो' ॥उपह्वरेषुयदचिध्वं ययिं वय इव मरुत: केन-चित्पथा श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ ॥ऋ0सं0 1. 87. 2॥ ऋषि श्यावश्व आत्रेय को मरुतों द्वारा लाई गई वर्षा स्वेदकण प्रतीत हुए रुद्र के पुत्रों ने वायु के घोड़े अपने धुरियों पर जोड़े और अपने स्वेद को वर्षा बना दिया 'वातान ह्यश्वान् धुर्या युयुजे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियास: ॥ ॥ऋ0 सं0 5. 58. 7॥ ।

ऋषि कण्व घौर के शब्दों में 'उग्र एवं शक्तिशाली ॥मरुद्गण॥ रुद्रपुत्र मरुभूमि में भी अवात ॥स्थिर॥ वृष्टि करते हैं। सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वन्चिदा रुद्रियास: मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ॥ऋ0सं0 1. 38. 7॥ ऋषि श्यावाश्व आत्रेय द्वारा मरुतों द्वारा की गई वर्षा का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है - 'शक्तिशाली, दान शील ॥मरुतों ने॥ हविष् प्रदाता के लिए जो द्युलोक का कोश उड़ेला उससे, वे द्युलोक तथा पृथ्वी में पर्जन्य की सृष्टि करते हैं और वृष्टियाँ मरुभूमियों की ओर बढ़ती हैं।

'आ यं नर: सुदानवो ददाशुषे दिव: कोशमचुच्यवु: ।
पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी धन्वना यन्ति वृष्टय: ॥
॥ऋ0 सं0 5. 53. 6॥ ।

मरुतों द्वारा की गई वृष्टि मेजेज्य गुणयुक्त है। इसकी ऋषियों ने प्रायश: चर्चा की है। ऋषि श्यावाश्व आत्रेय प्रार्थना करते हैं कि हे मरुतों। हम प्रात:

कल्याण-स्मृति युक्त तथा भेषज वृष्टि करने वाले तुम्हारे साथ रहे । 'वृष्ट्वी शंयो-राप उस्रि भेषजं स्याम मरुत: सह ।। ऋ० सं० 5.53.14 ।

वृष्टि प्रदान करने वाले देवता होने के कारण मरुतों का यज्ञ से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । वैदिक संहिताओं में अनेक ऐसे विशेषण पद प्रयुक्त हुए हैं जिनसे उनका यज्ञ से घनिष्ठ सम्बन्ध का स्फुट होता है । उनके लिए ऋजीषिण: ऋ० सं० 2.34.9 अर्थात् 'ऋजीष्' रस निचोड़ लेने के बाद सोम का बचा हुआ अंश चाहने वाला कहा गया है । ऋक्संहिता में यह विशेषण अधिकांशत: इन्द्र के लिए प्रयुक्त हुआ है । इससे इन्द्र के साथ मरुतों की किसी प्राचीनकाल में समान-स्तरता पर भी प्रकाश पड़ता है । मरुतों को 'पुरुप्रैषा:' ऋ० सं० 1.168.5 अर्थात् अनेकों द्वारा यज्ञ में आहूत विशेषण के साथ स्मरण किया गया है जिससे स्पष्ट है कि यज्ञों में मरुतों का विशाल जनसंख्या द्वारा आह्वान किया जाता था । इसी प्रकार इनके लिए प्रयुक्त 'यज्ञिया:' ऋ० सं० 5.52.1, 5, 10.78.8 'धर्मस्तुभ:' ऋ० सं० 5.54.1 'यज्वन' ऋ० सं० 5.54.1 'प्रयज्यव:' ऋ० सं० 5.55.1, 'यजत्रा' ऋ० सं० 5.58.4, 7.57.1, 5 'यज्ञवाहस:' ऋ०सं० 1.86.2, 'सुबर्हिष:' ऋ० सं०8.20.26, विशेषण भी यज्ञ के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं ।

मरूद्गण यज्ञ में स्वतन्त्र रूप से आहूत होते थे इसके अनेकानेक उल्लेख वैदिक संहिताओं में प्राप्त होते हैं । यज्ञ में मरुतों का आह्वान करते हुये ऋषि अगस्त्य कहते हैं, ﴾हे मरूद्गण ।﴿ तुम यज्ञ में समान भाव से तीव्र गति से जाते हो, प्रत्येक स्तुति को स्वीकार करते हो, अत: कल्याण तथा रक्षा के लिये मैं अपनी स्तुतियों से तुम्हें द्युलोक तथा पृथ्वीलोक से यहाँ बुलाता हूँ ﴾यज्ञायज्ञा व: समना तुतुर्वाणि-र्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे । आ वो र्वाच: सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभि: ' ।। ऋ0सं0 1.168.1﴿ । इसी सूक्त में आगे ऋषि अगस्त्य मरुतों का यजमान के हृदय में स्थायी रूप से प्रतिष्ठित होना सोमरस का पीने वाले के हृदय में स्थायी प्रभाव जमाने के समान बताते हैं ﴾सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीता-सो दुवसो नासते' ऋ0सं0 1.168.3﴿ ।

ऋषि गोतम राहूगण यज्ञ में मरुतों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि 'हे मरुतों । बर्हिषु पर विराजिये, ﴾आप लोगों के लिए विस्तृत आसन प्रस्तुत है । इस मधुयुक्त अन्न ﴾सोम﴿ से आनन्दित होइये ﴾सीदता बर्हिरुरु व: सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अंधस: ।। ऋ0सं0 2.85.6﴿ उसी प्रकार ऋषि श्यावाश्व आत्रेय सोम-पान के लिए मरुतों का आह्वान करते हुए कहते हैं 'हे रूद्रों । और हे अग्नि । तुम भी हमारे द्वारा दी जाती हुयी इस विषय को जाने ﴾अतो नो रूद्रा उत वा न्वस्या-ग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम ।। ऋ0 सं0 5.60.6﴿ ।

यज्ञ के साथ मरुतों के सम्बन्ध में ऋषि वसिष्ठ ने इनको गृहमेधास: ﴾ऋ0सं0 7.59.10﴿ अर्थात् 'गृह-याग में भाग प्राप्त करने वाले' कहकर संभवत: यह सूचित किया है कि गृह-यागों के साथ वसिष्ठ-परिवार में इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था । एक अन्य ऋक् में भी ऋषि वसिष्ठ कहते हैं 'हे मरुतों इस सहस्र-संख्यक गृहमेधीय भाग का सेवन कीजिये' ﴾सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्' ऋ0सं0 7.56.14﴿। ऋषि बिन्दु अथवा पूतदक्ष कहते हैं कि 'हमारे सभी मित्र गायक सोम-पान के लिए मरुतों का आह्वान करते हैं ﴾तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारव: । मरुत: सोमपीतये ।। ﴾ऋ0सं0 8.94.3﴿ ऋषि स्यूमरश्मि भार्गव मरुतों का यज्ञ में आह्वान करते हुए कहते हैं कि 'यह सर्वाङ्गसम्पन्न यज्ञ ﴾हे मरुतों﴿ आपके योग्य हैं, आप सब

समवेत होकर यहाँ आइये ॥विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वाग्यं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्रा च आ गत' ॠ0सं0 10.66.4॥ । आगे ॠषि स्यूम रश्मि कहते हैं कि यज्ञ में दृढ़तापूर्वक स्थित जो व्यक्ति अन्त तक मरुतों को ॥हविष॥ प्रदान करता है वह स्वास्थ्य-सम्पत्ति प्राप्त करता है, सुन्दर सन्तति वाला होता है तथा वह देवों के सोम-पान में भी सम्मिलित होता है ॥ये उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥ ॥ॠ0सं0 10.77.7॥ और अन्त में उन्हीं ॠषि का कथन है कि ये ॥मरुद्गण॥ हमारे रक्षक हैं ॥अतः॥ सभी यज्ञों में यजनीय हैं ॥ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः । ॥ॠ0सं0 10.77.8॥ ।

अपने याजकों का आह्वान सुनकर मरुद्गण यज्ञ में पहुँचकर उन्हें अनुगृहीत करते हैं । यज्ञों की ओर क्षिप्रगति से आते हुए मरुतों की ॠषिगृत्समद मे हंसों से उपमा देते हुए कहा है, 'मधु-॥सोम॥ के आनन्द के लिए समान मन वाले मरुद्गण अपने निवास स्थान की ओर जाते हुए हंसों के समान ॥प्रतीत होते हैं॥ । ॠषि विश्वामित्र ने भी मरुतों को यज्ञ में, विदथों में जाने वाले धीर '॥गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः 'ॠ0सं0 3.26.6॥ कहा है । ॠषि श्यावाश्व आत्रेय का कहना है कि ॥मरुतों॥ का विस्तार[1]

---

1. वेंकटार्यसुन माधव ने 'विस्टारः' का अर्थ मरुतां विस्तारः' किया है ॥ॠगर्थ दीपिका चतुर्थ भाग पृ0 237 पर ॠ0सं0 5.52.10 की टीका में॥ । सायण ने भी इसका अर्थ 'विस्तृताः सन्तः ॥मरुतः॥ किया है ॥ॠ0सं0 5.52.10 के भाष्य में॥ परन्तु मैक्समूलर ने लैनमैन का अनुसरण करते हुए 'विष्टारः' के स्थान पर 'विष्टारे' रूप मानते हुए इसका अर्थ 'On the straw' किया है ॥देखिये वैदिक हिम्स पार्ट । पृ0 316 पर verse 10 का नोट ।॥ । पद-पाठ में 'वि स्तार रूप स्वीकार किया गया है । इस सम्बन्ध में रूप के साथ अर्थ संगत हो जाने से 'विष्टारे' की कल्पना करना उचित नहीं है । इसके अतिरिक्त अथर्वसंहिता - ॥शौनकीय॥ 4.34.1 में 'विष्टारी' पद आया है जिसके लिए मैक्समूलर ने अपन उपर्युक्त टिप्पणी में कहा है कि इससे सही-सही अर्थ प्रतीत नहीं होता परन्तु 'विष्टारी' का अर्थ भी विस्तृताव सम्पन्न सही बैठता है । अन्ततः मैक्समूलर ने भी उपर्युक्त टिप्पणी में स्वीकार किया है कि विष्टारः रूप मानने पर इसका अर्थ मरुद्गण से ही होगा ॥यद्यपि अनुवाद में उन्होंने 'On the straw' ही किया है॥ ।

आने वाले जाने वाले, प्रवेश करने वाले तथा अनुसरण करने हैं ‖आपथयो विपथयो न्तस्पथा अनुयथा: । एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ‖ऋ0सं0 5.52.10‖ । पुन: ऋषि श्यावाश्व आत्रेय कहते हैं, 'पौरुष युक्त मरुद्गण‖ यज्ञ की विशाल सभा ‖विपक्ष‖ में प्रयत्नशील होते हैं । 'अन्तर्महे विदथे येतिरे नर: ' ‖ऋ0सं0 5.59.2‖ ।

ऋक्संहिता के किन्हीं परवर्ती सूक्तों विशेषत: ऋतुयाग सम्बन्धी सूक्तों में मरुतों को 'पोतृ' नामक ऋत्विक द्वारा सोम-ग्रहण करने के लिए कहा गया है । ऋषि मेधातिथि काण्व कहते हैं मरुतों । पोतृ से ऋतु के साथ सोम-पान कीजिए तथा यज्ञ को पवित्र कीजिये ‖मरुत: पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ‖ऋ0सं0 2.15.2‖ यही बात ऋषि गृत्समद इन शब्दों में कहते हैं 'हे द्युलोक के नरो ‖मरुतों।‖ 'पोतृ' से सोम पीजिये ‖'पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नर: ' ‖ऋ0सं0 2.36.2‖ । अथर्ववेद संहिता ‖21.2.1‖ में भी यही बात कही गयी है । इस मंत्र के ऋषि मेधातिथि काण्व अथवा 'गृत्समद' कहे गये हैं जो कि ऋक्संहिता से ऊपर उद्धृत दोनों मंत्रों ऋके ऋषि हैं । अथर्वसंहिता का मंत्र इस प्रकार है - 'मरुत: पोत्राद् सुष्टुभ: स्वर्कादृतुना सोमं पिबत ‖अथर्व0 21.2.1‖ ।

यज्ञों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण ही ऋषि गृत्समद ने मरुतों को 'यज्ञों' से सम्बद्ध ‖यज्ञै: सम्मिश्ला: ‖ऋ0सं0 3.36.2‖ कहा है । यहाँ बहुवचन में यज्ञ पद संभवत: संकेत करता है कि मरुतों का सम्बन्ध यज्ञ-संस्था के अन्तर्गत अनेक योगों से हैं । परन्तु सोम से मरुद्गण विशेषत: आप्यायित होते हैं । ऋषि गोतम राहूगण का कहना है कि 'साम के मद में मरुद्गण ने अद्भुत कार्य किये ‖मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे' ‖ऋ0सं0 1.85.10‖ । ऋषि वसिष्ठ कहते हैं कि 'मरुद्गण सोम-युक्त मधु के प्रति अवहेलना न करते हुए[1] यहाँ ‖हमारे यज्ञ में‖ स्वाहाकार के साथ आमंत्रित होवें ‖ऋ0सं0 7.59.6‖

---

1. वेंकटार्यसूनु माधव ने 'असेधन्त: ' का अर्थ अक्षीणा: भवन्त: '‖ऋगर्थदीपिका, पृ0992 पर ऋ0सं0 7.56.6 की टीका में‖ किया है । सायण ने इस मंत्र की व्याख्या में 'असधन्त: का अर्थ आहसन्त: किया है ‖ऋ0सं0 7.59 6 पर भाष्य‖

मरूद्गण अपने यजमानों के मित्र और रक्षक हैं, इसलिए आर्यजन कृतज्ञतापूर्वक इन्हें हविष् प्रदान करते हैं। ऋषि नोधा गोतम ने मरुतों को 'मनुष्य के मित्र' ॥नृषाचः॥ विशेषण से विरषित किया है। ऋषि अगस्त्य मरुतों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं - ये रुद्र ॥मरूद्गण॥ नमस्कार करने वाले के पास को रक्षा के साथ पहुँचते हैं, अपनी शक्ति से शक्तिमान ये ॥मरूद्गण॥ हविष् प्रदान करने वाले को क्लेश नहीं देते हैं ॥ऋ0सं0 2.166.2॥ मरुतों की सहायता किस रूप में प्राप्त होती है' इसकी ओर संकेत करते हुए ऋषि अगस्त्य कहते हैं, जिस हविष् प्रदान करने वाले यजमान को ये अमर रक्षक ॥मरूद्गण॥ धन की समृद्धि प्रदान करते हैं, उसके लिए वे मित्रों के समान सुख देने वाले मरूद्गण लोकों को जल-वर्षण द्वारा सींच देते हैं, ॥यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे। उक्षन्त्यस्मै मरुता हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ॥ऋ0सं0 1.166.3॥ ।

'मरूद्गण क्षतियों, हिंसाओं से भी रक्षा करते हैं, इस ओर सङ्केत करते हुए ऋषि श्यावाश्व आत्रेय कहते हैं, 'हम उनसब मरुतों को सशक्त रूप से स्तुति और यज्ञ निवेदित करते हैं जो मनुष्यों की पीढ़ी दर पीढ़ी रक्षा करते हैं, मनुष्य को हिंसा से बचाते हैं ॥मरुत्सु को दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया। विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्य रिषः ॥ऋ0सं0 5.52.4॥ और इसीलिए से तत्काल सहायता करने वाले 'सद्यूतयः' ॥ऋ0सं0 5.54.15॥ कहे गये हैं 'बल और पराक्रम के प्रतीक मरूद्गण अपने यजमान की युद्ध में भी सहायता करते हैं' इस ओर सङ्केत करते हुए ऋषि भरद्वाज कहते हैं 'हे मरुतों। जिसकी तुम युद्ध में रक्षा करते हो, उसको न कोई घेर सकता है और न अभिभूत कर सकता है, जिसके तुम कुल, संतति पशुओं तथा जलों की रक्षा करते हो, वह सायंकाल होते होते ॥शत्रु के॥ दुर्ग को तोड़ डालता है ॥नास्य वर्ता न तरुता - न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ। तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्यौः ॥ऋ0सं0 6.66.8॥

अथर्वसंहिता में भी एक मंत्र में कहा गया है कि हे मरुतों यह जो ॥ शत्रुओं की सेना है, जो हम पर स्पर्धा करती है वेग से आ रही है, उस सेना को घबराहट

करने वाले तमसास्र से वेध लो जिससे इनमें से कोई किसी को न जान सके' ‡असौ या सेना मरुत: परेषा‍ं अस्मानेत्योजसा स्पर्धमाना । तां विध्यत तमसापव्रतेन, यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ‡अथर्व0सं0 3.2.6‡ ।[1]

उपर्युक्त समस्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक संहिताओं ‡मुख्यत: ऋग्वेद संहिता‡ में मरुतों का स्थान इन्द्रादि अन्य प्रधान देवों के तुल्य ही हैं, परन्तु परवर्ती ब्राह्मण साहित्य में मरुतों को देवों की प्रजा ‡देवीर्विश:‡ कहकर इनका स्थान गौण कर दिया गया है ‡इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा‡ । ऋक्संहिता में ऋषि श्यावाश्व आत्रेय ने मरुतां विश:' ‡ऋ0सं0 5.56.1‡ अर्थात् मरुतों की प्रजा ‡या अधिक प्रसङ्गानुकूल तो मरुतों का समूह कहना होगा‡ की चर्चा की है । इसी प्रकार ऋषि कण्व घोर ने एक ऋक् में कहा है कि 'हे देव मरुतो। आप समस्त प्रजा के साथ मदोन्मत्तों जैसे जहाँ चाहते हो चले जाते हो' ‡प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवास: सर्वया विशा ॥ ‡ऋ0सं0 2.39.5‡ । इसमें भी मरुतों की प्रजा को ओर सङ्केत है जो उनकी प्रधानता का सूचक है । अथर्ववेद संहिता में एक इन्द्र-सूक्त में 'देवीर्विश:' ‡अथर्व0 सं0 9.4.9‡ की चर्चा हुयी है, परन्तु यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि इससे मरुतों की ओर सङ्केत है ।[2] इसी प्रकार 'देवीर्विश: मैत्रायणी संहिता ‡4.12.2, 181.14‡ तथा काठकसंहिता ‡8.17‡ में भी प्रयुक्त हुआ है,

---

1. शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता में यह मंत्र कुछ पाठान्तर के साथ इस प्रकार मिलता है - ‡असौ या सेना मरुत: परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना । तां गहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यत्र जानन् ।" ‡वा0सं0 17.46 ‡

2. देवीर्विश: पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहु: ।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति' ॥

‡अथर्व0सं0 9.4.9‡

परन्तु यहाँ भी यह मरुतों की ओर सङ्केत नहीं करता । केवल शुक्ल यजुर्वेद वाजसे-नेयिसंहिता में स्पष्टतः यह कहा गया है कि 'देवी प्रजायें मरुद्गण इन्द्र के अनवर्ती हुये' ॥इन्द्रं देवी र्विशो मरुतो नुवर्त्मानो भवन् ॥27.86॥ । वैदिक देव-गण के बीच मरुतों की स्थिति के क्रमिक विकास का यह अन्तिम सोपान प्रतीत होता है ।

---------::0::---------

"ब्राह्मणग्रन्थों में मरुद्गण का वैशिष्ट्य"

कालक्रम तथा वैचारिक विकास के क्रम की दृष्टि से संहिताओं के पश्चात् वैदिक वाङ्मय में 'ब्राह्मणों' नामक ग्रन्थों का स्थान है। ग्रन्थ के अर्थ में ब्राह्मण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'शतपथ ब्राह्मण' के 13वें काण्ड में मिलता है, जहाँ तस्योक्तं ब्राह्मणम्' वाक्य का अनेकशः प्रयोग हुआ है। इसके पूर्ववर्ती काण्डों में इसी अर्थ में 'तस्योक्तो बन्धुः' वाक्य का प्रयोग हुआ है। 'बन्धु' शब्द का अर्थ 'सम्बन्ध' है, अतः 'बन्धु' और 'ब्राह्मण' शब्दों का इन प्रसंङ्गों में अर्थ होगा 'मंत्र का याज्ञिक कर्मकाण्ड से सम्बन्ध। इस प्रकार के सम्बन्ध-विवेचनात्मक सन्दर्भ मूलतः कर्मकाण्ड के भिन्न-भिन्न अंशों के विषय हैं। ये सन्दर्भ मनीषियों के चिन्तन के बिखरे हुये अंश रहे होंगे, जैसा कि 'तस्योक्तं ब्राह्मणम्' वाक्य के एकवचन के प्रयोग से प्रतीत होता है। कालान्तर में विभिन्न परिवारों ने अपनी परम्परा में चले आते हुये ऐसे अंशों को सङ्कलित कर लिया होगा और ये सङ्कलित ग्रन्थ ही ब्राह्मण पदवाच्य हो गये।

यों तो कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं-तैत्तिरीय, मैत्रायणी काठक तथा कठ-कपिष्ठल में मंत्र-भाग के साथ ही साथ ऐसे व्याख्यात्मक अंश सङ्कलित हैं जो ब्राह्मण भाग ही हैं और संभवतः ये अंश ब्राह्मण-विभाग के प्राचीनतम निदर्शन हैं, परन्तु बाद में प्रत्येक संहिता के साथ स्वतंत्र ब्राह्मण ग्रन्थों की परिपाटी देखते हुये कृष्ण यजुर्वेद का भी एक स्वतंत्र ब्राह्मणग्रन्थ तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] के नाम से बन गया। यही बात

---

1. तैत्तिरीय ब्राह्मण के विषय में मैकडानेल का मत है कि यह प्राचीनतम ब्राह्मणों में से है और इसके समर्थन में वे यह तर्क देते हैं कि इसका पाठ स्वराङ्कित है (देखिये, मैकडानेल - 'A History of Sanskrit literature' भारतीय संस्करण, पृ0 162)। परन्तु विन्टरनित्ज के विचार से यह बहुत बाद की रचना है क्योंकि इसमें पुरुषमेध का वर्णन है जो कि इसकी संहिता में नहीं है। विन्टर-नित्स - 'A History of Indian literature' पृ0 192)।

अथर्व संहिता के 'गोपथब्राह्मण'[1] के साथ भी है जो ब्राह्मणसाहित्य का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है ।

प्राचीनतम ब्राह्मणग्रन्थों में सामवेद के 'जैमिनीय ब्राह्मण' तथा 'ताण्ड्य महाब्राह्मण' अथवा 'पंचविंश ब्राह्मण' उल्लेखनीय है ।[2] इनमें वैदिक आख्यानों के प्राचीनतम रूप तथा कतिपय अति प्राचीन वैदिक आख्यान सङ्कलित है । सामवेद का 'षड्विंश ब्राह्मण' पंचविंश का पूरक ही है । सामवेद के अन्य छोटे-छोटे 'ब्राह्मण' नामधेय ग्रन्थ-आर्षेय ब्राह्मण सामविधान ब्राह्मण, देवताह माय ब्राह्मण वंश ब्राह्मण तथा संहितायें विषद् ब्राह्मण-ब्राह्मणों की अपेक्षा वेदाङ्गों के अधिक समीप हैं । ऋग्वेद संहिता के दो ब्राह्मण 'ऐतरेय' तथा कोषीतकि' अथवा 'शाङ्खायन' भी पर्याप्त प्राचीन हैं । शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण यद्यपि काल-क्रम की दृष्टि से पर्याप्त परवर्ती काल है ।[3] परन्तु विस्तार एवम् सामग्री की दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण ब्राह्मणग्रन्थ है ।

---

1. 'Maurice Bloomfield' के अनुसार 'गोपथ ब्राह्मण' अथर्वसंहिता के श्रौतसूत्र 'वतानसूत्र' से भी बाद की रचना है (Bloomfield - 'The Atharvaveda and the Gopath Brahmna'- Page 102.

2. पंचविंश ब्राह्मण के विषय में विन्तरनित्स का कहना है कि 'This Jaiminiya is the oldest Brahmnas and contains some important old legend.

   और जैमिनीय ब्राह्मण के विषय में उनका ऋx मत है कि, The Jaiminiya Brahmna of the Samveda is even older than the Tandy Mahabrahmna' - 'A History of Indian Literature, Vol.I, Page 191.

3. पातंजल महाभाष्य में अष्टाध्यायी के सूत्र 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु 4.3.105 पर एक प्रतिषेध वार्तिक दिया गया है, 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु याज्ञवल्क्यादिभ्य: प्रतिषेधस्तुल्य कालत्वात्' जिसके व्याख्यान में कहा गया है कि 'पुराणप्रोक्तेष्वित्य याज्ञवल्क्यादिभ्य: प्रतिषेधो वक्तव्य: । याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि सौलभानि इति' । इससे प्रतीत होता है कि 'याज्ञवल्क्यानि ब्राह्मणानि' अर्थात् शतपथ ब्राह्मण की कालक्रम में पाणिनि से बहुत समीपता है ।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, मन्त्र और याज्ञिक कर्मकाण्ड के सम्बन्ध की व्याख्या की गयी है । इसी व्याख्या के प्रसङ्ग में ये ग्रन्थ मन्त्र के पदों, कर्मकाण्ड तथा देवता की प्रतीकात्मक व्याख्या के साथ-साथ आख्यानों का भी सहारा लेते हैं । ये आख्यान देवता की कल्पना के विकास पर भी सहारा लेते हैं । इनके साथ ही इन ग्रन्थों में देवताओं के सम्बन्ध में अनेक ऐसी चर्चायें भी मिलती हैं, जो किसी देवता के सम्बन्ध में विद्यमान धारणाओं के क्रमिक विकास को स्पष्ट कर देती हैं ।

प्रस्तुत अध्याय में मरुतों के सम्बन्ध में ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध वाक्यों तथा आख्यानों के आधार पर इनके स्वरूप-विकास पर विचार किया जायेगा । मरुद्गण सम्बन्धी याज्ञिक प्रसङ्गों पर आगे के अध्यायों में विचार किया जायेगा । अनावश्यक विस्तार से बचने के लिये यहाँ मरुतों के स्वरूप के केवल उन्हीं प्रसंगों की चर्चा की जायेगी जिनमें ब्राह्मण-ग्रन्थों ने या तो कुछ परिवर्तन किया है अथवा नयी धारणाओं को जन्म दिया है ।

॥1॥ मरुतों की संख्या के विषय में, जैसा कि पिछले अध्याय में[1] कहा जा चुका है, वैदिक संहिताओं में इनकी असंख्यता की ओर ही सङ्केत किया गया है । परन्तु मुख्यतः याज्ञिक क्रिया से सम्बन्ध ब्राह्मणग्रन्थों में उनकी संख्या निश्चित रूप से सात[2]

---

1. देखिये अध्याय, / पृ०सं० /

2. 'सप्त हि मरुतः' का०सं० 36.1.2, 37.3.4
   सप्तगणा वै मरुतः' तै०सं० 2.2.5.7

अथवा इक्कीस[1] अथवा सात-सात के सात गण[2] कह दी गयी है ।

सात अथवा सात के गुणक के रूप में मरुतों की संख्या के निर्धारण का आधार ऋषि श्यावाश्व आत्रेय की यह ऋक् प्रतीत होती है, 'सप्त ये सात शाकिन एकमेका-शता ददुः । यमुनायामधिश्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अस्व्यंमृजे ॥

{ऋ0सं0 5.52.17}

{बलशाली मरुतों के सात सात के सात गणों ने मुझे एक एक करके सैकड़ों का दान दिया जिस घोड़ों और गायों वाले दान को मैं यमुना के जल में मार्जित करता हूँ} ।[3] परन्तु याज्ञिक कर्मकाण्ड में विशेषतः जहाँ देवता के निमित्त पुरोडास निवेदित करने के प्रसंग आते हैं वहाँ मरुतों के सम्बन्ध में सात की संख्या बड़ी सुविधाजनक प्रतीत हुयी और इसलिए उनके लिए 'सप्तकपालपुरोडाश' का विधान किया गया है ।[4] कहा गया है

---

1. एकविंशतिर्व मारुता गणाः' का0सं0 11.1.1
'एकविंशतिरेवेषाम्' गो0ब्रा0 1.5.24
'एकविंशत्या स्तुवत' तै0सं0 4.3.10.2, मै0सं0 2.8.6,
का0सं0 17.15, वा0सं0 14.30, श0ब्रा0 8.4.3.13
'त्रिर्व सप्तसप्त मरुतः' का0सं0 37.3.4

2. 'सप्तसप्त हि मरुतो सप्तधागणाः' का0सं0 21.10.26.37,
'सप्तसप्त हि मारुतो गणः' श0ब्रा0 2.5.1.13

3. शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर कहा गया है कि 'सप्त-सप्त' कहने से बहुसंख्या का बोध होता है परन्तु मरुतों की संख्या सात ही - 'बहुकृत्वः सप्त-सप्त सप्तेव तच्छीर्षण्येव तत्सप्त प्राणानन्दधाति {श0ब्रा0 9.3.1.8} ।

4. 'मारुतस्सातकपालः' {काठ0 9.4.8, मैत्रा0 1.10.1, 140.9, कपि0 8.7} ।
'मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रातः सप्तकपालस्साकं सूर्यस्य रश्मिभिः {मैत्रा0 9.5.16}।
मरतः सप्ताक्षरां वाचमुदजयन् {मैत्रा0 14.4.24}, 'मारुतः सप्तकपालः वैश्यस्य' {मैत्रा0 15.4.6} । सप्त-सप्त हि मारुतो गणस्तास्मान्मारुतः सप्तकपालः पुरोडाशो भवति {श0ब्रा0 2.5.1.13} ।

कि पशुओं के प्रजनन के लिए यह सप्त कपाल पुरोडाश विहित है ।[1] 'मरुत क्योंकि सात है' इसलिए उन्होंने सप्ताक्षरों से ' सप्तपदी शक्वरी ' छन्द को जीता[2] और सात ही अक्षरों से 'उष्णिक्छन्द' को भी जीता ।[3] तिथियों में मरुतों के हिस्से में 'सप्तमी तिथि' रखी गयी है ।[4] वाजसनेयि संहिता में तो सातों मरुतों के नाम भी गिना दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं, 'उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वांश्चाभियुग्वा च विक्षिप: स्वाहा' ‹वा०सं० 17.86, 39.7› । स्पष्ट है कि यह नामकरण मरुतों की उग्रता एवम् भयंकर ध्वनि उत्पन्न करते हुए वेग के अनुरूप ही रखे गये हैं ।[5] मरुतों के लिए सात संख्या निर्धारित करने का एक प्रमुख कारण यह भी प्रतीत होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों के चिन्तन में शरीर में सात प्राणों की कल्पना की गयी है । 'प्राण' का स्थूल रूप ही वायु है अत: इस प्रकार वायु प्राण का प्रतिनिधि हुआ और अधिक संख्या में कल्पना किए जाने के कारण इन प्राणों की अधिष्ठातृ देवतावायु के बहुवचनान्तरूप 'मरुत:' को माना गया । फलत: मरुतों की संख्या निश्चित हो गयी ।[6]

---

1. 'प्रजननायैव पशूनां सप्तकपालो भवति सप्त हि मरुत: ‹काठ० 36.2.2›
2. 'मरुतस्साताक्षरां वाचमुदनयत्' ‹काठ० 14.4.24›
   'मरुत: सप्ताक्षरेणसप्तपदां शक्वरीमुदजयन्' ‹तै०सं० 1.7.11.1›
   मैत्रा० 1.11.10; 172.2 काठ० 14.4›
3. ‹'मरुत: सप्ताक्षरयोष्णिहमुदजयन्' मैत्रा० 1.11.10; 172.13;
   काठ० 14.4› ।
4. 'मरुतां सप्तमी' ‹मैत्रा० 3.15.4, वा०सं० 4›
5. यह मंत्र यजुर्वेद की मैत्रायणी संहिता ‹4.9.17› में भी आया है । तैत्तिरीय आरण्यक ‹4.24.1› में भी यह मंत्र किंचित् पाठान्तर के साथ आया है ।
6. देखिये, पृष्ठ

बहुत थोड़े से स्थलों पर मरुतों की संख्या इक्कीस कही गयी है । मरुतों को गण मान लेने के कारण सात-सात के अनेक दलों की कल्पना स्वाभाविक हो गयी और 'क्योंकि 'एकविंशति साम' पशुओं की समृद्धि के लिए माना गया और पशुओं का सम्बन्ध जैसा कि हम आगे देखेंगे, मरुतों के साथ बताया गया, इसलिए यह इक्कीस संख्या संगत हुयी ।[1]

उपर्युक्त कारण से ही सात-सात के सात गण मान लिए गये और जैसा कि पीछे कहा जा चुका है ऋक्संहिता (5.52.17) में तो सात-सात कहने से इनकी असंख्यता ही अभिप्रेत थी परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में यह वस्तुतः निश्चित संख्या मान ली गयी ।

(2) जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, ऋक्संहिता, अथर्वसंहिता तथा यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं के मंत्र-भाग में मरुतों को 'पृश्निमातरः अर्थात्' पृश्नि जिनकी माता है कहा गया है । यजुर्वेद की विभिन्न संहिताओं के ब्राह्मण सदृश भागों तथा अन्य ब्राह्मणों में भी प्रायः मरुतों को पृश्नि से उत्पन्न बताया गया है, और उन्हें 'पृश्नयः' कहा गया है ।[2] पृश्नि को कहीं कहीं पृथ्वी से सम्बद्ध कर मरुतों का भी पृथ्वी के साथ सम्बन्ध बताया गया है और पृश्नि को प्रायः गाय के रूप में कल्पित किया गया है ।[3] इसीलिए अश्वमेध में बिन्दियों वाले पशु (पृश्नयः)

---

1. देखिये, पृष्ठ ——

2. 'पृश्नयो मारुतः - वा0सं0 14.14.15, मैत्रा0 3.13.12, 171.1, 3.13.13, 171.4, आप0श्रौ0 20.14.7.9

3. 'पृश्न्या वै मरुतो जाताः वचो वास्या वा पृथिव्या मारुतास्सजाता' (का0सं0 10.11)

मरुतों के लिए रखे गये हैं ।[1] इसी प्रकार वाजपेय में भी मरुतों के लिए एक चितकबरी वन्ध्यागाय दी जाती है जिसे शतपथ ब्राह्मण में पृथिवी का प्रतीक कहा गया है ।[2] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि यहाँ 'पृश्नि से' आँधी-तूफान से पहले धूलि-धूसरित पृथ्वी मरुतों की माता अर्थात् उद्भव-स्थान के रूप में मानी गयी है । कहीं-कहीं पर मरुतों को 'पृश्नि' के दूध से उत्पन्न कहा गया है ।[3]

इस कल्पना में संभवतः मरुतों के वर्षा करने वाले रूप की ओर सङ्केत हैं क्योंकि वे पृश्नि में 'पयस्' (दूध) से उत्पन्न हैं अतः वे पृथ्वी पर पयस् (पानी) बरसाने में समर्थ हैं ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुतों के पिता के सम्बन्ध में प्रायः चर्चा नहीं हुयी है यद्यपि रुद्र के साथ इनके घनिष्ठ सम्बन्ध की ओर अनेक संकेत हैं ।[4] परन्तु यजुर्वेद संहिता के मंत्र में इनको 'रुद्रियासः' कहा गया है[5], और एक मंत्र में रुद्र को 'मरुतां पितर्' कहा गया है ।[6]

---

1. पृश्नस्तिरश्चीनपृश्निचन्र ऊर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः - वा०सं० 24.14, तै०सं० 5.6.12.1, मैत्रा० 3.13.5, 169.8, का०सं० 9.2

2. 'इयं वै वशा पृश्निर्यदिदमस्यां मूलिचामूलं चान्नाद्यं प्रतिष्ठितं तेनेयं वशापृश्निः । श०ब्रा० 5.1.3.3

3. 'पृश्नियै वै पयसो मरुतो जाताः' तै०सं० 2.2.11.2

4. देखिये अध्याय 4, पृष्ठ

5. मा नो धर्म व्यथितो विव्यधीत् मा न आयुः परमवरं मगदोनेः । मोष्वत्वमस्यान्तराधान् मा रुद्रियासो अभिगुल्बधा नः ॥ मैत्रा० 149.12 (अथर्व 19) 133.1.1 यह मंत्र तै०आ० 4.2.2 में भी आया है ।

6. नमो महिम्ने उत चक्षुषे ते (मैत्रा०महिम्ने चक्षुषे) मरुतां पितरुत तद् गृणीभिः हुतो याहि पथिभिर्देवयानैरोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥ तै०सं० 3.3.9.1, मैत्रा० 5.5.10, 61.10, का०० 14.9.28

यजुर्वेद संहिता के ब्राह्मणसदृशभागों तथा ब्राह्मणग्रन्थों में मरुतों के एक पुत्र 'अहर्वनभस्त की चर्चा हुयी है । पशु याग में पशु की वपा (चर्बी) को अलग करने के लिए प्रयुक्त 'द्विशूला' एवम् 'एकशूला' वपाश्रपणियों को अग्नि में समर्पित करते हुए मंत्र पढ़ा जाता है, 'स्वाहोर्हवनभसं मारुतं गच्छतम्' अर्थात् (हे त्रिशूला और एक शूला मरुतों के पुत्र ऊर्ध्वमनस् के पास जाओ, स्वाहा)[1] 'तैत्तिरीयसंहिता के ब्राह्मण सदृश भाग में इस मंत्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'ऊर्ध्वनभस' जो मरुतों का पुत्र है, देवों के पशु भाग में वपाश्रपणियों को चुभाता ह था, इसीलिए इन शूलों को 'ऊर्ध्वनभस्' के द्वारा देवों तक पहुँचाया जाता है ।[2]

कीथ 'ऊर्ध्वनभस' से 'विद्युत् जो मेघों के ऊपर रहती है अथवा संभवत: 'वायु' समझते हैं ।[3] एगलिंग के 'ऊर्ध्वनभस्' से वायु का ही अर्थ लिया है ।[4] परन्तु वपा-श्रपणी के शूलों को देखते हुए विद्युत अर्थ ही ठीक लगता है और आँधी - तूफान की अभिमानिनी देवता मरुतों के पुत्र के रूप में विद्युत की कल्पना सहन संभाव्य है । यह इससे भी समर्थित है कि अनेक स्थानों पर मरुतों के पुत्र के रूप में 'द्युतान' का उल्लेख हुआ है ।[5] पंचविंश-ब्राह्मण में मारुत द्युतान को व्रात्यों का 'गृहपति' कहा गया

---

1. 'स्वाहोर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्' तै०सं० 1.3.9.3, मैत्रा० 3.10.1, 131.2.(
'ऊर्ध्वनभसं (कौषी० ऊर्ध्वनभसं) मारुतं (काठ०मारुतं देवम्) गच्छतम् - मैत्रा० 1.2.16, 27.1, काठ० 3.7, कौषी० ब्रा० 44.12, वा०सं० 6.16

2. 'स्वाहोर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतमित्याहोर्ध्वनमाह स्म वै मारुतो देवानां वपाश्रपणी प्रहरति तेनेवेने प्रहरति', तै०सं० 6.3.9.6

3. 'The lightning which is above the clouds or perhaps Vayu' A.B. 'Keith. The English Translation of the Veda of Black Yagus, School. entitled Tattiriya Samhita-part I, Prapathak Page 45, Note 4.

4.

5. तै०सं० 6.2.10.4, 5.9.4, तै०आ० 4.7.2, 5.5.2, मैत्रा० 2.7.10, 88.1, काठ०सं० 14.10, वा०सं० 12.34, शत०ब्रा० 3.6.1.16, पंच०ब्रा० 6.4.2

है ।[1] द्युतान शब्द का अर्थ 'द्युत' से निष्पन्न होने के कारण चमकने वाला अर्थात् विद्युत् प्रतीत होता है, यद्यपि शतपथ ब्राह्मण में वायु को द्युतान कहा गया है ।[2]

{3} यज्ञ में कुशों का एक गुच्छा जिसे प्रस्तर कहते हैं बनाकर रखा जाता है । इसे घृतावत करते हैं और इसमें से कुश का एक टुकड़ा तोड़कर उसे पूर्व की ओर फेंकते हुए मंत्र पढ़ा जाता है - 'तुम मरुतों की पृषती अर्थात् चित्तीदार घोड़ियाँ हो, तुम 'पृश्निवशा' अर्थात् चितकबरी गाय बनकर द्युलोक को जाओ और हमारे लिए वृष्टि लाओ ।[3] इस मंत्र से प्रतीत होता है कि चितकबरी घोड़ियाँ अथवा गायें मरुतों के वाहन के रूप में कल्पित की गयी थीं ।

{4} इन्द्र के अनुचरों के रूप में मरुद्गण वैदिक संहिताओं में ही प्रतिष्ठित हो चुके थे ।[4] परन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों में मरुद्गण को देवों की प्रजा के रूप में कल्पित किया गया है । ब्राह्मणों तथा कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं के ब्राह्मण जैसे भागों में अनेक बार इस प्रकार के वाक्य दुहराये गये हैं कि - 'विशो ये मरुतो देव विशः'[5]

---

1. पं०ब्रा० 17. 1. 3।
2. यो वा यं पर्वत एष द्युतानो मारुतः' श०ब्रा० 3. 6. 1. 16
3. मरुतां पृषतयः स्थि दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमेरय । तै०सं० 2. 1. 13
   'मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमेरय' का०सं० 2. 12
   'वशा पृश्निर्भूत्वा मरुतो गच्छ ततो नो वृष्ट्यावत' मैत्रा० 1. 1. 13
   'मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्नीर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह' वा०सं० 2. 11
4.
5. जै०ब्रा० 2. 175, शत०ब्रा० 2. 5. 1. 12 आदि ।

'मरुतो वै देवानां विशः'[1] 'देवीर्विशो मरुतः'[2] अथवा 'देवानां मरुतो विड्'[3]।
अनेक स्थलों पर मरुतों को केवल 'मरुतों विसः'[4] अथवा 'विº मरुतः'[5] अथवा
'विड्वं मरुतः'[6] अथवा 'विशो वै मरुतः'[7] कह दिया गया है। विशः के साथ
मरुतों के समीकरण के फलस्वरूप वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत 'वैश्य' वर्ग मरुतों से सम्बद्ध
मान लिये गये। 'पुरुषमेध' में मरुतों के लिये 'वैश्य' रूपी पशु निर्धारित किया गया
है क्योंकि 'वैश्य' मरुतों का है।[8]

ऋक्संहिता में बहुसंख्यक मरुतों का 'विशः मरुताम्'[9] कहकर आह्वान किया
गया था, ब्राह्मण-काल तक आते-आते यह बहुसंख्या-वाचक आख्या 'विशो मरुतः'
में बदल गयी। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि देवों की पुजा होनी चाहिये।
जब देवों की पुजा होगी तो मनुष्य की भी होगी। ........ मरुत देवों की
पुजा है।[10] इसका कारण मरुतों की बहुसंख्या ही प्रतीत होती है।[11] साथ ही

---

1. काठ०सं० 8.4.8.9, तै०सं० 2.2.5.7 आदि ऐ०ब्रा० 1.19
2. काठ०सं० 21.10.36.37 आदि।
3. शत०ब्रा० 4.5.2.17 आदि।
4. काठ०सं० 38.10, मैत्रा० 3.11, तै०ब्रा० 2.6.18.3, वा०सं० 19.
5. काठ० 10.11.17, 1.10.36, 10 25
6. काठ०सं० 11.1.1.1 आदि।
7. शत०ब्रा० 2.5.2.24, 3.9.1.18, 1.3.
8. 'ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते क्षत्रायराजन्यम्। मरुद्भ्यो वैश्यम्।
   तपसे शूद्रम्' तै०ब्रा० 3.4.1.1, वा०सं० 5.
9. मारुतो हि वैश्यः' - काठ०सं० 37.3.4
10. 'विशो अधमरुतामवह्वये' - ऋ०सं० 5.56
11. देवविशः कल्पयितव्या इत्याहुः'। ता० कल्पमाना अनु मनुष्यविशः कल्पन्त
    इति। ........ मरुतो वै देवानां विशः।' ऐ०ब्रा० 1.9

मरुतों के महत्व का घट जाता भी इसका एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है । जैसे समाज में राजा एक ही होता है और पुरोहित भी संख्या में अधिक नहीं होते 'विशः' ही बहुसंख्यक होते हैं, ऐसे ही इन्द्र देवों में राजा अथवा क्षत्रिय हुये, ब्राह्मणस्पति अथवा बृहस्पति पुरोहित अथवा ब्राह्मण हुये और बहुसंख्यक मरूद्गण 'विशः' में गिने गये । देवों में क्षत्र का अधिकार जब शक्ति के प्रतीक (शचीपति) इन्द्र को मिल गया तो उसके अनुसार मरूद्गण स्वभावतः 'विशः' के रूप में कल्पित हुए ।[1] इस रूप में संख्या में अधिक होने के कारण 'विश्वेदेवाः' का भी उल्लेख हुआ है ।[2] मनुष्य समाज में जैसे अन्न उत्पन्न करना 'विशः' का काम है, ऐसे ही देवों में मरूद्गण अन्न से भी समीकृत हो गये ।[3]

इन्द्र के अनुचर बन जाने से मरुतों के महत्व में ह्रास की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुयी थी, 'विशः' के रूप में मान लिया जाना उसमें एक ओर अगला डग था । याज्ञिक-प्रक्रिया पर भी इसका प्रभाव पड़ा । सोम-याग के अन्तिम चरण में मरुतों के लिये 'वशा-याग' होता है । इस याग को स्वाहाकृति के बिना ही करने को कहा गया है, क्योंकि मरूद्गण देवों के 'विशः' हैं और 'विशः' तो 'अहुताद' (अहुत हविष् खाने वाले) ही होते हैं ।[4] परन्तु जैसा कि आगे अध्याय 5 में विस्तार में विवेचन किया जाएगा, अनेक याज्ञिक सन्दर्भों में मरुतों के साथ वैसा ही

---

1. 'क्षत्रं वा इन्द्रो विशा विश्वेदेवा विशो वै मरुतो विशैवैतत्क्षत्रं परिबृंहति तदिदं क्षत्र क्षत्रमुभयतो विशा परिवृढम्' - शत०ब्रा० 3.9.1.18

2. ऐन्द्रो वै राजन्यो मारुती विशः - जै०ब्रा० 1.95 (पृ० 42)
'विड् वै विश्वेदेवाः विण्मरुतः' - क०कपि० 46.13.1

3. 'विशो वै मरुतो न्नं वै विशः' - शत०ब्रा० 5.1.3.3

4. 'न स्वाहाकरोत्यहुतादो वै देवानां मरुतो विवडहुतामेवेतद् यदस्वाहाकृतं देवानां वै मरुततस्तदेनं मरुत्स्वेव प्रतिष्ठापयति' - शत०ब्रा० 4.5.2.17

व्यवहार किया गया है, जैसा कि अन्य देवों के साथ और उनके लिये 'स्वाहाकृति' के साथ हविष् का विधान भी मिलता है । अतः सोमयाग का उपर्युक्त प्रसंग मरुतों के क्षीण होने महत्व का ही परिचायक है ।

ऋक्संहिता में मरुतों के लिये 'क्रीळाः' अथवा 'क्रीळ्यः'[1] (खिलाड़ी) 'सान्तपनाः'[2] (तपाने वाले) तथा 'गृहमेधासः'[3] (-गृह्य यागों को स्वीकार करने वाले) विशेषण प्रयुक्त हुये हैं । ब्राह्मण-ग्रन्थों में 'मरुतः क्रीडिनः', 'मरुतः सान्तपनाः' तथा 'मरुतः गृहमेधिनः' - ये मरुतों के विशिष्ट रूप विशिष्ट काल और हविष् से सम्बद्ध हो गये हैं और इनके निमित्त इष्टियों की भी कल्पना की गयी है । इनके अतिरिक्त 'मरुतः एनोमुचः', 'मरुतः स्वतवसः' मरुतः स्वापयः' मरुतः पश्चात्सदसः' और 'मरुतो भीष्टयः' का भी उल्लेख हुआ है ।

( = खिलाड़ी मरुत्) संभवतः मरुतों के प्रातःकालीन रूप के प्रतिनिधि हैं, क्योंकि इनके लिए उगते हुये सूर्य के साथ सप्त-कपाल-पुरोडाश निवेदित करने का विधान किया गया है ।[4] साकमेध के प्रसंग में क्रीडी मरुतों के लिये 'संसृष्ट' (-सहोत्पन्न) बकरे निवेदित करने का विधान किया गया है ।[5] इससे मरुतों को

---

1. क्रीळाः - ऋ०सं० 1.166.2 क्रीळ्यः - 1.87.3, 78.6, 94.14, 95.9

2. ऋ०सं० 7.59.9

3. ऋ०सं० 7.59.10

4. 'मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति साकं सूर्येणोद्यता' तै०सं० 1.8.4.2
   मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रातःसप्तकपालः पुरोडाशः' - कठकपि० 7.8

5. 'मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः संसृष्टान्' - वा०सं० 24.16, मैत्रा० 3.13.14

समानता द्योतित होती है । मरुतों के क्रीडित्व की व्याख्या तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक आख्यान द्वारा इस प्रकार की गयी है - 'वृत्र को मारकर इन्द्र, यह सोचकर कि वह निशाना चूक गया है, बहुत दूर चला गया, उसने कहा कि (वृत्र मारा गया है) यह कौन जानेगा, मरुत बोले 'हम वर माँगते हैं, हम (वृत्र मर गया या नहीं यह) जान लेंगे, पहली हविष् हमारे लिये निरूपित की जाये', वे (मरुद्‌गण) इस (वृत्र) के ऊपर क्रीडा करने लगे (और इस प्रकार जान गये कि वह मर गया है), यही क्रीडियों (मरुतों) का 'क्रीडित्व' है ।[1] शतपथ-ब्राह्मण में यह आख्यान इस संक्षिप्त रूप में मिलता है - 'वृत्त को मारने के लिये आये हुये इन्द्र के चारों ओर क्रीडी मरुद्‌गण उस (इन्द्र) की प्रशंसा करते हुये क्रीडा करने लगे ।' काठक संहिता मैत्रायिणी-संहिता तथा जैमिनीय-ब्राह्मण[2] में भी इसी प्रकार की व्याख्या की गयी है । काठक संहिता में इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह कही गयी है 'कि इन्द्र आदित्य है और खिलाड़ी मरुद्‌गण उसकी रश्मियाँ हैं ।

मरुतःसान्तपनाः (-तपाने वाले मरुत) संभवतः मरुतों के दोपहर के तपाने वाले उग्र रूप के प्रतीक हैं । इनके लिये दोपहर में 'चरु'[3] (-भात) निवेदित करने का विधान है ।[4] दोपहर में इनका भजन करने का कारण बताते हुये कहा गया है

---

1. इन्द्रो वृत्रं हत्वा परां परावतमगच्छत् । अपाराधमिति मन्यमानः । सो ब्रवीत् । क इदं वदिष्यतीति । ते ब्रुवन् मरुतों वरं वृणामहै । अथ वयं वेदास । अस्मभ्यमेव प्रथमं हविर्निरूप्याता इति । त एनमभ्यक्रीडन् । तत् कीडिनां क्रीडित्वम्' तै०ब्रा० 1.6.7.59

2. 'मरुतो ह वै क्रीडिनोवृत्रं हनिष्यन्तमिन्द्रभागतं तमभितः परिचिक्रीडुर्महयन्तः' श०ब्रा० 2.5.3.20

3. काठ० 36.9, जै०ब्रा० 2.232, मैत्रा० 1.10.16,
असौ वा आदित्य इन्द्रोरश्मयः क्रीडयः' काठक० 36.19

4. ते च परिपक्वास्तन्दुलाः चरुमदवाच्याः' श्रौतपदार्थनिर्वचनम् , पृ० 22, सं० 148.

कि 'मरुतः सान्तपनाः का जो दोपहर में यजन किया जाता है (उसका कारण यह है कि) दोपहर में तपन होती है, इसलिये दोपहर में मरुतः सान्तपनाः का यजन करता है।'[1] साकमेध में सांतपन-मरुतों के लिये 'सवात्य' (-एक माता में उत्पन्न) बकरा निवेदित करने के लिये कहा गया है।[2] इनके 'सांतपन' नाम की व्याख्या तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस आख्यान द्वारा की गयी है - 'उन असुरों ने पराजित होकर द्यावापृथिवी का आश्रय लिया, उन देवों ने सांतपन मरुतों के लिये चरु निवेदित किया (और इसके द्वारा) उन (असुरों को) द्यावापृथिवी में दोनों तरफ से तपा दिया।[3] मैत्रायणी संहिता में इनके सांतपन नाम का कारण इनके द्वारा वृत्र को तपाया जाना बताया गया है।[4] शतपथ ब्राह्मण में भी यही बात यों कही गयी है - 'सांतपन मरुतों ने दोपहर में वृत्र को संतप्त किया, संतप्त हुआ वह हाँफता हुआ लुढ़क पड़ा।'[5] स्पष्ट है कि यह मरुतों (-वायुओं) का दोपहर का झुलसने वाला रूप है।

(-गृह्य यज्ञों द्वारा यजनीय मरुद्गण) दैनिक घरेलू जीवन में मरुतों के महत्त्वपूर्ण स्थान के स्मारक हैं। इनके लिये सायंकाल सब गायों के दूध में पकाये हुये 'चरु' का विधान किया गया है।[6] इससे इनके गायों के रक्षक रूप पर बल दिया गया

---

1. 'मरुद्भ्यः। सान्तपनेभ्यो मध्यंदिने चरुम्' (कठकपि० चरुः) कठकपि० 8.8, शत०ब्रा० 2.5.33.
2. 'मरुद्भ्यः सांतपनेभ्यः सवात्यान्' मैत्रा० 3.13.14, तै०सं० 1.8.4.।
3. 'ते सुराः पराजिता-यन्तः। द्यावापृथिवी उपाश्रयनने। ते देवा मरुद्भ्यः सांतपनेभ्य
4. 'देवा वै वृत्रस्यमर्मनाविन्दंस्तं मरुतः क्षुरपविनाव्ययुः, संवा एनं यदतपंस्तस्मात् सांतपनाः' - मैत्रा० 1.10.14
5. 'मरुतां ह वै सांतपना मध्यन्दिने वृत्रं संतेपुः, स संतप्तो नन्नेव प्राणाम् परिदीर्णः शिश्ये' - शत०ब्रा० 2.5.3.3
6. मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यः सर्वासां दुग्धे (सायंमोदनः) सायं चरुम् - कठकपि० 8.8

प्रतीत होता है । साकमेध में इनके लिये 'वष्किह' ॥-चिरप्रसूत॥ पशुओं का विधान हैं ।[1] काठक-संहिता में मरुतों को 'गृहमेध' - कहा है और इनके सम्बन्ध में यह आख्यान दिया है कि 'अगले दिन वृत्र को मारने की तैयारी में देवों ने भात पकाया और इसका हवन मरुतों के लिये किया, ॥क्योंकि॥ मरुद्गण गृहमेध पशु है ।'[2]

॥-स्वतंत्र-शक्ति वाले मरुत॥ का उल्लेख भी साकमेध के प्रसंग में मिलता है, जहाँ उनके लिये 'अनुसृष्ट' ॥-अनुक्रम से एक के बाद एक उत्पन्न॥ पशु निवेदित करने का विधान किया गया है ।[3] मरुतः स्वतवसः को भयङ्कर बताया गया है और कहा गया है कि इनका यजन करने से भैषज्य ॥स्वास्थ्य-प्राप्ति॥ होता है ।[4]

मरुतःएनोमुचः ॥-पाप से मुक्त कराने वाले मरुत॥ के लिये अश्वमेध में मृगा-रेष्टियों के अन्तर्गत सप्त कपाल पुरोडाश निवेदित करने का विधान मिलता है ।[5]

मरुतः स्वापयः ॥-प्रियजन मरुत॥ के बारे में ऐतरेय ब्राह्मण में एक आख्यान दिया गया है कि जब इन्द्र ने वृत्र को मारता तो देवों ने समझा कि वह मार न

---

1. 'मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्योवष्किहान्' - मैत्रा० 3. 13. 14, वा०सं० 24. 16
2. ते श्वो वृत्रं हनिष्यन्त उपावसंस्ते ब्रुवन् कस्य वाहेदंश्वो भरिता कस्य वा पचतेति त एतमोदनमपचन्त' ........ ते ब्रुवन् माहुंत मशिष्मेति ते मरुद्भ्यमे गृहमेधेभ्यो जुहवुः पशवो वै गृहमेधास्तेभ्य एव तद्जुहवुः' - काठ० 36.9
3. 'मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्यो नुसृष्टान्' - मैत्रा० 3. 13. 14, वा०सं० 24. 16
4. 'यन्मरुतः स्वतवसो यजति, घोरा वै मरुतः स्वतवसो, भैषज्यमेव तत्कुरुते - कौषी० ब्रा० 5. 2, 'स्वतवसोयजति, घोरा वै मरुतः स्वतवसः' गोपथ० 1. 20
5. 'मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्यो नुसृष्टान्' - मैत्रा० 2. 13. 14, वा०सं० 24. 16, 'मरुद्भ्य एनोमुग्भ्यः सप्तकपालाम्' - तै०सं० 7. 5. 22. 11, मैत्रा० ॥पुरोडाशं सप्तकपालम् 2. 15. 11, काठ०अश्व० 5. 19

सका और वे भाग गये, केवल मरुत् जो उसके प्रियजन ॥स्वापय:॥ हैं न भागे, मरुत: स्वापय: प्राण हैं, प्राणों ने इन्द्र को न छोड़ा ।'[1] इस प्रकार मरुत: स्वापय: इन्द्र के प्राण सदृश प्रियजन हैं ।

मरुत: अभीष्टय: ॥इच्छित वस्तु देने वाले मरुत्॥ का यजन विविध पशुओं द्वारा किया जाना चाहिये, ऐसा जैमिनीय ब्राह्मण में उल्लेख हुआ है ।[2]

मरुतों के ये विविध रूप याज्ञिक कर्मकाण्ड में मरुतों के विस्तृत प्रभाव के द्योतक हैं ।

कृष्ण-यजुर्वेद की संहिताओं के ब्राह्मण-सदृश भागों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मरुतों के जिस विशिष्ट गुण का बार-बार उल्लेख हुआ है, वह है उनकी ओजस्विता और इसके कारण उनकी त्वरित गति । मरुतों के ओजस् की प्रशंसा मुक्तकंठ से की गयी है । राजसूय के प्रसंग में राज्य के रथ को बन्धन मुक्त करते हुये जो हविष दी जाती है, वह मरुतों के ओजस् के लिये स्वाहाकृति के साथ दी जाती है ।[4] शतपथ ब्राह्मण में रथा की मरुतों से समानता इस प्रकार प्रदर्शित की गयी है - 'रथ में

---

1. 'इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवासं नास्तृतेति मन्यमाना: सर्वा देवता अजहु: । तं मरुत इव स्वापयो नाजहु: । प्राणावै मरुत: स्वापय: । प्राणा ह वैनतन्नाजहु: - ऐ0ब्रा0 12.5

2. अथयन् 'मरुद्भ्यो भीष्टिभ्य इति यथा तं कामं स्वाभ्याप्तमभ्यश्नुवीततत्कामो यजेत । तान् एतान् पशूनालभेत । दीक्षिष्यमाण एकमुपवसथएकं प्रसूत एकमनू-वन्ध्यायामेकमुदवसनीयामामेकमेवमेतान् पशूनालभेत ।' जै0ब्रा0 2.177॥पृ0 236॥

3. 'मरुतामोजसे स्वाहा' तै0सं0 1.18.15.2, का0ठ0 14.8, मैत्रा0 2.6.12, वा0सं0 10.23, शत0 5.4.3.17

चार घोड़े हैं, पाँचवाँ रथ [का ढाँचा] और योद्धा तथा सारथी को मिलाकर सात होते हैं और मरुतों के साथ-साथ के गण हैं, इससे [मरुतों के ओजस् की प्रशंसा से] सम्पूर्ण रथ को प्रसन्न करता है, मरुद्गण प्रजाएँ हैं, इससे प्रजाओं के ऊपर इसका राज्य प्रतिष्ठित होता है ।[1]

इसी ओजस्विता के कारण वाजपेय में रथ की दौड़ में विजय के लिए मरुतों की प्रेरणा आवश्यक मानी गयी है और घोड़ों को सम्बोधित कर कहा गया है - 'वाजियों, वाज [-वाजी] की ओर दौड़ों, मरुतों की प्रेरणा से जीतो ।'[2] राजसूय में भी रथ को जोतते हुए राजा कहाता है - 'मैं मरुतों की प्रेरणा से विजयी होऊँ ।[3] राज्याभिषेक के समय राजा के अभिषेचन के लिये प्रस्तुत जल को सम्बोधित कर कहा जाता है - 'जलों, तुम मरुतों का ओजस् हो ।[4] इन ओजस्वी जलों से अभिषिक्त राजा ओजस्वी हो, ऐसी कामना इस क्रिया में अभिप्रेत है । राजा का अभिषेक करते हुये मन्त्र पढ़ा जाता है - 'तुझे सोम की द्युति से, अग्नि के तेजस् से, सूर्य के वर्चस् से, इन्द्र के इन्द्रिय-बल] से, मित्र-वरुण के वीर्य से, मरुतों के ओजस् से अभिषिक्त करता हूँ ।[5] कहीं कहीं ओजस् के अतिरिक्त मरुतों के बल की भी प्रशंसा

---

1. चत्वारो श्वा रथः पंचमो दो सव्यष्टसारथी ते सप्त सप्त-सप्त वै मारुतो गणः, सर्वमेवेतेन रथं प्रीणातिः, विशो वै मरुतो, विशमेवास्येतद् राज्यमभिविमुच्यते ।' शत०ब्रा० 5.4.3.17
2. वाजिनो वाजं धावत, मरुतां प्रसवे [वा०सं०, शत०प्रसवेन] जय [तै०सं० जयत] - तै०सं० 1.7.8.1, मैत्रा० 4.4.5, काठ० 14.8, शत०ब्रा० 5.4.3.8
3. 'मरुतां प्रसवे जेषम्' - तै०सं० 1.8.15.1, तै०ब्रा० 1.7.9.3
4. 'मरुतामोजः स्थ' - तै०सं० 1.8.11.1, मैत्रा० 2.6.7, काठ० 14.7, तै०ब्रा० 1.7.5
5. 'सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषि चाम्यग्नेस्तेजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रसयेद्रियेण मित्रावरुणयोवीर्येण मरुतामोजसो तै०सं० 1.8.14.2

की गयी है[1] और कहीं कहीं उन्हें 'वीर्य' अथवा ओजोवीर्य बताया गया है ।[2]

इसी ओजस्विता के कारण मरुद्गण देव-सेनाओं का नेतृत्व करते हैं ।[3] और देवों का अपराजित आयतन कहे गये हैं ।[4]

## मरुद्गण वर्षा सम्बन्ध

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि वैदिक संहिताओं में मरुद्गण वर्षा से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहे हैं और पानी बरसना इनका प्रमुख कार्य रहा है । वेद के ब्राह्मण-भाग में भी मरुतों के इस कार्य की पर्याप्त चर्चा हुयी है, यहाँ तक कि वर्षा पर उनका अधिकार बताया गया है ।[5] इसीलिये मरुतों से प्रार्थना की गयी है कि वे बादल को बरसायें ।[6] वर्षा के लिये 'कारीवीष्टि' नामक एक याग किया जाता है, जिसमें काला वस्त्र धारण किया जाता है, इस काले वस्त्र को सम्बोधित कर कहा जाता है - '[हे वस्त्र] तुम मरुतों के हो, मरुतों के ओजस् हो,

---

1. 'मरुतां बलाय स्वाहा' - मैत्रा० 2.6.12 आदि ।
2. 'वीर्यं वै मरुत:' - काठ० 28.3, 'मरुत ओजोवीर्यम्' जै०ब्रा० 2.209
3. 'देवसेनामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रे' ऋ०सं० 10.103.8, अथर्व०सं० 14.13.9, तै०सं० 4.6.4.3, मैत्रा० 2.10.4, काठ० 18.5, वा०सं० 18.40
4. मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम्' - तै०ब्रा० 1.4.6.2
5. 'मरुतो वै वर्षस्येशते - काठ० 12.10, शत०ब्रा० 1.2.5
6. मरुतो वर्षयन्तु - तै०सं० 3.5.5.2

जल धारा को भेद दो (भेद कर हमारी ओर बहा दो)'[1] दर्शपूर्ण मास याग में कुशाओं के गुच्छे (जिसे 'प्रस्तर' कहते हैं) से एक तिनका तोड़कर पूर्व की ओर फेंकते हुये कहा जाता है - 'तुम मरुतों की चितकबरी घोड़ियाँ हो, द्युलोक को जाओ, हमारे लिये वृष्टि लाओ ।'[2] वृष्टि प्रदान करने के कारण संभवतः मरुतों को जल अथवा जल में आश्रित कहा गया है ।[3]

मरुतों को अनेक स्थलों पर 'पशु' कहा गया है ।[4] इसका कारण संभवतः यह है कि मरुतों का पशुओं पर अधिकार है । कहा गया है कि मरुतों ने पशुओं को जीता ।[5] मरुतों के लिये निवेदित सप्तकपाल पुरोडाश पशुओं को उत्पन्न करने वाला बताया गया है ।[6] जैसे रुद्र पशुपति हैं, इसी प्रकार रुद्र-पुत्र मरुतों का पशुओं पर अधिकार और फलतः उनका पशुओं से समीकरण संभाव्य है । मरुत्-पुत्र द्युतान का भी पशुओं से समीकरण किया गया है ।[7]

---

1. मरुतो वर्षयन्तु - तै०सं० 3.5.5.2
   मरुतामसि मरुतामोजो पांधारां भिन्द्धि' - तै०सं० 4.7.1, का०० 11.9
2. 'मरुतां पृषतयः स्थ दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमेरय' तै०सं० 1.1.13, तै०ब्रा० 3.3.9.4 । मरुतां पृषती वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह (कठ०कपि० वृष्टिमेरय) कठकपि० 1.12, का०० 1.12, वा०सं० 2.16, शत०ब्रा० 1.8.3.15
3. 'आपो वै मरुतः' - ऐ०ब्रा० 30.4 अप्सुवैमरुतःश्रिताः कोषी०ब्रा० 5.4,
4. 'पशवो मरुतः', का०० 21.10, पशवो वै मरुतः' का०० 36.1.1, 'पशवोवैमरुतो गृहमेधाः' का०० 36.9, पशवो मारुताः, मैत्रा० 3.3.10
5. 'मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान् पशूनुदजयंस्तानुज्जेषम्' - वा०सं० 9.32
6. 'प्रजननो वा एष पशूनां यन्मारुतः सप्तकपालो भवति'-मैत्रा० 1.10.6
7. 'पशवो वै द्युतानो मारुतः' - कठकपि० 48.14

जैमिनीय-ब्राह्मण में पशुओं का प्रजा से समीकरण किया गया है ।[1] इससे मरुतों का पशुओं से समीकरण और भी स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि मरुद्गण (देवी की) प्रजा हैं ।

शतपथ-ब्राह्मण में एक स्थान पर वैश्वानर अग्नि को सूर्य तथा मरुत (गणों या पुराडाशों ?) को उसकी रश्मियों से समीकृत किया गया है ।[2] और यजुर्वेद-संहिता में इन सात रश्मियों के प्रतीक मरुतों के ये नाम दिये गये हैं - शुक्रज्योति, चित्रज्योति, सत्यज्योति, ज्योतिष्मान् , शुक्र, ऋतपा, तथा अत्यंहा ।[3]

काठक-संहिता में एक स्थान पर इन्द्र को सूर्य और मरुत: क्रीडिन: को उसकी रश्मियाँ बताया गया है ।[4]

## मरुद्गण अश्वत्थ-वृक्ष सम्बन्ध

ब्राह्मण-ग्रन्थों में मरुतों के अश्वत्थ-वृक्ष पर स्थित होने की भी चर्चा हुयी है । माध्यन्दिन-सवन में मरुतों के लिये जो ऋतु ग्रह होते हैं, वे अश्वत्थ वृक्ष की के बने होते थे । इस प्रसङ्ग में शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है कि जब इन्द्र वृत्र को

---

1. 'प्रजावै पशव: ' - जै०ब्रा० 2.175 (पृ० 235)

2. शत०ब्रा० 9.3.1.25

3. तै०सं० 1.8.13.1, 6.5.5, मैत्रा० 2.6.6 आदि,
   काठ० 18.6, व वा०सं० 18.80; शत०ब्रा० 9.3.1.26

4. देखिये ऊपर पृ०सं० 66, टिप्पणी 3.

मारने चला तो मरुद्गण अश्वत्थ-वृक्ष पर जा बैठे, अतः उनके गृह अश्वत्थ के बने होने चाहिये, ऐसा कहा गया है, यद्यपि वे अब काश्मर्य के होते हैं ।[1]

वाजपेय में जब यजमान यूप पर चढ़ जाता है, तब उसकी ओर लवण-भरी पोटलियाँ फेंकी जाती हैं । ये पोटलियाँ अश्वत्थ के पत्तों की होती हैं । इसका कारण बताते हुये कहा गया है कि वृत्र को मारने के समय जब इन्द्र ने मरुतों को पुकारा तो वे अश्वत्थ पर चढ़े हुये थे ।[2]

राजसूय में राजा के अभिषेक के समय वैश्य राजा का अश्वत्थ की लकड़ी से बने पात्र से अभिषेक करता है । इस प्रसंग में भी कहा गया है कि उस पिछले अवसर पर इन्द्र में अश्वत्थ पर बैठे मरुतों को पुकारा था, इन्द्र राजा हैं और मरुद्गण वैश्य ।[3]

## मरुद्गण गर्भ सम्बन्ध

अग्नि-चयन के प्रसंग में कहा गया है कि गर्भ का आधिपत्य मरुतों का है ।[4] सोम-योग के अन्त में 'उदवसानीया इष्टि' के बाद एक वशा (बन्ध्या गो) के

---

1. वृत्रमजिघांसतेन व्यजिगीषत, मरुतो वा इत्यश्वत्थे पक्रम्य तस्थुः'-शत०ब्रा० 4.3.3.6

2. 'अथेनमूषपुरेवृनुदस्यन्ति ......अक्षह्येषु पलाशेषूपनद्धा भवन्ति । स यदेवादो श्वेत्थे तिष्ठत इन्द्रो मरुत उपामन्धयत तस्मादश्व त्थेषूपनद्धाभवन्ति । 'शत०ब्रा०5.2.1.17

3. शत०ब्रा० 5.3.5.14

4. 'आदित्यानां भागो सि, मरुतामाधिपत्यमित्यादित्येभ्यो भागं कृत्वा मरुद्भ्य आदिपत्यमकरोद् गर्भा स्पृता: ।' शत०ब्रा० 8.4.2.8
   आदित्यानां भागो सि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृता: '-कठकपि० 26.

आलभन की व्यवस्था है, परन्तु यदि यह 'गौ' गर्भवती हो तो यह गर्भ मरुतों को 'स्वाहाकृति' के बिना ही निवेदित कर दिया जाता है और इस प्रसङ्ग में कहा गया है कि इस प्रकार इस गर्भ को मरुतों में स्थापित कर दिया जाता है ।[1]

राजसूय के अन्त में प्रयुजां हवींषि' के अन्तर्गत भी मरुतों के लिये 'विचित्र गर्भा पृषती' के आलभन का विधान है और इस प्रसङ्ग में कहा गया है कि 'मरुत् विशः (प्रजा) हैं, इस प्रकार वह इसको मरुतों का गर्भ बनाता है ।'[2]

उपर्युक्त प्रसङ्गों से प्रतीत होता है कि मरुद्गणों का गर्भ के साथ, संभवतः इसके रक्षक के रूप में, घनिष्ठ सम्बन्ध कल्पित किया गया था ।

मरुतों का अन्तरिक्ष-लोक बताया गया है ।[3] परन्तु इनकी दिशा के सम्बन्ध में वैमत्य दिखायी देता है । एक स्थान पर इनकी दिशा प्रतीची बताई

---

1. 'वशायालभन्ते (शत० 4.5.2.1) ..... एतं सोष्णीषं गर्भमादते तं प्राङ्० तिष्ठन्जुहोति मारुत्यचा ..... न स्वाहाकरोत्यहुतादो वै देवानां मरुतों विड्हुतमिवैतद् यदस्वाहाकृतं देवानां वैमरुतस्तदेनं मरुत्स्वेव प्रतिष्ठापयति' - शत०ब्रा० 4.5.2.16.

2. 'अथ पृषतीं विचित्रगर्भां' मरुद्भ्य आलभते ..... विशो वै मरुतो विशामेवैनमेतद्-गर्भं करोति' - शत० 5.5.2.9-10)

3. 'मरुतो ह वै देवविशो न्तरिक्षभाजना:' - ऐ०ब्रा० 1.10, कौषी०ब्रा० 7.8;

'अन्तरिक्षलोको वै मारुतो मरुतां गण:' - शत०ब्रा० 9.4.2.6

गयी है ।[1] परन्तु अनेक स्थलों पर इनकी दिशा उदीची[2] अथवा उत्तर[3] बताई गयी है । शतपथ ब्राह्मण में एक स्थल पर मरुतों को दक्षिण दिशा में रखा गया है क्योंकि दक्षिण से ही मरुतों ने प्रजापति की सृष्टि का विनाश करने की सोची ।[4] स्पष्ट है कि मरुतों के घोर, विनाशकारी रूप को देखते हुये यह कल्पना की गयी है ।

-------::0::-------

---

1. प्रतीची दिड्मरुतोदेवता' - मैत्रा० 1.5.4
2. 'स्वराडसि उदीची दिड्० मरुतस्ते देवा अधिपतय:' - तै०सं० 4.4.2.2, मैत्रा० 2.8.9, काठ० 18.8, कठकपि० 26.7, वा०सं० 15.13; शत०ब्रा० 8.6.1.8.
3. 'मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो देवेभ्य उत्तरा सद्भ्य: स्वाहा' । वा०सं० 9.35
4. 'मारुती दक्षिणा जामिताये ..........
   दक्षिणातो मरुत: प्रजा अजिघांसन्' शत०ब्रा० 5.2.10.1, श० 5.2.4.5

## वैदिक कर्मकाण्ड में मरुद्गण का वैशिष्ट्य

किसी भी समाज के देवशास्त्र का व्यावहारिक पक्ष उसके कर्मकाण्ड में प्रतिफलित होता है, क्योंकि कर्मकाण्ड द्वारा ही देवता के साथ तादात्म्य स्थापित किया जाता है अथवा देवता की प्रसन्नता प्राप्त कर अथवा देवता के रोष अपनोदन कर अभिलषित वस्तु प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। अतः कर्मकाण्ड में देवता-विशेष की स्थिति, उसके लिये निवेदित हविष् तथा उससे प्रार्थित वस्तुयें, उस देवता की स्वरूप-कल्पना को बहुत कुछ स्पष्ट कर देते हैं। इसलिये वैदिक देवशास्त्र में मरुतों के स्वरूप के अवबोध के लिये वैदिक कर्मकाण्ड में उनकी स्थिति का आकलन करना आवश्यक है।

वैदिक कर्मकाण्ड 'यज्ञ' के रूप में विकसित हुआ। 'यज्ञ' की छोटी-से-छोटी इकाई है 'याग', जो किसी देवता के उद्देश्य से किसी द्रव्य का त्याग करने की क्रिया का नाम है।[1] ये याग मुख्यतः दो प्रकार के हैं - श्रौत और गृह्य। घर के बाहर यज्ञशाला बनाकर इसमें श्रुति के विधान के अनुसार गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि (और कहीं-कहीं सभ्य और आवसथ्य ये दो और भी अग्नियाँ) इन तीन अथवा पाँच) अग्नियों को समिद्ध कर उनमें जो याग सम्पन्न होते हैं, वे श्रौत-याग हैं और गृह्य-अग्नि (घर में समिद्ध अग्नि) में किये जाने वाले संस्कार-सम्बन्धी कहा अथवा शान्ति पुष्टि आदि कर्म-सम्बन्धी याग गृह्य-याग हैं। इन श्रौत तथा गृह्य यागों को तीन यज्ञ-संस्थाओं के रूप में विभक्त किया गया है -

---

1. 'देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागो यागः

1. पाकयज्ञ संस्था ;
2. हविर्यज्ञ संस्था ; और
3. सोमसंस्था ।[1]

इनमें से पाकयज्ञ संस्था गृह्य यागों का समूह है जिनका विवरण गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में मिलता है । हविर्यज्ञ संस्था और सोम-संस्था श्रौत यागों के अन्तर्गत हैं और इनका विवरण पूर्णतः श्रौत सूत्रों में मिलता है, यद्यपि संहिताओं में इनके संकेत तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में इनके विवेचन प्राप्य हैं । यहाँ पहले श्रौतयागों और फिर गृह्य-यागों में मरुतों की स्थिति का विवरण और विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

उपर्युक्त हविर्यज्ञ तथा सोम-यज्ञ संस्थाओं में अन्तर्भूत यागों को विवेचन की सुविधा की दृष्टि से पाँच प्रकारों में बाँटा गया है - 1. होम, 2. इष्टि, 3. चातुर्मास्य, 4. पशु-याग तथा 5. सोम-याग ।[2] ब्राह्मण-ग्रन्थों में बार-बार कहा गया है कि यज्ञ पाँच प्रकार का है ।[3] इस कथन में 'यज्ञ' से केवल श्रौतयज्ञ ही अभिहित प्रतीत होते हैं और उनका उपर्युक्त पंचविध विभाग संकेतित जान पड़ता है ।

---

1. 'औपासन होमः वैश्वदेवम् , पार्वणम् , अष्टका, मासिश्राद्धम् , श्रवणा, शूलगव इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः, अग्निहोत्रम् , दर्शपूर्णमासो, आग्रयणम् , चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः, अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयः, अतिरात्रः, आप्तोर्याम इति सप्तसोमसंस्थाः' - गौतमधर्मसूत्र, 8.18

2. स एष यज्ञः पंचविधो ग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासो नातुर्मास्यानि पशुः सोमः' ऐ०ब्रा०

3. पाङ्क्तो वै यज्ञः - ऐ०ब्रा० 1.6

'होम' और 'इष्टि' में दूध, घी, (दही), पुरोडाश आदि हविष् द्रव्य होते हैं। चातुर्मास्य-यागों में हविष् अथवा पशु अथवा सोम का द्रव्य के रूप में विकल्प है। पशु याग में तो स्पष्टतः पशु ही विशिष्ट द्रव्य है और सोम-याग में सोम।

यद्यपि इन सभी पंचविध कर्मकाण्डों में द्रव्य-त्याग तो समान रूप से विद्यमान है और इसलिये सभी याग के भेद हैं, परन्तु 'होम' और 'इष्टि' में त्याग की प्रक्रिया में भेद है।[1] होम में आहुति 'स्वाहा' उच्चारणपूर्वक बैठकर दी जाती है, जबकि याग में 'वौषट्' उच्चारणपूर्वक खड़े होकर। याज्ञिक वाङ्मय में 'होम' के लिये 'जुहोति' तथा याग के निर्देशार्थ यजति' क्रियापद का प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त पाँच प्रकार के श्रोत-कर्मों के शास्त्रीय विवेचन की सुविधा की दृष्टि से इनमें 'प्रकृति' और 'विकृति' ये दो भेद किये गये हैं। जिनमें समस्त आधारभूत अङ्ग समाविष्ट हों वह 'प्रकृति' है और जो 'प्रकृति' को आधार मानकर कतिपय स्वकीय विशिष्टताओं के साथ सम्पादित हो वह 'विकृति'[3] है। इस प्रकार 'अग्नि-होत्र' होमों की प्रकृति है[4], 'दर्शपूर्णमास' इष्टियों और अग्नीषोमीथ पशुयाग की प्रकृति है[5] 'दर्शपूर्णमास' इष्टियों और अग्नीषोमीय पशु याग की प्रकृति है और 'अग्निष्टोम' एकाह आदि सोमयोगों की प्रकृति है।[6]

---

1. होम और इष्टि में भेद का विस्तृत विवेचन जै०सू० 4.2. पर शाबर-भाष्य में किया गया है।
2. 'यत्रसमग्राङ्गोपदेशः सा प्रकृतिः' - अर्थसंग्रह' लोगाक्षि भास्कर कृत, पृ० 29
3. 'यत्र न सर्वाङ्गोपदेशः सा विकृतिः' - वही, पृ० 30.
4. अग्निहोत्रः होमानां प्रकृतिः आप० श्रौ० सू०
5. 'दर्शपूर्णमासो इष्टीनां प्रकृतिः, अग्नीषोमीयस्यचपशोः' वही, 24/3/32/33
6. 'अग्निष्टोम एकाहानां प्रकृतिः', वही, 24/4/3

पुन: यज्ञीय कर्मकाण्ड को नित्य, नैमित्तिक और काम्य, इन तीन भागों में बाँटा जाता है । जो यावज्जीवन दिनचर्या के आवश्यक अङ्ग के रूप में विहित है और जिसके न करने पर प्रत्यवाय उत्पन्न होता है, वह नित्य-कर्म है, जैसे, अग्नि-होत्र । किसी विशेष स्थिति के उत्पन्न होने पर जो कर्म विहित हैं, वे नैमित्तिक हैं, जैसे प्रायश्चित-कर्म और जो कामना-विशेष की प्राप्ति के लिये विहित हैं, वे काम्य-कर्म हैं, जिनमें अनेक विध इष्टियाँ आदि समाहित हैं ।

आथर्वणिक कर्मकाण्ड में रोगों की शान्ति के लिये 'भैषज्यानि' दीर्घायु के लिये 'आयुष्मानि', समृद्धि के लिये 'पौष्टिकानि', शत्रुओं आदि के विनाश के लिये 'अभिचारिकाणि', स्त्रियों के वशीकरणादि के लिये 'स्त्रीकर्माणि', सभा में सौमनस्य प्राप्ति के लिये 'सामनस्यानि' राज-कार्य के लिये राजकर्माणि' और प्रत्यवायों की शान्ति के लिये 'प्रायश्चितानि' मुख्य हैं । 'गृह्य-कर्मकाण्ड में षोडश संस्कारों के अतिरिक्त औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण-श्राद्ध, अष्टका, मासि श्राद्ध, श्रवणा, शूल ये सात पाक-यज्ञ मुख्यत: आते हैं ।

इस संक्षिप्त सामान्य परिचय के बाद अब सर्वप्रथम श्रौतकर्मकाण्ड में मरुतों की स्थिति का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अग्न्याधेय[1] गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण सभ्य एवम् आवसथ्य संज्ञक यज्ञा-

---

1. अग्न्याधेय का वर्णन और विवेचन वैदिक वाङ्मय में निम्नलिखित स्थलों पर किया गया है, काठ० सं० 7/10/8, 103-5, 10, मै०सं० 1/6, 1/7, शा०ब्रा० 1/1-5, तै०ब्रा० 1/1/2-10, शत०ब्रा० 2/1 तथा 2/2/2 आदि आ०श्रौ० 2/1/9 आदि शा०श्रौ० 2/1 आदि, बौ०श्रौ० 2/12-20, आप०श्रौ० 5/1 आदि, कात्या०श्रौ० 4/7-10.

ग्नियों के आधान की विधि है। यह श्रौतकर्मकाण्ड की अवश्य सम्पाद्यमान प्रारम्भिक विधि है जिसके बिना किसी को भी श्रौत यज्ञ-सम्पादन का अधिकार नहीं है। इसमें मरुतों के लिए कुछ भी नहीं विहित है।

आहिताग्नि के लिए सायं प्रातः अग्निहोत्र[1]-सम्पादन आवश्यक है। यह एक नित्य कर्म है जिसे आजीवन प्रतिदिन करना चाहिए। सामान्यतः इसे यज्ञकर्ता को स्वयं करना चाहिए किन्तु रोगग्रस्त होने अथवा घर में उपस्थित न रहने पर अध्वर्यु, उसका पुत्र अथवा कोई निकट सम्बन्धी भी अग्निहोत्र का अधिकारी निर्दिष्ट किया गया है। इसमें मरुतों के लिए आहुति का विधान नहीं किया गया है।

दर्शपूर्णमासेष्टि[2] सभी इष्टियों की प्रकृति है। यज्ञ-कर्ता यज्ञाग्नियों की स्थापना करके प्रतिदिन अग्निहोत्र करता हुआ आने वाली पूर्णिमा को पूर्णमासेष्टि सम्पादित करता है। तदनन्तर अमावस्या को दर्शेष्टि करता है।

इस दृष्टि के सम्पादन में दो दिन लगते हैं। पूर्णिमा एवम् अमावस्या को

---

1. अग्निहोत्र सम्बन्धी श्रौत सामग्री के लिये द्रष्टव्य, तै०सं० 1/5/5 आदि, का०ठ० सं० 6/9 आदि, कपि०सं० 4/8, मै०सं० 1/5/1 आदि, ऐ०ब्रा० 5/26/31, शां०ब्रा० 2/1-9, शत०ब्रा० 2/2/3/1 आदि, आ०श्रौ० 2/2-5, शां०श्रौ० 2/7-10, बौ०श्रौ० 3/4-9, आप०श्रौ० 6/1 आदि, कात्या०श्रौ० ।

2. दर्शपूर्णमास के लिये द्रष्टव्य-तै०सं० 1/6, 1/7 और 2/5/ 2/6, का०ठ०सं० 5/1 मै०सं० 1/4, ऐ०ब्रा० 7/11, शां०ब्रा० 3/1-9, शत०ब्रा०कांड 1, आ० 1/1, शां०श्रौ० 1/4/15, बौ०श्रौ० अध्याय 1, आप०श्रौ० अध्याय, 2-4; कात्या० श्रौ० ।

प्रारम्भिक कृत्य होते हैं । इस दिन को उपवसथ कहते हैं दूसरे दिन अर्थात् प्रतिपदा को मुख्य याग सम्पादित होता है । इसमें ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और आग्नीध्र चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है । इसमें मरुतों के लिए कुछ भी विधान नहीं किया गया है ।

यज्ञ-कर्ता अमावस्या के दिन अर्थात् दर्शेष्टि के उपवसथ को अपराह्ण में पिण्ड-पितृयज्ञ का सम्पादन करता है । इसमें भी मरुतों के लिए कुछ भी विधान नहीं है ।

आग्रयणेष्टि[1] दर्शपूर्णमासेष्टि के आधार पर सम्पाद्यमान एक नवान्न इष्टि है । यज्ञ-कर्ता नवान्नों के द्वारा आग्रयणेष्टि सम्पन्न करने के अनन्तर ही उन्हें ग्रहण कर सकता है । यह इष्टि अमावस्या अथवा पूर्णिमा को सम्पन्न की जा सकती है । वर्षा ऋतु की इष्टि के सोम तथा शरद् एवम् वसन्त ऋतु की इष्टि के इन्द्राग्नी, विश्वेदेव तथा द्यावापृथिवी देवता हैं । शाङ्खायन श्रौतसूत्र सोमदेवता के लिए ग्रीष्म ऋतु में भी 'वेणुयव' से सम्पाद्यमान इष्टि का विधान करता है । इन इष्टियों में मरुतों के लिये किंचिदपि विहित नहीं है ।

## काम्य इष्टियाँ

यद्यपि प्रकृत 'दर्शपूर्णमास' इष्टि में मरुतों का कोई स्थान नहीं है, परन्तु इसकी विकृति-रूप अनेक काम्य इष्टियों में या तो प्रमुख देवता के रूप में अथवा अन्य

---

1. आग्रयणेष्टि के लिये द्रष्टव्य - का०सं० 12.6; मै०सं० 4.3.2; ऐ०ब्रा० 7.9, शां०ब्रा० 4.12-14; तै०ब्रा० 2.4.8; शत०ब्रा० 2.4.3; गो०ब्रा० 2.1.17; आ०श्रौ० 2.9; शां०श्रौ० 3.12; बौ०श्रौ० 3.12; आप० 6.31; कात्या०श्रौ० 4.5.2

देवों के साथ मरुतों को स्थान प्राप्त हुआ है । इन इष्टियों का विवरण यहाँ प्रस्तुत है ।

1. वृष्टि की कामना से इस इष्टि का विधान है । इसमें मरुतों को सप्त-काल पुरोडाश निवेदित किया जाता है ।[1] इसके अतिरिक्त 'वात' के आठ नामों के लिये आठ होम, 'अग्नि धामच्छद' के लिये अष्टाकपाल पुरोडाश तथा सूर्य के लिए एक कपाल पुरोडाश निवेदित किया जाता है ।

इस इष्टि में यजमान काले वस्त्र धारण करता है । उसका अधोवस्त्र काले रंग का होता है और उत्तरीय की किनारियाँ भी काली होती हैं । आहवनीय के सम्मुख एक काला घोड़ा काले रस्से (संदान) से बाँध कर खड़ा किया जाता है और वेदी के अन्दर एक कृष्णाजिन बिछा कर उस पर 'करीर' (बाँस के अंकुर, या करील के फल) का सत्तू और काला मधु रखा जाता है । उत्कर के पास एक घड़ा रखा जाता है । उत्कर के सामने तीन छतों वाला शकट इस प्रकार खड़ा किया जाता है कि उसकी ईषा पूर्वाभिमुख हो और उस पर एक काली भेड़ बाँध दी जाती है ।

यजमान काले वस्त्र इस मन्त्र के उच्चारण के साथ धारण करता है - 'मरुता-मसि मरुतायोजो पां धारां भिन्धि'[2] फिर वह निम्नलिखित मन्त्र से पछुवा हवा

---

1. कारीरीष्टि का विवरण निम्नस्थलों पर मिलता है - तै0सं0 2/4/7-10, का0सं0 11/9/10, मै0सं0 2/4/7-8, बौ0श्रौ0 13/37-40; आप0श्रौ0 19/25/16-27, मानव श्रौ0 5/2/6, आश्व0श्रौ0 2/13/1-7.

2. तै0सं0 2/4/7/1 आदि ।

को पीछे ढकेलता है - 'रमयत मरुत: श्येनमायिन: मनोजवसं वृषणं सुवृष्टिम् । येन शर्ध उग्रमवसृष्टमेति तदश्विना परिधन्तं स्वस्ति ॥'[1] (मरुतों ! मन के समान क्षिप्र-गति शक्तिशाली, यशस्वी श्येन जैसे वेगवान को रोक लो, हे अश्विनौ ! जिससे (मरुतों का) उग्र दल छूट चलता है, उसे कल्याण के लिये घेर लो ।') तब घोड़े को बन्धन से मुक्त किया जाता है और यजमान अपने उत्तरीय से उस पर आघात करता है । इसके बाद आठ 'वातनामा' होम आठ मन्त्रों से किये जाते हैं । तब कृष्णा-जिन पर रखे गये करीर के सत्तू' को काले मधु के साथ इस मन्त्र से मिलाता है - 'मान्दा वाशा: शुन्ध्यूरजिरा: । ज्योतिष्मतीस्तमस्वरीरुन्दती: सुफेना: मित्रभृत: क्षत्रभृत: सुराष्ट्रा इह मावत ॥ (प्रसन्न करने वाले, वशवर्ती, पवित्र करने वाले, क्षिप्रगति वाले, ज्योतिष्मान् , अन्धकार-भरे, भिगाने वाले, सुन्दर फेन वाले मित्र-रक्षक, क्षत्र के सहायक सुन्दर राष्ट्र वाले (मरुद्गण !) यहाँ मेरी सहायता करें ।) । इस मधुमिश्रित सत्तू के वह तीन पिण्ड बनाता है और इन्हें शकट के पहले छत पर लटका देता है । कृष्णाजिन के दोनों छोरों को रस्सी से बाँध देता है । यदि इसके बाद एक दिन एक रात तक भी वर्षा न हो तो सत्तू के पिण्डों को दूसरे छत पर और फिर भी वर्षा न होने पर तीसरे छत पर बाँधता है । फिर वर्षा होने पर या न होने पर भी इन तीन पिण्डों को निम्नलिखित तीन मन्त्रों से आह्वनीय में डालता है -- 'दिवा चित् तम: कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । पृथिवीं-यद् व्युन्द-न्ति'[2] (जल-वाहक पर्जन्य के साथ वे (मरुद्गण !) दिन में भी अँधेरा कर देते हैं, जब वे पृथ्वी को जल से सींचते हैं ।), 'आ यं नर: सुदानवो ददाशुषे दिव: कोशम-चुच्यवु: । विपर्जन्या: सृजन्ति रोदसी अनु धन्वनायन्ति वृष्टय:'[3] (सुन्दर दानशील

---

1. तै०सं० 2/4/7/1; काठ०सं० 11/13

2. तै०सं० 2/4/7/2; काठ०सं० 11/9, मै०सं० 2/4/7

3. ऋ०सं० 1/38/9

नर ¸मरूद्‌गण¸ हविष् प्रदान करने वाले के लिये द्युलोक के ¸जल¸ कोश को च्युत् कर देते हैं, द्युलोक अन्तरिक्ष लोक से वृष्टियाँ छूट पड़ती हैं, मरुभूमि में वृष्टियाँ आ पड़ती हैं ।¸ और 'उदीरयथा मरुत: समुद्रतोयूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिण: । न वो दस्रा उप दस्यन्तिधेनव: शुभं यातामनु रथा श्रृवत्सत ।'[1] '¸पुरीष ¸उर्वराशक्ति¸ युक्त मरूतों । तुम समुद्र के वृष्टि को प्रेरित करते हो, तुम वर्षा को बरसाते हो । हे विलक्षण ¸मरुतों¸ तुम्हारी गायें धोखा नहीं देतीं, अपने शुभ गमनों में तुम रथों को जोड़ते हो ।'¸ ।

करीर - पिण्डों के जलने से उठने वाले धुएँ को वह इस मन्त्र से देखता है - 'असितवर्णा हरय: सुपर्णा मिहो वसाना दिवमुत्पतन्तित आववृत्रन्त्सदनानि कृत्वा दित्पृथिवी घृतैर्व्यद्यते ॥'[2] ¸सुन्दर पंखों वाले कृष्ण-वर्ण घोड़े ¸मरूद्‌गण¸, वृष्टि का परिधान धारण किये द्युलोक की ओर उड़ते हैं, ¸वहाँ¸ निवास बनाकर इस ¸पृथिवी¸ की ओर मुड़ते हैं, तब पृथ्वी घृत ¸जल-वृष्टि¸ से गीली हो जाती है।¸

अगले दिन 'धामच्छद अग्नि' के लिये अष्टाकपाल, पुरोडाश, मरुतों के लिये सप्तकपाल पुरोडाश और सूर्य के लिये एककपाल पुरोडाश निवेदित किया जाता है । मरुतों के पुरोडाश की पुरानवाक्या ॠ०सं० 83/6 और याज्या ॠ०सं० 1.64.6 हैं । ये दोनों ॠक् वृष्टि प्रदान करने वाले मरुतों को सम्बोधित करते हैं । इसके बाद स्विष्टकृत् याग से पहले तीन आज्य आहुतियाँ दी जाती हैं, काली भेड़ के ऊपर भी एक घृताहुति दी जाती है 'वर्षाहु' के गुच्छे पर एक घृताहुति देकर उसे आह्वनीय में डाला जाता है और फिर कृष्णाजिन को वेदी में झाड़ा जाता है । यही इस इष्टि की प्रक्रिया है ।

---

1. ॠ०सं० 5/55/5
2. तै०सं० 3/1/11/4, तै०सं० 2/3/3/5, बौ०श्रौ० 13/26, आप०श्रौ० 19/21/19-22

कारीरीष्टि की प्रक्रिया से स्पष्ट है कि मरुतों का वृष्टि से घनिष्ट सम्बन्ध है और वे वृष्टि की कामना पूर्ण करने वाले हैं ।

2. मैत्रायणी संहिता (2/2/8) में वृष्टि की कामना से 'आग्निमारुत' चरु निवेदित करने का विधान मिलता है ।

3. जनता में ब्राह्मणों के प्रति सौमनस्य उत्पन्न करने के लिये ब्रह्मणस्पति के लिए एकादश-कपाल पुरोडाश का विधान किया गया है, परन्तु इसके पुरोनुवाक्या तथा याज्या के लिये मरुत-सम्बन्धी ऋचाओं (ऋ0सं0 8/7/11 तथा ऋ0सं0 1/85/12) का विधान किया गया है ।[1] ऐसा संभवतः इसलिये किया गया है, क्योंकि मरुद्गण देवों के 'विशः' (प्रजायें) हैं ।

4. ब्रह्मवर्चस की कामना के लिये ब्रह्मणस्पति को चरु निवेदित करने का विधान है और इसमें पुरोनुवाक्या तथा याज्या मन्त्र मरुत्-सम्बन्धी रखे गये हैं ।[2]

5. भूति-काम राजन्य के लिये इन्द्र को एकादशकपाल पुरोडाश तथा मरुतों को सप्तकपाल पुरोडाश निवेदित करने के लिए कहा गया है ।[3]

6. मृगारेष्टि[4] - इस इष्टि को 'रहस्येष्टि' तथा 'महापवित्रेष्टि' भी

---

1. तै0सं0 2/3/3/5, बौ0श्रौ0 13/26, आप0श्रौ0 19/21, 19-22
2. मै0सं0 2/2/3, काठ0सं0 11/4
3. मै0सं0 2/1/9, मानव श्रौ0 5/1/7/1-2
4. तै0सं0 7/5/22 में यह इष्टि अश्वमेध के प्रसंग में विहित है । इसके अन्य स्थल हैं - मै0सं0 3/15/11, 3/16/5, काठ0सं0 5/19, 22/15, बौ0श्रौ0 28/1.

भी कहा गया है । हृदयरोग अथवा महापातक को दूर करने के लिये अथवा ऐसे व्यक्ति के लिये, जिस पर कोई अपराध थोपा गया हो या जिस पर देवों, ब्राह्मणों, ऋषियों, पितरों या गायों की अकृपा हो गयी हो, इस इष्टि का विधान किया गया है । इसमें मुख्यत: दस देवों को हविष् प्रदान की जाती है -

1. अंहोमुच अग्नि को अष्टाकपाल पुरोडाश,
2. अंहोमुच इन्द्र को एकादशकपाल पुरोडाश,
3. आगोमुच् मित्रावरुणों को पयस्या,
4. आगोमुच् वायु तथा सवितृ को चरु,
5. आगोमुच् अश्विनों को भूँजे हुये धान,
6. एनोमुच् मरुतों को सप्तकपाल पुरोडाश,
7. एनोमुच् विश्वेदेवा: को द्वादशकपाल पुरोडाश,
8. अनुमति को चरु,
9. वैश्वानर अग्नि को द्वादशकपाल पुरोडाश,
10. अंहोमुच् द्यावापृथिवी को द्विकपाल पुरोडाश ।

7. यदि किसी के घर में यमल पत्र अथवा बछड़े उत्पन्न हों तो इसे अग्नि सहित मरुतों के लिये त्रयोदश कपाल पुरोडाश का निर्वपन करने के लिये कहा गया है ।[1]

---

1. मै0सं0 2/1/8; ऐ0ब्रा0 7/9,
   द्रष्टव्य है कि मै0सं0 में यह पुरोडाश केवल मरुतों के लिए है, जबकि ऐ0ब्रा0 में मरुत्वान् अग्नि के लिये है ।

8. यदि प्रजा राजा को अभिभूत करना चाहे तो प्रजा मरुतों के लिये सप्तकपाल पुरोडाश का निर्वपन करे ।[1] इस इष्टि में सामिधेनी ऋचाओं के लिये 'कयाशुभीय' सूक्त ऋ॰सं॰ 1/165ऋ की पहली ।। ऋचाओं को पढ़ने का विधान है और शेष 4 ऋचाओं में से पहली-दो मुख्य याग की पुरोनुवाक्या और याज्या के रूप में तथाशेष दो स्विष्टकृत् याग की पुरोनुवाक्या तथा याज्या के रूप में विहित हैं ।

9. यदि कोई राजा और प्रजा के बीच झगड़ा कराने का इच्छुक हो तो उसके लिये इन्द्र के लिये एकादशपाल तथा मरुतों के लिये सप्तकपाल पुरोडाश निर्वपित करने का विधान किया गया है ।[2] इसमें इन्द्र के पुरोडाश की पुरोनुवाक्या इन्द्र-सम्बन्धी ऋक् तथा याज्या मरुत-सम्बन्धी ऋक् होती है और इसी प्रकार मरुतों के पुरोडाश की पुरोनुवाक्या मरुत्-सम्बन्धी ऋक् तथा याज्या इन्द्र सम्बन्धी ऋक् होती है । स्पष्ट है कि इस दृष्टि में इन्द्र राजा के प्रतीक और मरुतः प्रजा के प्रतिनिधि हैं ।

---

1. मै॰सं॰ 2/1/8, मानव श्रौ॰ 13/19, सत्याषाढ श्रौ॰ 22/3/14, 15, मानवश्रौ॰ 5/1/7/3-16, आश्व॰श्रौ॰ 2/11/13-27.

2. तै॰सं॰ 2/2/11 , मै॰सं॰ 2/2/6, काठ॰सं॰ 11/3, बौ॰श्रौ॰ 13/20, आप॰ श्रौ॰ 19/20/3-4, सत्याषाढ श्रौ॰ 22/3/20, मानव श्रौ॰ 5/1/10/1-9, आश्व॰श्रौ॰ 2/11/10-12,
शां॰वा॰श्रौ॰ 3/6/1-3.

10. अपने सजातों का सौमनस्य प्राप्त करने के लिये मरुतों को चितकबरी गाय के दूध में चावल पकाकर (प्रैयङ्गवं चरुं पृश्न्याः दुग्धे) निवेदित करने का विधान का०सं० 10-11 में किया गया है ।

11. संज्ञानीष्टि[1] - अपने सजातों का सौमनस्य प्राप्त करने के लिये इस इष्टि का विधान किया गया है । इसमें वसुमत् अग्नि के लिये अष्टाकपाल पुरोडाश, रुद्रवत् सोम के लिये चरु मरुतों सहित इन्द्र के लिये तथा आदित्ययुक्त वरुण के लिये चरु निवेदित करने का विधान है ।

## चातुर्मास्य[2]

चार-चार महीनों वाले होने के कारण चातुर्मास्यों का सम्बन्ध वर्ष की ऋतुओं से है । अग्नि होत्र तथा दर्शपूर्णमास की भाँति ये तीन वर्णों के लिए नित्य भी हैं । पूर्णिमा के दिन सम्पादित होने के कारण ये पर्व कहलाते हैं । इनकी संख्या चार है-

1. वैश्वदेव पर्व
2. वरुणप्रवास पर्व
3. साकमेधपर्व और
4. शुनासीरीय पर्व ।

---

1. तै०सं० 2/2/11, मै०सं० 2/2/6, काठ०सं० 11/3, बौ०श्रौ० 13/20, आप० श्रौ० 19/20/3-4, सत्याषाढश्रौ० 22/3/20, मानवश्रौ० 5/1/10/1-90, आश्व०श्रौ० 2/11/10-12, शांखा०श्रौ० 3/6/1-3.

2. यद्यपि ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा कृष्ण-यजुर्वेद की संहिताओं में चातुर्मास्यों को राजसूय के अङ्ग रूप में रखा गया है, परन्तु श्रौत-सूत्रों में इन्हें सप्त हविः संस्थाओं में स्थान दिया गया है ।

ये याग दर्शपूर्णमासेष्टि की प्रकृति पर किये जाते हैं । इनमें ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और आग्नीध्र चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है । केवल वरुणप्रघास में प्रतिप्रस्थाता नामक पाँचवाँ ऋत्विज् भी होता है ।

1. वैश्वदेवपर्व[1] फाल्गुन अथवा चैत्र की पूर्णिमा को किया जाता है । इस याग के पहले वाले दिन अन्वारम्भणीयेष्टि अथवा वैश्वानर-पार्जन्येष्टि की जाती है । वैश्वानर-पार्जन्येष्टि में वैश्वानर अग्नि और पर्जन्य को क्रमशः द्वादशकपाल पुरोडाश तथा चरु का विधान है ।

इस याग में अधोलिखित आठ मुख्य आहुतियों का विधान है :

1. अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश
2. सोम के लिए चरु
3. सविता के लिए द्वादशकपाल पुरोडाश
4. सरस्वती के लिए चरु
5. पूषा के लिए पिष्टक चरु
6. मरुतों के लिए सप्तकपाल पुरोडाश
7. विश्वेदेव के लिए आमिक्षा तथा
8. द्यावापृथिवी के लिए एक कपाल पुरोडाश ।

इसमें 9 प्रयाज एवम् 9 अनुयाज होते हैं ।

---

1. वैश्वदेवपर्व का विवरण इन स्थलों पर मिलता है - तै०सं० 1/8/2, मै०सं० 1/10/1, 5-9, काठ०सं० 9/4, 36/1-4, कपि०सं० 8/7, तै०ब्रा० 1/4/10, शत०ब्रा० 2/5/1, 2/6/45, शां०ब्रा० 5/1-2, गो०ब्रा० 2/1/19-20, बौ०श्रौ० 5/1/4, भार०श्रौ० 8/1/3, आप०श्रौ० 8/1/4, सत्या०श्रौ० 5/1, 6/8, वैखा०श्रौ० 8/3-8, मानवश्रौ० 1/7/1-2, वारा०श्रौ० 1/7/1, कात्या०श्रौ० 4/5/3, 5/6, लाट्या०श्रौ० 4/12/15-18, द्रा०श्रौ० 12/4/20-24, वै०श्रौ० 8/8-16, 43/30, आश्व०श्रौ० 2/15-16, शां०श्रौ० 3/13.

2. वरुणप्रघास[1] वैश्वदेव पर्व के सम्पादन के चार महीने पश्चात् आषाढ़ अथवा श्रावण की पूर्णिमा को द्वितीय ऋतुयाग वरुणप्रघास किया जाता है। गार्ह-पत्य अथवा आह्वनीय अग्नि के पूर्व की ओर दो वेदियाँ बनायी जाती हैं। इनमें से उत्तरदिशा की वेदी अध्वर्यु के लिए और दक्षिण दिशा की वेदी प्रतिप्रस्थाता के लिए होती है। उत्तरवेदी पर आवश्यक मंत्रों के साथ दक्षिण वेदी पर बिना मंत्रों के ही 'प्रयाज' आदि सहायक कृत्यों का भी सम्पादन किया जाता है। इस पर्व में 9 मुख्य आहुतियाँ होती हैं :-

1. अग्नि के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश
2. सोम के लिए चरु
3. सविता के लिए द्वादश कपाल पुरोडाश
4. सरस्वती के लिए चरु
5. पूषा के लिए पक्व तण्डुलचूर्ण
6. इन्द्राग्नी के लिए एकादशकपाल-पुरोडाश।
7. मरुतों के लिए आमिक्षा
8. वरुण के लिए आमिक्षा और (प्रजा-पति) के लिए एकपाल पुरोडाश।

उपवसथ को अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों ही वत्सापकरण एवम् दर्भ मुष्टि तथा समिधाओं के आनयन के कृत्य सम्पादित करते हैं। सायंतन अग्निहोत्र के अनन्तर अध्वर्यु एवम् प्रतिप्रस्थाता दोनों दूध उबालते हैं और इसे आगामी दिन की आमिक्षा के लिए जमाते हैं।

---

1. वरुणप्रघास के लिये द्रष्टव्य - तै०सं० 1/8/3, मै०सं० 1/10/1, 1C-13, काठ० सं० 9/4, 36/5-7, कपि०सं० 8/7, तै०ब्रा० 1/6/4-5, शत०ब्रा० 2/5/2, शां०ब्रा० 5/3/4, गो०ब्रा० 2/1/21-22, बौ०श्रौ० 5/5/9, भार०श्रौ० 8/4-10, आप०श्रौ० 8/5- सत्या०श्रौ० 5/2, 6/8, मान०श्रौ० 1/7/3-4, 5/2/15-28, वारा०श्रौ० 1/7/2, कात्या०श्रौ० 1/3/21, 5/3-8-19, लाद्या०श्रौ० 5/1/1-10, द्राह्या०श्रौ० 13/1/1-12, बौ०श्रौ० 8/17-23, आश्व०श्रौ० 2/17, शां०श्रौ०3/14

आगामी दिन अर्थात् पूर्णिमा के दिन प्रातः अग्निहोत्र के अनन्तर अध्वर्यु दर्भ-प्रसारण कृत्य करके हवि-सामग्रियाँ तैयार करता है। जबकि अध्वर्यु वरुण के लिए अभिक्षा तैयार करता है प्रति प्रस्थाता मरुतों के लिए आभिक्षा तैयार करता है। तदनन्तर अध्वर्यु अथवा यजमान-पत्नी यवचूर्ण से छोटी-छोटी मूर्तियाँ बनाती है जिनकी संख्या यजमान के परिवार के सदस्यों की संख्या से एक अधिक होती है। अध्वर्यु यवचूर्ण से एक मेष बनाता है और प्रतिप्रस्थाता एक शृङ्गविहीन मैषी।

तदनन्तर अध्वर्यु और प्रति प्रस्थाता। अपनी अपनी वेदियों का निर्माण करते हैं। अध्वर्यु एक चात्वाल-गर्त खोदता है और इस खुदाई से प्राप्त मिट्टी के द्वारा अपनी वेदी के पूर्व में उत्तरवेदी तैयार करता है। इसके पश्चात् अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों ही यज्ञाग्नि को अपनी अपनी वेदियों पर लाते हैं। इस अग्नि-प्रणयन कहते हैं। अध्वर्यु यज्ञाग्नि को उत्तरवेदी पर ले जाता है तथा अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों अपनी अपनी वेदियों का द्वितीय संस्कार सम्पन्न करते हैं।

वेदियों पर हवि-स्थापनादि कर्मों के अनन्तर अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता अलग-अलग मंथन करते हैं। मन्थन से उपलब्ध अग्नि को आहवनीय अग्नि से मिलाकर यजमान पत्नी से प्रश्न करते हैं 'तुम्हारे कितने उपपति हैं?' यदि यजमानपत्नी अपने उपपतियों का नाम बता देती हैं तो उसे व्यभिचार जन्य पाप से मुक्ति मिल जाती है अन्यथा उसे अपने पति एवम् बच्चों से हाथ धोना पड़ता है। तदनन्तर यजमान और उसकी पत्नी प्रतिप्रस्थाता की अग्नि में यव की अल्पमूर्तियाँ डालते हैं।

एतदनन्तर अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता अपनी अपनी आहवनीयाग्नि से प्रयाज के प्रारम्भिक कर्मों को सम्पादित करते हैं और अध्वर्यु प्रधान आहुतियों से आरम्भ करता है। अध्वर्यु के द्वारा प्रथम 6 आहुतियों के प्रदान के अनन्तर प्रतिप्रस्थाता यव-निर्मित शृंग-विहीन मेषी के साथ मरुतों के लिए आमिक्षा की आहुतियाँ देता है। इसी समय अध्वर्यु सशृंग यव-मेष के साथ वरुण को आभिक्षा की आहुति प्रदान

करता है । इसके पश्चात् अध्वर्यु के लिए अन्तिम आहुति प्रदान करता है । एतद-नन्तर स्विष्टकृत से लेकर शंयुवाक तक के कृत्यों को पूर्ण करके अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता वाजिन की आहुति प्रदान करते हैं । अध्वर्यु तीन समिष्ट यजुष् आहुतियाँ प्रदान करता है और प्रतिप्रस्थाता एक । इसके पश्चात् विष्णुकर्म तक के कृत्यों का सम्पादन कर सभी जलाशय की ओर जाते हैं और स्नान करते हैं । इस कृत्य को 'अवभृथ' कहा जाता है ।

प्रतिपदा के दिन यजमान पौर्णमास यज्ञ करके वैश्वदेव पर्व समाप्ति के अनन्तर क्रियमाण मुण्डन की भाँति अपने शिर को मुंडित कराता है ।

साकमेध[1]

वरुणप्रधास के चार महीने पश्चात् कार्तिक अथवा मृगशिरा में चतुर्दशी एवम् पूर्णिमा को तृतीय चातुर्मास्य पर्व अर्थात् साकमेध किया जाता है । इस पर्व में मुख्य चार कृत्य होते हैं -

---

1. साकमेध-पर्व के लिये द्रष्टव्य - तै0सं0 1/8/4-6, मै0सं0 1/10/1, 14-20, का0ठ0सं0 9-5-7, कपि0सं0 8/8/10, तै0ब्रा0 1/6/6-10, शत0ब्रा0 2/5/3-4, 2/6, 1-3, शां0ब्रा0 5/5/7, गो0ब्रा0 2/1/23-25, बौ0श्रौ0 5/10-17, भार0श्रौ0 8/11/12, आप0श्रौ0 8/9-19, सत्या0श्रौ0 5/3-5, 6/8, वै0श्रौ0 9/1/12, मान0श्रौ0 1/7/5-7, 5/2/15/31, वार0 श्रौ0 1/7/3-4, कात्या0 श्रौ0 5/28, 5/6-10, लाट्या0श्रौ0 5/1/11, 5/3/13, द्राह्या0श्रौ0 13/1/13, 13/1/11, वै0 श्रौ0 1/9, 1-23, आश्व0 श्रौ0 2/15/9, 18-19, शां0श्रौ0 3/15-17.

1. अनीकवतीष्टि 3. पितृयज्ञ
2. महाहवींषि 4. त्र्यम्बक हवींषि

क्रीडिनेष्टि को छोड़कर अन्य सभी इष्टियाँ चतुर्दशी को सम्पादित की जाती हैं और शेष तीन कृत्यों का सम्पादन पूर्णिमा को होता है ।

चतुर्दशी के दिन प्रात:कालिक अग्निहोत्र के अनन्तर अनीकवतीष्टि की जाती है । इसमें अग्नि अनीकवन्त देवता एवम् अष्टाकपाल पुरोडाश द्रव्य होता है । इस इष्टि के कृत्यों का समारम्भ इस प्रकार किया जाता है कि हविर्निर्वाण सूर्योदय के समय हो । तदनन्तर मध्याह्न में सांतपनीष्टि सम्पादित होती है जिसमें सांतपन मरुत् देवता तथा मरु द्रव्य होता है । इसमें मध्याह्न में हविर्निर्वाण होता है । सायंकाल गृहमेधीयेष्टि होती है जिसमें गृहमेधी मरुत देवता एवम् पयस्या द्रव्य होता है । गृहपति की सभी गायें दुही जाती हैं और प्राप्त दूध में यजमान के परिवार के सभी सदस्यों के खाने भर के लिए ओदन तैयार किया जाता है । इस इष्टि में आधार, प्रयाज, अनुयाज एवम् सामिधेनी आदि सहकृत्यों का सम्पादन नहीं होता है । केवल आज्यभाग की आहुति एवम् स्विष्टकृत का विधान है । यह इष्टि सायंतन अग्निहोत्र के अनन्तर की जाती है । इष्टि समाप्ति के अनन्तर यजमान के परिवार के सभी सदस्य ओदन ग्रहण करते हैं । यजमान कार्यरत यजमान पत्नी एवम् कार्यरत ऋत्विज अपनी आँखों में सुरमा (Collyrium) एवम् शरीरों में नवनीत केवल एक आपालित वत्स (adopted calf) बाँध दिया जाता है । सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक रात्रि व्यतीत करते हैं । पूर्णिमा के दिन क्रीडिन् मरुत् देवता एवम् सप्तकपाल पुरोडाश द्रव्य के साथ सूर्योदय के समय-क्रीडिनेष्टि सम्पादित की जाती है । तत्पश्चात् महाहवींषि की विधि समारब्ध होती है । इसमें आठ याग होते हैं । प्रथम पाँच तो वैश्वदेव जैसे होते हैं शेष तीन इन्द्राग्नी के लिए पुरोडाश लगाते हैं । गायों के बछड़े उन्मुक्त कर दिये जाते हैं । इन्द्र अथवा महेन्द्र के लिए चरु एवम् विश्वकर्मन् के लिए एककपाल पुरोडाश । वैश्वदेव की ही भाँति आहुतियाँ दी

जाती हैं परन्तु विष्णुक्रम के अनन्तर यजमान को यज्ञव्रत छोड़ने की अनुमति नहीं है ।

तत्पश्चात् अध्वर्यु महापितृयज्ञ-विधि आरम्भ करता है । इस यज्ञ के लिए दक्षिण अथवा दक्षिण पूर्व की ओर एक पृथक्वेदी निर्मित की जाती है । पितरों के निमित्त यह वेदी वर्गाकार होती है । पैतृक वेदी का निर्माण की तैयारी के आरम्भ अथवा समाप्ति में सम्पन्न किया जा सकता है । इसमें तो आहुतियाँ होती हैं - पितृयन्त सोम के लिए षट्कपाल पुरोडाश, बर्हिषद् पितरों के लिए धाना: एवम् अग्निष्वात पितरों के लिए, धाना: एवं प्राप्त आपालित वत्ससम्बद्धा गो-दुग्ध मिश्रित चूर्ण । इसके पश्चात् त्र्यम्बक आहुतियों की विधि समारब्ध होती है जिसके अनन्तर अदिति के लिए यजन किया जाता है ।

दो, तीन साकमेधपर्व के चार दिन अथवा महीने भर के पश्चात् शुनासीरीय-पर्व[1] सम्पन्न किया जाता है । इस पर्व में दस मुख्य आहुतियाँ हैं । इसमें मरुतों के लिए कुछ भी विहित नहीं है ।

चातुर्मास्यों के प्रसंग में यह द्रष्टव्य है कि अवभृथ केवल वरुणप्रधास में विहित है, अग्निप्रणयन और उत्तरवेदी वरुणप्रधास एवम् साकमेध में तथा अग्निमंथन एवम्

---

1. शुनासीरीय-पर्व के लिये द्रष्टव्य - तै0सं0 1/8/7, मै0सं0 1/10/1, 4/3/3, काठ0सं0 15/2, तै0ब्रा0 1/4/10, शत0ब्रा0 2/6/3, शां0ब्रा0 5/8/10, गो0ब्रा0 2/1/26, बौ0श्रौ0 5/18, भार0श्रौ0 8/23, आप0श्रौ0 8/20-22, सत्या0श्रौ0 5/6, 6/8, वैखा0श्रौ0 9/12, मान0श्रौ0 1/7/8, 1-11, वार0 श्रौ0 1/7/5, 1-4, कात्या0श्रौ0 4/5/7, 5/11/1-06, लाट्या0श्रौ0 3/5/14, द्राह्या0श्रौ0 13/3/12, वैता0श्रौ0 9/24-27, आश्व0श्रौ0 2/20, शां0श्रौ0 3/18.

उसका आहवनीय के साथ मिश्रीकरण चारों पर्वों में विहित है। चातुर्मास्यों को पशु तथा सोमयागों के आधार पर भी सम्पन्न किया जा सकता है।

2. पशुयाग को निरूढपशुबन्ध[1] कहा जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थ इसे स्वतंत्र याग नहीं स्वीकार करते अपितु सोमयाग में अन्तर्भूत आग्नीषोमीय पशुयाग को पशु यागों की प्रकृति मानते हैं। दूसरी ओर श्रौतसूत्र निरूढपशुबन्ध को एक स्वतंत्र याग तथा अग्नीषोमीय पशुयाग को उसकी विकृति मानते हैं।

श्रौतसूत्रों के अनुसार यह याग या तो वर्ष में एक बार या प्रत्येक छः महीने पर एक बार सम्पादित किया जाता है। इस याग की मुख्य देवता इन्द्राग्नी, सूर्य अथवा प्रजापति तथा छाग पशु होता है। अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, होता, मैत्रावरूण (प्रशास्ता) ब्रह्मा और आग्नाध्र 6 ऋत्विज् याग-संचालन करते हैं। प्रतिप्रस्थाता अध्वर्यु का और मैत्रावरूण होता का सहायक होता है। पुरोनुवाक्यायें मैत्रावरूण के द्वारा तथा याज्यायें होता के द्वारा पढ़ी जाती है। इसमें भी मरुतों के लिए कुछ भी नहीं विहित है।

3. यद्यपि निरूढपशुबन्ध की प्रक्रिया में मरुतों का कोई स्थान नहीं है, परन्तु कतिपय काम्य पशुयागों में मरुतों में स्वतन्त्र रूप से अथवा इन्द्र या अग्नि के

---

1. निरूढपशुबन्ध का विवरण कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं तथा अन्य संहिताओं के ब्राह्मण-ग्रन्थों में सोमयाग के अन्तर्गत अग्नीषोमीयपशुयाग के प्रसंग के मिलता है। केवल शत०ब्रा० में 11/7/1-4 पर इसके कुछ अंश की चर्चा है।

साथ उल्लिखित हैं। इनका विवरण इस प्रकार है -

1. अन्न-कामना की पूर्ति के लिये मरुतों के लिये पृश्नि (-चितकबरा पशु) का आलमन करने का विधान किया गया है।[1] कहा गया है कि मरुत् अन्न हैं और पृश्नि अन्न का रूप है, अतः पृश्नि के आलमन से मरुद्गण प्रसन्न होकर अन्न प्रदान करते हैं।

2. यदि प्रजा राजा के विरुद्ध आचरण करती हो तो राजा को इन्द्र के साथ-साथ मरुतों के लिये पृश्निसक्थ (चितकबरी जाँघ वाला) पशु का आलमन विहित है।[2]

3. ग्राम पर आधिपत्य की कामना के लिए मरुत्वान् इन्द्र के लिये 'पृश्नि-सक्थ के आलमन का विधान किया गया है।[3] ग्रामकामीराजन्य के लिये भी उपर्युक्त विधान है।[4]

4. वृष्टि की कामना से अग्नि सहित मरुतों के लिये 'पृश्नि' (चितकबरा पशु) का आलमन करने का विधान है।[5]

---

1. तै०सं० 2/1/6/2, तै०ब्रा० 2/8/5
2. का०ठ०सं० 13/3
3. तै०सं० 2/1/3/1, तै०ब्रा० 2/8/3
4. मै०सं० 2/5/8, 4/14/13
5. मै०सं० 2/5/7, 4/14/11

5. मुख्यतया सोम की आहुति वाले याग को सोमयाग[1] कहा जाता है। याग सम्पादन में लगने वाले समय के अनुसार यह चार प्रकार का होता है : एकाह, अहीन, सत्र और साद्यस्क्र। एकाह में दीक्षा एवम् प्रवर्ग्य आदि के साथ सोम केवल एक दिन प्रातः, मध्याह्न तथा सायम् आहुत किया जाता है। इस याग में पूरे पाँच दिन लगते हैं। अहीन में सोम एक से अधिक दिनों तक तीन बार आहुत किया जाता है। इसकी समय-सीमा बारह दिन है। इसके अनन्तर चलने वाला याग सत्र कहलाता है जो सौ रातों तक रात्रि सत्र एवम् उसके पश्चात् अयनसत्र कहलाता है। यदि सोम की सभी प्रमुख आहुतियाँ तथा सहकर्म एक ही दिन सम्पन्न हों तो साद्यस्क्र होता है।

सोमयाग की प्रकृति अग्निष्टोम हैं। इसकी यह संज्ञा इसके अन्त में गीयमान अग्निष्टोमसंज्ञक स्तोत्र के कारण है। सोमयाग के प्रारम्भ करने की दो ऐच्छिक विधियाँ विहित हैं। यजमान या तो वसन्त ऋतु में सोम-याग की दीक्षा के लिए किसी शुभ दिन का निश्चय कर उसी पक्ष की सप्तमी अष्टमी अथवा दशमी तिथि को अग्न्याधेय सम्पादित करे और उसके पश्चात् सोम-याग प्रारम्भ करे, या सर्वप्रथम अग्न्याधेय करके अग्निहोत्र से समारम्भ करते हुए उपयुक्त समयों पर दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य एवम् पशु-याग इत्यादि सम्पन्न करे और तदनन्तर वसन्त में सोम-याग करे। उभयविधि समान महत्त्व की है।

---

1. श्रौत-कर्मकाण्ड में 'सोमयाग' का सर्वप्रथम स्थान होने के कारण कृष्णयजुर्वेद की संहिताओं, ब्राह्मणों तथा श्रौत-सूत्रों का बहुत बड़ा भाग, सोमयाग की प्रकृति 'अग्निष्टोम' तथा इसकी विकृतियों के विवरण से सम्बद्ध है। अतः संहिताओं ब्राह्मणों और श्रौतसूत्रों के स्थलों का निर्देश यहाँ अतिविस्तृत होने के कारण अनपेक्षित होगा।

सोम-याग के सम्पादन में ऋक्, यजुष्, साम तीनों वेदों का उपयोग होता है। अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा, उद्गाता आदि चारों ऋत्विजों में प्रत्येक के तीन-तीन सहायक होते हैं। इस प्रकार ऋत्विजों के अधोलिखित वर्ग होते हैं :-

(अ) अध्वर्यु-वर्ग - 1. अध्वर्यु 2. प्रतिप्रस्थाता 3. नेष्टा 4. उन्नेता

(ब) ब्रह्म-वर्ग - 1. ब्रह्मा 2. ब्राह्मणाच्छंसिन् 3. आग्नीध्र 4. पोता

(स) होतृ-वर्ग - 1. होता 2. मैत्रावरुण 3. अच्छावाक 4. ग्रावस्तुत

(द) उद्गातृ-वर्ग- 1. उद्गाता 2. प्रस्तोता 3. प्रतिहर्ता 4. सुब्रह्मण्य।

उद्गाता एवम् उसके सहायकों का साम-गान स्तोत्र तथा होता एवम् उसके सहायकों का गान शस्त्र कहलाता है। शस्त्रों का पाठ ब्राह्मणाच्छंसी भी करता है। सोमयाग में स्तोत्रों एवम् शस्त्रों की संख्या सदैव बराबर होती है। प्रथमतः उद्गाता सोम प्रदान किये जाने वाले देवता के लिए स्तोत्र-पाठ करता है तदनन्तर होता उसी देवता के लिए शस्त्र-पाठ करता है।

## अग्निष्टोम

प्रथम दिन दीक्षा - अग्निष्टोम-सम्पादन के लिए इच्छुक यजमान वसन्त ऋतु की शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी अथवा एकादशी के दिन यजन के लिए व्रत-ग्रहण करता है। वह एक सोम-प्रवाक का चयन करता है जो याग के लिए ऋत्विजों को आमंत्रित करने के लिए भेजा जाता है। सोम-प्रवाक ऋत्विजों के साथ यजमान के घर आता है जो उन्हें अपने ऋत्विजों के रूप में समावृत करता है और मधुपर्क एवम् अन्य उपहारों से उनका स्वागत करता है। तदनन्तर यजमान, यजमान-पत्नी एवम् ऋत्विज याग के लिए आवश्यक उपकरणों को लेकर याग-भूमि की ओर प्रस्थान करते हैं। यजमान वहाँ पर अपने शिर का मुण्डन तथा नाखूनों का कर्तन कराता है। यजमान एवम्

उसकी पत्नी स्नान करते हैं। इसी बीच अध्वर्यु अग्नि मंथन करता है और इसे उपयुक्त स्थानों पर संगृहीत करता है। इसके पश्चात् वह आग्नाविष्णु (अग्नि और विष्णु) के लिए एकादशकपाल पुरोडाश के द्वारा दीक्षणीयेष्टि सम्पादित करता है।

यजमान एवम् यजमान पत्नी अपने शरीरों को नवनीत से अभ्यंजित करते हैं एवम् आँखों में सुरमा लगाते हैं। यजमान आह्वनीय के पास एक कृष्णमृगचर्म आस्तीर्ण कर उसी पर आरूढ़ हो जाता है। वह कटि में मुंज मेखला एवम् शिर पर उष्णीष धारण कर लेता है। यजमान अपने वस्त्र में एक मृग-शृंग बाँधे रहता है जिससे यजन काल में कण्डूयन दूर किया जा सके। यजमान पत्नी भी यौक्त्र पहनती है तथा अपने शिर को आच्छादित रखती है। यजमान कनिष्ठिका एवम् अनामिका को छोड़कर सभी अंगुलियों सहित दोनों हाथों की मुट्ठियों को बाँध लेता है। तदनन्तर अध्वर्यु यजमान को देवों तथा मनुष्यों दोनों के लिए दीक्षित उद्घोषित करता है। यजमान एवम् यजमान पत्नी आकाश के तारकित होने तक शान्त बैठे रहते हैं, तत्पश्चात् अध्वर्यु-प्रत दुग्धपान करते हैं। यागदिवसों में उन्हें केवल दुग्ध ग्रहण करना पड़ता है।

द्वितीय दिन प्रातः प्रायणीयेष्टि की जाती है जिसमें पथ्यास्वस्ति, अग्नि, सोम, सवितृ और अदिति आदि पाँच देवताओं को आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। प्रथम चार को आज्य एवम् अदिति को चरु आहुत किया जाता है। चरु आह्वनीय पर पकायी जाती है। पकाने का वर्तन बिना माँजे याग-समाप्ति में सम्पाद्यमान उदनीयेष्टि के उपयोगार्थ रख दिया जाता है।

तदनन्तर सोम का क्रयण कर उसे दो हविर्धानों में स्थापित कर देते हैं। दो वृषभ शकट को खींचकर याग-भूमि तक लाते हैं। वहाँ दाहिनी ओर के वृषभ को मुक्त करके एवम् बाँयीं ओर के वृषभ को शकट-युक्त ही रखकर आतिथ्येष्टि

सम्पादित की जाती है जिसमें विष्णु को नवकपाल पुरोडाश प्रदान करते हैं। पुरो-डाश के लिए अन्न पीस उठने पर बायीं ओर वाला बैल भी मुक्त कर दिया जाता है। आहवनीय अग्नि के समीप एक राजसिंहासन स्थापित किया जाता है। सोम हाथ में लिए हुए यजमान सिंहासन के बगल खड़ा होता है। अध्वर्यु के द्वारा कृष्ण-मृगचर्माच्छादित सिंहासन पर सोम स्थापित कर दिया जाता है। आतिथ्येष्टि समाप्त कर ऋत्विज-गण एवम् यजमान आतिथ्येष्टि से प्राप्त आज्य का स्पर्श कर एक दूसरे के प्रति असत्य न सिद्ध होने का व्रत लेते हैं। यह कृत्य तानूनप्त्र कहलाता है। तदनन्तर सभी 'मदन्ती' संज्ञक उष्ण जल का स्पर्श करते हैं। इसे सोम के ऊपर भी छिड़कते हैं। इसे सोमापयायन कहते हैं।

तत्पश्चात् प्रवर्ग्य होता है। इसके लिए महावीर संज्ञक मृत्तिका-पात्र का निर्माण किया जाता है। यह पात्र कढ़ाही इतना ऊँचा एवम् दो कटि-तुल्य निर्मित युक्त तथा तीन भागों में विभक्त रहता है। उसी प्रकार के दो अतिरिक्त पात्रों का भी निर्माण किया जाता है। पात्र को समारूढ़ करने के लिए मुंज-तृण-निर्मिता सम्राडासन्दी तैयार की जाती है। अध्वर्यु गार्हपत्य के उत्तर अग्नि प्रज्वलित कर उस पर महावीर पात्र स्थापित कर देता है और उसमें आज्य उड़ेल कर सुनहले ढक्कन से ढक देता है। कृष्णमृगचर्म निर्मित यजन से अग्नि को व्यजन कर दिया जाता है। आज्य के संतप्त हो जाने पर महावीर को अग्नि से उतारकर एतन्निमित्तक सिंहासन पर समारूढ़ कर देते हैं। ऋत्विज् एवम् यजमान महावीर पर दृष्टि-निक्षेप करते हैं। इस कृत्य के आरम्भ से ही होता ऋचाओं का पाठ करता रहता है। इस स्थल तक उसका पाठ प्रवर्ग्याभीष्टव का पूर्व पटल है।

तदनन्तर अध्वर्यु गाय एवम् प्रति प्रस्थाता अजा को दुहते हैं। दोनों का दूध महावीर में उड़ेला जाता है। महावीर स्थित संतप्त आज्य में यह दुग्ध सम्मि-श्रण प्रवृंजन कहलाता है जिससे प्रवर्ग्य शब्द निष्पन्न होता है। महावीर के दुग्ध-युक्त होने के समय होतृ-पाठ प्रवर्ग्याभीष्टव का उत्तरपटल है।

प्रतिप्रस्थाता के द्वारा एक रौहिण पुरोडाश दिया जाता है। अध्वर्यु आहवनीय पर स्थित महावीर के दुग्ध मिश्रित आज्य को अश्विनों एवम् इन्द्र को प्रदान करता है। आज्य एवम् दुग्ध का यह सम्मिश्रण घर्म कहलाता है और इसके लिए दुही गयी धेनु धर्मधुक् कही जाती है। तदनन्तर घर्म की स्विष्टकृत आहुति आरम्भ होती है। इस बार अध्वर्यु महावीर को आहवनीय पर स्थापित करता है। इसके पश्चात् पात्र को उस स्थान पर रख दिया जाता है। जहाँ उसे संतप्त किया गया था। प्रतिप्रस्थाता द्वितीय रौहिण पुरोडाश प्रदान करता है। अध्वर्यु अग्निहोत्र करता है (Offers) । दो अतिरिक्त पात्रों तथा अन्य वर्तनों सहित महावीर-सम्राडासन्दी पर समारोपित कर दिया जाता है। प्रवर्ग्येष्टि प्रातः भी की जाती है। ऋचाओं के चयन में किंचित् परिवर्तन सहित एक ही विधि है।

तत्पश्चात् उपसदेष्टि की जाती है। इस इष्टि में अग्नि, सोम एवम् विष्णु को धान्य प्रदान किया जाता है। प्रवर्ग्य की भाँति उपसद भी सायंकाल संपादित की जाती है। ये दोनों इष्टियाँ द्वितीय, तृतीय एवम् चतुर्थ दिन सम्पादित की जाती है। इस प्रकार अग्निष्टोम में छः प्रवर्ग्य एवम् छः उपसद होते हैं।

प्रातःकालिक प्रवर्ग्य एवम् उपसदेष्टि करने के पश्चात् तृतीय दिन का मुख्य कर्म है महावेदी का निर्माण। महावेदी प्राचीनवंश के पूर्व उससे 6 कदम की दूरी के अन्तर पर बनायी जाती है। सोम-समारूढहविर्धानशकट महावेदी तक लाये जाते हैं। महावेदी के पश्चिमी कोने से तीन कदम पूर्व की ओर सदस् संज्ञक एक शाला निर्मित की जाती है। दाहिनी ओर के शकट की धुरी के अग्रभाग में चार ध्वनि करने वाले छिद्र बनाये जाते हैं। ये छिद्र पत्थरों के द्वारा सोमाभिषव के समय उत्पन्न ध्वनि को बढ़ा देते हैं और इस प्रकार भू-ढक्का (Earth-drum) का कार्य करते हैं। छिद्रों से निकाली गयी मिट्टी से 6 धिष्ण्यायें (fire-hearths) बनायी जाती है। ये चूल्हे दक्षिण से लेकर उत्तर तक फैले रहते हैं और मैत्रावरुण, होता, ब्राह्मणच्छंसी, पोता, नेष्टा और अच्छावाक् के लिए होते हैं। सदस् के बाहर वेदी

के दाहिने और वर्तनों के शुद्धीकरणार्थ एक मार्जालीय चुल्लिका निर्मित की जाती है। आहवनीय के लिए पर्णशाला मार्जालीयचुल्लिका के विपरीत दिशा में बनायी जाती है। सायंकाल प्रवर्ग्य और उपसद इष्टियाँ की जाती हैं।

चतुर्थ दिन का मुख्यकृत्य है अग्नि एवम् सोम के लिए पशुयाग का सम्पादन और यदि यजमान के यहाँ पिछली तीन पीढ़ियों से सोमयाग नहीं हुआ तो इन्द्र एवम् अग्नि तथा अश्विनों के लिए भी पशुयाग किया जाता है। निरूढपशुबन्ध एवम् पशुयाग में समानता है। प्रारम्भ में मंत्रोच्चारणपूर्वक अग्नि एवं सोम को उत्तरवेदी तक लाया जाता है। इस कृत्य को अग्निसोम प्रणयन कहते हैं। प्रातः एवं सायम् प्रवर्ग्य तथा उपसद किये जाते हैं। रात्रि में अध्वर्यु एक जल-पूरित कलश लाकर सुरक्षित स्थान पर रख देता है यह जलवसतीवरी कहलाता है। प्रतिप्रस्थाता गाय का दूध दुहकर उसे आगामी दिन के लिए जमा देता है। यजमान सोम की रक्षा करता हुआ रात्रि-जागरण करता है।

पंचम दिन के कृत्य का समारम्भ काफी रात बीत जाने पर होता है। अध्वर्यु आवश्यक सामानों को यथास्थान रखता है। तदनन्तर वह होता को प्रातरनुवाक् पाठ से समारम्भ करने के लिए आहूत करता है। होता पक्षियों के कलरव के पहले पाठ आरम्भ कर देता है।

प्रातरनुवाक् में अग्नि, उषस् और अश्विनों से सम्बद्ध गायत्री, अनुष्टुभ्, त्रिष्टुभ्, बृहती, उष्णिक्, जगती एवम् पंक्ति छंदों में निबद्ध सूक्त होते हैं। पाठ्यमान मंत्रों की संख्या के विषय में ब्राह्मणों (ऐ० ब्रा० 7/7/7, कौ० ब्रा० 11/7) में एक सौ, एक सौ बीस, तीन सौ साठ, सात सौ बीस और एक हजार मंत्रों के पाठ के विकल्प प्रस्तुत किये गये हैं और अन्त में असंख्य मंत्रों के पाठ की भी व्यवस्था स्थापित की गयी है। आश्वलायन श्रौतसूत्र एवम् शाङ्खायन श्रौतसूत्र ने उपर्युक्त

छन्दों में उष्स् एवम् अश्विनों के मंत्रों के संग्रह प्रस्तुत किये हैं। प्रातरनुवाक् आप: को सम्बोधित मंत्र से प्रारम्भ होता है और आशीर्वचन से अन्त होता है।

होता के प्रातरनुवाक् पढ़ने पर, प्रतिप्रस्थाता हविष्पंचक-निर्माण करता है-- 1. इन्द्र हरिवन्त के लिए धाना 2. इन्द्रपूषन्वन्त के लिए करम्भ 3. इन्द्र सरस-वन्त के लिए परिवाप 4. इन्द्र के लिए पुरोडाश 5. मित्र एवम् वरूण समेत इन्द्र के लिए आमिक्षा।

अब वसतीवरी जल को होता और मैत्रावरूण के समक्ष में, पन्नेजनी में तथा एकधना नामक मृत्तिका-पात्रों में ग्रहण किया जाता है। जल को सोमाभिषवणस्थल पर लाते हैं। पन्नेजनी पात्र यजमान पत्नी लाती है। वसतीवरी के आनयन के समय होता आजोनस्त्रीयसूक्त ऋ० 10/30 का पाठ करता है जिसमें वह 'आप' को सम्बोधित किये गये कतिपय अन्य मंत्रों का समावेश कर लेता है और सूक्त के अन्तिम मंत्र से अपने पाठ का समापन करता है।

## दधिग्रह एवम् अन्य ग्रह

इसके पश्चात् दधिग्रह संज्ञक ग्रह में दधि-ग्रहण कर प्रजापति को प्रदान किया जाता है। प्रजापति को सोमरस पूरित अदाभ्यग्रह एवं अंशुग्रह संज्ञक दो अन्य ग्रह भी प्रदान किये जाते हैं। तदनन्तर उपांशुसंज्ञकग्रह को सोमपूरित कर प्राण को प्रदान करते हैं।

तत्पश्चात् अध्वर्यु एवम् उसके सहायक प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा एवम् उन्नेष्टा सोमाभिषवण के लिए उपयुज्यमान मृगचर्म के चारों कोनों पर बैठते हैं। वे सोमांशुओं को कूटते हैं और रस अभिषुत करते हैं जिसे एक पात्र में संगृहीत किया जाता है। उद्गाता एवम् उसके सहायकों के द्वारा द्रोणकलश संज्ञक काष्ठपात्र के ऊपर एक काष्ठ-छलनी दी जाती है और इसी से सोम-रस उड़ेला जाता है। नलिका के द्वारा

सोम-रस की धारा उड़ेली जाती रहने पर अन्तर्यामग्रह को सोमरसपूरित कर इन्द्र को प्रदान किया जाता है। प्रवाहशील रस की धारा से ऐन्द्र वायव, मैत्रावरुण, शुक्र, मन्थिन, आग्रायण, उक्थ्य और ध्रुवा संज्ञक ग्रह आपूरित किये जाते हैं। ये ग्रह धारागृह कहलाते हैं जिन्हें आपूरित कर खर पर रख दिया जाता है।

तदनन्तर, अध्वर्यु, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता उद्गाता, ब्रह्मा एवम् यजमान क्रमानुसार एक दूसरे का अवलम्बन ग्रहणकर सदस् के बाहर निकलते हैं। चात्वाल के समीप स्थित आष्टव में बैठे हुए प्रस्तोता उद्गाता एवम् प्रतिहर्ता बहिष्पवमान स्तोत्र का पाठ करते हैं। यह स्तोत्र सोम के शुद्धीकरणार्थ पढ़ा जाता है। कहा जाता है कि इस स्तोत्र के द्वारा शुद्ध हुए अश्विनों ने सोम-याग में भाग प्राप्त किया। तदनन्तर अध्वर्यु द्रोणकलश से अश्विनों के लिए एक ग्रह आपूरित कर खर पर स्थापित कर देता है।

सोमाभिषव के इस मुख्यदिन अग्नि अथवा इन्द्र और अग्नि अथवा अग्नि, सरस्वती, सोम, पूषन् , बृहस्पति, विश्वेदेव, इन्द्र, मरुत, इन्द्राग्नी, सविता और वरुण इन ग्यारह देवताओं को पशुयाग की विधि पर सवनीय पशु समर्पित किया जाता है। होता वसा (Omentum) पुरोडाश एवम् पशु के अङ्गों को आहुतियों के समय अनुवाक्या एवम् याज्या पढ़ता है। पूर्वनिर्मित हविष्पंक्त इस समय भी प्रदान किया जाता है।

तत्पश्चात् इन्द्र-वायु, मित्रावरुण और अश्विनों को होता से अनुवाक्या एवम् याज्या पाठ के साथ ग्रह आहुत किये जाते हैं। तदनन्तर चमसोन्नयन होता है। ऋत्विजों के ग्रहों के पूरित किये जाने पर मैत्रावरुण सूक्त पढ़ता है। इसी समय पूर्वपूरित शुक्र एवम् मन्थिन ग्रहों की आहुति सम्पन्न की जाती है। अध्वर्यु ऋत्विजों (होता, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता, नेष्टा और आग्नीध्र) के पूरित ग्रहों से आहुतियाँ प्रदान करता है और वे याज्यायें पढ़ते हैं। इसे प्रस्थितहोम कहते

हैं। वे चमसों को अपने बायें हाथ की ओर ले जाकर अपने दाहिने हाथ को उनके ऊपर रख कर एक ऋचा का पाठ करते हुए आप्यायन सम्पन्न करते हैं। तत्पश्चात् ऋत्विजगण ग्रहों में बचे हुए सोम को बाँटकर ऋचा का पाठ करके अपने अपने वक्षस्थल का स्पर्श करते हैं। रिक्त ग्रहों को पुनः पूरित कर दक्षिणी सोम-शकट के नीचे स्थापित किया जाता है। ये ग्रहनराशंस कहलाते हैं।

अब अच्छावाक प्रकट होता है। वह अपनी धिष्ण्या के समक्ष सदस के बाहर आसीन होता है। अध्वर्यु उससे इच्छानुसार कही जाने वाली बात को कहने के लिए कहता है {अच्छावाक! वदस्व यत् ते वाद्यम्}। इस पर वह कतिपय ऋचायें पढ़ता है एवम् ऋत्विजों से आमंत्रण याचित करता है। यदि होता उसे आमंत्रित करने के लिए उद्यत नहीं परिलक्षित होता, वह और ऋचायें पढ़ता है। होता के द्वारा निमंत्रित कर दिये जाने पर, अध्वर्यु स्वकीय सोमरसपूरितचमस से आहुति प्रदान करता है और याज्यापाठ करता है। तदनन्तर वह अपने चमस का शेष उपभोग करता है।

## ऋतुग्रह

इसके पश्चात् ऋतुग्रहों की आहुति सम्पन्न होती है जिनकी संख्या बारह है और जिनमें से प्रत्येक मधु और इन्द्र, माधव और मरुद्गण शुक्र और त्वष्टा, शुचि और अग्नि, नभस और इन्द्र, नभस्य और मित्रावरुणौ, ईड और द्रविणोदा, ऊर्ज और द्रविणोदा; सहस्य और द्रविणोदा, तपस और अश्विन एवम् तपस्य और अग्नि गृहपति आदि दो-दो देवताओं को प्रदान किया जाता है।

अध्वर्यु एवम् प्रतिप्रस्थाता हवि-प्रदान करते हैं और ग्रहों का शेष सोमरस कार्यरत ऋत्विजों के द्वारा उपभुक्त किया जाता है। अब इन्द्र और अग्नि के लिए एक ग्रह तैयार किया जाता है एवम् होता आज्य शस्त्र पढ़ता है।

आज्य शस्त्र में गद्य में एक पुरोरुच् ऋक होती है। तत्पश्चात् सात ऋचाओं का सूक्त आता है और तदनन्तर याज्या ऋक् होता के याज्या-पाठ करते रहने पर अध्वर्यु पहले से तैयार किये गये ग्रह से इन्द्र और अग्नि के लिए हवि आहुति करता है। नराशंस ग्रह भी तैयार किये जाते हैं किन्तु उन्हें आहुत नहीं किया जाता।

स्तोत्र एवम् शस्त्र नियम: स्तोत्र शास्त्र के पहले आता है। इस प्रसंग में बहिष्यवमान स्तोत्र पहले से पढ़ा गया होता है। स्तोत्रों एवम् शस्त्रों की रचना जटिल है। इनकी प्रमुख विशेषतायें अधोलिखित हैं - ऋच् अथवा प्रगाथ को लय-समन्वित प्रस्तुति स्तोत्र कहलाती है। स्तोत्रों से ही मिश्रण विधि के द्वारा गेय स्तोत्रों की रचना सम्पन्न की जाती है। स्तोमों को त्रिवृत, पंचदश, सप्तदश, एकविंश त्रिणव, त्रयस्त्रिंश, चतुर्विंश आदि अनेक भेद हैं।

स्तोत्र की समाप्ति पर उद्गाता 'एषा' कहता है कि जिसका अर्थ है कि यह स्तोत्र को अन्तिम मंत्र है। यह स्तोता के शस्त्र आरम्भ करने का संकेत है। माध्यन्दिन एवम् सायंतन सवनों से पुरोरुक् पाठ कर निविद ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु निविद पहले न प्रयुक्त होकर शस्त्र के कलेवर में समाहित हो जाते हैं। शस्त्र का अन्तिम मंत्र परिधानीय कहलाता है। तत्पश्चात् याज्या मंत्र द्वारा अध्वर्यु हवि-प्रदान करता है। सोमाभिषव के समय ग्रावस्तुत अभिषवण में उपयुज्यमान प्रस्तरों और पवमान सोम की प्रशंसा में मंत्रों का पाठ करता है।

माध्यन्दिन सवन स्तोत्र में धाराग्रहों से शुक्र और मन्थिन, आग्रायण, दो मरुत्वतीय तथा उक्थ्य ग्रह आपूरित किये जाते हैं। प्रातः सवन के अहिष्पवमान स्तोत्र के स्थान पर माध्यन्दिन पवमान स्तोत्र किया जाता है। स्तोत्र की समाप्ति पर दधिधर्म याग होता है। तदनन्तर प्रातः सवन की ही भाँति सवनीय पुरोडाश की आहुतियाँ तथा अन्य आहुतियाँ प्रदान की जाती है।

तत्पश्चात् अध्वर्यु आग्नीध्र की अग्नि पर वैश्वकर्मन् होमों को प्रदान करता है । अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दो मरुत्वतीय ग्रह प्रदान करते हैं एवम् अध्वर्यु तृतीय मरुत्वतीय ग्रह लेकर होता से मरुत्वतीय शस्त्र पढ़ने के लिये कहता है । मरुत्वतीय शस्त्र का स्वरूप अधोलिखित है :-

1. प्रतिपत् तृच्
2. अनुचर-तृच्
3. इन्द्राणीहव-प्रगाथ
4. ब्राह्मणस्पत्य प्रगाथ
5. धाय्या
6. मरुत्वतीय प्रगाथ
7. निविदधानीय सूक्त
8. निविद
9. परिधानीय तथा
10. याज्या ।

होता के याज्या-पाठ के अनन्तर अध्वर्यु मरुत्वतीय ग्रह प्रदान करता है ।

तत्पश्चात् अध्वर्यु महेन्द्र ग्रह पूरित कर इसे वेदी पर रखकर उद्गाताओं का सप्तदश-स्तोम पर आधारित पृष्ठ स्तोत्र अर्थात् महेन्द्रस्तोत्र का पाठ करने के लिए कहता है । इसके पश्चात् होता निष्केवल्यशस्त्र का पाठ करता है । तत्पश्चात् इन्द्र के लिए ग्रह पूरित करते हैं और उद्गाता द्वितीय पृष्ठ स्तोत्र गाता है तदनन्तर मैत्रावरुण शस्त्र-पाठ करता है । तत्पश्चात् इन्द्र के लिए ग्रह पूरित करके उद्गाता ब्राह्मणाच्छंसी के शस्त्र से अनुगमित तृतीय पृष्ठ स्तोत्र का गान सम्पन्न करते हैं । इन्द्र के लिए एक ग्रह और पूरित किया जाता है एवम् उद्गातगण अच्छावाक के शस्त्र से अनुगमित चतुर्थ पृष्ठस्तोत्र का गान सम्पन्न करते हैं । माध्यन्दिन सवन की समाप्ति अध्वर्यु के हवि प्रदान से होती है ।

मैक्समूलर, हाग, कीथ एवम् एग्लिंग इत्यादि तृतीय सवन को गलती से 'सायंतन सवन' कहते हैं परन्तु वैदिक साहित्य में इसे सर्वत्र तृतीय सवन के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है । कभी कभी यह माध्यन्दिन सवन की समाप्ति के पश्चात्

समारब्ध हो जाता है । सर्वप्रथम आदित्यों को सोम-ग्रह प्रदान किया जाता है । इस ग्रह की पूर्ति प्रातः सवन के समय इन्द्र-वायु इत्यादि युगल देवों के ग्रहों से आहृत स्थाली स्थित सोम रस से की जाती है । तदनन्तर प्रातः सवन की ही भाँति सोमाभिषव समारब्ध होता है । परन्तु इस सवन में प्रथम अभिषुत सोम लताओं के ऋजीष संज्ञक अवशिष्ट भाग को कूट कर सोम रस उपलब्ध करते हैं । इस रस को पूतभृत में आशिर के साथ मिश्रित करते हैं । पात्रस्थित सोमरस को उड़ेलते हैं और धाराग्रहों को पूरित कर वेदी पर रखते हैं ।

तदनन्तर उद्गाता अपने दोनों संतापकों के साथ आर्भव स्तोत्र का पाठ करता है जिसके बाद सवनीय पशु पुरोडाश कृत्य तथा अन्य आहुतियाँ सम्पन्न की जाती हैं । अध्वर्यु, चमसाध्वर्यू एवम् होतृगण अपने अपने सोमग्रहों को प्रदान करते हैं । इन ऋत्विजों के द्वारा शेष सोम-ग्रहण किया जाता है तथा पितरों को पिण्ड-दान किया जाता है । तदनन्तर सविता को एक सोम ग्रह प्रदान किया जाता है तथा विश्वेदेवों के लिए एकग्रह पूरित किया जाता है । तदनन्तर होता वैश्वदेवशस्त्र का पाठ करके अध्वर्यु वैश्वदेव ग्रह प्रदान करता है । सोम को चरू प्रदान पात्नीवत-संज्ञक ग्रह सोम-पूरित कर प्रदान किया जाता है और इसका शेष उपभुक्त किया जाता है । अध्वर्यु चमसाध्वर्यु के ग्रहों को पूरित करता है तथा उद्गाता को यज्ञ-यज्ञीय स्तोत्र गाने का निर्देश करता है । यह अग्निष्टोम का अन्तिम स्तोत्र है जिसे अग्नि-ष्टोम कहते हैं ।

होता के <u>आग्नीमारुत शस्त्र</u> की अन्तिम ऋचा के पाठ करने पर प्रतिप्रस्थाता प्रातः सवन में पूरित ध्रुवा के सोम रस को होता के चमस में उड़ेलता है । तदनन्तर अध्वर्युहोता के चमस को एवम् चमसाध्वर्यु अपने-अपने चमसों की आहुति करते हैं । एतदनन्तर शेष भक्षण होता है । तदनन्तर उन्नेता सम्मिश्रित शेष सोम रस एवम् यवधान युक्त द्रोणकलश को शिर पर रखे हुए ही आहुत कर देता है । इस आहुति

एवम् यव कार्यरत ऋत्विजों के द्वारा एतद्भक्षणानन्तर तृतीय सवन पूर्ण हो जाता है ।

यजमान, उसकी पत्नी एवम् सभी ऋत्विज् एक कपाल पर तैयार किये गये पुरोडाश को साथ लेकर स्नान-स्थल की ओर जाते हैं । गन्तव्य पर पहुँचकर अवभृथेष्टि की जाती है । इस इष्टि में आज्यभागों के अग्नि और वरूण देवता होते हैं । केवल चार प्रयाज और दो अनुयाज होते हैं । वरूण को पुरोडाश प्रदान किया जाता है । सोमयाग में प्रयुक्त सभी पात्र एवम् उपकरण जल में प्रक्षिप्त कर यजमान एवम् उसकी पत्नी नवपरिधान धारण करते हैं । यज्ञ स्थल पर लौटकर प्रायणीयेष्टि तुल्य उदयनेष्टि सम्पादित की जाती है । दोनों में केवल इतना अन्तर है कि प्रायणीयेष्टि की याज्यायें एवम् अनुवाक्यों उदयनेष्टि की अनुवाक्यायें एवम् याज्यायें हो जाती हैं ।

तदनन्तर आनुबन्ध्य पशु-याग किया जाता है जिसमें वन्ध्या गाय द्रव्य होती है परन्तु इस याग का स्थान आमिक्षा-याग ने ग्रहण कर लिया है । इस याग के देवता हैं मित्रावरूण । यजमान के राजा होने पर देवसुओं को आहुति देने के अनन्तर उदवसानीय आहुति सम्पन्न की जाती है । तत्पश्चात् यजमान धाता, अनुमति, राका, सिनीवाली एवम् कुहू को आज्य प्रदान करता है । ये देविका हवींषि कहलाती हैं । इस प्रकार अग्निष्टोम समाप्त हो जाता है ।

उक्थ्य रूप सोमयाग में सवन के दिन अग्नि की पशु-आहुति के साथ इन्द्र उवम् अग्नि के लिए अज की आहुति बढ़ा दी जाती है । प्रातः एवम् माध्यन्दिन सवनों की विधि अग्निष्टोम जैसी है । परन्तु तृतीय सवन में अग्नि मारुतशास्त्र से अनुगमित अग्निष्टोम स्तोत्र के पश्चात् , मैत्रावरूण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक के द्वारा गीयमान उक्थ्य शास्त्र से अनुगमित उक्थ्यस्तोत्रों के गान के साथ इन्द्र-वरूण, इन्द्र-वृहस्पति एवम् इन्द्र-विष्णु के लिए तीन और स ग्रह पूरित किये जाते एवम्

प्रदान किये जाते हैं । इस प्रकार तृतीय सवन के स्तोत्रों एवम् शास्त्रों की संख्या प्रातः एवम् माध्यन्दिन सवनों के स्तोत्रों एवम् शास्त्रों के बराबर कर दी जाती है। इस प्रकार उक्थ्य में कुल पन्द्रह स्तोत्र एवम् शास्त्र होते हैं ।

षोडशी रूप सोमयाग में उक्थ्य की सवन के दिन की पशु-आहुतियों में एक मेष और बढ़ा दिया जाता है तथा सामान्य धारागृहों के अतिरिक्त एक सोमरस पूरित षोडशीग्रह वेदी पर स्थापित किया जाता है । तृतीय सवन के समय तीन उक्थ्य स्तोत्र-शास्त्रों के अनन्तर इन्द्र के लिए षोडशी स्तोत्र एवम् षोडशीशास्त्र संज्ञक सोलहवें स्तोत्र शास्त्र की प्रेरणा देने वाले षोडशी ग्रह को ग्रहण किया जाता है ।

रात्रि में षोडशी का ही विस्तार किया गया रूप सोमयोग का अति-रात्रउपभेद है । प्रातः कृत्य में षोडशी की पशु-आहुतियों में सरस्वती को एक मेषी की आहुति और जोड़ दी जाती है । इसमें कुल मिलाकर उन्तीस स्तोत्र शास्त्र होते हैं । इसमें मरुतों के लिए कुछ भी विहित नहीं है । अग्निष्टोम स्तोत्र और अग्निमारुत शास्त्र के पश्चात् षोडशी स्तोत्र शास्त्र बढ़ा दिया जाता है तथा उक्थ्य के उक्थ्य स्तोत्र-शास्त्र छोड़ दिये जाते हैं । वाजपेय रूप सोमयाग के तीन प्रमुख प्रकार हैं, । संस्था वाजपेय, 2. आप्तवाजपेय एवं 3. कुरुवाजपेय । संस्थावाजपेय ताण्ड्यब्राह्मण एवम् सामवेद के श्रौतसूत्रों में वर्णित है । षोडशी के सोलह स्तोत्र-शास्त्रों में सत्रहवें वाजपेय स्तोत्र-शास्त्र का अभिवर्धन इसकी प्रमुख विशेषता है । वाजपेय के ये प्रकार यजुर्वेद के श्रौत सूत्रों में वर्णित हैं ।

आप्तवाजपेय में सत्रह दीक्षायें, तीन उपसद और एक अभिषवण दिन होता है । अभिषवण के दिन प्रजापति के लिए सत्रह सुवनीय पशु होते हैं । सभी स्तोत्र सप्तदश स्तोम होते हैं । यजमान, यजमान पत्नी तथा कार्यरत ऋत्विज स्वर्ण-मालायें धारण करते हैं ।

आप्तोर्याम अथवा शाङ्खायन श्रौतसूत्र के अनुसार आप्तोर्याम्न अतिरात्र का ही विस्तृत रूप है जिसमें अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेव और विष्णु अथवा ऐच्छिक रूप से सन्धि ग्रहों के देवताओं के लिए चार स्तोत्र-शस्त्र और जोड़ दिये जाते हैं।

द्वादशाह अर्थात् बारह दिवसीय सोम याग अहीन सोमयागों एवम् एक वर्ष से कम अवधि के सत्रों की प्रकृति है। इस याग में बारह दिनों तक सोमाभिषवण होता है। प्रारम्भिक कृत्यों के रूप में इसमें द्वादश दीक्षा दिवस एवम् तदनन्तर द्वादश उपसद दिवस होते हैं। अन्तिम उपसद दिवस अर्थात् प्रारम्भ से चौबीसवें दिन अग्नीषोमीय पशु-याग सम्पादित किया जाता है और आगामी प्रातः से सोमाभिषवण प्रारम्भ होता है। इस प्रकार द्वादशाह की समाप्ति में कुल छत्तीस दिन लगते हैं।

द्वादशाह के प्रथम एवम् अन्तिम दिन अतिरात्र की भाँति होते हैं। मध्य के दशदिन सामूहिक रूप से दशरात्र कहलाते हैं। इनमें प्रथम छः दिन पृष्ठ स्तोत्र सामों के गाये जाने के कारण पृष्ठ्य षडह तदनुगामी तीन दिन छन्दोमदिवस और दशम दिवस अविवाक्यदिवस कहलाता है।

दशरात्र के पृष्ठ्य षडह के अतिरिक्त अभिप्लवषडह संज्ञक एक दूसरे प्रकार का षडह भी होता है जो गवामयन में इकाई के रूप में प्रयुक्त होता है। इस षडह की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके प्रथम तथा अन्तिम दिन अग्निष्टोम की भाँति तथा शेष दिन उक्थ्य की भाँति होते हैं। साथ ही अभिप्लव षडह के दिन स्तोत्रों के स्तोमों की योजना के अनुसार ज्योतिष, गो एवम् आयुष कहे जाते हैं। प्रथम, द्वितीय एवम् तृतीय दिन क्रमशः ज्योतिष् , गो एवम् आयुष् दिवस तथा चतुर्थ, पंचम एवम् षष्ठ दिन क्रमशः गो, आयुष् तथा ज्योतिष् दिवस हैं।

गवामयन एक अथवा अधिकवर्षों तक चलने वाले सभी सोमयागों की प्रकृति

है । इसमें 361 दिनों तक सोमाभिषवण चलता रहता है । चतुर्विंश, अभिजित, स्वर, साम, विश्वजित एवम् महाव्रत विशिष्ट दिवस हैं । शाङ्खायन श्रौतसूत्र एवम् ऐतरेय आरण्यक में महाव्रत का सविस्तार वर्णन है, आश्वलायन श्रौतसूत्र एवम् शाङ्खायन आरण्यक ने इस पर कम ध्यान दिया है ।

राजसूय याग का प्रारम्भ फाल्गुन शुक्लपक्ष प्रतिपदा को होता है और इसकी समाप्ति में एक वर्ष से अधिक समय लगता है । इसमें 6 सोमयाग, 2 पशुयाग, 129 इष्टियाँ, 7 दर्वीहोम और 4 चातुर्मास्य किये जाते हैं । इस प्रकार राजसूय में सम्पूर्ण पाँचों प्रकार के यागों को स्थान प्राप्त है । दीक्षा आदि प्रारम्भिक कृत्यों के अनन्तर एक वर्ष तक चातुर्मास्यों का सम्पादन प्रारम्भ रहता है जो दूसरे वर्ष फाल्गुन की प्रतिपदा को शुनासीरीय आहुति के साथ समाप्त होता है । तदनन्तर अनेक याग सम्पन्न कर चैत्र की प्रतिपदा को राजसूय का अति महत्त्वपूर्ण याग अभिषेचनीय सोमयाग होता है । इस याग में दुवसुवों को आठ आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं । मरुत्वतीय ग्रहों की आहुति के अनन्तर राजा का अभिषेक आरम्भ होता है । वह विभिन्न दिशाओं से आनीत जल के द्वारा अभिषिक्त तथा जनता के समक्ष राजा उद्घोषित किया जाता है ।

अश्वमेध याग सोमयाग होते हुए भी अश्व को मुख्य आहुति होने से इसको अश्वमेध संज्ञा है । इस याग में सोमाभिषव तीन दिनों तक चलता रहता है । अश्वमेध के प्रारम्भिक कृत्य जिनमें कतिपय इष्टियाँ, पशुयाग और होम सम्मिलित हैं, चैत्र की पूर्णिमा के दिन प्रारम्भ होते हैं । आगामी दिन अश्व को पोखर अथवा तडाग में खड़ा कर दिया जाता है । कतिपय अन्य कृत्यों की समाप्ति के अनन्तर अश्व को उन्मुक्त भ्रमण के लिए छोड़ दिया जाता है । चार सौ शस्त्रधारी उच्चकोटि के युवक अश्व के रक्षार्थ उसका अनुगमन करते हैं । अश्व एक वर्ष तक चतुर्दिक् भ्रमण करता है । अश्व की अनुपस्थिति के समय राजा को आख्यान एवं नराशंस x

सुनाये जाते हैं और इसकी सामरिक विजयों को वीणा पर गाया जाता है । इस अवधि में नित्य निष्क्रमण होम किये जाते हैं ।

अश्व के लौटने पर तीन सुत्या दिवसों की विधि समारब्ध होती है । प्रथम सुत्या दिन के कृत्य सामान्य विधि से सम्पादित किये जाते हैं । द्वितीय सवन दिन अति आवश्यक है । इस दिन अश्व को नहलाकर यूप में बाँधते हैं । राज-महिषी अश्व का अभिषेक करती हैं । यज्ञ में अश्व के अतिरिक्त 329 पालित पशु एवम् असंख्य वन्य पशु भी होते हैं । अश्व की प्रशंसा में सूक्त पढ़े जाते हैं ।

सवन के अनन्तर महिषी को उसके बगल लिटा दिया जाता है । उन्हें वस्त्राच्छादित कर दिया जाता है तथा यजमान एवम् ऋत्विज् दोनों के प्रति अश्लील-लार्थकमंत्र उच्चारित करते हैं । तदनन्तर ऋत्विजों के मध्य एक ब्रह्मोद्य (धार्मिक परिचर्या) होता है जिसमें यजमान भी भाग लेता है । ब्रह्मा एवम् होता में कूट मंत्रों का आदान-प्रदान होता है ।

शाङ्खायन श्रौतसूत्र (16/1/10-14) अश्वमेध की प्रकृति पर सम्पाद्यमान पुरुषमेध का वर्णन करता है जिसमें अश्व के स्थान पर पुरुष की बलि होती है । इसमें पाँच सुत्या दिवस होते हैं । सर्वमेध अश्वमेध एवम् पुरुषमेध पर आधारित होता है । इसमें दस सुत्या दिवस होते हैं ।

सोम याग चयन की मिश्रित विधि ब्राह्मणों एवम् यजुर्वेद के श्रौतसूत्रों में वर्णित है । शाङ्खायन श्रौतसूत्र (9/22-27) चयन-युक्त सोमयाग के नियमों का उल्लेख संक्षिप्त में करता है । चयन में भी मरुतों का वही स्थान है जो सोमयाग में सामान्यतः होता है ।

## गृह्यकर्मकाण्ड में मरुद्गण

यद्यपि गृह्यकर्मकाण्ड में मरुतों को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है, परन्तु वे पूर्णतः विस्मृत भी नहीं हुये हैं, जैसा कि निम्नलिखित कतिपय सन्दर्भों में स्पष्ट हो जायेगा ।

1. वैश्वदेवकर्म में मरुतों को द्वार पर बलि देने का विधान किया गया है ।[1]

2. हेमन्त और शिशिर के कृष्णपक्ष की अष्टमी को 'अष्टका' कर्म विहित है । इसमें पशु का आलभन कर उसके विभिन्न अंगों के भाग (अवदान) तथा श्रित अन्न विभिन्न देवों को निवेदित किये जाते हैं । इन देवों में आदित्यों, वसुओं और रुद्रों के साथ मरुतों को भी स्थान मिला है ।[2]

3. वार्षिक स्वाध्याय का प्रारम्भ अध्यायोपाकरण-कर्म से किया जाता है । इसके अन्तर्गत दधिमिश्रित धाना पुरोहित अग्नि के साथ-साथ मरुतों के सखा अग्नि निवेदित किये जाते हैं ।[3]

4. विवाह के कर्मकाण्ड में हविषों का निवेदन 'राष्ट्रभृत्' मन्त्र, अथवा जय या अभ्यातान-मंत्र में मरुतों का भी स्मरण किया गया है ।[4] अभ्यातान-मंत्र शत्रुओं को बाँधने वाला बताया गया है ।

---

1. शांगृ० 2/14/9
2. आश्व०गृ० 2/4/14, पारस्कर गृ० 3/3/6
3. आश्व०गृ० 3/6/7
4. पारस्कर गृ० 1/5/10

5. कृषि-कार्य के अन्तर्गत हल में बैल जोतते समय इन्द्र, पर्जन्य, अश्विनों, उदला-काश्यप, स्वातिकारि, सीता तथा अनुमति के साथ-साथ मरुतों को भी दधिधाना आदि निवेदित करने का विधान किया गया है ।[1]

6 पौष्ठपदा की पूर्णिमा को इन्द्र के लिये एक याग का विधान है । इसमें इन्द्र, इन्द्राणी, अज एकपद, अहि, बुध्य तथा प्रौष्ठपदाओं को आज्य की हविष् निवेदित कर लेने के बाद मरुतों के लिये बलि अश्वत्थ के पत्तों पर रखकर देने का विधान किया गया है ।[2]

7. ब्रह्मचर्य खंडित करने वाला ब्रह्मचारी गधे की खाल ओढ़कर एक साल तक भिक्षाटन करता हुआ और अपने अपराध का प्रख्यापन करता हुआ विचरण करता है । इसके बाद वह 'काम' के लिये दो आज्यहोम करता है । और तब अग्नि के पास आकर जिन देवों से श्री-समृद्धि की कामना करता है, उनमें सर्वप्रथम मरुतों का नाम है और इन्द्र, वृहस्पति तथा अग्नि उनके बाद आते हैं ।[3]

## अथर्वणिक कर्मकाण्ड में मरुद्गण

आर्थर्वणिक कर्मकाण्ड में मरुत्-सम्बन्धी सूक्तों और ऋचाओं के निम्नलिखित विनियोग द्रष्टव्य हैं,

---

1. पारस्कर गृ0 1/5/10

2. वही, 2/15/3

3. वही, 3/12/10

1. त्रितहविष् का निर्माण करते हुये इस मंत्र का विनियोग किया गया है ।[1]

अदारसृद्भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः ।
या नो विददमिभा यो अशस्तिमा नोविदद् वृजिनाद्वेष्या या ॥
अथर्व० सं० 1/20

'देव सोम' वह (हविष्) अखंडित हो, मरुतों इस यज्ञ में हम पर कृपा कीजिये, 'किसी का जादू-टोना हमें न पा सके, द्वेष्या बाधा हमें न पा सके ।'

2. निम्नलिखित मरुत्-सम्बन्धी मन्त्र का विनियोग बाधा दूर करने स्वस्त्ययन, सोते तथा जागते समय के लिये किया गया है[2] -

यूयं नः प्रवतो नपान् मरुतासूर्यत्वचसः ।
शर्म यच्छाथ सप्रथाः ॥ (अथ०सं० 1/26/3) ॥

'ऊँचाइयों के पुत्रों, हे सूर्य-सदृश त्वचा वाले मरुतों ! हमें विस्तृत सुरक्षा प्रदान करो ।'

3. पिपासा से पीड़ित रोगी की प्यास दूर करने के लिये निम्नलिखित दो मंत्र विनियुक्त हैं[3] -

इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् ।
एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन् मा तृषन् ॥

---

1. कौ०सू० 2/39
2. वही, 25/22, 50/4, 27/9
3. वही, 54/18

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वतीधत्तं पयो अस्मै पयस्वतीधत्तम् ।
ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमाप: ।।
अथ०सं० 2/29/4-5

'इन्द्र द्वारा दिया गया, वरुण द्वारा शिक्षित, मरुतों द्वारा भेजा हुआ यह उग्र हमारे पास आया है, हे द्यावा-पृथिवी, यह तुम्हारी गोद में भूखा प्यासा न रहे । ऊर्जस्वती तुम इसे पोषण प्रदान करो, पयस्वती तुम, इसे पय: प्रदान करो । द्यावापृथिवी ने, विश्वेदेवों ने, मरुतों ने और जल-राशि ने इसे पोषण प्रदान किया है ।' ये मन्त्र 'गोदान' तथा 'चूडा-कर्म' में भी विनियुक्त हैं ।[1]

4. शत्रु के संमोहन के लिये सूक्त 3/1 के अन्य मंत्रों के साथ मरुतों को सम्बोधित निम्नलिखित मंत्र भी विनियुक्त हैं[2] -

यूयमुग्रा मरुतईदृशे स्थाभिप्रेत मृणत सहध्वम् ।
अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे अग्निर्ह्येषां दूत: प्रत्येतु विद्वान् ।।
अथ०सं० 3/1/12

'हे मरुतों । ऐसे {शत्रु} के प्रति तुम उग्र हो, आगे बढ़ो, मारो कुचलो । वसुओं ने इन्हें {शत्रुओं को} मारा है, ये वश में हैं, इन्हें जानते हुये अग्नि दूत {बनकर} चले ।।

---

1. कौ०सू० 54/18

2. वही, 14/17{54}

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥
अथ०सं० 3/1/6

इन्द्र [शत्रु] सेना को संमोहित करे, मरुद्गण अपने ओज से इस [शत्रु सेना] को मारें । अग्नि इसकी आँखें निकाल ले, यह पराजित होकर लौटे ॥'

5. शत्रु-संमोहन में ही निम्नलिखित मंत्र भी विनियुक्त है[1] -

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना ।
तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् ॥
अथ०सं० 3/2/6

'हे मरुतों ! हमारे शत्रुओं की वह सेना, जो बलपूर्वक हमसे स्पर्धा करती हुयी चली आ रही है, ऐसे चकराने वाले अन्धकार से बींधो कि इनमें से एक दूसरे को न जान सके ॥'

6. राज्य-भ्रष्ट राजा को पुनः राज्य में प्रतिष्ठापित करने के लिये सूक्त 1/3 विनियुक्त है, जिसमें मरुतों को सम्बोधित निम्नलिखित मन्त्र भी है ।[2]

अचिक्रदत् स्वपा इह भुवदग्ने व्यचस्व रोदसी उरूची ।
युज्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आमुं नयनमसा रातहव्यम् ॥
अथ०सं० 3/3/1

---

1. कौ०सू० 14/17 [55]
2. वही, 16/30

'उसने उद्घोष किया, वह यहाँ स्वयं अपना रक्षक हो, हे अग्नि । (उसे) राजा के लिये (द्यावा-पृथ्वी) को विस्तृत रूप से अलग कर दो । समस्त समृद्धियों वाले मरुद्गण तुम (राजा) को (राज्य से) युक्त करें, हविष् प्रदान करने वाले इस (राजा को) नमनपूर्वक आगे ले चलो ॥'

यह मन्त्र चातुर्मास्य याग के साकमेध-पर्व में प्रातः अग्नि अनीकवन्त् को हविष् निवेदित करने में भी विनियुक्त है ।[1]

7. अथ० 1/12 को 'वास्तोष्पतीय' सूक्त कहा गया है और इसका विनियोग भवन-निर्माण सम्बन्धी कर्मकाण्ड में है ।[2] इस सूक्त में मरुतों से सम्बद्ध निम्नलिखित मन्त्र भी है ।

इमांशालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्निमिनोतु प्रजानन् ।
उक्षन्तूद्रा मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥
अथ०सं० 3/12/4

'सविता, वायु, इन्द्र, बृहस्पति इस शाला को जानते हुये इसे स्थिर करें। मरुद्गण इसे उर्वरक जल से सींचें, हमारे राजा भग इसमें कृषि का विस्तार करें ।'

8. वृष्टि की कामना के हेतु विहित एक याग में चतुर्थ काण्ड का पन्द्रहवाँ सूक्त विनियुक्त है ।[3] इस सूक्त की देवता पर्जन्य सहित मरुद्गण हैं ।

---

1. वैता०श्रौ० 9/2

2. कौ०सू० 8/23

3. वहीं 41/1 आदि ।

9. चतुर्थकाण्ड का 27वाँ सूक्त 'मृगार' -सूक्त कहा गया है और इसका विनियोग शान्ति-कर्म में किया गया है ।[1] यह मरुत् सूक्त है ।

10. षष्ट काण्ड का 22वाँ सूक्त मरुत्-सूक्त है । इसका विनियोग भैषज्य-कर्म के अन्तर्गत जलोदर आदि रोगों के शमन में किया गया है ।[2] इसके अतिरिक्त चातुर्मास्य में भी यह सूक्त क्रीडी मरुतों को सम्बोधित है ।[3]

11. घोड़े (वाजी) की दौड़ में सफलता के लिये विहित कर्म में निम्नलिखित मन्त्र विनियुक्त है[4]-

वातरंहा भववाजिन् युज्यमान इन्द्रस्य याहि प्रसवे मनोजवाः ।
युंजन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस आ ते त्वष्टा पत्सुजवं दधातु ॥
अथ०सं० 6/92/1

'वायु-सदृश वेगवान् हे वाजी । युक्त होकर तुम इन्द्र की प्रेरणा से आगे बढ़ो । समस्त समृद्धि वाले मरुद्गण तुम्हें मुक्त करें, त्वष्टा तुम्हारे पैरों में वेग भरे॥

12. दुष्टस्त्रीवशीकरण-कर्म में अन्य मंत्रों के साथ मरुतों को सम्बोधित यह मंत्र भी है[5]ऽ

उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय ।
अग्न उन्मादया त्वमसौ मामनु शोचतु ॥ अथ० 6/130/4

---

1. कौ०सू० 9/1
2. वही, 30/11
3. वै०श्रौ० 9/5
4. कौ०सू० 41/21
5. वही, 36/13

13. सप्तम काण्ड का 66वाँ सूक्त ऋचात्मक है और मरुत् सूक्त है । इसका विनियोग 'अभिचार कर्म में' किया गया है ।[1]

14. उपनयन कर्म में ब्रह्मचारी की नाभि का स्पर्श करते हुए इस मंत्र का विनियोग किया गया है ।[2]

उदेनं भगो अग्रभीदुदेन सोमो अंशुमान ।
उदेनं मरुतोदेवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥
अथर्व0 8.1.2

---------::0::---------

1. कौ0सू0 48/38
2. वही, 55/17

## मरुद्गण का अन्य देवों से सम्बन्ध

मरुतों के स्वरूप के विषय में विद्वज्जनों की धारणा के विकास-क्रम को सम्यक रूप से समझने के लिए अन्य वैदिक देवों के साथ उनके सम्बन्धों पर विचार करना नितान्त आवश्यक है । इसमें न केवल उनके स्वरूप-विकास को समझने में अपितु वैदिक देवों के बीच उनके बढ़ते-घटते महत्व का ठीक-ठीक लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में भी सहायता मिलने की सम्भावना है । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर विभिन्न देवों के साथ इनके सम्बन्ध पर विचार किया जा रहा है ।

मरुद्गण मुख्य रूप से रुद्र, इन्द्र और अग्नि के साथ स्तुत हुए हैं परन्तु त्रित आप्त्य के साथ भी इनके कुछ सन्दर्भ प्राप्त हैं । सम्पूर्ण देवगण के सामूहिक रूप की जो परिकल्पना 'विश्वेदेवा:' के नाम से हुई है उसमें मरुतों का स्थान ध्यान देने योग्य है । किन्हीं रूपों में वायु अथवा वात से सादृश्य रखने वाले मरुद्गण किस प्रकार इससे भिन्न है यह भी विचारणीय विषय है । अतः उपर्युक्त प्रत्येक देवता के साथ इनके सम्बन्ध पर अलग-अलग निम्नलिखित रूप में विवेचन किया जा रहा है।

### मरुद्गण और रुद्र

रुद्र को मरुतों का पिता कहा गया है[1] और मरुतों को प्रायः रुद्र की सन्तान कहकर सम्बोधित किया गया है (रुद्रा:, रुद्रिया:, रुद्रास:) ।[2] इससे रुद्र के साथ मरुतों का घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट है । परन्तु इस सम्बन्ध के अतिरिक्त रुद्र

---

1. 'पितर्मरुताम्' ऋ०सं० 1.114.9, 2.33.1; 'पित्र मरुताम्' ऋ०सं० 1.114.6; 'मरुतां पिता' अथ०सं० 5.24.110

2. ऋ०सं० 1.64.2, 12, 85; 2.34.7; 5.42.15; 6.50.4; 66.11; 8.20.17 आदि ।

और मरुतों के साहचर्य के और कोई संकेत नहीं मिलते हैं। वस्तुतः ऋक् संहिता में रुद्र सम्बन्धी पूरे-पूरे सूक्त केवल तीन ही हैं[1] और एक सूक्त में रुद्र के साथ सोम का स्तवन है।[2] ऐसी ही स्थिति अथर्व-संहिता में भी है। यजुः-संहिता में 'शत-रुद्रीय' (अध्याय 16) में रुद्र के स्वरूप का विकास दिखाई देता है। इसमें भी मरुतों के साथ रुद्र के साहचर्य विषयक संकेत नहीं हैं। इस अध्याय की कण्डिका 54 से 66 तक रुद्राः की चर्चा की गयी है। परन्तु प्रसंग से यह प्रतीत नहीं होता कि यहाँ "रुद्राः" से रुद्र-संतान मरुद्गण अभिप्रेत है, अपितु रुद्र के सर्वव्यापी रूप की कल्पना ही इस बहुवचन प्रयोग से प्रतीत होती है।

रुद्र एवं मरुतों के पिता-पुत्र सम्बन्ध की कल्पना इनके स्वरूप के किन्हीं विशिष्ट साम्यों के आधार पर ही हुई होगी। उपलब्ध सामग्री के आधार पर ये साम्य निम्नलिखित प्रतीत होते हैं।

रुद्र एवं मरुतों की स्वरूप-कल्पना में सबसे बड़ा साम्य इनका स्वर्ण-वर्णत्व है। ये सूर्य या स्वर्ण के समान द्युतिमान और भास्वर कहे गए हैं। रुद्र के लिए कहा गया है कि वह (रुद्र) जो चमकीले सूर्य के समान एवं स्वर्ण के समान चमकता है, जो देवों का श्रेष्ठ वसु है।[3] एक अन्य मन्त्र में ऋषि कुत्स अंगिरस के शब्दों में "हम द्युलोक के अरुष वर्ण वाराह का नमस्कार सहित आवाहन करते हैं जो कपर्दी (घुंघराले केशों वाला) दीप्तियुक्त रूप वाला है।[4]

---

1. ऋ०सं० 1.114; 2.33 तथा 46.1
2. ऋ०सं० 1.43
3. यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः।
   ऋ०सं० 1.43.5।
4. दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपंनमसा निह्वयामहे। ऋ०सं० 1.114.5

रुद्र को निष्क नामक स्वर्णाभूषण से भी अलंकृत कहा गया है ।[1] निष्क के अतिरिक्त रुद्र अनेक स्वर्णाभरणों से दीप्त कहे गए हैं ।[2] एक अन्य स्थल पर रुद्र का विद्युत् से घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुए उन्हें विद्युत् सरीखे चमकते हुए आयुध को धारण करने वाला बताया गया है ।[3] इसके अतिरिक्त रुद्र के बभ्रु अर्थात् भूरे रंग का वर्णन प्राय: मिलता है ।[4]

मरुतों के लिए प्रयुक्त सूर्यत्वच:, अभिध्रव:, शुभ्रा:, हिरण्यया: जैसे विशेषण तथा अग्नया न शुशुचाना:, द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त, व्यभ्रिया न द्युतयन्त: जैसी उपमाओं को देखने से रुद्र मरुतों का अग्नि से घनिष्ठ सम्बन्ध द्योतित होता है । अग्नि के साथ इनके सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हुए ऋषि गृत्समद् कहते हैं "हे अग्नि । तुम द्युलोक का महान् असुर रुद्र हो, तुम मरुतों का समूह हो, तुम हविष् आदि का स्वामित्व करते हो ।[5] अथर्व संहिता में कहा गया है, कि जो रुद्र अग्नि में, जलों में, औषधियों और वनस्पतियों में प्रविष्ट है जिसने समस्त

---

1. अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन् निष्कं यजत विश्वरूपम् । ऋ०सं० 2.33.10
2. स्थिरेभिरङ्गै: पुरुरूप उग्रो बभ्रु: शुक्रेभि: पिपिशे हिरण्यै: ।ऋ०सं० 2.33.।
3. या तो दिद्युववसृष्टा दिवस्परिक्ष्मया चरितपरि सा वृणक्तु न: ।
   ऋ०सं० 7.46.3
4. ऋ०सं० 2.33.5 आदि ।
5. त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
   ऋ०सं० 2.1.6

भुवनों को सजाया है उस रुद्र अग्नि के लिए नमस्कार है ।[1] तैत्तिरीय-संहिता में सतरुद्रीय होमविधि के संदर्भ में स्पष्ट कहा गया है कि यह जो अग्नि है वह रुद्र ॥ही॥ है ।[2] ऋग्वेद संहिता में रुद्र शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में अनेक ऋचाओं में प्रयुक्त हुआ है ।[3] एक अन्य स्थल पर मरुतों को अग्नि से उत्पन्न ॥प्रादुर्भूत॥ कहा गया है ।[4]

अतः स्पष्ट है कि अग्नि वर्ण होने के कारण रुद्र और मरुत घनिष्ट रूप से सम्बद्ध हुए और उनकी पिता-पुत्र के रूप मे कल्पना की गयी ।

2. ऋषि कण्व घौर जलाषभेषज रुद्र के ॥ठण्डक पहुँचाने वाला॥ सौमनस्य की कल्पना करते हैं ।[5] अंगिरस ऋषि हाथ में स्पृहणीय भेषज धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार करते हैं ।[6] ऋषि गृत्समद् रुद्र से प्रार्थना करते हैं कि 'हे रुद्र । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त कल्याणतम् भेषजों द्वारा मैं सौ वर्षों का उपभोग करूँ[7] क्योंकि भेषज के कारण तुम स्तुत हो ।[8] और मैं तुम्हें भिषजों से भिशक्त सुनता हूँ ।[9] ऋषि वशिष्ठ

---

1. यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मैरुद्रायनमो अस्त्वग्नये ॥ अथर्व0सं0 7.87.।
2. रुद्रो वा एष यदग्निः । तै0सं0 5.4.3.1; 5.5.74;
3. ऋ0सं0 1.27.10, 3.2.5, 4.3.1, 5.3.3, 8.61.3
4. अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च । ऋ0सं0 1.71.8
5. गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाष-भेषजं । तच्छयोः सुम्नमीमहे । ऋ0सं0 1.43.4
6. हस्ते विभद् भेषजा वार्याणि, ऋ0सं0 1.114.5;
7. त्वादत्ते भी रुद्र शतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः । ऋ0सं0 2.332;
8. स्तुत्वं भेषजा ऋ0सं0 2.33.12
9. भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि । ऋ0सं0 2.33.4

के शब्दों में 'हे सरलतया प्राप्य रुद्र । तुम्हारे ःअधिकार मेंः सहस्रों भेषज हैं ।[1] अथर्ववेद संहिता में भी रुद्र के इन प्रमुख वैशिष्ट्य का उल्लेख है ।[2]

रुद्र की वैदिक देवताओं में वर्णित यह विशेषता मरुतों में भी बताई गई है। ऋषि गृत्समद् के शब्दों में "हे मरुतों । हे शक्तिशालियों । तुम्हारी जो जो शुचि और शंतम तथा आरोग्य प्रदान करने वाली भेषज है वे ःभेषजः जिनका वरण हमारे पिता मनु ने किया है उन्हें मैं कल्याण और सुख के लिए रुद्र से चाहता हूँ ।[3]

मरुतों के इस आरोग्यकारी स्वभाव का वर्णन अन्य दूसरे स्थल पर भी मिलता है । ऋषि सौभारि कण्व मरुतों से प्रार्थना करते हैं -

'हे शोभनदाता, सर्पणशील, सखा मरुतों । तुम हमें मरुत्संबन्धी भेषज प्राप्त कराओ । ----------- उनका हमें वर दो, हे मरुतों । हमारे मध्य विद्यमान रोगी की चोट ःभरपःः का शमन कर घाव को पुनः पूर्ण कर दो ।[4]

---

1. क्वस्यते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः । ऋ0सं0 2.33.7
2. रुद्र जलाष भेषज नीलशिखण्ड कर्मकृत् । अथर्व0सं0 2.27.6
3. या वः भेषजा मरुतः शुचीन या शंतमा वृषणो यामयोभु ।
   यानि मनुरवृणीतापितानस्ताशंचयोश्चरुद्रस्य वाश्मि ॥ ऋ0सं0 2.33.13
4. मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।
   सूर्य सखायः सप्तयः ॥

   यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुताः सुबर्हिषः ।
   यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥

   विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तना नो अधिवोचत ।
   क्षमारवो मरुतः आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥

   ऋ0सं0 8.20, 23, 25, 26.

मरुतों का यह भेषज्य रूप संभवतः उनकी दी हुई वृष्टि द्वारा प्रकट होता है जैसा कि श्यावाश्व आत्रेय की इस ऋक् से लक्षित होता है -

हे मरुतों ! जब तुम प्रातःकाल स्वास्त्य धन, जल और भेषज की वृष्टि करते हो तब हम तुम्हारे साथ हैं ।[1] परन्तु यदि वृष्टि ही भेषज है तो रुद्र का वृष्टि के साथ सम्बन्ध कहीं वर्णित नहीं हुआ, यहाँ तक कि अथर्ववेद संहिता में वृष्टि प्राप्ति के लिए जो सूक्त है[2], उनमें रुद्र की चर्चा न होकर मरुतों की ही है ।

3. रुद्र का सम्बन्ध प्रमुख रूप से उग्रता, भयंकरता क्रोध और विनाशकारिता से है । वे द्युलोक के अरुष वराह[3], द्युलोक के महान् असुर[4], व्याघ्र सदृश भयंकर, मारने वाले उग्र[5] हैं । वे वज्रबाहु और शक्तिशालियों में सर्वाधिक शक्तिशाली[5] है। रुद्र की इस उग्र भयंकर उग्रवादिता के फलस्वरूप उनसे बार-बार प्रार्थना की गई है कि वे अपने भयंकर क्रोध में अपने उपासकों की सन्तानों, पुत्रों, आयुष, गायों, अश्वों, वीरों आदि पर अपने आयुध का प्रहार न करें ।[7]

---

1. वृष्टवी शंयोसप उस्रि
2. 'दिवो वराहमरुषम
3. रुद्रो असुरो महोदिवः । ऋ0सं0 2.1.6
4. मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्' । ऋ0सं0 2.33.1
5. तवस्तमस्तवसांवज्रबाहो । ऋ0सं0 2.33.3
6. न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति । ऋ0सं0 2.33.10
7. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुतमान उक्षितम् ।

अपनी इस उग्र भयंकर उग्रता को अपने उपासकों से दूर रखने और उनके शत्रुओं पर इसकी वर्षा करने के कारण रुद्र (मीढ्वः - कल्याणकारी) बन जाते हैं और यही इनका 'शिव' रूप खूब प्रसरित हुआ है ।

ओजस्विता और उग्रता तो मरुतों के प्रधान गुण हैं । पूरे वैदिक वाड्मय में जहाँ - जहाँ 'प्रचण्ड वेग' और 'ओजस्' का स्मरण किया गया है वहाँ-वहाँ मरुद्गण का स्मरण स्वतः हो जाता है । उनकी उग्रता कदाचित क्रोध के रूप में प्रकट होती है और वे क्रुद्ध सर्प से बन जाते हैं[1] और आयुध का प्रहार करते हैं । और इनसे अपने आयुध को दूर रखने तथा अश्वों को मुक्त करने की याचना की गई है ।[2] इनके आयुध गायों और अश्वों के हन्ता हैं[3] । अतः दूर रखने की प्रार्थना की गई है ।

परन्तु इस प्रसंग में स्मरणीय है कि रुद्र की उग्रता, भयंकरता और विनाशकारिता वृत्ति आदि देव-शत्रुओं को मारने में प्रवृत्त परिलक्षित नहीं होती, जबकि मरुद्गण वृत्त के वध में प्रमुख सहायक बने । सम्भवतः वृष्टि से सम्बन्ध होने के कारण

---

5. का शेष - मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मानः प्रियास्तन्वोशीरिषः ।
मा नस्तोके तनये मा न आयुषिमानोगोषु मानो अश्वेषुरीरिषु ॥

मानस्तोके तनये मा न आयुषिमानोगोषुमानो अश्वेषुरीरिषुः ।
मा नो वीरान् रुद्रभामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥
ऋ०सं० 1.114.7, 8

1. अहिमन्यवः, ऋ०सं० 1.64.8 आदि ।
2. नि हलाधत्त वि मुचध्वमश्वान् - ऋ०सं० 1.171.1
3. आरे गोहा नृहावधो वो अस्तु - ऋ०सं० 5.56.17

मरुतो की भयंकरता अधिक कल्याणकारिणी बन गई और रुद्र के समान इसमे अप-कारिता का अंश जन समुदाय के लिए अत्यल्प रह गया । इन्हीं समानताओं के कारण मरुद्गण रुद्र से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हुए और मरुतों का बहुसंख्यक तथा रुद्र का एकत्व इनके पिता-पुत्र कल्पना का आधार बना । रुद्र ने मरुतों को 'पृश्नि' के 'शुक्र उन्धस्' से जन्म दिया ।[1] मरुद्गण रुद्र के अनुयायी बने और रुद्र को वृषभो मरुत्वान्'[2] अथवा 'रुद्रो मरुत्वान्' कहा गया ।[3]

परन्तु रुद्र की यह घनिष्ठता क्रमशः धूमिल होती गई । रुद्र का स्वर्ण वर्ण दब सा गया और ताम्र वर्ण के रूप में विकसित हुआ । इससे भी अधिक वे नील लोहित वर्ण से संयुक्त होकर नीलग्रीवो विलोहितः[4] के रूप में पहचाने गये तथा इनके उदर को नील और पृष्ठ लोहित बताया गया ।[5] इन्हें नील शिखण्ड भी कहा गया ।[6] इनका भयंकर विनाशकारी रूप अधिकाधिक भास्वर होता चला और वे ठगों, चोरों, डाकुओं आदि से भी सम्बद्ध रहे ।[7] इनका जलाषभेषज रूप अवश्य

---

1. रुद्रो यद्वोमरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ ऋ0सं0 2.34.2
2. ऋ0सं0 2.33.6
3. ऋ0सं0 1.114.1
4. असौ यस्ताम्रो अरुण उतबभ्रुः सुमङ्गल - यजु0सं0 16.6
5. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः - यजु0सं0 16.7
6. नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् - अथर्व0सं0 15.1.7
7. रुद्र जलाषभेषजनीलशिखण्ड कर्मकृत् । अथर्व0सं0 2.7.6

स्थायी बना रहा और विनाशकारिता के प्रतिपक्ष को सम्बद्ध कर इनके 'शिव' 'शंकर' रूप का प्रस्फुटन हुआ । वृष्टिकर्म के साथ सम्बद्ध होने से मरुद्गण सोमपान के अधिकारी बने रहे और लोकोपकारक रूप अधिक भास्वर हुआ ।

तैत्तिरीय संहिता में एक स्थान पर कहा गया है कि जैसे आदित्य वसुओं से सम्बद्ध है वैसे ही रुद्र मरुतों से सम्बद्ध है ।[1] जैमिनीय ब्राह्मण में भी मरुतों को रुद्राः नाम से स्मरण किया गया है ।[2] सोमयाग के अग्निमारुत-शस्त्र में रुद्र सम्बन्धिनी ऋक् के बाद मारुत सूक्त रखा गया है । इनका व्याख्यान करते हुए ब्राह्मण (कौषीतकि) में कहा गया है कि मरुद्गण रुद्र के अनुयायी हैं अतः रुद्र के पश्चात् मरुद्गणों के स्मरण से यह कर्म समृद्ध होता है ।[3]

वैदिक यज्ञ में भयंकर प्रवृत्तियों के कारण रुद्र को कोई प्रमुख स्थान नहीं मिला । पशुयाग में भी पशु की रक्त-सिक्तअंतड़ियाँ ही उनके भाग में आयीं ।[4] गृहयोगों में भी देवों को हविष् प्रदान करने के बाद बचा खुचा भाग ही रुद्र को मिला ।[5] अग्निष्टोम में भी वे माध्यन्दिन सवन में मरुत्वतीय शस्त्र में तथा तृतीय सवन में अग्निमारुत शस्त्र में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाये रहे ।

---

1. यथादित्या वसुभिः संबभुवर्मरुद् भीरुद्रा समजानताभि । तै०सं० 2.1.11
2. अथ रुद्रा कृततरं पन्थानपपश्यन् । जै०ब्रा० 2.209
3. मारुतं शंसत्येतत्पूगोवेरुद्रस्तदेनं स्वेन पूगेन समर्धयति । कौ०ब्रा० 7
4. शां०श्रौ०सू० 4.19.8
5. गोभि०गृ०सू० 1.8.28; आप०धर्म०सू० 2.4.33 आदि ।

<u>मरुद्गण और अग्नि</u>

ऋग्वेद संहिता में द्वितीय मंडल के प्रथमसूक्त में अग्नि का सभी प्रमुख देवों के साथ सम्बन्ध बताते हुए, रुद्र और मरुतों के साथ भी उनके तादात्म्य की चर्चा हुई है। परन्तु मरुतों के सम्बन्ध में यह तादात्म्य सामान्य प्रकार का ही नहीं प्रत्युत मरुतों को जन्म देने का श्रेय अग्नि को भी दिया गया है। ऋषि पाराशर शाक्त्य के शब्दों में अग्नि ने (मरुतों के) अनवद्य, युवक तथा सम्पन्न दल को जन्म दिया और प्रेरित किया।[1] ऋषि भरद्वाज के शब्दों में (अग्नि ने मरुतों के दल को गढ़ा (ततक्ष))।[2] ऋषि मेधातिथि काण्व मरुतों को विद्युत के हास्य से उत्पन्न बताते हैं।[3] मरुतों के इस प्रकार के अग्नि के साथ प्रदर्शित सम्बन्ध उनकी घनिष्ठता के द्योतक हैं।

ऋग्वेद संहिता में पूरे दो सूक्तों में अग्निमरुतों का (आग्नामारुत:) एक साथ आह्वान तथा स्तवन किया गया है। ये सूक्त हैं - प्रथम मण्डल का उन्नीसवाँ तथा पंचम मंडल का साठवाँ सूक्त।[4] इन सूक्तों के अतिरिक्त अनेक ऋचायें अग्नः मरुत: को सम्बोधित हैं। इनमें प्रथम मण्डल के उन्नीसवें मण्डल की टेक है (मरुद्भिरग्न आगहि' और इस सूक्त में अग्नि को मरुतों के साथ आकर सोमपान के लिए

---

1. अग्नि: शर्धमनवद्य युवानं स्वाध्यजनयत् सूदयत्च। ऋ०सं० 1.71.8
2. शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष। ऋ०सं० 6.3.8
3. हस्काराद् विद्युतस्पर्य तो जाता अवन्तु न:।
   मरुतो मृळयन्तु न:॥ ऋ०सं० 1.23.12

4. पंचम मण्डल के 60वें सूक्त के देवता मरुत: 'आग्नमारुतोवा (सर्वानुक्रमणी) बताये गये हैं परन्तु सूक्त के विषय को देखते हुए यह आग्नमारुत सूक्त ही प्रतीत होता है।

बुलाया गया है । सूक्त में मरुतों की ओजस्विता के कारण अधृष्टा ‖आधृष्टास ओजसा‖ उग्र 3 युद्ध गान करने वाले ‖ये उग्रा अर्क मानृचुः‖ शुभ्र भयंकर रूप वाले, सुन्दर शासन वाले, शत्रुओं का भक्षण करने वाले ‖ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः‖ द्युलोक में दृश्यमान, आकाश के ऊपर प्रकाश के लोक में विराजमान ‖ये‖ नाकस्याधिरोचनेदिवि देवास आसते‖ चंचल समुद्र में पर्वतों जैसी ऊँची तरंग उठाने वाले ‖य ई० खयन्ति पर्वतान् तिरः ‖समुद्रमर्णवम्‖ अपने ओज से तथा अपनी रश्मियों द्वारा समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष में फैलने वाले ‖आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्र-मोजसा‖ कहा गया है । इस समस्त वर्णन से मरुतों का दीप्तियुक्त प्रकाशमय रूप सामने आता है और यही अग्नि के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण प्रतीत होता है ।

पंचम मण्डल के साठवें सूक्त में भी अग्नि के साथ-साथ मरुतों का स्तवन किया गया है और अग्नि को मरुतों के साथ आकर सोमपान करने का आह्वान किया गया है । इस सूक्त में मरुतों को रुद्राः भी कहा गया है । मरुतों के लिए कहा गया है कि उग्र मरुतों के भय से वन झुक जाते हैं पृथ्वी और पर्वत काँप उठते हैं ।[1] इनके निनाद से पर्वत ‖मेघ‖ भय खाता है, द्युलोक का शिखर भी काँप उठता है साथ-साथ क्रीडा करते हुए ये मरुद्‌गण जलधाराओं से दौड़ पड़ते हैं[2], इन ‖मरुतों‖

---

1. वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया, पृथिवी चिद् रेजते पर्वतश्चित् ।
ऋ०सं० 5.60.2

2. पर्वतश्चिन् महि वृद्धो वृद्धोबिभाय, दिवश्चित सानु रेजत स्वन वः ।
यत् क्रीळथ मरुतऋष्टिमन्त आप इव सध्यञ्चो धवध्वे ॥
ऋ०सं० 5.60.3

ने वरों के समान अपने शरीरों को स्वर्णालंकारों से अलंकृत किया है । श्रीयुक्त ‡मरुतों ने‡ और भी अधिक श्री के लिए अपने रथों पर बलशाली, अपने शरीरों पर महती दीप्ति धारण की है ।[1] इसमें न कोई ज्येष्ठ है और न कोई कनिष्ठ, ये सौभाग्य हेतु साथ-साथ सुखपूर्वक बढ़े हैं । इनके पिता रुद्र अपनी सक्रियता से युवक हैं, पृश्नि के प्रति सदैव कृपालु और सुदुधा ‡समृद्धि का दोहन करने वाली‡ है । मरुतो के लिए कहा गया है कि, 'हे सुभग मरुतो । तुम चाहे उत्तम ‡लोक‡ में हो या मध्यम में अथवा निम्न द्युलोक में हो ‡तुम जहाँ भी हो वहाँ से, हे रुद्रों तथा अग्नि हमारे इस हविष् को जानो ।

उपर्युक्त सूक्तों के अतिरिक्त ऋग्वेद संहिता के तृतीय मंडल में कोई मरुत् सूक्त नहीं है तथा छब्बीसवें सूक्त की पहली तीन ऋचाएँ वैश्वानर अग्नि को सम्बोधित हैं और इसके बाद की तीन ऋचाएँ ‡4-6‡ तक मरुतों के लिए हैं । इन मारुती ऋचाओं में मरुतों को अग्नय: ‡ऋ0 4‡ अग्निश्रिय: - ऋक् 5 और ऋक् 6 में 'अग्ने भूमि मरुतामोजमीमहे कहा गया है । स्पष्ट है कि ऋषि विश्वामित्र की दृष्टि में भी अग्नि मरुतों का घनिष्ठ सम्बन्ध है । इसी प्रकार षष्ठम् मण्डल के अड़तालीसवें सूक्त में ऋक् ।-। अग्नि को और बाद की ऋक् ।।-15 मरुतों को सम्बोधित है । अत: स्पष्ट है कि भरद्वाज परिवार की दृष्टि में भी यही स्थिति है ।

अग्नि के साथ मरुतों के सम्बन्ध निम्न तथ्यों से भी अधिकाधिक द्योतित होते हैं । ये तथ्य हैं - मरुतों का प्रकाश, दीप्ति और विशेषत: विद्युत् से सम्बद्ध।

---

।. वराइवरैवतासा हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्व: पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसि स्तवसो रथेषु सत्रामहांसि चक्रिरे तनूषु ।।
ऋ0सं0 5. 60. 4

समस्त मरुत् सम्बन्धी सूक्तों में ये विशेषताएँ पदे-पदे प्रदर्शित की गई हैं । जैसा कि ऊपर वर्णित है - मरुतों के लिए आग्नय:, अग्निश्रिय:, शुचय:, शुभ्रा:, चित्रभानव:, स्वभानव:, स्वर्का:, शुशुचान:, हिरण्यया:, भ्राजज्जन्मान:, शुचिजन्मान:, सूर्यत्वच:, अभिद्यव: जैसे विशेषणों का प्रयोग और इसी प्रकार के विशेषणों की बहुतायत उनके दीप्तियुक्त पक्ष को उनका प्रमुख लक्षण सिद्ध करते हैं । मरुतों के जिन भास्वर आभूषणों की बहुशः चर्चा 'गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषुशुभ्रादधिरे विरुक्तत:'[1] भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभि:[2], विभ्राजन्ते रुक्मासो अधिबाहुषु[3], ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानव: स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु । श्राया रथेषु धन्वसु[4], शिप्रा शीर्षसु वितता हिरण्ययी: आदि अनेकानेक पंक्तियों में मिलती हैं, ये आभूषण वस्तुत: विद्युत का ही पर्याय है । जैसा कि ऋषि श्यावश्व आत्रेय के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि 'इन ऊँचे कद वाले, रुक्मों तथा आयुधों से सुसज्जित नरों (मरुतों) ने अपने भाले चलाये, इन मरुतों के पीछे द्युलोक की प्रभा चमचमाती विद्युत के समान स्वयं चली आयी । इस प्रकार के अनेकशः उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनमें मरुतों के आभूषण और आयुध विद्युत का ही शब्दान्तर से पर्यायपन प्रतीत होते हैं । यह विद्युत ही इन्द्र का वज्र है और यही मरुतों का अनीक् है ।[5]

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अग्निमरुत की चर्चा का उल्लेख हुआ है । यहाँ मरुद्गण को वैश्वानर अग्नि का अनुगामी बताया गया है । कहा गया है कि वैश्वानर क्षत्रिय

---

1. ऋ०सं० 1.85.3
2. वही, 8.57.3
3. वही, 8.20.11
4. वही, 5.53.4
5. द्रष्टव्य - इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकम् । ऋ०सं० 6.47.28

हैं और मरुद्गण वैश्य । जैसे वैश्य क्षत्रिय का अनुगमन करते हैं ऐसे ही मरुद्गण वैश्वानर का अनुगमन करते हैं ।[1]

सोमयाग में तृतीय सवन का अन्तिम शस्त्र 'आग्निमारुतशस्त्र' होता है । इसमें मुख्यत: अग्नि और मरुद्गण स्तुत होते हैं । यह शस्त्र भी अग्नि के साथ मरुतों के घनिष्ठ साहचर्य का परिचायक है । इस शस्त्र में ऋग्वेद संहिता के निम्नलिखित मरुत्सूक्त विनियुक्त हैं[2]

1. 37,38,64,85,86,87
2. 34 ;  5. 54,55,57,59
3. 56, 57

इनके अतिरिक्त अन्य प्रायश्चित्तियों इष्टियों आदि में अग्नि मरुतों का सम्यक् सम्बन्ध प्राप्त होता है । अग्नि के साथ मरुतों का घनिष्ठ सम्बन्ध सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है और जैसे रुद्र के साथ मरुतों का सम्बन्ध आगे चल कर धूमिल सा हो गया वैसा अग्नि मारुत सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता है ।

---

1. क्षत्रं व वैश्वानरो विश्मारुता: क्षत्रं च तद्विशं करोति वैश्वानरं पूर्वं जुहोति क्षत्रं तत्कृत्वा विशं करोति । ----- एक एष भवति । एकस्थं तत्क्षत्रमेकस्थां श्रियं करोति बहव इतरे विशि तद् भूमानं दधाति ॥ श०ब्रा० 9.3.1.13-14

2. अग्निमारुतशस्त्र में इन सूक्तों के विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य - द्रष्टव्य डा० एम०पी० लखेड़ा 'Srauta & Viniyoga of the Mantras of the Rgveda Sanhita'Ch. 2डी०फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत अनुसन्धान प्रबन्ध ।

## मरुद्गण और वायु या वात

ऋग्वेद संहिता में मात्र दो स्थानों पर वायु के प्रसंग में मरुतों का उल्लेख है। एक स्थान पर वायु ने मरुतों को द्युलोक के गर्भ से जन्म दिया[2] तथा द्वितीय स्थान पर मरुतों से युक्त कहा गया है।[3]

वायु के लिए ऋग्वेद संहिता में एक पूर्ण सूक्त है।[4] जिसमें वायु सोमपान के लिए बुलाये गये हैं। यहाँ वायु 'इन्द्रसारथिः' कहे गये हैं तथा (इन्द्र) उन्हीं के साथ ही उनका आह्वान किया गया है। 'वात' के लिए ऋग्वेद संहिता में पूरे 2 सूक्त 168 तथा 186 हैं जो क्रमशः 4 व 3 ऋक् वाले हैं। सूक्त 168 में इन्हें 'अपां-सखा' कहा गया और इनके गम्भीर निनाद की चर्चा की गई है।

इन सूक्तों के अतिरिक्त अन्य देवों के सूक्तों के साथ वायु या वात की जो चर्चा हुई है, उनमें एक स्थान पर वायु को 'क्रन्ददिष्टि'[5] कहा गया है।

---

1. वायु और वात में सूक्ष्म स्वरूप भेद प्रतीत होता है। मैक्डोनेल के अनुसार वायु वस्तुतः देवता हैं और वात केवल भौतिक पदार्थ है। (द्रष्टव्य Vadic Mythology Page 82) परन्तु अवेस्ता में वायु यजतों (पूज्यों) में है और वात का स्थान दसवों (देव विरोधियों) में है। इससे और ऋक्संहिता में वायु और वात के अलग-अलग वर्णन से प्रतीत होता है कि वायु शीतरूप तथा वात भयंकर रूप के प्रतीक हैं।

2. अजनायो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ऋ०सं० 1.134.4

3. पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे। ऋ०सं० 1.142.12

4. ऋ०सं० 4.4.6

5. प्र वायवे शुचिये क्रन्ददिष्टये। ऋ०सं० 10.100.2

संभवत: वात के लिए कहा गया है कि इनका प्रचण्ड वेग ध्राजि: ही परिलक्षित होता है रूप नहीं ।[1] प्राय: विभिन्न देवों के वेग की उपमा वात से दी गई है, यथा - इन्द्र के लिए 'वातो न जूत:'[2] अश्विनों के लिए - 'वातस्य पत्मन रथस्य पुष्टौ'[3] आदि ।

ऐतरेय ब्राह्मण में एक आख्यान के अनुसार 'राजा सोम के प्रथम पान के विषय में देवगण एक मत न हुए, प्रत्येक ने अभिलाषा प्रकट की, पहले मैं पीऊँगा, पहले मैं पीऊँगा, एक मत होने के लिए उन्होंने कहा, 'आओ, हम दौड़ें, इस प्रकार जो दौड़ में जीते वही पहले सोम पान करे ; 'ऐसा ही हो' वे दौड़े, दौड़ते हुए उनमें पहले 'वायु' सबसे आगे हो गये । तत्पश्चात् क्रमश: इन्द्र मित्र और वरुण तथा अश्विनौ ।[4] वायु देवों में सर्वाधिक वेगवान हैं ऐसा शतपथ ब्राह्मण में भी बार बार आया है ।[5]

मरुतों का निनाद और गर्जन इनके स्वरूप का बहुत बड़ा वैशिष्ट्य है । निनाद और वेग इन दो गुणों में वायु और मरुद्गण समान हैं क्योंकि अनेक स्थानों पर मरुतों को वायुओं के साथ वायुभि: कहा गया है । जैसे - 'उदीरयन्त

---

1. ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् । ऋ0सं0 1.164.44
2. ऋ0सं0 4.17.12; 9.97.52.।
3. ऋ0सं0 5.41.3
4. ऐ0ब्रा0 2.25
5. 'वायुर्वैक्षेपिष्ठादेवता' श0ब्रा0 8.5.19; 13.1.2.7 आदि ।

वायुभिर्वाश्रास: पृश्निमातर: '[1], 'स्वपन्ति मरुतो मिहं प्रवेपयन्ति पर्वतान् । यद् यामं यान्ति वायुभि:'[2], 'उदुस्वानेभिरीरत उदरथैरुदु वायुभि: । उत्तोमै: पृश्निमातर: ।'[3]

घोर रूप, चमचमाते तथा वेग पूर्वक बढ़ते हुए मरुतों का निनाद सुनाई पड़ता है ।[4] ये निनाद करने वाले, वर्षा रूपी वस्त्र धारण किये, दानशील रुद्रपुत्र (मरुद्गण) सिंह के समान गर्जन करते हैं ।[5] जब ये तीव्र गर्जना करते हैं तो पृथ्वी को मधुरस से सिंचित कर देते हैं ।[6] ऋतानुवर्ती (मरुद्गण) घोष गुंजाते हैं ।[7] मरुतों का यह निनाद वायु का ही गर्जन है और इसीलिए इन्हें 'वातस्वनस:'[8] कहा गया है । ऋषि नोधा की दृष्टि में मरुतों ने अपनी शक्तियों से वातों और विद्युतों को जन्म दिया है ।[9] मरुतों के तीव्र वेग की उपमा वात से दी गई है । ये मरुद्गण 'वातासो न 'स्वयुज: सद्यऊतये[10] और वातासो न ये धुनयो जिगत्न्व:[11] हैं । वात

---

1. ऋ0सं0 8.7.3.।
2. वही, 8.7.4.।
3. वही, 8.7.17.।
4. 'प्रतिघोराणमेतानामयासां मरुतां शृण्वआयतानामुपब्दि:' ऋ0सं0 1.169.7
5. 'ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिज: सिंहा न हेषक्रतव: सुदानव:' ऋ0सं0 3.26.5
6. पिन्वन्त्यत्सं यदिनासो अस्वरन् व्युन्दन्ति पृथ्वीं मध्वो अन्धस:'
   ऋ0सं0 5.54.8
7. 'स्वरन्ति घोषं विततमृतायव: ।' ऋ0सं0 5.54.12
8. ऋ0सं0 8.56.3
9. वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत' ऋ0सं0 1.64.5
10. ऋ0सं0 10.78.2
11. वही, 10.78.3

के घोड़ों को अपनी धुरी से युक्त किया ।[1] इसी कारण इन्हें 'वातरंहस' कहा गया है ।[2]

परन्तु वैदिक ऋषि की दृष्टि में मरूद्गण वायु या वात का पर्याय नहीं है । वायु या वात इनकी स्वरूप कल्पना का एक अंश मात्र है । ये इनके अश्व हो सकते हैं या इनको जन्म देने वाले अथवा इनसे जन्म पाने वाले हो सकते हैं, मरूद्गण इनसे बहुत कुछ अधिक हैं । मरूतों के गर्जन की उपमा वायु के अतिरिक्त अग्नि[3] और सोम[4] के गर्जन से भी दी गई है । वायु अथवा वात से अलग करने वाले मरूद्गणों के गुण है, इनका देदीप्यमान प्रकाशमय रूप और वृष्टि लाने का इनका प्रमुखकार्य ।

## मरूद्गण और त्रितआप्त्य

यद्यपि ऋग्वेद संहिता में त्रितआप्त्य के लिए कोई स्वतन्त्र सूक्त नहीं है और न ही मरूतों के साथ ही इनके लिए कोई सूक्त है । तथापि वृत्र-वध का कार्य सम्पन्न करने वाले रूप में इनका स्मरण मरूतों के सहायक के रूप में किया गया है ।

त्रितआप्त्य भारतईरानी काल की कल्पना प्रतीत होते हैं । अवेस्ता में त्रित का वर्णात्मक रूप 'थ्रित' है और आप्त्य वहाँ आथव्य के रूप में एक अन्य व्यक्ति है जिसके पुत्र थ्रएतओन (त्रैतान) ने तीन सिरो वाली 'अजी दहाल' (अहि

---

1. वातान् ह्यश्वान् धुर्या युयुज्रे । ऋ०सं० 5.58.7

2. ऋ०सं० 8.34.17

3. इओम यश्त (7.10)

4.

दशक या दासक॥ को मारा । अवेस्ता के अनुसार थ्रित और आथव्य दोनों ही सोम का अभिषव करने वाले पूर्वज हैं । आथव्य ने वीवड्व्हा ॥विवस्वान॥ के पश्चात् सोम का अभिषव किया और थ्रित इस क्रम में तृतीय थे ।[1]

ऋग्वेद संहिता में त्रिशिरा को मारेने का श्रेय त्रित और इन्द्र को है । अपने पैतृक आयुधों से भिड़ा त्रितआप्त्य ने इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर त्वष्टापुत्र सप्तरश्मि 'त्रिशिरस' को मारकर गायों को मुक्त किया ।[2] आगे चलकर त्रिशीर्ष को मारने का श्रेय इन्द्र को मिला और त्रित का स्थान इस पराक्रम में गौण हो गया । उस इन्द्र ने गर्जन करते हुए 6 आँखों वाले त्रिशीर्ष का दमन किया ॥और॥ इसके ओज से बढ़ते हुए त्रित ने अयस के अग्रभाग वाले अपने आयुध से ॥इस त्रिशीर्ष रूपी॥ वराह को मारा ।[3]

हे इन्द्र । तुम्हारे कल्याणार्थ त्रित की मित्रता के लिए त्वष्टा-पुत्र विश्वरूप का दमन किया ।[4] इन्द्र वैकुण्ठ ॥सूक्त 10.48॥ में इन्द्र स्वयं अह्र इन्द्र अपने पराक्रम का प्रख्यापन करते हुए कहते हैं कि मैंने त्रित के लिए अहि से ॥मुक्तकर॥ गायों को प्रस्तुत किया ।[5] वृत्रवध का कार्य भी इन्द्र के साथ साथ त्रित द्वारा सम्पन्न

---

1.

2. स पित्र्याण्यायुधा नि विद्वानिप्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान् त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजेत्रितोगाः ॥
ऋ०सं० 10.8.8

3. स इद् दासं तुवीरवं पतिर्दन षळक्षं भिशीर्षाणं दमन्यत्×
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयो अग्रयाहन् ॥ ऋ०सं० 10.99.6

4. अस्मभ्यंतत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः सख्यस्य त्रिताय । ऋ०सं० 2.11.19

5. त्रिताय गा अजनयमहेरधि । ऋ०सं० 10.48.2

बताया गया है और इस कार्य में मरुद्गण सहायक के रूप में उपस्थित हैं। वृत्रवध (मरुतों ने) लड़ते हुए त्रित और इन्द्र का अनुगमन करते हुए उनकी शक्ति और पराक्रम की रक्षा की।[1] वृत्रवध का कार्य पहले त्रित द्वारा ही किया गया परन्तु बाद में यह पराक्रम इन्द्र पर आरोपित हुआ। यह निष्कर्ष इन्द्र के पराक्रम के सन्दर्भ में त्रित को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जाने से समर्थित होता है। वज्री इन्द्र ने जब सोम पान से शक्ति पाकर त्रित को समान बल के घेरे को तोड़ा[2] अथवा जिस व्यक्ति की, हे इन्द्राग्नी (तुम वाज में रक्षा करते हो वह दृढ़ द्युम्नों (सुरक्षित सम्पत्तियों) का वैसे ही भेदन कर लेता है जैसे त्रित वाणियों का (सरकंडों)।[3]

इन्द्र सदृश त्रित का भी सोम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। त्रित केवल सोमपान का अभिलाषी ही नहीं प्रत्युत सोम का अभिषव करने वाला भी है जबकि इन्द्र केवल सोमपायी हैं। अवेस्ता में थ्रित को सोम का अभिषव करने वाला कहा गया है। सोम त्रित द्वारा परिशोधित होता है।[4] त्रित की योषायें (उंगलियाँ) अद्रियों (ग्रावाओं) से सोम (रस) को प्रेरित करती है।[5] त्रित के सोमभिषव से ग्रावाओं के पास सोम गुह्य रूप से रहता है।[6] गिरि पर स्थित उस वृष (सोम) को जो महिष सदृश सानु (पर्वत शिखर) पर परिशोधित होता है, वे दुहते हैं, गरजते हुए

---

1. अनु त्रितस्ययुध्यतः शुष्ममावन्नुतक्रतुम्।
   अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ ऋ०सं० 10.7.24
2. इन्द्रो यद् वज्रीधृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्यपरिधीरिवत्रितः। ऋ०सं० 1.52.5
3. इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम्।
   दृढाचित् स प्रभेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ ऋ०सं० 5.86.
4. भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो, भुवदिन्द्राय मत्सरः। ऋ०सं० 9.34.4
5. आदीचितस्य योषणो हरि हिन्वन्त्यद्रिभिः। ऋ०सं० 9.32.2
6. उपत्रितस्य पाष्योरभक्त यद् गुहापदम्। ऋ०सं० 9.102.2

उस [सोम] का स्तुतियाँ साथ देती हैं । त्रित [उस सोमरूपी] वरूण को समुद्र में धारण करता है ।[1] सोमों के साथ त्रित का अभिसव, त्रित का सोम को [अन्तरिक्षरूपी] समुद्र में धारण करना, त्रित के वैद्युताग्नि से तादात्म्य की ओर संकेत करता है और सम्भवत: 'त्रित' अर्थात् तृतीय से भी अग्नि के द्वारा विद्युत वाले रूप का ही संकेत है ।

मरूतों का विद्युत से सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि मरूद्गण त्रित से सम्बद्ध है । ऋषि श्यावाश्व आत्रेय के अनुसार, हे मरूतों ! तुम्हारे शक्तिशाली [लोग] पानी के इच्छुक सम्पत्ति को बढ़ाने वाले घोड़ों को जोते हुए [आकाश को] घेरते हुए [आये] [जब वे] विद्युत से प्रहार करते हैं त्रित गरज उठता है और अपने मार्ग पर जलधारायें बह चलती हैं ।[2] इसी प्रकार गृत्समद ऋषि की दृष्टि में त्रित के प्रकट होने पर मरूतों का मार्ग प्रकाशित हो उठता है ।[3] और त्रित मरूतों को अपने रथ पर वहन करता है ।[4]

---

1. तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
   तं वावशानं मतय: सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरूणं समुद्रे ।।
   ऋ0सं0 9.95.4

2. प्रवो मरूतस्तविषाउदन्यवो वयोवृधो अश्वयुज: परिज्रय: ।
   सं विद्युता दधति वाशति त्रित: स्वरन्त्यापो वना परिज्रय: ।।
   ऋ0सं0 5.54.2

3. चित्रं तद् वो मरूतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुह: ।
   यद्वा निदे नवमानस्य रूद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्या: ।। ऋ0सं0 2.34.10

4. तॉं इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
   त्रितो न यान् प च होतॄनभिष्टय आववर्तदवरांचक्रियावसे ।। ऋ0सं0 2.34.14

<u>मरुद्गण और इन्द्र</u>

ऋक्संहिता के ऋषियों की देव-कल्पना के सतत विकास-क्रम को सूक्ष्मतया देखती हुयी दृष्टि में अन्ततः मरुतों का घनिष्ठ सम्बन्ध इन्द्र के साथ हुआ और इन्द्र वैदिक विचार-धारा में ऐसे छा गये कि मरुद्गण इन्द्र के अनुचर मात्र रह गये और इन्द्र का एक बहुधा प्रयुक्त विशेषण हुआ 'मरुत्वान्' । परन्तु ऋक्संहिता में संकलित पूरी सामग्री का सम्यक् निरीक्षण करने पर प्रतीत होता है कि मरुद्गण सदा से इसी स्थिति में नहीं थे । वे प्रारम्भ में किसी भी अन्य देव के समान स्वतन्त्र रूप से हविष् के भागी थे । इन्द्र के उद्भव के साथ वे पहले तो इन्द्र के यदि श्रेष्ठ नहीं तो तुल्यबल अवश्य थे । परन्तु धीरे-धीरे इन्द्र का उत्कर्ष होता गया और अन्य देवगणों के समान मरुद्गण इन्द्र के सहायक मात्र रह गये और अन्ततः '<u>देवविशः</u>' के रूप में पहचाने जाने लगे । मरुद्गण वैदिक मनस् पर इतने छाये थे कि त्रित आदि के समान उन्हें सर्वथा भुला देना संभव न था । इन्द्र के साथ मरुतों के सम्बन्धों का विकास वैदिक देव-कल्पना के विकास का एक रोचक इतिहास है और इस पर विस्तार से विचार अपेक्षित है ।

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है मरुतों को रुद्र अग्नि और वायु का अनुगामी बनाने की भी कल्पना की गयी और इन देवों को 'मरुत्वान्' विशेषण से कुछ स्थलों पर स्मरण किया गया । परन्तु अन्ततः मरुद्गण इन्द्र के ऐसे घनिष्ठ अनुचर हो गये कि ऋक् संहिता में मरुत्वत्' के विभिन्न रूप, जो 60 स्थलों पर प्रयुक्त हुये हैं, उनमें से केवल 11 स्थलों पर ही ये रूप रुद्र, वायु, अग्नि, सोम, अश्विनों के विशेषण के रूप में आये हैं और शेष 49 स्थलों पर इन्द्र के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त हुये हैं ।[1]

---

1. 'मरुत्वत्' के विभिन्न रूपों के ऋक्संहिता में प्रयोग-स्थलों के लिये देखिये - वैदिक संशोधन मण्डल, पूना द्वारा प्रकाशित 'ऋग्वेद-संहिता' का भाग 5, पृष्ठ 436.

एक स्थिति ऐसी लक्षित होती है, जब मरुद्गण इन्द्र के समकक्ष हैं और यदि 'मतुप्' प्रत्यय गौणता का परिचायक है तो इन्द्र मरुतों से अवर ही हैं, क्योंकि मरुतों के लिये 'इन्द्रवन्तः' विशेषण प्रयुक्त हुआ है ।[1] ऋषि कण्व घोर मरुतों का प्राधान्य मानते हुये ये उन्हें उनके अपने पास आने की कामना करते हैं और इन्द्र को उनके साथ आने के लिये कहते हैं । "सुन्दर दानशील मरुद्गण हमारे पास आयें, वेगवान् इन्द्र ! तुम उनके साथ होवो ।"[2]

फिर मरुतों के साथ इन्द्र की प्रतिद्वन्द्विता दिखाई देती है । इसके कम ही संकेत वर्तमान संहिता में अवशिष्ट, परन्तु इस स्थिति की विद्यमानता सूचित करने भर को कुछ संकेत मिल ही जाते हैं । ऋषि अगस्त्य कहते हैं, 'हे मरुतों, इस इन्द्र की शक्ति से भयभीत होकर मैं काँप रहा हूँ, हमने तुम्हारे लिये हविष् प्रस्तुत की थी, उन्हें (इन्द्र के भय से) दूर करना पड़ा, हम पर कृपा करें ।'[3] इसी प्रकार का एक अन्य संकेत ऋषि अगस्त्य के एक अन्य मन्त्र के व्याख्यान में निरुक्त में यास्क द्वारा प्रस्तुत एक आख्यान में मिलता है । अगस्त्य ऋषि के प्रथम मण्डल में (170वें सूक्त की प्रथम ऋक् के सम्बन्ध में यास्क ने आख्यान दिया है कि 'अगस्त्य ने इन्द्र के

---

1. 'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः' ऋ०सं० 5.57

   'मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।

   अथर्व०सं० 5.3.3

2. 'उपप्रयन्तु मरुतः सुदानवः इन्द्रप्राशूर्भवा सचा' । ऋ०सं० 1.40

3. अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।

   युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥

   ऋ०सं० 1.171.4

लिये हविष् तैयार कर [इस हविष् को] मरुतों को देना चाहा तो इन्द्र ने आकर यह शिकायत की ।'[1] आगे ऋक् का अर्थ इस प्रकार है, 'न आज है न कल, जो हुआ नहीं उसे कौन जानता है, दूसरे का चित्त बड़ा चंचल है, क्योंकि हमारा जाना हुआ भी नष्ट हो जाता है ।'[2] ऋषि अगस्त्य के इन दोनों प्रसंगों में एक जगह अगस्त्य इन्द्र के भय से मरुतों को हविष नहीं दे पाते, दूसरी जगह इन्द्र के लिये हविष् प्रस्तुत कर [मरुतों के भय से?] उस हविष् को इन्द्र के स्थान पर मरुतों को देना चाहते हैं।

वस्तुतः इन्द्र मरुत्-प्रतिद्वन्द्विता, इसके समाधान और अन्ततः इन्द्र के प्राधान्य की स्थापना का यह रोचक इतिहास ऋक्संहिता के प्रथम मंडल में संकलित अगस्त्य के सूक्तों में झलकता है । इस दृष्टि से सू. 165 तथा 170 विशेषतः महत्वपूर्ण है । सूक्त 165 में पहली ऋक् में इन्द्र मरुतों के बारे में प्रश्न करते हुए कहता है 'समान वयस् वाले, समान नीड़ वाले किसी दीप्ति से समान रूप से संगमित होते हैं? ये कहाँ से किस विचार से आये हैं? क्या धन के इच्छुक ये अपने पराक्रम का गान करते हैं?'[3] आगे ऋक् 2 में प्रश्न चलता है 'ये युवक किसके मन्त्रों को पसन्द करते हैं, कौन मरुतों को अपने अध्वर में बुला लाता है? अन्तरिक्ष मे श्येन के समान तैरने वाले [इन मरुतों] को हम किस उपाय से रोकें?'[4] आगे चलकर ऋक् 3 में मरुद्गण

---

1. 'अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरूप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सां चकार स इन्द्र एत्य परिदेवयांचक्रे
निरुक्त 1/5

2. न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभिसंचरेण्यमुताधीतं विनश्यति ॥ ऋ०सं० 1.170

3. कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः संमिमिक्षुः ।
कयामती कुत एतास एते र्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ ऋ०सं० 1.165

4. कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनां इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ ऋ०सं० 1.165/2

इन्द्र से पूछते हैं, हे सत्पति इन्द्र । इतने महान्य होते हुए तुम कैसे अकेले चल रहे हो, तुम्हें यह क्या हो गया ? हम चमकते हुओं पास आने पर तुम हमारा स्वागत करते हो ‡संपृच्छसे‡, हमारे विरुद्ध तुम्हारी ‡जो शिकायत‡ वह है घोड़ों वाले ‡इन्द्र‡ हमसे कहो ।[1] इसके उत्तर में इन्द्र अपने अद्वितीय प्रभुत्व की घोषणा करते हुये कहता है, मन्त्र मेरे ‡लिये‡ हैं, स्तुतियाँ मेरे ‡लिये‡ हैं, अभिषुत सोम ‡मेरे लिये हैं, मेरी शक्ति उच्छ्रित होती है, मेरा वज्र टूटा पड़ता है, मेरा आह्वान किया जाता है, उक्थों द्वारा मेरी कामना की जाती है, ये मेरे घोड़े मेरा वहन करते हैं ।[2] इसके उत्तर में मरुद्गण भी अपनी प्रभुता का बखान करते हुये कहते हैं, 'अपने शक्तिशाली मित्रों से युक्त हम अपने शासनाधिकारों ‡स्वक्षत्रेभि:‡ से अपने शरीर को शोभित करते हुये, अपने वाहनों को मुक्त करते हैं, स्वतन्त्र अधिकार ‡स्वधामनु‡ के अनुसार तो तुम हमारे साथ होते हो ।[3] इसके उत्तर में इन्द्र मरुतों पर आरोप लगाते हुए कहता है, 'मरुतों, कहाँ था तुम्हारा यह स्वतन्त्र अधिकार जब तुमने अहि के वध के लिये मुझे अकेला छोड़ दिया, मैं उग्र, शक्तिशाली, पराक्रमी हूँ, मैं सभी शत्रुओं के आघातों से बचा हूँ ।[4] ~~इसके उत्तर में मरुद्गण सुलह का हाथ बढ़ाते हुये~~

---

1. कुतस्त्वमिन्द्र माहिन: सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
   संपृच्छसे समराण: शुभानै वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मो ॥ ऋ०सं० 2.165.3

2. ब्रह्माणि मे मतय: शं सुतास: शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रि: ।
   आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थे मा हरी वहतस्तानोअच्छ ॥ ऋ०सं० 2.165.4

3. अतो वयमन्तमेभिर्युजाना: स्वक्षत्रेभिस्तन्व: शुम्भमाना: ।
   महोभिरेताँ उपयुज्महेन्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ऋ०सं० 2.165.5

4. क्व स्या वो मरुत: स्वधासीद् यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
   अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नै: ॥ ऋ०सं० 2.165.7

# तृतीय अध्याय

# 'मरुत् सूक्तों सानुवाद आलोचनात्मक व्याख्या' 171

1.37

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् ।

कण्वा अभि प्रगायत ॥ 1 ॥

अन्वय - कण्वाः ! वः मारुतं क्रीळम् अनर्वाणम् रथेशुभम् शर्धः अभिप्रगायत ।

अनुवाद - हे कण्वगोत्रोत्पन्न महर्षियो अथवा मेधावी ऋत्विजों ! अपने (कल्याण) के लिए वितरणशील, भ्रातृव्यरहित एवं रथासीन होकर सुशोभित होने वाले मरुद्-गण की भूरिशः प्रशंसा करो ।

मारुतम् - सा0-मरुतां समूहम्, यास्क-मारुतम्=मेघम् निघं0 1.50, सप्त-2 हि मरुतोगणः श0 5.4.3.17, सप्त-2 मारुतागणा. - मै0 3.3.1, मारुतो हि वैश्यः (वायुः) मै0 3.4.3; का0 37.3; तै0 2.7.2.2, मारुतः कल्माषः-का0ठ0 48.1; मारुतं सप्त कपाला-तै0सं0 1.8.2.1, मरुत्स - मैक्स0, वि0, ग्रिफिथ, मो0वि0, मैक्डा0, म्योर, पी0, ह्विटने ।

क्रीळम् - क्रीड् विहारे + घञ्+कः । सा0मु0-विहरणशीलम्; स्कन्द-क्रीडनस्वभावकम्, मैक्स0 to the sporting; मैक्डा0, विल्सन- the sportive; ग्रिफिथ- sporting resplendent.

रथेशुभम् - शोभाशाली रथ, सा0-स्वकीये रथे वर्तमानाय शोभमानम्; वें0-रथं यः शोभते तम्; मैक्स0 - Brilliant on their chariots. विल्सन, म्योर0 - on their chariots मैक्डा0 - shining in their car पेट्टी ग्रिफिथ - on their car.

शर्धम् - बल - सा0 - बलम्, मैक्स0 - might be taken for some other gods. company of वि0 the aggregate strength. मैक्डा0, ग्रिफिथ, म्योर - assailable; ग्रास0 - Kuhn's Zeitschrift.

अभिप्रगायत - सा0 - प्रकर्षेण स्तुध्वम् ; स्कन्द0-प्रकर्षेणाभिष्टुत, मो0वि0, म्योर, वि0 celebrate; मैक्स, ग्रिफिथ sing forth; ऊँची आवाज में स्तुति करते हैं ।

ये पृषतीभि: ऋष्टिभि: साकं वाशीभिरञ्जिभि: ।
अजायन्त स्वभानव: ॥ 2 ॥

अन्वय - ये स्वभानव: पृषतीभि: ऋष्टिभि: वाशीभि. अञ्जिभि. साकं अजायन्त ।

अनुवाद - स्वयं प्रकाशमान जो ﴾मरुत्﴿ चितकबरी हिरणियों, भालों, कुठारों एवं वीरोचित आभूषणों के साथ उत्पन्न हुए ।

स्वभानव: - स्वकांतियुक्त । सा० स्वकीयदीप्तियुक्ता:, वेंकट० - स्वदीप्तय., स्कन्द-स्वदीप्तय: अपराश्रय विभूतय:, विल्सन - self radiant; ग्रिफिथ, मैक्स०, पी०, मो०वि०, मैक्डा० - self luminous.

पृषतीभि: - चितकबरे धब्बों से । सा०-पृषत्यो विन्दुयुक्ता मृग्यो मरुद्वाहनभूता.,[1] मैक्स०, मैक्डा०, the spotted deer; ग्रिफिथ, प्यो०र०, वि० - with the spotted deer;

---

1. The spotted deer (Prishtih) are recognised animals of the Maruts and were originally, as it would seem, intended for the rain clouds. Roth observes, may mean a spotted cow or a spotted horse - the Maruts infact are called some times prishat - Ashwah having piebald horses or having Prishats for their horses.

See - Vadic Hymns Vol. I, P. 170, by Max.Muller.

वाशीभि: - कुठार से । सा0-वाश्य:शब्दविशेषा परकीयतेनाभी तिहेतव: । वि0-
War-Cries; मैक्डा0, मैक्स0, पी0- by the daggers; ग्रिफिथ -
swords Vol. I. P. 128 and Leo Meyer (Kuhn's Zeitschrift, Vol. VI
P. 424) In 29.3 the god Tvashtar is said to carry on iron Vasi
in his hand grassman(Kuhn's Zeischrift, Vol. XVI, p. 103; Tr. 'Vasi' by
axe.

अंजिभि: - आभूषणों के द्वारा । सा0 - अंजयो्ऽलंकरणानि; वि0 decoration
ornaments, मो0वि0, ग्रि0, मैक्स0 glittering ornaments.

अजायन्त - प्रकट हुए । सा0, वें0-प्रादुर्भवन्ति, विल्सन, मैक्स, ग्रिफिथ, मैक्डा0,
मो0वि0, म्योर, पी0, were born.

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् ।

नि यामाँ चित्रमृञ्जते ॥ 3 ॥

अन्वय - एषां हस्तेषु कशा: यत् वदान् इह इव शृण्वे यामन् चित्रं नि ऋंजते ।

अनुवाद - इन (मरुतों) के हाथों में विद्यमान कोड़े की ध्वनि को यहीं पर स्थित होकर
सुन लेता हूँ । (उनकी यह विशिष्टध्वनि) युद्धभूमि में विविध प्रकार की
शूरता को अत्यधिक अलंकृत करती है ।

एषां हस्तेषु - सा0 मरुताम् स्थिता:, स्कन्द0 - हस्तैर्गृहीता:, विल्सन, मैक्स0, मो0
वि0, मैक्डा0, का0कैप0- In their hands, ग्रिफिथ, close at hands

कशा: - कोड़े । स्ववाहनता महेतव: - सा0, कशानामाहननशब्द - वें0 the whips-
ग्रिफिथ, म्योर, पी0, their whips-मैक्स0 ।

वदान - शब्द करते हैं । वदन्ति यं ध्वनिं कुर्वन्ति तं ध्वनिम्, वदन्ति - स्कन्द0,
वादयन्ति-वें0, the crack-ing ग्रिफिथ, विल्सन, मो0वि0they crack मैक्स0, पी0 ।

शृण्वे - सुन लेता हूँ। श्रृणोमि - सा०, शृण्वद् श्रुवद् इन्द्रः शृण्वदग्निः - यजु० 28.6,(I) Hear - विल्सन, मैक्स०, ग्रिफिथ, मो०वि०, Listen- म्योर, पी०।

नियजते - सुशोभित होते हैं। नितरामलंकरोति - सा०, wonderfully inspiring(courage)विल्सन, gether glory(on their way) ग्रिफिथ, gain splendour - मैक्स० ।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे ।

देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ 4 ॥

अन्वय- वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे देवत्तं ब्रह्म प्रगायत ।

अनुवाद - हे ऋत्विजों । स्वकीय बल बढ़ाने के लिए, शत्रुओं का विनाश करने हेतु और तेज से प्रकाशमान (मरुतों के) देवता (विषयक) (बलदाने वाले काव्य का) यथेष्ट गान करो ।

घृष्वये - शत्रु विनाशार्थ । शत्रु घर्षणयुक्ताय - सा०, मु०,the destroyers of foes वि०,to the wild - मैक्स,exultant vigourous- ग्रिफिथ Kraftigen ein - वेनफे, dreadful violent-मो०वि०, मैक्स० ।

त्वेषद्युम्नाय[1]- कांति से देदीप्यमान, दीप्यमानयशसे - सा०; Passesed of brilliant reputation - वि०;vigorous the strong-ग्रिफिथ।

---

1. Tvesh-dyumna is difficult to render, Both tvesh and dyumna are divided from roots that mean to shine to be bright, to glow. Derivatives from tvish express the idea of fieriness, fierceness and tury. In 5.17.7 tvish is used correlatively, with manyu warth derivatives from dyu convey the idea of brightness and briskness. Both qualities are frequently applie to the Maruts. See-Vedic Hymns,Page 273.By Max.Muller.

"endowed with terrible vigour and strength - मैक्स0 ।

शुष्मिणे - सामर्थ्य के लिए । बलवते - सा0; Endowed with strength -ful मैक्स0, म्योर, the strong - Grifith; Power- विल्सन, मो0वि0, का0 कैग0 ।

प्रशंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् ।

जम्भे रसस्य वावृधे ॥ 5 ॥

अन्वय - यत् गोषु क्रीळं मारुतम् रसस्य जम्भे वावृधे अघ्न्यं शर्धः प्रशंस ।

अनुवाद - जो (बल) मातृभूतपृश्नि आदि गायों में (पाया जाता है) (जो) खिलाड़ी मरुतों में (विद्यमान है) (जो) गोरस के यथेष्ट सेवन से बढ़ जाता है (उस) अविनाशी मरुत्सम्बन्धी बल की स्तुति करो ।

रसस्य जम्भे[1] - गो रस के यथेष्ट सेवन से । गोक्षीररूपस्य सम्बन्धि तत् तेजः मुखे उदरे वा-सा0, रसो वै मधुः श0 6.4.3.2 जम्भतिरत्र सामर्थ्यात् पानार्थः स्कन्द0.By the enjoyment of the milk;विल्सन, it strengthend as it drank the rain - ग्रिफिथ, tasted the rain - मैक्स0 ।

---

1. I take gembhe in the sense of gembhane on the root gabh and its derivatives, see Kuhn, Zeitschrift fur vergleichende Sprachwissenschaft Vol;I, P.123 Seq. It would be better to read mukhe instead of sukhe in the commentary. The Maruts were not born of milk of Prishni. Prishni is called their mather, Rudra their father (05.52.16, 60.5) Benfey takes the cows for clouds in which the lightenings dwell and the obyss of the sop is by him supposed to be again the clouds.

See. Vadic Hymns Page 73.

वावृधे - बढ़ जाता है। वृद्धमभूत - सा0,वें0,मु0, has been nourished विल्सन; grew - मैक्स0,itstrenghtend - ग्रिफिथ increased - मो0वि0 ।

को वो वर्शिष्ठ आ नरो, दिवश्च ग्मश्च धूतय: ।

यत् सीमन्तं न न्धूनुथ ॥ 6 ॥

अन्वय - नर: दिव: ग्म: च धूतय: व: आ वर्शिष्ठ क: यत् सीमन्तम् न धूनुथ ।

अनुवाद - हे नेतृत्वगुण सम्पन्न (मरुतों) तुम द्युलोक एवं भूलोक को कंपित करने वाले हो (ऐसे) तुममें सब प्रकार से उच्चकोटि का (भला) कौन है ? जो सदैव वृक्षों के अग्रभाग को हिलाने के सदृश शत्रुओं को विचलित कर देता है ।

दिव: - द्युलोक । द्युलोकस्यापि - सा0मु0, द्यौ:-वेंकट; Heaven and earth Wilson, Griffith , मैक्डा0 ।

धूतय: - कंपित करने वाले हो । कम्पयितार: - सा0 कम्पनकारिणो - वें0, shakers ग्रिफिथ, मैक्स0, मैक्डा0 ।

वर्शिष्ठ - उच्च कोटि का । वृद्धतम: - सा0मु0, Chief (lead among you) विल्सन, mightest-most-Grifith, the strongest (among you)- Max; most powerful - Mack.

सीमन्तं न धूनुथ - सदैव अग्रभाग को हिलाना । धूनुथ=पालयथ - सा0; मु0; shake them like a garments hear-Grifith; shake them like hear of a garment, (Antan-na) litterally like an end is explained by Sayan as the top of a tree-Max; Wilson; Longlois and Benefy accept that interpretation. Rath-proposes like the bear of garme which I prefer for vastranta, the end of a garment is a common expression in later Sanskrit, while anta is never applied to a tree in the sense of the top of a tree. Here agro would be more appropriate. See-Vadic Hymns. Page 74.

नि वो यामाय मानुषो दुध्र उग्राय मन्यवे ।

जिहीत पर्वतो गिरि: ॥ 7 ॥

अन्वय - व: उग्राय मन्यवे यामाय मानुष निदध्रे पर्वत: गिरि: जिहीत ।

अनुवाद - तुम्हारे भयावह क्रोधयुक्त एवं उत्साह परिपूर्ण आक्रमण से डरकर मानव तो ॥किसी न किसी॥ के सहारे ही रहता है ॥क्योंकि॥ ॥तुम॥ पहाड़ या टीले को भी विकंपित कर देते हो ।

विदध्रे - स्तम्भरूप आश्रय ॥के सहारे॥ दृढ़स्तम्भ निक्षिप्तकान्-सा0, holds himself-down, Max, Grifith; has planted afirm buttress.

जिहीत - विकंपित कर देते हो । गच्छेत - सा0मु0; is shattered-Wilson; Yields-Grifith, Mack; fled at your fierce anger Max.

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वा इव विश्पति: ।

भिया यामेषु रेजते ॥ 8 ॥

अन्वय - येषां यामेषु अज्मेषु पृथिवी जुजुर्वान् विश्पति: इव भिया रेजते ।

अनुवाद - जिनके आक्रमणों में और चढ़ाई के समय पृथ्वी मानो क्षीण नृपति की भाँति भय से विकंपित हो उठती है ।

यामेषु - आक्रमणों के अवसर पर । गमनेषु - सा0मु0; on their waysमैक्स, on their way - ग्रिफिथ, at impetuous approaविल्सन ।

अज्मेषु[1] - चढ़ाई के समय में । क्षेपकेषु सत्सु-सा0, at whose racing - Griffith. Max., at impetuous approach - Wilson.

विश्पतिः इव जुजुर्वान् - वृद्ध आयुविहीन प्रजापालक राजा की भाँति । [जिस प्रकार शत्रु के भय से काँपते हैं] यथा वयोहानिरोमादिना जीर्णः प्रजापालको राजा [वैरिभयात् कम्पते तद्वत् । like on enfeebled monarch- Wilson; like a boary king - Max; like on age weakened lord of men - Griffith; Wie ein altergebeugter Mann- Benefe.

रेजते - विकंपित करते हैं । कम्पते-सा0मु0, रेजति कम्पात - नि0 10.42; Trembles- विल्सन, Trembles in terror ग्रिफिथ, Trembles for fear. मैक्स0 ।

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे ।

यत् सीमनु द्विता शवः ॥ 9 ॥

अन्वय - एषां जानं स्थिरं हि मातुः वयः निःएतवे यत् शवः सीम् द्विता अनु ।

अनुवाद - इन [मरुतों की] जन्मभूमि दृढ़ीभूत एवं अटल है । यथा पंछी माता के पास से बाहर जाने की चेष्टा करते हैं [तथैव ये अपनी मातृभूमि से सुदूर देशों में विजय अभियान पर निकल जाते हैं] तब [इनका] बल सदैव दोनों ओर विभक्त रहता है ।

---

1. Agma seems to express the act of racing or running (like agi, race, battle) while Yama is the road itself where the racing takes place. A very similar passage occures in 1.87.3. The comparison of the earth (fem) to a king (masc.) would be considered a grave offence in the latter Sanskrit litterature. In 1.87.3 Vithura takes the place of Vispati.

Vádic Hymns P. 75.

जानमेषां (स्थिर) - इन (मरुतों) की जन्मभूमि । जन्मस्थानमाकाशं मरुतां - सा0,

stable is their birth place (the sky) - Wilson; strong is their birth - Grifith; Their birth is strong indeed-Max.

वय: निरेतवे - बाहर निकलने की चेष्टा करते हैं । निर्गन्तुं समर्था: भवन्तीति शेष:- सा0, the birds (are able) to issue from (the sphere their parent - Wilson; vigour have they to issue from their Grifith; There is strength to come forth from their mother - Max.

(विग्रह)x-

उद्धत्ये सूनवो गिर: काष्ठा अज्मेष्वन्वत ।

वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ 10 ॥

अन्वय - त्येगिर: सूनव: अज्मेषु काष्ठा: वाश्रा: अभिज्ञु: यातवे उत - उ- अत्नत् ।

अनुवाद - उन वाणीपुत्र (वक्ता) मरुतों ने अपने शत्रुओं पर किये आक्रमणों की सीमायें बढ़ायी हैं, ताकि गायें (वर्षा) घुटने तक पानी में चल सकें ।

सूनव: गिर: - वाणी-पुत्र । वाच उत्पादका मरुत:-सा0, the generators of speech - विल्सन, the sons, singers- ग्रिफिथ, मैक्स--म्यूलर, मो0वि0 ।

यातवे - निकल जाने के लिए (सुगम हो) । गन्तुं प्रेरितवन्त: - सा0, spread out the waters - विल्सन, had to walk - मैक्स0, मैक्डा0, must walk- ग्रिफिथ ।

काष्ठा![1]- परिधियाँ सीमायें। अप: ॥जल॥ सा०; आपोऽपि काष्ठा उच्यन्ते क्रान्त्वा स्थिता भवन्ति ॥नि० 2.15॥ इति यास्क: । the waters - विल्सन, in their racing (have enlarged the bounds - Grifith; their genees racing.

M. Bergaigne proposes with must assurance as less tentive and more satisfactory- 'des fils ont dons leur marche allonge leurs chants comme des chemins pour Y marcher genous (surles genous) en mugissant (enchantant).

त्यं चिद् धा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ॥ ॥

अन्वय - त्यं चिद् घ दीर्घं पृथुं अमृध्रं मिह: न पातं यामभि: प्र च्यावयन्ति ।

अनुवाद - उस प्रसिद्ध सुदीर्घ, विस्तृत, अविनाशनीय जल की वृष्टि न करने वाले को ॥मेघ को भी ये मरुत्॥ भी अपनी गतियों से कंपित ॥हिला॥ कर देते हैं ।

---

1. Maruts enlarged their race course (Rv. 4.58.7). Kastha May mean the wooden enclousers (carrers) of the wooden poles that serve as turning and winning posts (metae). -

- Vadic Hymns p. 77.

मिहो नपातम् - जलवृष्टि न करने वाले मेघ । सा0-सेचनीयं जलस्य न पातयितारं वृष्टिमकुर्वन्तमित्यर्थः-सा0 rain retaining cloud - Wilson; off spring of the cloud - Grifith; long broad un ceasing rain-rain is called the offspring of the cloud, miho-napat and is then as a masculine; it. apam napat . ... Vadic Hymns.

यामभिः ॥अपनी॥ गतियों से । स्वकीय गमनैः - सा0; in their course (run, motion, waterpath) - Wilson; on the ways - Path, Method - Grifith; on their ways- Max, Mac.

अमृधम् - √मृधु मृधु उन्दने । मर्धति उदकेन उनत्तीति मृधः बहुवचनात् औणादिक ॥क॥ प्रत्ययः । नञ्समासे अव्ययपूर्वपद प्रकृतिस्वरत्वम् । तं॥ ... मृध शब्देन हिंसा लक्ष्यते । मत्वर्थीयोरः । पूर्ववत स्वरसमासौ । uninfurable - Wilson, inexhaustible - Grifith; unceasing without stopping-Max.

प्रच्यावन्ति - कंपित कर देते हैं । प्रकर्षेण गमयन्ति - सा0, (they) drive before them - विल्सन, (They) drop- ग्रि0, (They) cause to fall- मैक्स0, मो0 वि0, मैक्डा0 ।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन ।

गिरीँरचुच्यवीतन ॥ 12 ॥

अन्वय - हे मरुतः ह वः यत् बलं जनान् अचुच्यवीतन गिरीन् अचुच्यवीतन ।

अनुवाद - हे मरुतों सचमुच तुम्हारा जो बल लोगों को विकंपित कर देता है ॥वही॥ पर्वतों को भी विचलित कर देता है ।

अचुच्यवीतन - विकंपित या विचलित कर देता है । प्रेरयत - सा०; invigorate mankind give animation to the clouds - Wilson; have caused the mountains to tremble - Max. down - Grifith, below turned - M.V., Mac.

गिरीन् - पर्वतों को । मेघान् - सा०; to the clouds - Wilson; the mountai मैक्स, ग्रिफिथ, मैक्डा० मो०वि०।

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवते ऽध्वना ।

शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ 3 ॥

अन्वय - यत् ह मरुतः यान्ति अध्वन् आ सं ब्रुवते ह एषां कः चित् शृणोति ।

अनुवाद - जिस समय सचमुच ही मरुद्गण संचार करने लगते हैं (तब वे) मार्ग के मध्य में ही सब मिलकर परस्पर वार्तालाप करना आरम्भ कर देते हैं । इनका शब्द भला कोई क्या सुन लेता है ।

यान्ति - गमन करते हैं । गच्छन्ति - सा०; Pass- विल्सन; Pass along- ग्रिफिथ, मैक्समूलर, मैक्डा० ।

अध्वन् - मार्ग के मध्य में । मार्गे सर्वतः - सा०; in the way - Wilson; on the way- ग्रिफिथ, मैक्समूलर, मैक्डा० ।

सं ब्रुवते - परस्पर वार्तालाप करना । संभूयध्वनिमवश्यं कुर्वन्ति-सा० every one hears (their) noise-Wilson; talk toggether-Grifith, MaxMuller, Mac.

प्रयात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः ।

तत्रो षु मादयाध्वै ॥ 14 ॥

अन्वय - शीभं प्र-यात कण्वेषु व: दुव: सान्ति तत्रो तु मादयाध्वै ।

अनुवाद - तीव्रगतियों द्वारा वेगपूर्वक चलो, कण्वों के मध्य याजकों के यज्ञों में तुम्हारे सत्कार होने वाले हैं । उधर तुम भली-भाँति तृप्त होओ ।

आशुभि: - तीव्रगतियों द्वारा । वेगवद्भि स्वकीयैर्वाहिनै:-सा० ; आशुद्भिर्नाम-निघं० 2.15; quickly with your swift vehicles-Wilson; with swift steeds-Grifith; quick steeds; with quick steeds - Mack.

प्र-यात-चलो, प्रयाण करो । प्रकर्षेण कर्मभूमिं गच्छत:-सा०; come quickly - Wil. come quick-Grifith; Come fast - Max. Mack.

दुव: - सत्कार । दुवांसि परिचरणानि तृप्ता भवत - सा०; the offerings - Wilson; worshippers - Mack. (Ye) have worshippers - Griffith. Benefy supposes that duvah stands in the singular instead of the plural. But why should the plural have been used as the sinugular arti would have created na kind of difficulty ? It is better to take duvah as a nominative plural of a noun du worshipper, derived from the same root which yielded duvah, worship. We certainly find a - duvah, as a nom. Plur., in the sense of not-worshipping.
Vadic Hymns, Vol.17, P.79.

मादयाध्वै - भली-भाँति तृप्त होओ । तृप्ताभवत - सा०; Be pleased - वि०; rejoice - ग्रिफिथ, well rejoice- मैक्स, मैक्डा० ।

अस्ति हि स्मा मदाय व: स्मसि स्मा वयमेषाम् ।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ 15 ॥

अन्वय - व: मदाय अस्ति हि स्म विश्वं चित् आयु:जीवसे वयं एषां स्मसि स्म ।

अनुवाद - तुम्हारी तृप्ति हेतु (यह हमारा अर्पण) तैयार है । सम्पूर्ण जीवनावधि सुखपूर्वक बिताने के लिए हम इनके ही अनुयायी बनकर रहने वाले हैं ।

मदाय - तृप्ति के लिए । तृप्तये - सा0; for your gratification - Wilson; for (your) delight - Grifith; for (your) rejoicing - Max.

विश्वं चित आयु: - जीवन भर सुखपूर्वक । सर्वमप्यायु: प्रयच्छेतेति शेष: - सा0; may live all our life - Wilson; may live even the whole life - Max.

मो0वि0का0कैप0 तथा मैक्डानल ने भी मैक्समूलर के उपर्युक्त कथन का ही अनुसरण कर वही अर्थ किया है ।

जीवसे - जीवन-यापन के लिए । जीवितुम् - सा0, जीवसे रिच जीवनाय - निघं0 12.39, आरोग्य, देह, [illegible], मानस, बल और विज्ञान इत्यादि के लिए । for your gratification - विल्सन; for your delight ग्रिफिथ; for your rejoicing - मैक्स0, मैक्डा0 ।

कद नूनं कधप्रिय: पिता पुत्रं न हस्तयो:,
दधिध्वे वृक्तबर्हिष: ।। । ।।

अन्वय : कधप्रिय: वृक्तबर्हिष: पिता पुत्रं न हस्तयो: कत ह नूनं दधिध्वे ।

अनुवाद : हे स्तुतिप्रिय कुशासीन मरुतों ! जैसे पिता पुत्र को अपने हाथों में उठा लेता है उसी प्रकार तुम भी हमें यथाशुध अब अपने करकमलों से धारण करोगे ।

कधप्रिय: - स्तुतिप्रिय । सा०भा० कथा स्तुति । विल्सन - fond of praise प्रशंसा के शौकीन । मैक्स० - when ग्रिफिथ - what now fond of praise स्तुतिप्रिय । पी०वे० गो० एण्ड सा०जी० कार्वे - when deor. कस्त उश: कधप्रिये । ऋ०सं० 1.30.20 । पर्थागक - kind or loving to whom fond of praise- मैक्डा० - when fond of praise; प्रशंसा के शौकीन । राथ ।सेण्पी०को०। kirop or loving to whom. मो०वि० - mfn. ever pleased or friendly (NBD) fond of praise (say) विल्सन - who are fond of praise. पी० - fond of praise. लेन०सं०टी० - who weilt ihrgern.

वृक्त बर्हिष: - कुशासनासीन । सायण - वृक्तं छिन्नं बर्हि येषां छिन्न-भिन्न कुशा का आशन है जिसका । मैक्स० the sacred grass has been trimmed पवित्र कुशासन पर विराजमान । वि० - the sacred grass x is trimmed . पवित्र कुशासन पर बैठे हुए । ग्रिफिथ - sacred grass is clipped; बिछायी गई पवित्र घास ।कुशा। । मैक्डा० - sacred grass is clipped; पी०हि०प्रा०ऋ० - The sacred grass is clipped; लेन० - सं०री० - The sacred grass is clipped; राथ - The sacred grass is clipped.

दधिध्वे - धारण करोगे । सायण, मु०ऋ०सं० - दधाते: । वे० - धारयथ । मैक्स०- will (you) take; ग्रहण करोगे । ग्रि० - will (ye) take ग्रहण करोगे ; विल्सन - will (you) take; ।तुम। धारण करोगे ; मैक्डा० - will

.(you) take sour milk. ग्रहण करोगे , मो0वि0 - will (you) take, will give, will preserve(with acc.) हि0द्वि0 पी0हि0फ्रा0ए0 - will (you) take; धारण की थी; ले0सं0टी0 - will (you) take; ग्रहण करोगे ।

क्व नूनं कद् वो अर्थ, गन्ता दिवो न पृथिव्या:,

क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ 2 ॥

अन्वय - नूनं क्व व: कत् अर्थं दिव: गन्ता न पृथिव्या: व: गाव: क्व न रण्यन्ति ।

अनुवाद - सचमुच तुम [भला] किधर जाओगे । तुम किस उद्देश्य को [लक्ष्य में रखकर जाने वाले हो ?] द्युलोक से [आओ] [किन्तु] भूमण्डल पर अविरत निवास करो तुम्हारी गायें [वाणियाँ] कहाँ नहीं रँभाती हैं ।

गन्ता - प्रस्थान करने वाले हो । गमनशील [वायु:] 27.29; सा0भ0 - करने वाले हो। मैक्स0 - (you) going; [तुम] जा रहे हो; विल्सन - (you) (are) going; तुम जा रहे हो; ग्रिफिथ - will move ; प्रस्थान करोगे ; मैक्डा0 - will move; प्रस्थान करोगे ; मो0वि0 - goer ; जाने वाले हो; का0कै0प0 - are going; पी0के0 गोडे एण्ड सी0जी0 कार्वे - one who move; प्रस्थान करने वाले हो ; लेन0 - सं0टी0 goer जाने वाले हो; ग्रिस - द अ0ए0 - goer जाने वाले हो; पी0हि0फ्रा0अ0 - goer जाने वाले हो । अतएव 'प्रस्थान करने वाले' अर्थ उचित है ।

पृथिव्या: - सा0भ0 - भूलोकान् - भूलोक में । मैक्स0 - on earth; पृथ्वी पर, ग्रि0 - on earth; पृथ्वी पर, मैक्डा0 - wide earth; - विस्तृत पृथ्वी पर, मो0वि0 - the earth or wide world; पृथ्वी अथवा विस्तृत भूमण्डल, का0कै0प0 on earth; भूमण्डल पर, पी0के0 गोडे एवं सी0जी0 कार्वे - compar पृथीयस superl पृथिष्ठ, पृथ + gu सं0प0 1.28 Broad earth ; अतएव सायण का अर्थ सर्वोचित प्रतीत होता है । पी0हि0फ्रा0 - on earth पृथ्वी पर, लेन0 on earth; पृथ्वी पर, ग्रिस0 on earth पृथ्वी पर ।

रण्यन्ति - रँभाती है । सा०भु० - शब्दयन्ति - शब्द करते हैं, वेंकट० - शब्दयन्ति शब्द करते हैं । मैक्स० - sporting; क्रीड़ा कर रही हैं, विल्सन - cry (to you like cattle) चिल्लाना, ग्रिफिथ - to do joy आमोद - प्रमोद करना, मैक्डा० - delight; हर्षित pleasure; या आनन्दित करना, मो०वि० - mfn. delectable; आनन्दकर होना, पृ० 864 sounding, pleasent Rv; AV. का०कै०प० - are crying; चिल्ला रही है । पी०हि०फा० are cying; लेन० - sportinglenman - cry. lowing (cow)

क्व वः सुम्ना नव्यांसि, मरुत क्व सुविता,
क्वोइ विश्वानि सौभगा ॥ 3 ॥

अन्वय - उ मरुतः वः नव्यांसि सुम्ना क्व ? सुविता क्व ? विश्वानि सौभगा क्व ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारी नयी-नयी संरक्षण योजनायें कहाँ हैं ? {तुम्हारे उच्च कोटि के} वैभव कहाँ हैं ? और सम्पूर्ण सौभाग्य कहाँ हैं ।

सुम्ना[1] - संरक्षण की योजनायें । सा०भु० - प्रजा पशुरूपाणि धनानि । प्रजा वै पशवः सुम्नम् - {तै०सं० 5.4.6.6} इति श्रुत्यन्तरात् । सुम्नम् सुखनाम् निघं० 3.6, मैक्स० - favours; कृपा करना, ग्रिफिथ favours shown; कृपा करना, विल्स( guidence; संरक्षण या निर्देशन, मक्डा० - heavy plans; विशाल योजनायें, मो०वि० - mfn. (prop. tr. 5 su and mna = man) benevolent, kind, gracious, favourable RV. X. 5. 3. का०कै०प० - favours; पी०हि०फा०{अ}- favours; लेन०सं०टी० - favours; ग्रिस०द {अ}०ए० favours.

---

1. The meaning of sumna in the first five Mandals are will explained by Professor Aufrecht in Kuhn's Zeitschrift, Vol. IV. P. 274. As to suvita in the plural See x.86.21 and VIII 86.21 and VIII. 93.29 where Indra is aaid to bring all suvitas. It frequently ofcurs in the singular, See V.H. P. 86,

By M.M.

सौभगा - सौभाग्य । सा०भु० - सौभाग्यरूपाणि गजाश्वादीनि । मैक्स० - the blessing; आनन्दित, ग्रिफिथ - high fecilities; उच्च सुविधाएँ, विल्सन - full of wealth ; सम्पत्ति, मैक्ड० - full of wealth; मो०वि० - the blessing; का०कैप० - blessings; मो०वि० - mfn. (for subhaga) auspicious, coming x from, welfare;

सुविता - सुविता सुप्रसूतानि निघं० 12.28, सा०भु० सुष्ठु इतानि सुवितानि । 'तन्वादीनां छन्दसि बहुलमुपसंख्यानम्' पा०सू० 6.4.77 इति उवङादेश: । सा०भु०- शोभनानि प्राप्याणि मणि मुक्तादीनि भवदीयानि। वि० मैक्स० - delights; सुखद; ग्रिफिथ - द (your) prosperity; समृद्धि, ऐश्वर्य, मो०वि० mfn. (fr.5 Sutita) cf. su-ita easf of access or to prosperous (as path) ऐश्वर्य, का०कैप० great joy. सुखद ।

यद् यूयं पृश्निमातरो, मर्तास: स्यातन,
स्तोता वो अमृत: स्यात् ॥ 4 ॥

अन्वय - पृश्निमातर: यूयं यद् मर्तास: स्यातन, व: स्तोता अमृत: स्यात् ।

अनुवाद - पृश्नि रूप माता वाले तुम यद्यपि मरणशील हो ॥तथापि॥ तुम्हारा स्तोता अमर हो जाए ।

पृश्निमातर: - पृश्नि संज्ञक माता वाले । सा०भु० - पृश्निर्माता येषां ते समासान्तविधेरनित्यत्वात् 'नद्यृतश्छन्दसि' इत्यनेन निषिद्ध: । मैक्स० कप Sons of Prishni; पृश्नि के पुत्र, विल्सन० - Sons of Prishni पृश्नि के पुत्र, ग्रिफिथ - sons whom Prishni bore वे पुत्र जिन्हें पृश्नि ने जाया है । मो०वि० - पृश्नि ॥ष्णि॥ ॥स्पृश् नि किच्च, पृषो० सलोप: , n.of the mother of of Maruts; मैक्ड० - sons whom Prishni bore; जिन्हें पृश्नि ने जाया है । का०कैप० sons of Prishni; पृश्नि के पुत्र ।

मर्तासः - मरणशील । सा०भु० - मनुष्याः मानवगण । मैक्स० - mortal मरणशील
ग्रिफिथ - mortal; मरणशील, विल्सन० mortal; मरणशील, मैक्डा०
mortal; इंसान, मो०वि० mortal; मर्त्य who or what must die;
mortal Br. Kaus; M.A. mortal man; पी०के० गोडे एवं सी०के०जी० कार्वे०
{मृ-तन्} A man, humanbeing mortal; {प्रसाद-प्रकाशन पूना} । का० कैप० -
mortal ; मरणशील । अतएव मरणशील अर्थ उपयुक्त है ।

स्यातन् - होते । सा०भु० भवेत । मैक्स० were थे, ग्रिफिथ - were थे;
मैक्डा० may be; शायद हो, विल्सन - be होवे, का०कैप० were
थे, मो०वि० - were, be, may be.

मा वो मृगो न यवसे, जरिता भूदजोष्यः,
पथा यमस्य गादुप ॥ 5 ॥

अन्वय - मृगः यवसे न वः जरिता अजोष्यः माभूत् यमस्य पथा मा उप गात् ।

अन्वय - जिस प्रकार हिरण के लिए तृण कदापि असेवनीय नहीं है उसी प्रकार तुम्हारा
स्तोता तुम्हें अप्रिय {असेव्य} न होने पाये । वह यमलोक की राह पर न
चले ।

जरिता - स्तोता । सा०भु० - स्तोता, जरते अर्चतिकर्मा निघं० 3.14, जरिता =
गरिता निघं० 1.7, यजमानो जरिता - ऐ०ब्रा० 3.38, विल्सन, Praiser
Decayed; पूजा करने वाला, ग्रिफिथ Praiser प्रशंसक, उपासक, मैक्स०
Praiser; प्रशंसक, उपासक, मैक्डा०, Decayed; पी०के०गोडे और सी०जी०कार्वे -
जरा-इतच' Decayed, Praiser पाण्डुरस्यातपत्रस्यच्छायायां जरितं मया, Ram.
2.2.7, प्रो० गोल्डस्टूकर to gloryfy (God) संतुष्ट करने की सामर्थ्य रखने वाला
मो०वि० old decayed, Harior मैक्डा० -Decayed (C.S.PP) F.N. of a
fabulour bird; a arim n. of Garita eldest son (whose foes are
demolished.

अजोष्य: - ﴾न0त0﴿ वि0 ﴾न + जुष् + क्यप् न0ब0﴿ जो प्रसन्न या सन्तुष्ट नहीं हुआ ।
पुं0 प्रीति या प्रसन्नता का अभाव । सा0वि0 - असेव्य: - असेवनीय, वे0 मु0 - असेव्य: - असेवनीय; वेंकट0 - असेव्य: - असेवनीय, ग्रिफिथ - unwelcome; अनादरणीय, मैक्स0 - unwelcome; अनादरणीय, विल्सन - with together; अभिन्न होना, मैक्डा0 - un welcome का0कैप0 unwelcome प्रो0 गोल्ड-स्टकर not aloveable; पी0के0 गोडे और सी0जी0 कार्वे ﴾न0व0﴿ not gratified or satisfied; मो0वि0 - not satisfied; असेवनीय, असन्तुष्ट - unsatisfactory.

पथा - मार्ग के द्वारा । सा0मु0 - यमलोक सम्बन्धिमार्गेण - यमलोक से सम्बन्धित मार्ग, मैक्स0 - on the path (of Yama) ﴾मार्ग पर, ग्रिफिथ - on the path मार्ग पर, विल्सन - a way; मार्ग, का0कैप0 on the path; मार्गपर । मो0वि0 - a way, Path, Road, O course MBH; KAV.SC. (Generally ife for ﴾धातुप﴿ 20. 17, पी0के0 गोडे और सी0जी0 कार्वे - ﴾0 A way; रास्ता । पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् भाग 9. 10. 4.

मो षुणः परा परा निर्ऋति दुर्हणा वधीत्,
पदीष्ट तृष्णया सह ॥ 6 ॥

अन्वय - परापरा दुर्हना निर-ऋति: न मो सु वधीत् तृष्णया सह पदीष्ट ।

अनुवाद - परमबलिष्ठ विनाशकारिणी कठिन दुर्दशा हमारा विनाश न करे । प्यास के विना उसी का विनाश हो जाय ।

निर्ऋति: - बुरी दशा, दुर्दशा । निर्ऋतिकी ~~विपत्ती कठिन~~ पृथ्वीनामु0 निघं0 1. 1. 5. 4। 17, पाम्बा वै निर्ऋति: श0 7. 2. 1. 1, घोरा वै निर्ऋति:, श0ब्रा0 1. 2. 1. 10, सा0 रक्षो जाति देवता, ग्रिफिथ - sin पाप । मैक्डा0 - dissolution दुराचारी, विल्सन0 - let him perish with our evil desires.

का0कै0 destruction; मैक्स0 - one sin मो0वि0 - decay ; दुराचारी, evil; बुराई adversity, debilitated. पी0के0 गोडे और सी0 जी0 कार्वे - Mb. 1.87.9.5.36.8 विद्याद् लक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धा निर्ऋति बहन्तम् Mb. 1.87.9.5.36.8. राथ - corruption.

मो षु वधीत - विनाश न करे । मो0 = निषेधार्थे 3.46, निवारणे 4.23, सु = शोभनार्थे क्रियायोगे च 1.9.6, सु अभिपूजितार्थे निघं0 1.3, सा0 - सर्वथा वधं मा कार्षीत् । मैक्स0 - overcome (us) ? ग्रिफिथ - do not ruin; मैक्डा0 - do not destruction; मो0वि0 - do not ruin; , का0कै0 - do not destruction.

पदीष्ट - सा0 पततु । यत्सीष्ट प्राप्नुयात् । मैक्स0 - it depart; चला जाय, ग्रिफिथ - had gone; चला जाय, मो0वि0 - going on foot. pedestrin depart.

तृष्णया - 'तृषिशुषिरसिभ्य: किच्च' (उ0सू0 3.292) इति न प्रत्यय: । सा0 - तृष्णा - पिपासा, मु0 - तृष्णा, वेंकट0 तृष्णया, मैक्स0 with greed लोभयुक्त, ग्रिफिथ - withgreed लोभयुक्त, मैक्डा0 with greed विल्सन - with vehement; मो0वि0 - with desire; लालच, का0कै0 - with greed. लालचयुक्त । अतएव लोभयुक्त अर्थ उपयुक्त है ।

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियास:
मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ 7 ॥

अन्वय - धन्वन् चित् त्वेषा: अमवन्त: रुद्रियास: अवातां मिहं आ कृण्वन्ति सत्यम् ।

अनुवाद - मरुभूमि में भी कान्तियुक्त बलिष्ठ रुद्रपुत्र मरुत वायु रहित वर्षा को चतुर्दिक विकीर्ण करते हैं, (यह) सत्य है ।

अमवन्त - बलिष्ठ । सा0 - बलवन्त: । अमागृहे निघं0 1.42, मैक्डा0 - powerful; शक्तिशाली । मैक्स0 वै0 powerful; शक्तियुक्त ।

विल्सन - powerful; शक्तिशाली । मो0वि0 - impetuous; शक्तिशाली । का0कैपलर- mighty ताकतवर । ग्रिफिथ - powerful; शक्तिशाली । राथ ऋ0 powerful; शक्तिशाली ।

कृण्वन्ति - सा0 - कुर्वन्ति - करते हैं । 'कृवि हिंसा योच्च' 'धिन्वि कृण्वभोर 'च' इति उ प्रत्ययः । ग्रिफिथ - आफ bring (rain) मैक्स0 - bring (rain); मैक्डा0 , विल्सन - avidity; राथ - avidity; का0 कैपलर - desire; मो0वि0 - thrust i, vii, ix, AV., S. Br. 8C, desire (chiefly itc.) R ; Pagh; BhP. 8CC, Avidityas mother of Dambha (prap ii, 11/12, daughter of Death (Mrityu) VP.1.7.31 or Mara Lalit -xxiv 20

अवाताम् - मैक्स0 - dried uop वि0 - with out wind upon the desert, लांगलोइस - with out any misgivings;
वेनफे - without wind; मैक्डा0 - without wind; मो0वि0 - without wind. राथ - without wind;

रुद्रियासः - सा0 - रुद्रेण पालित्वात् तदीया मरुतः । रुद्र के द्वारा पाले या पोषे गये हैं जो - वे मरुद्गण । मैक्डा0 - sons of Rudra मो0वि0- sons of Rudra रुद्र के पुत्र । मैक्स0 - Rudriyas रुद्रियास, रुद्रपुत्र । ग्रिफिथ - sons of Rudra का0कैप0 - sons of Rudra मरुतों के समूह । वि0 - sons of Rudra राथ - ऋ0 - sons of Rudra.

मिहम् - सा0 वृष्टिं = वर्षा । मैक्स0 - bring rain वर्षा करना । ग्रि0 - bring rain; वि0 - the rain is setfree; राथ - bring rain, वर्षा करना । मैक्डा0 - rain make water upon जल उत्पन्न करना । मो0वि0 downpour of water का0कैप0 - vapour वर्षा । उपर्युक्त अर्थों को देखते हुए कहा जा सकता है कि सभी विद्वानों के अर्थ में एकरूपता होते हुए सायण द्वारा वृष्टि अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

वाश्रेव विद्युन्मिमाति, वत्सं न माता सिषक्ति,
यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ 8 ॥

अन्वय - यत् एषां वृष्टि: असर्जि वाश्राऽइव विद्युत् मिमाति माता वत्सं न सिसक्ति ।

अनुवाद - जब इनको (मरुतों की सहायता से) वर्षा का सृजन होता है (तब) विद्युत् रँभाने वाली गाय के समान गम्भीर शब्द करती है (और) बालक को अपने समीप रखने वाली माता के समान विद्युत् मेघों के पास रहती है ।

वाश्रेय - मु0सा0 - शब्दयुक्ता प्रस्नुतस्तनवती धेनुरिव । वे0 - कामयमाना धेनुरिव
मैक्स0 - (lows like a cow; गाय की भाँति (रँभाना), ग्रिफिथ (lows) like a cow; एक गाय की भाँति (आवाज करना), विल्सन - (roars) like a parent cow ; पैतृक गाय की भाँति (चिल्लाना), का0कैप0 - (roars) like a cow ; गाय । पी0के0 गोडे और सी0जी0 कार्वे - (वाश् रक् Un. 2.13) वेद, Roaring bellowing ; श्रः 1. a Day, 2. A. bull श्रा - A cow with a calf., वाश्रेव वत्समनुगृहकातरोऽस्मान् । Bhag. 4.9.17; 10.46.9 गाय की भाँति (चिल्लाना, रँभाना) राथ - (lows) like cow ; गाय की भाँति (रँभाना), मो0वि0 - श्र0 (lowing) like a cow; आकांक्षित गाय की भाँति चिल्ला रही । मैक्ड0 - (roars) like a cow; गाय की भाँति (चिल्लाना)

वृष्टिं असर्जि - वर्षा का सृजन होता है । सा0मु0श्र0सं0 - गर्जनसहिते विद्युत्काले वृष्टा भवति तस्मात् विद्युतो मरुत्सेवनमुपपन्नम् । वें0म0 सृज्यते ।
मैक्स0 - the shower (of the Maruts) has been let loose वर्षा होना, the ग्रिफिथ -the shower has been let loose; घनघोर वृष्टि होना, मो0वि0 - to rain down, shower down; वर्षा होना, मैक्ड0 - pourforth; वर्षा होना, विल्सन0 - to rain upon; स्वत: वर्षा होना, राथ का0कैपलर - to rain down; पी0के0 गोडे और सी0जी0 कार्वे - to rain, काले वर्षन्तु मेघा, गर्ज वा वर्ष वा शक्र M.K. 5.31; मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुञ्चन्त्वशनिमेववा 5.16

मिमाति - सा०भु० - शब्दं करोति - शब्द करती है। गच्छति 1.164.29, मैक्स०- lightning lows; ग्रिफिथ - roars चिल्लाती है, विल्सन- follows ; पीछा करती है, मो०वि० - roars चिल्लाती है, मैक्डा० - lows.

सिषक्ति - मु०सा० - इयं विद्युत् मरुत: सेवते। सिषक्ति सेवनार्थ: । सिञ्चन्ति ऋ० 6.38.3, सिषक्तु सेवताम् निघं० 3.21, मैक्स० - follows; ग्रिफिथ - it follows ; विल्सन - b·llows for मो०वि० - wishing to honour or worship; मैक्डा० - desire to be sprinkle; का०कैप० - follows; पी०के० गोडे और रा०जा० कार्वे - wish to effect or accomplish.

दिवा चित् तम: कृण्वन्ति, पर्जन्येनोदवाहेन,
यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ 9 ॥

अन्वय - यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति, उदवाहेन पर्जन्येन दिव: चित् तम: कृण्वन्ति ।

अनुवाद - ॥मरुद्गण॥ जब भूमि को आर्द्र करते हैं ॥उस समय॥ जल से भरे हुए मेघों से सूर्य को ढककर दिन में भी अन्धकार कर देते हैं।

व्युन्दन्ति - आर्द्र कर डालते हैं। सा०भु० - भू० - विशेषेण क्लेदयन्ति तदानीमति- वृष्टि कालेतम: कुर्वन्तीति पूर्वन्नान्वय: । मैक्स० - drench (the eart[h] मूसलाधार वर्षा करते हैं, विल्सन -drench; अतिशय गीला करते हैं, ग्रिफिथ - drench the earth; ॥पृथ्वी को॥ अतिशय आर्द्र करते हैं। मो०वि० -wet; आर्द्रीकृत करते हैं, का०कैप० wet आर्द्र करते हैं, मैक्डा० - pouring सिंचित कर डालते हैं।

उदवाहेन पर्जन्येन - जल से भरे हुए मेघों से सूर्य को ढककर। सा०भु० - उदकधारिणा मेघेन सूर्यमाच्छाद्य - उदकधारी मेघों के द्वारा सूर्य को ढककर। मैक्स० - with the water bearing cloud जल से परिपूर्ण मेघ से। ग्रि० - with

the water bearing cloud; वि० - वर्षा के जल से भरे हुए मेघ, - with the water bearing cloud; मो०वि० - जल से समृद्ध, full of rain (water) ; मैक्डा० - वर्षा जल से समृद्ध मेघ, full with rain water; का०कैप० - बौछार से युक्त, का०कैपलर - drawing with rain; वर्षा के जल से समृद्ध मेघ, - full with rain water.

कृण्वन्ति - अंधेरा फैलाते हैं। द्रष्टव्य 1.38.7 का नोट।

अध स्वनान्मरुतां, विश्वमा सदम् मार्थिवम्
अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ 10 ॥

अन्वय - मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सदम आ, मानुषाः प्र अरेजन्त।

अनुवाद - मरुतों की गर्जना के फलस्वरूप निचले भाग में अवस्थित पार्थिव (पृथ्वी पर पाये जाने वाला) सम्पूर्ण स्थान (विकंपित हो उठता है), (और) मानव भी काँप उठता है।

विश्वंसदम - सा०भु० - सर्वगृहम् - सम्पूर्ण घर या संसार, मैक्स० - the whole space of the earth; पृथ्वी का सम्पूर्ण स्थान। विल्सन - dwelling on earth; भूमण्डल पर रहने का स्थान, ग्रिफिथ - dwelling; रहने का स्थान, मो०वि० - dwelling; ठहरने का स्थान, का०कैपलर - residance आवास, लांगलोइस - dwelling; निवास स्थान, वेनफे - der Erde Sitz मैक्डा० - Residence; घर, आवास। अतएव निवास, आवास अर्थ उचित है।

अरेजन्त - काँप उठते हैं। सा०भु० - प्रकर्षेण कम्पितवन्तः जोर (तीव्रगति) से कँपाने वाले, मैक्स० - reeled forward; लड़खड़ा देते हैं, ग्रिफिथ - shake dwelling place; वास-स्थान कँपा देते हैं, विल्सन - shake to the earth; (पृथ्वी को) कँपाते हैं, मो०वि० - shake कूँपा देते हैं, कैप० shake कंपित होना, इतस्ततः। मैक्डा० भ्र० -to shake कँपा देते हैं। अतएव कँपा देते हैं अर्थ उचित है।

पार्थिवम् - ञित्त्वादाद्युदात्तवम् । सा०मु० - मैक्स० - of the earth पृथ्वी का [पर] विल्सन - on the earth; पृथ्वी पर । ग्रिफिथ - with the earth; पृथ्वी सम्बन्धित । मो०वि० - on the earth पृथ्वी पर, का० कैप० - on the earth; पृथ्वी पर, मैक्डा० - earthly; दुनियाई, जमीन का ।

मरुतो वीलुपाणिभिश् , चित्रा रोधस्वतीरनु ।

यातेमखिद्रयामभिः ॥ ॥ ॥

अन्वय - मरुतः वीलुपाणिभिः चित्राः रोधस्वतीरनु अखिद्रयामभिः यात ईम् ।

अनुवाद - हे मरुद्गण ! बलिष्ठ बाहुओं से तुम शोभनीय नदियों के तटों पर बिना किसी थकावट के गमन करो ।

वीलुपाणिभिः - बलवान बाहुओं से । सा०मु० - दृढहस्तैः शक्तिशाली हाथों से, मैक्स० your strong hoofed; अपने बलिष्ठ हाथों के द्वारा, विल्सन- strong hands; मजबूत हाथों से, ग्रिफिथ - your mighty hands; अपने शक्तिशाली हाथों से, का०कैप० - strong hands; मजबूत हाथों से, मो०वि०- strong hands; मजबूत हाथों से, मैक्डा० - powerful hands; सुदृढ हाथों से ।

अखिद्रयामभिः - बिना किसी थकावट के । सा०मु० - आच्छिन्नानि निरन्तराणि गमनानि येषां ते । स्फायितंचिवंचि शक्ति क्षिपि क्षुदि सृपि तृपि वन्दुन्दिश्विती वृत्यजनी पदिमदि मुनि खिदि छिदि शुमिभ्यो रक् - उणादि० 2.14 इति रक् । मैक्स० - never wearing steeds; बिना किसी थकावट के घोड़ा, ग्रिफिथ - in our way In his way without tired ; अपने गमन-पथ में बिना थके हुए, वि० - with unobstructed progress ; बिना थकावट के आगे बढ़ना, मो०वि० - with unobstructed progress; अपने गमन-पथ में बिना थके हुए, आगे बढ़ना, का०कैप० - to go with out any ttired; बिना थकावट के आगे बढ़ना, मैक्डा० - without tired; बिना थकावट

के । "राथ और लुडविग" ने इस पद का अर्थ एक ऐसा घोड़ा किया है जो थकान का अनुभव नहीं करता ।

यात ई - गमन करो । सा०भा० - गच्छतैव, मैक्स० - go after; बाद में गमन करो, ग्रिफिथ - go with quick (on your chance) (अपने रथ पर) तीव्रता से गमन करो, विल्सन - go with quick; प्रगति करो, मो०वि० to go , मैक्डा०- to proceed प्रस्थान करो, का०कैप० - go forward आगे बढ़ना, वेनफे - go जाओ ।

रोधस्वतीरनु - नदियों के तटों पर से । सा०भा० - कूलयुक्ता नदीरनुलक्ष्य कूलयुक्त नदी के किनारों को लक्ष्य कर, रोधस्वय: इति नदी नामसु पठितम् निघं० - 1.13, मैक्स० - the clouds which are still locked up; विल्सन - ऋ० - the beautiful embanded river; सुन्दर कूलयुक्ता नदी, ग्रिफिथ - both side of the way ; मार्गों के किनारों पर, का०कैप० -ऋ० middle on the river bank; नदियों के किनारों के मध्य पर, मो०वि० - the river shore; मैक्डा० - the bank of river; राथ - form the bank of river.

स्थिरा व: सन्तु नेमयो, रथा अश्वास एषाम्
सुसंस्कृता अभीशव: ॥ 12 ॥

अन्वय - व: एषां रथा: नेमय: अश्वास: अभीशव: स्थिरा: सुसंस्कृता: ।

अनुवाद - तुम्हारे ये रथ (रथ के) अरे तथा घोड़े एवं रास (लगाम) सभी दृढ़ तथा अटल और सम्यक् परिष्कृत हो ।

अभीशव: - लगाम । अभीशव: रश्मिनाम निघं० 1.5, सा०भा० - अभिपूर्वात् अश्नोते 'कृवापाजि०' इत्यादिना उण् । वर्णव्यत्ययेन आकारस्य ईकार: । मैक्स० reins; बागडोर, विल्सन० - reins; (लगाम) उँगलियाँ । ग्रिफिथ - reins; लगाम, का०कैप० - bridle; लगाम, मैक्डा० - reins रास,

राथ - bridle; लगाम, लेन0म0रा0 - bridle; रास ।

नेमयः - रथ के पहिये की धुरी । सा0भु0 - रथचक्रवलयाः रथ के पहिये की धुरी, कला चक्राणि, मार्तण्ड, मैक्स0 - may your fellies (axle) of chariot मैक्डा0 - axle रथ के पहिए का पारधि, मो0वि0 - axle .------- का0कैप0 - axil रथ चक्र परिधि, विल्सन0 - circumference; परिधि, ग्रिफिथ - may your fellies रथ चक्र परिधियाँ, मैक्स0 -circumference.s परिधियाँ अरे, लेन0 wheel; पहिया ।

सुसंस्कृताः - सा0भु0 - अश्वबन्धनरज्जु परिग्रहणे स्वलंकृताः सावधानाः सन्तु । सुसंस्कृताः संपूर्वात् करोतेः कर्मणि क्तः । 'संपर्युपेभ्यः' ॥पा0सू0 6.1.137॥ इति सुट् । वि0 -be well faishioned; भलीभाँति परिष्कृत, ग्रिफिथ - well ornamented; अच्छी प्रकार से अलंकृत, मो0वि0 - well faishoned अच्छी प्रकार से सुशोभित, मैक्स0 -well faishioned; अच्छी प्रकार से परिष्कृत । का0 कैपलर - well cleaned; अच्छा प्रकार से सुशोभित, मैक्डा0 - well glamour भलीभाँति सुशोभित, लेन0 - well grace; भलीभाँति सुशोभित ।

अच्छा वदा तना गिरा, जरायै ब्रह्मणस्पतिम् ।
अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ 13 ॥

अन्वय - ब्रह्मणस्पतिं अग्निं दर्शतं मित्रं न जरायै तना गिरा अच्छ वद ।

अनुवाद - ज्ञानाधिपति अग्नि को दर्शनीय मित्र के समान स्तुति करने के लिए सातत्य-युक्त वाणी से प्रमुखतया सराहते जाओ ।

ब्रह्मणस्पतिः अग्निं : ज्ञान के अधिपति अग्नि को । ब्रह्मन् पतिपदयोः समासः । षष्ठयाः अलुक् । षष्ठ्याः पतिपुत्र 'अ0 8.3.53 सूत्रेण विसर्जनीयस्य सत्वम् । एष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एश ॥सूर्यः॥ तपति ॥श0 ब्रा0 14.1.2.15॥ । सा0भु0 - मन्त्रस्य हविर्लक्षणस्यान्नस्य वा पालकं मरूद्गणं भू । षष्ठ्याः पतिपुत्रमिति

संहितायां सत्वम्' मैक्स0 - the lord of prayer agni; प्रार्थना के स्वामी, ग्रिफिथ - Agni, the lord of devotion अग्नि । उपासना के स्वामी, विल्सन - Agni the lord of prayer ; मंत्र के स्वामी अथवा प्रार्थना का नाश्चित स्वामी । का0कैप0 - Agni the lord of whoship अग्नि । उपासना के स्वामी, वेनफे - Agni the lord of prayer; लेन0 - the lord of prayer; प्रार्थना के स्वामी । मो0वि0 - the lord of devotion, Agni.

जरायै - स्तुति करने के लिए । जरते अर्चतिकर्मा निघं0 3.14 ततो लेटिरूपम् । सा0 मु0 - स्तोतुम् - स्तुत केलिए, मैक्स0 - voice to praise; स्तुति के शब्द, ग्रिफिथ - for admiration; प्रशंसा के लिए, विल्सन0 - for praise प्रशंसा या स्तुति के लिए, मैक्डा0 - for praise स्तुति के लिए, का0कैप0 - with sound praise ध्वनियुक्त स्तुति के शब्द, लेन0 - word of praise. स्तुति के शब्द ।

गिरा - वाणी । वाग्वै गीः श0ब्रा0 7.2.2.4, विशो गिरः श0ब्रा0 3.6.1.24, सा0मु0 - वाचा-वाणी 'सावेकाचः' इति विभक्तेरुदात्तत्वम् । मैक्स0 - with the voice; वाणी के साथ, ग्रिफिथ - with the music; इस संगीत के साथ, विल्सन0 - with thy coice वाणी के साथ, का0कैप0 - with thy voice वाणी के साथ, मो0वि0 - with voice; आवाज,वाणी के साथ, लेन0 - with voice वाणी के साथ । ife = i gir speech, voice, Var Brs. xxxii, 5; 1. (a) f. (g) a jadi, Ganar.

अच्छावदा - सराहते जाओ । वदति गतिकर्मा निघं0 2.14, यद् वै वदति शंसतीति वै तदाहः श0ब्रा0 1.8.2.12, बोला करो । सं0वि0 141, बोला करो । अथर्व0 3.30.3, सा0मु0 - आभिमुख्येन ब्रूहि, वेंकट - आभिमुख्येन ब्रूहि । मैक्स0 - speak forth for ever. कभी के लिए शोभनीय ढंग से आगे बात करना, ग्रिफिथ to welcome here&there इधर-उधर आमंत्रण देना, विल्सन0 - declare; घोषणा करना, सुन्दर, मैक्डा0 - speak clear; शुद्ध या स्पष्ट बोलना, मो0 वि0, लेन0 - speak clear स्पष्ट भाषालाप करना, का0कैप0- to speak clear स्पष्ट बोलना ।

मिमीह श्लोकमास्ये, पर्जन्य इव ततनः ।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ 14 ॥

अन्वय - आस्ये श्लोकं मिमीह पर्जन्यः इव ततनः गायत्रम् उक्थ्यं गाय ।

अनुवाद - मुँह के अन्दर ही स्तोत्र को भलीभाँति तैयार करो ﴾और﴿ वृष्टिका विस्तार करने वाले मेघ के समान उसे विस्तारित करो । गायत्री छन्द में रचे हुए शास्त्रयोग्य गायत्री छन्द में रचे गये काव्य का गान करो ।

आस्ये - स्वकीय मुखे । सा० अस्यते क्षिप्यते स्मिन्निति आस्यम् । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' ﴾पा०सू० 3.3.113﴿ इत्यधिकरणेण्यत् । 'तित्स्वरितम्' इति स्वरितत्वम् । मैक्डा० - infront your आपके सामने । मो०वि० - in his jaws ; अपने जबड़ों में । वि० - thy mouth; अपने मुँह में । मैक्स० - in thy mouth; उनके मुख में । ग्रि० - in his mouth उनके ﴾अपने﴿ मुख में । का०कैगलर - in thy mouth अपने मुख में ।

पर्जन्य इव - पर्जन्य इव पदयो समासः । सा०मु० - यथा मेघो वृष्टिं विस्तारयति तद्वत् - जिस प्रकार मेघ वृष्टि को विस्तृत करता है उसी प्रकार । वेंकट- यथा मेघो गर्जनं कुर्वन् वृष्टिं तनोति । ग्रिफिथ - like the rain cloud; वर्षाकालीन मेघ के समान, मैक्स० - like the cloud मेघ सदृश, विल्सन० - like the rain cloud; वर्षा करने वाले मेघ के समान, का०कैग० - like the rain clouds. वर्षाकालीन मेघ के समान, लेन० - like the raincloud वर्षाकालीन मेघ के समान, मो०वि० - like the rain cloud वर्षाकालीन मेघ के समान । मैक्डा० - like the lord of rain or raincloud वर्षाकालीन मेघ, वर्षा के देव की भाँति ।

ततनः - विस्तारित करो । विस्तारयः - विस्तार के लिए, मैक्स० - विस्तारित करना, ग्रिफिथ - Expand प्रसारित करो, विल्सन - विस्तारित करो, का०कैगलर - Expand विस्तृत करो, लेन० - विस्तारित करो, मो०वि० - extended, stretched, spread. अवे०टी०एस० -

मैक्डा० - spreading Expanded here and there{यहाँ-वहाँ या इधर-उधर}
विस्तृत करो । रा्थ - Expand विस्तृत करो । अतएव विस्तार करो अर्थ
ही उचित है ।

मिमीह - तैयार करो । सा०मु० - निर्मितं कुरु निर्माण करो {बनाओ}, मैक्स० -
Fashion expanded{सूक्तों को} संवारों, सुधारो, ग्रिफिथ - to make
बनाओ, विल्सन० Uther the verse(spread it{पद को} पूर्ण करो, मैक्डा० -
To complete ; पूर्ण करो, का०कैप० - to fulfil पूर्ण करो, मो०वि० -
to complete लैन० - to make बनाओ । राथ to complete ;
पूर्ण करो ।

गायत्रं गाय - सा० गायत्रम् - गायत्र्या: संबन्धि । गाय - पठ । गायत्रं गायते:
स्तुतिकर्मण: निघं० 1.8, गायत्रं प्रात: सवनम् जै०उ० 4.2.2, गायत्रं चक्षु:
तै० 4.1.10.5, अग्निर्गायित्र श० 16.1.1.15, गायत्रो यं {भूलोक:} कौ० 8.9, प्राणो
गायत्रं {साम} तां० 7.1.9 तत्प्राणो वै गायत्रम् जै०उ० 1.37.7, गायत्रो वै पुरूष ऐ० -
4.3, मैक्डा० - singer; मो०वि० - singer गायक । का० कैपलर -
to sing admerible ; प्रशंसापूर्ण गीत गाओ । वि०श्र० - sing a song
of praise; प्रशंसा के गीत गाओ । ग्रिफिथ - realy, sing the admirable
song ; यथार्थ रूप में प्रशंसा के गीत गाओ । मैक्स० - sing a song of
praise ; प्रशंसा के गीत गाओ ।

बन्दस्व मारुतं गणं, त्वेषं पनस्युमर्किणम् ,
अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ 15 ॥

अन्वय - त्वेषं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धा: असन् ।

अनुवाद - कांतियुक्त स्तुत्य तथा पूजनीय मरूद्‌गण का अभिवादन करो । ये वृद्ध {मरुत्}
यहाँ हमारे समीप ही रहें ।

<u>अर्किणम्</u> - पूजनीय । सा० - अर्चनोपेतम् । अर्चनायुक्त । मैक्डा० - radiant ;
मो०वि० - radiant ऋ० 8.101.13, 1.7.1, 10, 1.64.58.15,
ग्रि० द हि०ऋ० the musical संगीतमय । मैक्स० - the musical गीतमय।
का०कैप० - radiant; अर्चनीय धारण करने वाले । वि०ऋ० - radiant ;
अर्चनीय पूजनीय, राथ - radiant.

---

1. It is difficult to find an appropriate rendering for arkin. It means praising ~~aka~~ celebrating, singing and it is in the lost sense only that it is applicable to the Maruts. Wilson translates 'entitled to adoration; Benfey - flaming Boethlingk and Roth admit the sense of flaming in one passage, but give to arkin in this place the meaning of praising. It is simply meant, possessed of arka i.e. songs of praise, it would be a very lame epithet after panasyu, but other passages. like 1.19.4; 52,15, show that the conception of the Maruts as singers was most familear to the Vedic Rishis (1.64.10; Kuhn Zeitschrift. Vol. I, P. 521 note) arka is the very name applied to their songs (1.19.4). In the Eddn, too; storm and thunder are represented as a lay as the wondrous music of the wild hunt. The dwarfs and Elbs sing the so-called Alb-Leich which carries of everything trees and mountains; see. Justi in Orient and Occident Vol. II. P. 62; Genthe Windgattheiten, P.A. II. There is no doubt therefore that arkin here means musician and that the arka of the Maruts is the music of the wind. See. Vedic Hymns. P. 95. Vol. I.

त्वेषं - सा०अ०सं० - दीप्तम् । ग्रिफिथ - be magnified ; ओजस्वी ।
the glorious मैक्स० - [illegible] । विल्सन० - the glorious; ओजस्विी । मैक्डा० -
the splendant कांतियुक्त, तेज, मो० वि० - to splendant ; ओजस्वी ।
लेन० the glorious ओजस्वी, मो० वि० - the mag; the glorious ओजस्वी, का० कैपलर -
the splendant ; कांतियुक्त तेज । राथ - the brightness.

वृधा: असन्[1] - वृद्ध रहें । सा० - मरुत: प्रवृद्धा भवन्तु । मैक्डा० - be grown up
मैक्स० - be ful grown; वृद्ध रहें । मो० वि० - be magnified

---

1. Vridha literably grown is used in the Veda as an honourific epithet, with the meaning of mighty, great or magnified.

III. 32.7, Yagamah it onamasa vridham indram

We worship with praise the mighty Indra, the great the exalted, the immortal, the vigorous.

Here & Neither is Vridha intended to express oldage nor Yuvan young age but both are meent as laudatory epithets. See. Darmesteter, Ormazd et Ahriman, P. 9. see.

Asan is the so-called let of as to be. This let is properly an imperative which gradually sinks down to a mere subjunctive and is generally called so of as, we find the following let forms belonging to the present, we have, asasi, II. 26.2; asati, vi, 23,9 asathah VI. 63.1; and asatha 5.61.4; belonging to the imperfect, asah 8.100.2; asat 1.9.5; asama, 1.173. 9; asan 1.89.1. Asam, a from quoted by Roth from Rigveda 10.27.4 is really asam.

Part I Page 95-96.

See Vadic Hymns : The sacred books of the east Translated by various oriental scholars.

M. Muller.

वि0 - be increase ; बढ़ें, ग्रिफिथ - be magnified ; वृद्धि करना, का0कैपलर - be magnified ; पुष्टि रहें । राथ - be increase.

परस्युम् - स्तुत्य: सराहनीय । सा0 - पन: स्तोत्रमात्मन स्तुतियोग्यम् । इच्छतीति

पनस्यु: । का0कैपलर - radiant ; पूजनीय । मैक्डा0 - praise of worthy ; प्रशंसा योग्य । मो0वि0 - praise of worthy ग्रिफिथ - admirable ; प्रशंसनीय । मैक्स0 - worship the host ; वि0 - पूजा के योग्य - radiant ; पूजनीय अर्चनीय ।

वन्दस्व - अभिवादन करो । 'अनुपदेशात्'। सा0 - नमस्कुरु स्तुहि वा । मैक्डा0 -

Pay homage to ; श्रद्धाञ्जलि अर्पित करो। मो0वि0 - to worship ; स्तुति करना । वि0, मैक्स0-वै0 हि0 to worship : पूजा करना । ग्रि0- to sing (the host of the/ Maruts) गाओ । पूज्य (मरुतों का यशगान करो) का0 कैपलर - to praise : प्रशंसा किया । प्रशंसा करो, स्तुति करो ।

1.39

1. प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।

कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥

अन्वय - धूतयः मरुतः यत् मानं परावतः इत्थाशोचिः न प्रअस्यथ कस्य क्रत्वा कस्य वर्पसा कं याथ, कं ह ।

अनुवाद - हे शत्रुओं को विकम्पित करने वाले मरुद्गण । जब तुम अपना बल अत्यन्त सुदूर स्थान से ॥इस भाँति॥ विद्युत सदृश यहाँ पर फेंकते हो तब किस कार्य तथा उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर किसकी आयोजना से अथवा किसकी तरफ तुम चल रहे हो ।

मानमस्यथ - माननीयं युष्मद्बलं भूमौ प्रक्षिपथ अथवा मानो गर्व उच्यते - सा० when you direct your awful vigour downwards from afar as light (descends from heaven) - Will., Wenn ihr aus wevther water Ferhe, se Wie strahlen sehleudent euren Stotz (das woraauf ihr stolzseid evien Blitz)-Benfey; Lorsquevous lance lancez vatre soufflepuissant -cf. Halay udha, ed. Aufrecht, 5.37.1- Langlois; Measure forth - Grifith.

परावतः - दूर तक से । दूरात् - सा०, वें०, मु०, स्कन्द०, from a far मैक्स०, विल्सन, from distance - मैक्ड०, का०कै०प० from for away - मो०वि० 1

धूतयः - द्रष्टव्य 1.37.6

प्र अस्यथ - आगे करना, मार्ग से हटना । प्रकर्षेण सर्वत्र क्षिपथ - सा० ; भूमौ प्रक्षिपथ - वें० ; downwards - विल्सन; costforwards your measure- मैक्स०; cost your measureforth ग्रिफिथ; cast downwards - मैक्ड०; cast down - मो०वि०; by wisdom-का०कै०प० ।

क्रत्वा - क्रतु ॥बुद्धि॥ के द्वारा । क्रतुनना संगच्छध्वे - सा०मु० कर्मणा - वें०;

by wisdom - विल्सन; By (whose) wisdom - ग्रिफिथ ; throw wisdom - मैक्स0; By plan - मैक्डT0, मो0वि0 ।

2. स्थिरा व: सन्त्वायुधा पराणुदे वीलु उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिन: ॥

अन्वय - व: आयुधा परा-नुदे स्थिरा उत प्रतिष्कम्भे वीलुसन्तु, युष्माकम् तविषी पनीयसी अस्तु मायिन: मर्त्यस्य मा ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे हथियार शत्रुओं को हटाने के लिए सुदृढ़ तथा अटल रहें और उनकी राह में रुकावटें खड़ी करने के लिए अत्यधिक दृढ़ भी हों । तुम्हारा बल अति स्तुत्य हो, कपटी लोगों का बल न बढ़े ।

स्थिरा व: आयुधा - तुम्हारे हथियार स्थिर हों । युष्माकमायुधानि स्थिराणि - सा0भा0; स्कन्द0; strong let your weapons- ग्रिफिथ ; your weapons - विल्सन, मैक्डT0; may your weapons be firm- मैक्स0; your missile - मो0वि0; ।

पराणुदे - शत्रु को भगाने के लिए । पराणां शत्रुणामपनोदनाय - सा0भा0; प्रेरणाय - वेंकट0; स्कन्द0; to attack enemies - मैक्स0; driving away foes - विल्सन; to drive away your foes - ग्रिफिथ; to drive hostile army - मो0वि0; for eating the ford of another - मैक्डT0; to push away (foes) - का0कैप0 ।

वीलुसन्तु - शक्तिशाली होवे । दृढानि सन्तु - सा0; be strong - विल्सन; be firm - ग्रिफिथ; मैक्स0; be strong - मो0वि0; be hard hoofed - मैक्डT0; be strong to hold - का0कैप0 ।

प्रतिष्कभे - प्रतिबंधित करने के लिए । शत्रूणां प्रतिबन्धाय - सा0भा0; withstand - मैक्स0; to resist - विल्सन; for resistance -

ग्रि0 Passing one's self against- मैक्ड0, For leaning; for prohibiting - का0कैप0 ।

पनीयसी - प्रशंसा । आतिशयेन स्तोतव्यम् - सा0, मु0, वें, glorious - ग्रि0, मैक्स0; Praise worthy - वि0; show to be admirable showing one's self worthy of admiration or praise - मो0वि0 ।

मायिन: - छद्मचारी, विश्वासघाती । छद्मचारिण: - सा0मु0, मायावत:- वें0 स्कन्द0; Treacherous - विल्सन; decietful - का0कैप0, मैक्स0; guilful - ग्रिफिथ; ful of guil - मैक्ड0; Passing magical powers - मो0वि0 ।

मर्त्यस्य - मानव का । मानुषस्य शत्रो: - सा0; अयजमानस्य - वें0 of mortal's वि0, ग्रि0, मैक्स0, का0कैप0, मो0वि0, of human - मैक्ड0 ।

3. परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।

वि याथन वनिन: पृथिव्या व्याशा: पर्वतानाम् ॥3॥

अन्वय - नर: यत् स्थिरं पराहत, गुरु वर्तयथ पृथिव्या: वनिन: वियाथन पर्वताना आशा: हि ह ।

अनुवाद - हे नेतृत्वगुण सम्पन्न वीरों । जब तुम स्थिर रूप से अवस्थित शत्रु को विनष्ट करते हो, बलिष्ठ शत्रुओं को भी हिला देते हो, विकंपित कर डालते हो और भूमण्डल पर विद्यमान अरण्यों के वृक्षों को भी जड़मूल से उखाड़ फेंक देते हो । तब पर्वतों के चतुर्दिक ¤तुम¤ सुगमता से निकल जाते हो ।

पराहत - विध्वंस कर देना । वृक्षादिकं भग्नं कुरुथ - सा0, मु0, demolish - वि0, मैक्ड0; over throw- ग्रि0; मैक्स0; destroy - का0 कैप0, मो0वि0 ।

व्याशापर्वतानाम् - पर्वतों के मध्य से गमन करते हुए । पर्वत पार्श्वदेश: पायन नियुज्य गच्छथ - सा0मु0, पर्वतानाम् ति.श: मध्येन गच्छथ

विविचन्त: - वें0 । clefts of the rock मैक्स0 the fissures of the 10 rocks - ग्रि0; the defiles of the mountain वि0; through the mountains - मो0वि0; through the clouds - मैक्डा0 ।

4. नहि व: शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादस: ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥4॥

अन्वय - रिशादस: अधि द्यवि व. शत्रु: नहि विविदे भूम्यां न, रुद्रास: युष्माकं युजा आधृषे तविषी नु चित् तना अस्तु ।

अनुवाद - शत्रुहन्ता वीरों ! द्युलोक में तुम्हारे शत्रु का अस्तित्व ही नहीं पाया जाता और न ही भूमण्डल पर ही विद्यमान है । हे रुद्रपुत्र मरुतों तुम्हारे साथ रहते हुए शत्रुओं को समूल विनष्ट करने के लिए मेरी शक्ति शीघ्र ही विस्तारशील तथा बढ़ने वाली हो जाय ।

युजा - साथ-साथ यजन करना । परस्पर एकमत्येन - सा0 Collective strength - वि0, मैक्स0 yoked together - का0कै0प0, yoked with - मैक्डा0, furnished with - मो0वि0 ।

नु चिदाधृषे - शत्रु को सब प्रकार से विनष्ट करने के लिए । वैरिणां सर्वतो घर्षणाय - सा0मु0, क्षिप्रं शत्रूणामधर्षणाय - वें0 for destroyers of foes - वि0, का0कै0प0 consumers of your foes ग्रि0; devourers of foes - मैक्स0, मैक्डा0, killers of foes - मो0वि0 ।

रुद्रास: - रुद्र-पुत्र मरुद्गण । रुद्रपुत्रा मरुत: - सा0मु0; harrible (applied

to the Asvins, Agni, Indra, Mitra, Varuna and the spabah).
Sons of Rudra, the Maruts - Mac. ruler of the Maruts - Ka,Kap.
Sons of Rudra, to humble (your enemies) - Vi., Ye Rudras-Grif.
O Rudras - Max., Bestowing strength, Roarer N. of the god of
tempests and father and ruler of the Rudras and Maruts -Avey.

विविदे - पृथगार्थकत्व । सत्तायाम् - सा०, do descern - मो०वि० sepera-
tion - का०भा०, Phantam - मैक्स०, collective
strength - वि०; may power be yours - मैक्स०, may the strength
be yours - ग्रि० ।

5. प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥5॥

अन्वय - देवासः मरुतः, दुर्मदाइव पर्वतान् प्रवेपयन्ति, वनस्पतीन् विवि चन्ति
सर्वया विशा प्रो आरत ।

अनुवाद - देव मरुतों, मदमस्त लोगों की भाँति [तुम्हारे वीर] पर्वतों को
अत्यधिक कंपा देते हैं । वृक्षों को परस्पर वियुक्तकर देते हैं, प्रजा
के साथ मिलजुलकर चलो ।

प्रवेपयन्ति - वेगपूर्वक कंपा देते हैं । प्रकर्षेण कम्पयन्ति - सा०भु० कम्पयन्ति
वें०, स्कन्द, tremble - मैक्स०, वि०, मैक्स०, का०भा०,
shaking - मो०वि० reel -ग्रिफिथ ।

वनस्पतीन् - वृक्षादि वनस्पति । वटाश्वत्थादीन्, वनानां पाल्यो वनस्पतयः
भु० forest trees - मैक्स०, वि०, trees - का०भा०,
a longe tree with fruit - मो०वि०, the forest kings -

गि० the kings of the forest - मैक्स० ।

विविञ्चन्ति - पृथक कर देते हैं । परस्पर विभुक्तान् कुर्वन्ति । सा०भा०,
पृथक् कुर्वन्ति - स्कन्द०वें०, make a live - मो०वि०, ओ०
to divide - मैकडा०, tear asunder - मैक्स०, drive apart -
गि० ।

सर्वया विशा - सभी प्रजाओं के साथ । प्रजया सहिता यूयं - सा०भा०, सर्वै.
अनुचरैः स० - वें०सर्वैः परिवारकैः सहैत्यर्थः - स्कन्द, with your
whole tribe - मैक्स० with all your company -
गि०, मैकडा०, all pervading servent - मो०वि०; all your
progenty - वि०, all pervading people - का०दे०मा० ।

6\. उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।

आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥6॥

अन्वय - वः रथेषु पृषती उपो अयुग्ध्वं रोहितः प्रष्टिः वहति (वः) यामाय
पृथिवी चित् आ अश्रोत् मानुषाः अबीभयन्त ।

अनुवाद - तुम अपने रथों में चितकबरी घोड़ियाँ या हरिणियाँ जोड़ चुके हो
और लाल वर्ण वाला विशिष्ट घोड़ा या हिरण (रथ के धुरा) को
खींचता है । तुम्हारे गमन को अन्तरिक्ष व पृथ्वी जान लेते हैं (पर) सभी
मानव उससे भयभीत हो उठते हैं ।

उपो रथेषु - अपने रथों में । रथेषु भवदीयेषु - सा०भा०, रथवरेषु यूयं रथेषु -
वें०, उपो इत्येव निरित्येतस्य स्थाने - स्कन्द० । your
chariots - मैक्स०, War chariot - मैकडा०; in chariot - मो०वि० to
your chariot - वि०, गि०, मैक्स० ।

<u>पृषती रथुग्ध्वम्</u> - चितकबरी हिरणियों को नियोजित किये । बिन्दुयुक्ता मृगी सामीप्येनैव अयुग्ध्वं योजितवन्तः - सा0मु0, पृषती अश्वा उपायुङ्ग्ध्वम् - वें0 - पृषती वडवा उपो अयुग्ध्वम् । have harnessed the spatted deer-मैक्स0; the spotted deer yoked to drag the car - [illegible], spotted deer yoked - मैक्डा0, spotted deer without a companion- मो0वि0, have yoked the spotted deer - ग्रिफिथ ।

<u>प्रष्टिर्वहति रोहितः</u> - एक जुती हुई लाल वर्ण हिरणी । रथतियो वाहन त्रयमध्यवर्ती युग विशेषः रोहितः मृगावन्तरजातिर्लोहितवर्णः वहति रथं नयति- सा0मु0; प्राष्ट भूत्वा ववृति रोहितवर्णः अश्वं तं योपायुग्ध्वम् - वें0, the red deer yoked - वि0, ग्रि0, मैक्डा0, a red one draws your chariot - मैक्स0 a red deer as leader draws - मो0वि0 ।

<u>चित् अश्रोदबीभयन्त</u> - सुनकर काँप उठते हैं । स्वयंश्रोता सन्तो न्येषामपि भीतिमुत्पादितवन्तः - सा0, मु0, आश्रृणोति भवताम् आगच्छन्तोति भयेन विभयति - वें0 drag the car and one alarmed - वि0, the earth herself listened and menwere sorly.

7. आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नो वसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥7॥

<u>अन्वय</u> - रुद्रा वः तनाय कं अवः मक्षू आ वृणीमहे यथा पुरा बिभ्युषे कण्वाय नूनं गन्त इत्था अवसा नः ।

<u>अनुवाद</u> - शत्रु को रुलाने वाले मरुतों । हम लोग अपने पुत्रों के लिए तुम्हारे सब प्रकार के रक्षण की शीघ्र (प्राप्त की) प्रार्थना करते हैं । तुम

लोग जिस तरह पहले हमारी रक्षा के लिए पहुंचे थे उसी प्रकार डरे हुए मेधावी यजमान को अनुगृहीत करने के लिए भी शीघ्र पहुँचो ।

तनाय - पुत्रों के लिए । तनायकम् अस्मदीयपुत्रार्थम् - सा०, मु०; पुत्राय - वें०; तनोत्यसा विति तनः पुत्रादिसन्तानः - स्कन्द० । our progeny - वि०; for our race - मैक्स०, our children's sake - ग्रि०, का०कै०पी०, for our assistance - मो०वि० ।

आवृणीमहे - सर्वतः प्रार्थयामहे - सा०मु०; प्रार्थयामहे - स्कन्द०, all choosing - मैकडा०, mfn. select मो०वि० to desire - मैक्स० have recourse - वि० ।

विभ्युषे - डरे हुए (कण्व के लिए) भीतियुक्ताय - सा०मु०, गच्छतीति भीति-युक्ताय - वें; आशङ्कितयुष्मदागमनभीताय - स्कन्द०; with danger - मैकडा०, with fear - मो०वि०, का०कै०पी०; for the frightend (Kanva); to the timid - वि० ।

अवसा - रक्षा के द्वारा । अस्मदीय रक्षणेन - सा०मु०; अस्मान् रक्षणेन - वें० with favour - मैकडा०; with protection - मो०वि०, for our protection - वि०; with help - मैक्स० with your aid - ग्रिफिथ ।

8\. युष्मोषितो मरुतो मर्त्यषितः आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥8॥

अन्वय - मरुतः यः अभ्वः युष्मा इषितः मर्त्य-इषितः न आ ईषते तं शवसा वि युयोत ओजसा वि युष्माकाभिः वि ऊतिभिः ।

अनुवाद - हे वीर मरुतों ! जो भयावह हथियार तुमसे फेंका हुआ या किसी अन्य मानव से प्रेरित होता हुआ अगर हमारे ऊपर आ गिरता हो तो उसे (अपने) बल से हटा दो । अपने तेज से दूर फेंक दो और अपनी संरक्षण योजनाओं द्वारा उसे विनष्ट करो ।

युष्मेषित: - तुम्हारे द्वारा प्रेषित । युष्माभि: प्रेषित: - सा०भु०, वें०, युष्मत - प्रेषितो - स्कन्द०; sent by you - मो०वि०, ग्रि०, का०कैप० roused by you - मैक्डा०, roused by you or roused वि० roused by you or roused by men - मैक्स० ।

अभ्व: - शत्रु (भयरहित) अभवतीतीव शत्रु: - सा०भु०; महान अस्मान् - वें०, महन्नामैतत (नि०निघं० ३.३) महान आ स्कन्द०, safe - का० कैप०, unfeerful foe - मो०वि०, Fearless - मैक्डा०; any adsur-sary - वि०; any monstrous foes - ग्रि० fiend - शैतान, दानव - मैक्स० ।

आ ईषते - आक्रमण करता है । आभिमुख्येन प्राप्नोति - सा०भु०, हिनस्ति- वें० threaten us - मैक्डा०, ग्रिफिथ, attack us - का०कैप०, मैक्स०; assail us - मो०वि०, वि० ।

वियुयोत - अलग कर दो । विभक्तं कुरुत - सा०भु०, पृथक् कुरुत - स्कन्द०, वें०, deprive of strength and of your favours- मैक्स०, with held from him fovd and strength - वि० Tear him from us with you power and mightग्रि०; to open- कैप० to separate - मो०वि०, मैक्डा० ।

युष्माकाभिरूतिभि: - अपने रक्षकों द्वारा । युष्मद् संबन्धिभि: रक्षणैश्च - सा०भु०, यौष्माकीणै: परिरक्षणैश्च अस्मान् अपेतेति - वें०, यौष्माकीणै: पालनैश्च - स्कन्द०; By your assistance - वि०; by your favours - मैक्स०, with the suceours that are yours - ग्रि०, मो० ।

9. असामिहि प्रयज्यव: कण्वं दद प्रचेतस: ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युत: ॥9॥

अन्वय - प्रयज्यव: प्रचेतस: मरुत: कण्वं अ-सा मि-हि दद अ-सामिभि: ऊतिभि: विद्युत. वृष्टिं न न: आगन्त ।

अनुवाद - हे अतीव पूज्य तथा उत्कृष्ट ज्ञानी मरुतों ! कण्व को जैसे तुमने पूर्णरूप से आश्रय दे दिया था, वैसे ही संरक्षण की सम्पूर्ण एवं अविकल आयोजनाओं तथा साधनों से युक्त होकर वर्षा की ओर जाने वाली बिजलियों की भाँति हमारी ओर आओ ।

असामि हि - सम्पूर्ण । सम्पूर्णमेव यथा भवति तथा - सा0मु0; सम्पूर्णमेव - वें0 । not half - मो0वि0; with completetion - मैक्डा0; wholly - मैक्स0; uphold - वि0; with ful (Protecting help) ग्रिफिथ, whole - का0कै0 ।

प्रयज्यव: - पूज्य । प्रकर्षेण यष्टव्या: - सा0मु0; प्रकृष्टज्ञाना: - वें0; offered for worship - मैक्डा0, का0कै0; unresuerdly worship - वि0; wise - ग्रि0, मैक्स0 ।

दद् - देना, धारण करना । धारयत - सा0मु0, दत्त - वें, स्कन्द0; have guarded - ग्रि0, have protected - मैक्स0 uphold the sacrifice kanwa - वि0 ।

प्रचेतस: - प्रबुद्ध ज्ञानी । प्रकृष्टज्ञानयुक्ता - सा0, मु0, प्रकृष्टज्ञाना: - वें0, स्कन्द0; knowing - मो0वि0; wise- ग्रि0. मैक्डा0, का0कै0, chasing and wise - मैक्स0:, possessed of superior (Pra) intellect(cheta वि0 ।

विद्युत: न वृष्टिम् - बिजलियाँ वर्षा की ओर जैसे जाती हैं । यथा विद्युतो वृष्टिं गच्छन्ति तद्वत सा0, मु0, वृष्टिमिव विद्युत:

शीघ्रम् - वें; यथा वृष्टिं मरुतो व्याप्नुवत्यो विद्युत: आगच्छन्ति, तद्वत-स्कन्द0; as lighting flashes seek the rain - Grif. as lightings (go inquest of) the rain - Max; like the lightening bring the rain - V., 'So, schrell) gleichwie der blitz rum Regen kommt'-lightening procedes the rain and may therefore be represented as looking about for the rain-Benfe proposes same bold conjectures. He would change kanwam to Ranwam and take the words from 'Ashmibhi' to 'yanta' as a parenthesis. He translate - For nothing imperfect, you highly to be revered maruts, no something delightful your gave-with perfect aids, Maruts,come to us)-as lightings give rain - Ludvig.

आगन्त - आओ । आगच्छत - सा0मु0, वें0, स्कन्द0 ; come to (us) वि0, ग्रि0, मैक्स0, मैक्डा0, का0कैप0; arrive - मो0वि0 ।

10. असाम्योजो विभृथा सुदानवो सामि धूतय: शव: ।
ऋषिद्विषे मरुत: परिमन्यव: इषुं न सृजत द्विषम् ॥10॥

अन्वय - सुदानव: मरुत: असामि ओज: असामिशव: बिभृथ, धूतय: ऋषि-द्विषे परिमन्यवे इषुं न द्विषं सृजत ।

अनुवाद - हे शोभनशील दानी मरुतों ! तुम सम्पूर्ण बल एवं अतीव शक्ति धारण करते हो । शत्रु को विकंपित करने वाले मरुद्गण ऋषियों से द्वेष करते करनेवाले क्रोधी शत्रु को धराशायी करने के लिए द्वेषी शत्रु को बाण के समान उस पर छोड़ दो ।

असामि ओज - द्रष्टव्य 1.39.9

विभृथ - धारण करते हो । धारयथ - सा0मु0वें0, स्कन्द; to have - ग्रि0, to carry - मैक्स0, to possess - वि0, मैक्डा0, मो0वि, का0कैप0 ।

<u>सुदानव:</u> - शोभन दानी । शोभनदानोपेता: - सा०भु०, शोभनदाना: - वें०, स्कन्द० । Bounteous givers- मैक्स०, मैक्डा० ।

<u>ऋषिद्विषे</u> - ऋषि से घृणा करना । ऋषीणां द्वेषं कुर्वते शत्रवे तद्विनाशार्थं द्विषं द्वेषकारिणं हन्तारं - सा०भु० कण्वं मां द्वेष्टि इव द्वेषं - वें०, मत्प्रभृतीनामृषीणां द्वेष्ट्रे - स्कन्द० the wrathful enemy of the Rishis- वि०, again the wrathful enemy of the poetson enemy - मैक्स०, the poets wrathful enemy- ग्रि०, hating enemy of the Rishis - का०कै०प० ।

<u>परिमन्यवे</u> - क्रोध के लिए । कोप परिवृत्ताय - सा०भु०, परितो मन्यमानाय - वें० let loose youranger against the enemy- वि०, against the wrathful enemy - गो०, ग्रि०, मो०वि०, मैक्डा० ।

<u>इषुम न</u> - बाण की भाँति । यथा शस्त्रोपरि वाणं मु यति तद्वत - सा०भु०; यथा कश्चिद् कस्मै चिदिषुं .. सृजेत - स्कन्द०; शरम इव - वें०; like an arrow - मैक्डा०वि०, ग्रिफिथ, मो०वि०; like a dart - मैक्स० ।

<u>सृजत</u> - फेंकना, प्रतिरोध करना, भेजना, रचना करना; विसृजत - सा०; विसृजत क्षिपव - स्कन्द० । विसृजतेति - वें०; हन्तारम् - मु०; to wish to send forth - गो०वि०, to wish to create - मैक्डा०; send against - मैक्स०, send - ग्रिफिथ ।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः, सुवृक्तिप्रभरा मरुद्भ्य. ।

अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुव. ॥ । ॥

अन्वय - नोधः वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय मरुद्भ्यः सुवृक्तिं प्रभरधीरः सुहस्त्यः मनसा
विदथेषु आ भुवः गिरः अपः न समञ्जे ।

अनुवाद - हे काव्यरचयिता ऋषि । बल पाने के लिए, शोभन यज्ञ के लिए, अच्छे ज्ञानी
होने के लिए और स्वबलवर्धन हेतु मरुतों के लिए उत्कृष्टतम काव्यों की यथेष्ट
रचना करो । कुशल पुरोहित की भांति हाथ जोड़कर मन से उनकी ‡सराहना कर रहा
हूँ‡ ‡और‡ यज्ञों में प्रभावयुक्त वाणियों की जल के समान वर्षा कर रहा हूँ ‡उनके काव्यों
का गान कर रहा हूँ‡ ।

वृष्णे - बलशाली के लिए । कामानां वर्षित्रे - सा०,मु०; वर्षित्रे मारुताय - वें० ;
वर्षित्रे गणाय - स्कन्द०; for the manly host - ग्रिफिथ, मैक्स०;
For manly power - मो०वि०; for mighty host - मैक्डा०; For the
strong host - का०कैप० ।

सुमखाय - शोभन यज्ञ के लिए । शोभन यज्ञाय - सा०मु०, वें०; सुयज्ञाय-स्कन्द०;
wise and joyful - वि०; wise and magestical - ग्रि०;
the joyful the wise - मैक्स० ।

वेधसे - ~~सुकरस्य~~ गुण्ज्ञ; विज्ञ । पुष्पफलादीनां कर्त्रे-सा०,मु०, the wise - मैक्स०;
मो०वि०; wise in mind - ग्रिफिथ; fruit deserving of adoration-
virtuous -
वि; author, ereator - ऐ०ब्रा०; First of Prajapati Civa:etc.- मैक्डा०;
worshipper - का०कैप० ।

सुहस्त्यः - हाथ जोड़कर । शोभनाङ्गुलियुक्तः कृताञ्जलित्यर्थः - सा०मु०; Fair
handed - मैक्डा०, deft of hand - मो०वि०, ग्रिफिथ; with

.the hands - का0कै0प0; with folded hands - वि0; prepare songs- मैक्स0 ।

विदथेषु आभुव: - यज्ञों में प्रभावयुक्त । यज्ञेषु, यथाशास्त्रं प्रयुक्ता भवन्तीति आभुवो देवताभिमुखीकरणाय समर्था: यज्ञयोग्यै: स्तोत्रैर्मन:पूर्वकमरुद्गणं स्तौमीतिभाव:-सा0मु0; यज्ञे प्रयोक्तुं योग्या: - वें0; mighty at sacrifices - मैक्स, power in solemn rites - ग्रि0; es. for afestival present - मो0वि0 ।

ते जज्ञिरे दिव: ऋष्वास उक्षणो, रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपस: ।

पावकास: शुचय: सूर्याइव, सत्वानो न द्रप्सिनोघोरवर्पस. ॥ 2 ॥

अन्वय - ते ऋष्वास: असुरा, अ-रेपस: पावकास: सूर्य इव शुचय: उक्षण: द्रप्सिन: सत्वान: न घोर वर्पस: रुद्रस्य मर्या: दिव: जज्ञिरे ।

अनुवाद - वे महान (ऊँचे) जीवन का दान करने वाले, पापरहित, पवित्रता करने वाले, सूर्य की भाँति तेजस्वी सोम पीने वाले (और) सामर्थ्य युक्त लोगों के समान वृहदाकार शरीर वाले (मानों) रुद्र के मरणधर्मा वीर स्वर्ग से ही उत्पन्न हुए ।

ऋष्वास: - दर्शनीय, महान । दर्शनीया:-सा0मु0,वें0, महान्त:-स्कन्द0; high - मो0वि0; Lofty - मैक्डा0; Vigorous - वि0; Lofty ones - ग्रि0; the tall (bulls) मैक्स0 ।

अरेपस: - पापरहित । the blamless pure - मैक्स0; stainless - मो0 वि0; spotless - मैक्डा0; Pure - का0कै0प0 ।

द्रप्सिन: - वर्षा की बूंदों को बिखेरने वाले । वृष्ट्युदकविन्दभिर्युक्ता:-सा0मु0; वृष्ट्युदकलक्षणेन रसेन रसवन्त. - स्कन्द0, the scattering rain drop - मैक्स0; pouring rain drop - का0कै0प0; falling in drop - मो0वि0;

carring a banner - मैक्डा0; diffusers of rain drops - वि0 ।

सत्वानो न - सामर्थ्ययुक्त लोगों की भाँति - यथा परमेश्वरस्य भूतगणा अतिशयित बल-पराक्रमा: 3 तत्सदृशा इत्यर्थ: - सा0; मु0; सिंहादय: - वें0; सत्वान इति भूतगणा उच्यन्ते - अथो ये अस्य सत्वान: - तै0सं0 4.5.1.3, conquerer of the foes - वि0; like gaints - मैक्स0; ग्रि0 ।

घोरवर्पस: - वृहदाकार शरीर वाले । शत्रूणां भयङ्कररूपा: - सा0मु0; घोररूपा: - वें0, स्कन्द0; assumming awaful - मैक्डा0; full of violent stratagem - का0कैप0; fearfull forms - वि0; awful of forms (likegaints) - ग्रि0; full of terrible designs (like gaints) - मैक्स0 ।

उक्षण: - सेचनीय । सेक्तार: - सा0मु0, वें0, स्कन्द0; sprinkling - मो0वि0; bessprinkling - मैक्डा0; scattering rain drops - वि0; the bulls of Heaven - मैक्स0; ग्रि0 ।

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो, ववक्षुरधिगावः पर्वता इव ।

दृळहा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा, प्रच्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ 3 ॥

अन्वय - युवान: अजरा: अभोक् हन: अधिगाव: पर्वता इव रुद्रा: ववक्षु:, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृळहा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति ।

अनुवाद - यौवन सम्पन्न, अजर, अनुदार कृपणों को दूर करने वाले, आगे बढ़ने वाले, पहाड़ों की भाँति स्वस्थान पर अटल, शत्रु रोदयिता ये वीर लोगों को सहायता पहुँचाते हैं । पृथ्वी पर उपलब्ध तथा द्युलोक में विद्यमान सभी लोक कितने भी स्थिर हों तो भी उन्हें ये स्वबल से अपदस्थ कर देते हैं तथा विचलित कर देते हैं ।

अभोग्घन: - अनुदार कृपणों को दूर करने वाले । ये देवान् हविर्भिर्न भोजयन्ति तेषां-
- हन्तार: - सा0,मु0, यागादिनायस्तेषामभोग्यस्तस्य हन्तार: - स्कन्द0;
the slayers of demon - मैक्स0; demon slayer's - ग्रि0; destructive of these who do not worship - वि0 ।

अधिग्राव: - आगे बढ़ने वाले । अधृतगमना: परैरनिवारितगतय. - सा0मु0, अधृतगमना-वें0; irresistible - ग्रि0; मैक्स0; desirous - वि0; possessed of qualities - मैक्डा0 ।

पार्थिवा - पार्थिव । पृथिव्यां भवानि - सा0मु0; पार्थिवानि - वें0; on earth and in heaven - मैक्स0; both of earth and heaven-ग्रि0; of heaven or of earth- वि0; terrestrial - मो0वि0 ।

ववक्षु: - पहुँचाते हैं । स्तोतृणामभिमतं प्रापयितुमिच्छन्ति - सा0मु0; वहन्ति-वें0;
to progess - वि0; have grown irresistable - मैक्स0; have waxed (irresistible) - ग्रि0 ।

प्रच्यावयन्ति - विचलित कर देते हैं । प्रचालयन्ति - सा0मु0; to move - मो0वि0;
throw down - मैक्स0; make all being tremble - ग्रि0; agitate - वि0; deprivation - मैक्डा0 ।

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्य ञ्जते, वक्ष:सु रुक्मां अधियेतिरे शुभे ।

अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुऋष्टय:, साकं जज्ञिरे स्वधया दिवानर: ।। 4 ।।

अन्वय - वपुषे चित्रै: अञ्जिभि: विअ चते वक्ष: सु शुभे रुक्मान् अधियेतिरे येषां अंसेषु ऋष्टय: नि मिमृक्षु: नर: दिव: स्वधया साकं जज्ञिरे ।

अनुवाद - शरीर की सुन्दरता बढ़ाने के लिए विविध प्रकार के आभूषणों द्वारा वे विशेष ढंग से अपनी सुषमा वृद्धिगत करते हैं । वक्षस्थल पर शोभा के लिए सोने का

हार धारण करते हैं । इन मरुतों के कंधों पर हथियार चमकते रहते हैं । नेतृगुण सम्पन्न वीर मरुत् । द्युलोक से अपने बल के साथ प्रकट हुए ।

चित्रैः अञ्जिभिः - विविध प्रकार के आभूषणों द्वारा ॥ रूपाभिव्य जनसमर्थैराभरणैः स्वशरीराणि - सा०मु०; नानारूपैः आभरणैः - वें०; with shining jewels - मैक्ड०; with glittering ornaments - ग्रि०, मैक्स०; with various ornaments - वि०; with excellent ornaments -मो०वि०; ।

व्यञ्जते - ॥विशेष प्रकार से सुषमा॥ व्यक्त करते हैं । व्यक्तं कुर्वन्ति - सा०मु०; अलङ्कुर्वन्ति-वें०; anoint - मैक्ड०; fastend gold - मैक्स०; display - वि०; smear - मो०वि० ।

शुभे - शोभा के लिए । शोभार्थम् - सा०मु०; beautiful - मो०वि०; Pleasant - मैक्ड०; for beauty - ग्रि०; for elegance- वि०; marvellous show - मैक्स० ।

अधियेतिरे - ऊपर धारण करते हैं । उपरि चक्रिरे - सा०मु०, अधियातयन्ति - वें०; decorate their persons-वि०; deck themselves - मैक्स०; deck themforth - ग्रि० ।

निमिमिक्षु - चमकते रहते हैं । निमृष्टाः स्थिता बभूवुः - सा०मु०; निषक्ता भवन्ति वें०; to sparkle - मो०वि०; lusture - का०कै०प०; brightness-मैक्ड०; glitter - मैक्स०; ग्रि०; brilliance -वि०; द्राथ निमिमिक्षु के स्थान पर नि +√मिक्ष् को अधिक उपयुक्त स्वीकार करते हैं ।

जज्ञिरे - प्रकट हुए । प्रादुर्बभूवु.-सा०मु०; जाताः - स्कन्द० ; प्रादुर्भवन्ति - वें ; rising - मैक्ड०; appearing -मो०वि०; were born -ग्रि०; मैक्स०, are born - विल्सन ।

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो, वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।

दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो, भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ 5 ॥

अन्वय - ईशानकृतः धुनयः रिशादसः तविषीभिः वातान् विद्युतः अक्रत । परिज्रयः धूतयः दिव्यानि ऊधः दुहन्ति । पयसा भूमिं पिन्वन्ति । ~~प्रभुत्व~~

अनुवाद - पूज्य प्रभुत्वसम्पन्न व्यक्ति की भाँति आचरण करने वाले (शत्रुओं) को कँपाने वाले शत्रुहिंसक (अपनी) शक्तियों से वायुओं को (तथा) विजलियों को उत्पन्न करते हैं । चतुर्दिक परिभ्रमण करने वाले, शत्रुओं को कंपाने वाले (ये वीर) आकाशस्थ मेघों का दोहन करते हैं (और) यथेष्ट वर्षा द्वारा भूमि को तृप्त करते हैं ।

ईशानकृतः - स्तोता (प्रभुत्वसम्पन्न) स्वामी की भाँति आचरण करने वाले । स्तोतारमीशानं धनाधिपतिं कुर्वाणः - सा० मु०; mfn. acting like a competent person - मो०वि०; acting as a lord - मैक्डा०; worshipper- वि०; the who confer power - मैक्स०; giving strength- ग्रिफिथ ।

रिशादसः - शत्रुहिंसक । रिशानां हिंसकानामन्तारः - सा०मु०; शत्रुहिंसकाः - वें०; of the Maruts and the other gods - मैक्डा०; devourer of foes - मो०वि०, मैक्स०, वि०, ग्रिफिथ ।

धुनयः - कंपाने वाले । मेघादीनां कम्पयितारः - सा०मु०; कम्पयितारः - वें०; rushing along- मैक्डा०; roaring - मो०वि०; roarers - मैक्स०, loud roarers - ग्रि० ।

अक्रत - उत्पन्न करते हैं । कुर्वन्ति - सा०मु०, वें०, स्कन्द०; made - मैक्स०; make - ग्रिफिथ; create -वि०, मो०वि० ।

परिज्रय - चतुर्दिक गमन करने वाले । परितो गन्तारः - सा०मु०, वें०; सर्वतो गामिनः स्कन्द०; become wornout - मो०वि०, moving all around मैक्डा०; ever wandering - ग्रि०; all around - मैक्स० ।

दुहन्ति - दोहन करते हैं । रिक्तां कुर्वन्ति - सा०मु०; प्रक्षारयन्ति - स्कन्द०, derive advantage from-मैक्डा०; milk- मैक्स०, drain-ग्रि०; वि० ।

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।

अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनम्, उत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ 6 ॥

अन्वय - सुदानवः आभुवः मरुतः विदथेषु घृतवद् पयः अपः पिन्वन्ति अत्यं न वाजिनं मिहे विनयन्ति, स्तनयन्तं उत्सं अक्षितं दुहन्ति ।

अनुवाद - शोभनदानी प्रभावशील मरुद्गण, यज्ञों में घी के साथ दूध तथा जल को समृद्ध करते हैं । घोड़े को जिस प्रकार प्रशिक्षित करते समय घुमाते हैं तथैव मरुद्गण बलयुक्त मेघों को वर्षा के लिए विशेष ढंग से ले चलते हैं । (तदुपरान्त) गरजने वाले उस मेघ का अक्षयरूप से दोहन करते हैं ।

सुदानवः - शोभनदानी । शोभनदानाः - सा०मु०, सुदानाः - वें० faithful worshippers - मो०वि०, giving richly - मैक्डा०; bounteous मैक्स०, ग्रि०; good givers - विल्सन ।

आभुवः - प्रभावशाली । आभवन्तीत्याभुव ऋत्विजः - सा०मु०; महान्तः - स्कन्द०; helpful - मो०वि०, मैक्डा०, solemn - ग्रि०; seem to lead मैक्स० as grooms load - वि० ।

घृतवद्पयः - घी के साथ दूध । यथा घृतं सिञ्चत्येवं मरुतोऽपि वृष्टिं कुर्वन्तीतिभावः: सा०मु०; क्षीरं च घृतसंयुक्तम् - स्कन्द०; clarified butter with milk- मैक्डा०; मो०वि०; the fat milk (of the clouds); with the fatness dropping milk - ग्रि०; the clarified butter - वि० ।

मिहे - वर्षा के लिए । वर्षणाय - सा०मु०; to wet मो०वि०; for pouring water- मैक्डा०; to make it rain-मैक्स०; that may rain-ग्रि०; for its rain- वि० ।

विनयन्ति - विशेष ढंग से ले चलते हैं । स्वाधीनं कुर्वन्तीति भाव: - सा०भु०; वें०;
विविधमितश्चेतश्च नयन्ति - स्कन्द०; roaming - मो०वि०, मैक्ड०;
(They) lead - ग्रि०; bring forth - वि०; (They)seem to lead -मैक्स०।

स्तनयन्तम् - गरजने वाले । गर्जन्तम् - सा०भु०, स्कन्द०; उत्साह्यं-वें०, having a
roaring onset (Maruts)मो०वि०; मैक्ड०; the thoundering -
वि०, मैक्स०, ग्रि० ।

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो, गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना, यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ 7 ॥

अन्वय -महिषास: मायिन: चित्रभानव: गिरय: न स्वतवस: रघुष्यद: हस्तिन: मृगाइव
वना खादथ, यत् आरुणीषु -तविषी: अयुग्ध्वम् ।

अनुवाद - हे अतिकुशल कारीगर मरुतों । अत्यन्त तेजस्वी पर्वतों के समान स्वकांति ॥बल॥
से स्थिर रहने वाले ॥परन्तु॥ वेगपूर्वक गमन करने वाले ॥तुम॥ हाथियों एवं
मृगों के समान वनों को खा जाते हो क्योंकि तुम लालवर्ण वाली घोड़ियों में से बलिष्टों
को ही रथों में लगाते हो ।

गिरयो न स्वतवस: - पर्वतों की भाँति स्वबलयुक्त । पर्वता इव स्वकीयेन बलेनयुक्ता:-
सा०भु०, पर्वताइव स्वबला-वें०-स्कन्द०; Concious of one's
own strength like mountain - मो०वि०; self strong like mountains-
a mountain - मैक्ड०; bright shining like - वि०; strong in them-
selves like mountains - मैक्स० ।

रघुष्यद: - वेगगामी । शीघ्रगमना: - सा०भु०; लघुगवा - वें०; स्यन्दतिर्गतिकर्मा -
॥तु०निघं० 2.14; swiftly going- मैक्ड०; rapid- मो०वि०; glid-
ing along - मैक्स०; (Ye) glide swiftly - ग्रि०, quick in motion -
विल्सन ।

<u>खादथ</u> - खा जाते हो, चबा जाते हो । भक्षयथ - सा0मु0; destroy - मो0वि0; break down - वि0; (Ye) eat up - ग्रि0; chew up - मैक्स0, रा0थ0।

<u>अयुग्ध्वम्</u> - ⌊रथों में⌋ जोतते हो । समेजितवन्तः - सा0मु0; Paired - मो0वि0; odd - का0कैप0; have assumed - वि0, मैक्स0; (Ye) assume - ग्रि0 ।

सिंहाइव नानदति प्रचेतसः, पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।

क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिॠष्टिभिः, समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ।। 3 ।।

<u>अन्वय</u> - प्रचेतसः सिंहा इव नानदति, पिशा इव सुपिशः विश्ववेदसः क्षपः जिन्वतः, शवसा अहिमन्यवः पृषताभि. ॠष्टिभिः सबाधः सं0 इत् । ⌊समित⌋ ।

<u>अनुवाद</u> - प्रकृष्ट ज्ञानी ⌊ये वीर मरुत्⌋ सिंहों के सदृश गर्जना करते हैं । आभूषणों से विभूषित पुरुषों की भाँति शोभनशील धन सम्पन्न शत्रुहन्ता ⌊लोगों के⌋ संतुष्टकर्ता अदम्य बलशाली ⌊मरुद्गण⌋ चितकबरी घोड़ियों के साथ और हथियारों के साथ 7 लोगों की रक्षा के लिए तुरन्त एकत्रित होकर चलते हैं ।

<u>सिंहाइव नानदति</u> - सिंह सदृश गर्जना करते हैं । भृशं शब्दं कुर्वन्ति । यथा सिंहा गिरिगह्वरेषु गम्भीरं शब्दं कुर्वन्ति एवं मरुत्तु अभ्यागतेषु गम्भीरः शब्दः उत्पद्यते इति भावः - सा0मु0 । सिंहाइव शब्दं कुर्वन्ति - वें0 । roaring - मो0वि0; sounding alour -मैक्डा0; roar like lions -ग्रि0; वि0; like lions (they) roar - मैक्स0।

<u>पिशाइव</u> - आभूषणयुक्त पुरुषों की भाँति शोभाधारी । पिश इति रूपनाम यथा रुरुः स्वशरीरगतैः श्वेतविन्दुभिरलङ्कृतास्व तद्वत-सा0मु0; tawny colour adorn मैक्डा0; adorned with - मो0वि0; तु0 अवे0 19.49.4 त्सिमर, आ0ले0 83 मैक्स0 सेबुई 32 ।18; गलेडनर-ग्लासर ।10; handsome like gazells - मैक्स0; with their antilapes -वि0; beautous as antilppes- ग्रि0 ।

क्षप: जिन्वत: - शत्रु को जीतने वाले । शत्रूणां क्षपयितार: - सा0मु0; शत्रून् बाधितार: वें0; do penance capture - मो0वि0; destroying delight ing - मैक्डा0; destroying delightingवि0; stirring the darkness with lances - ग्रि0; By might ...... and with their spears (lightings) - मैक्स0 ।

अहिमन्यव: - अत्यधिक उत्साही । आहननशीलमन्युयुक्ता: - सा0मु0; (mfn) enraged like serpents (n of Maruts) - - - - - - - मो0वि0; in their anger - वि0, like the ine of serpents - मैक्स0; with serpents' jury - ग्रि0 ।

पृषतीभि: ऋष्टिभि: - चितकबरी (घोड़ियों) तथा हथियारों के साथ । मरुतां वाहनस्याख्यापृषत्या श्वेतबिन्दुङ्किता मृग्य इत्यैतिहासिका:, नानावर्णा मेघमाला इति नैरुक्ता: ताभि:, ऋष्टिभि:-आयुधैश्च सहित: सन्त - सा0 मु0, अश्वाभि: ऋष्टिभि: चायुधविशेषै:-वें0 । spotted spear - मैक्डा0; speckled spear - मो0वि0; dappled with armor with spear -का0कैप0; the spotted deer and their arms - वि0; with their spotted deer and their spears —— मैक्स0, with lances and spotted deer - ग्रिफिथ ।

रोदसी आ वदता गणश्रियो, नृषाच: शूरा: शवसाहिमन्यव: ।

आ बन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता, विद्युन्न तस्थौमरुतो रथेषु व: ॥ 9 ॥

अन्वय - गणश्रिय. नृषाच: शूरा: शवसा अहिमन्यव: मरुत: रोदसी आ वदत, बन्धुरेषु रथेषु अमति: न, दर्शता विद्युत् न व: आ तस्थौ ।

अनुवाद - समुदाय के कारण शोभित होने वाले, जनसेवी, वीर अत्यधिक बल के कारण न घटने वाले उत्साह से युक्त मरुतों । भूतल एवं द्युलोक को अपना दहाड़ से

भर दो । ﴾जिनमें﴿ बैठने के लिए सुव्यवस्था है ﴾ऐसे﴿ रथों में निर्मलरूप वालों के समान तथा दर्शनीय विजयों के क्र समान तुम्हारा तेज फैल चुका है ।

गणश्रियः: - समूह में शोभित । गणशः श्रयमाणाः सप्तगणरूपेणावस्थिताः - सा०भु०; गणरूपा:-स्कन्द०; joind in flock - मो०वि०; in troops- मैक्ड०; distinguished in troops - वि०; in companies - मैक्स०, ग्रि०, राथ ।

नृषाच: - जनसेवी । यजमान हविः स्वीकरणाय सेवमानाः - सा०भु०; मनुष्याणां सम्भक्तारः - वें०; benovalent to men - वि०; the friends of men - मैक्स०; befriending men - ग्रि० ।

रोदसी - द्युलोक एवं पृथ्वी लोक । द्यावापृथिव्यौ-सा०भु०, स्कन्द०; heaven and earth - मैक्ड०, मो०वि०, वि, मैक्स०, ग्रि० ।

वन्धुरेषु रथेषु - बैठने की व्यवस्थित जगह ﴾रथों﴿ में । बन्धक का०ठ निर्मितं सारथेः स्थानं बन्धुरमित्युच्यते - सा०भु०; charming carriage pole - मैक्ड०; on the seats on your chario मैक्स०; upon the cars stands - ग्रि०; (Your) sits in the seat furnished chariots - वि० ।

अमर्तिन[1] - सुन्दर रूपों वाला । यथा निर्मलरूप सर्वैर्दृश्यते - सा०भु०; रूपमिव दर्शनीया

---

1. Creasing the might of the warrior.

....... But it is most frequently used on the effulgence of the sun. 3.38.8; 5.45.2; 62.5; 7.38.1,2; 45.3; See also 5.56.8; where the same companion of the Maruts is called Rodasi, The comporative particle 'na' is used twice.

See . "Vedic Hymns",
Max.Muller.

वें0; as the lovely lightings - वि0; visible as light - ग्रि0; मैक्स0; Amati means originally impetus then power e.g. 5.69.1; वविधान्यु अमतिं क्षत्रियस्य ।

दर्शता विद्युत न - दर्शनीय विद्युत के समान । यथा वा दर्शनीया विद्युन्मेघस्था सर्वैर्दृश्यते एवं रथे स्थितानां युष्माकं ज्योतिरपि सर्वैर्दृश्यते इत्यर्थः-सा0भु0; visible like shining asunderमैक्डा0; conspicuous like flashing - मो0वि0; As the lovely lighting - वि0; stands like lightning - ग्रि0; the lightning stands - मैक्स0 ।

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः, संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्यो-रनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ 10 ॥

अन्वय - रयिभिः विश्ववेदसः सं-ओकसः तविषीभिः सं-मिश्लासः वि-रप्शिनः अस्तारः अन् अन्तशुष्माः वृषखादयः नरः गभस्त्योः इषुं दधिरे ।

अनुवाद - धनों ।सम्पन्नता। के द्वारा सर्वधनयुक्त साथ-साथ रहने वाले अनेक बलों से युक्त विशेष सामर्थ्यवान, शत्रुओं पर प्रहार करने वाले, असीम सामर्थ्य वाले, विशाल आभूषण धारण करने वाले नेता ।मरुद्गण। भुजाओं पर बाण धारण कर रहे हैं ।

रयिभि - धनों के द्वारा । धनैः - सा0भु0, वें0; धनानां - स्कन्द0; by wealth - मो0वि0; by treasure - मैक्डा0; with wealth - वि0; राय; मैक्स; of wealth - ग्रिफिथ ।

समोकसः - साथ-साथ एक ही घर में निवास करने वाले । समान निवासाः समवेता- -वा-सा0भु0; समानस्थानाः - वें0; keeper of a gaming house - मैक्डा0; dwelling in the home - ग्रि0; co-dwellers - वि; men of endlesspowers मैक्स0 ।

संमिश्लास: - मिश्रित ।संमिश्रा:, सा०भु०; सम्मिश्रयन्त:-वें०; combined - वि०; endowed with - ग्रि०; मैक्स०; mingled - मो०वि० ।

विरप्शिन: - विशेष सामर्थ्यवान । महान्त: - सा०भु०, स्कन्द०; swelling -मो० वि०; powers - मैक्स०; with strength-वि०; with mighty vigour - ग्रि० ।

अस्तार: - शत्रु पर अस्त्र चलाने वाले । शत्रूणां निरासितार. - सा०भु०; क्षेप्तार:-वें०, to repellers of foes -वि०; laid the arrow -ग्रि०; have taken the arrow - मैक्स०; लेन० ।

वृषखादय: - विशाल आभूषण धारण करने वाले । वृषा इन्द्र: खादि: आयुधस्थानीयो- -येषां ते - सा०भु०; are leaders (of men) held in their hands- वि०; with strong men's ring - ग्रि०, मैक्स०; wearing big x rings - मैक्डा० ।

हिरण्ययेभि: पविभि: पयोवृध, उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयास: स्वसृतो ध्रुवच्युतो, दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टय: ।। ।। ।।

अन्वय - पयोवृध: मखा: अयास स्वसृत: ध्रुवच्युत: दुध्रकृत: भ्राजत ऋष्टय: मरुत: आपथ्य: न पर्वतान् हिरण्ययेभि: पविभि: उत् जिघ्नन्ते ।

अनुवाद - दूध पीकर पुष्ट बनने वाले, यज्ञ करने वाले, आगे जाने वाले, स्वच्छन्दतापूर्वक हलचल करने वाले, अटलरूप से खड़े शत्रुओं को भी हिलाने वाले तथा दूसरों के द्वारा न घेरे जाने योग्य अर्थात् अत्यन्त वीर तेजस्वी हथियार साथ रखने वाले मरुद्गण राही जिस प्रकार राह ।मार्ग। के तिनके को दूर फेंक देता है तथैव पहाड़ों तक को स्वर्णमय रथों के पहियों से उड़ा देते हैं ।

पयोवृधः - दूध पीकर पुष्ट होने वाले । पयसो वृष्टयुदकस्य वर्धयितारः - सा०मु०; उदकस्य वर्धयितारः - वें०; over following- मो०वि०; increase the rain - मैक्स०; augmenters of rain - वि०; make the rain increase - ग्रि० ।

अयासः - आगे जाने वाले । देवयजन देशं प्रतिगन्तारः - सा०मु०; गच्छन्तः - वें०; गमनशीला - स्कन्द०; indefatigable - मैक्डा०; active on his way- मो०वि०; unwearied - ग्रि०; brisk indefatigable - मैक्स०; visitants of the hall of offering; Fluthmeh-rer- वेनफे ।

दुध्रकृतः - दूसरों के द्वारा न घेरे जाने वाले । दुध्रं दुष्टानां धारयितारमात्मानं कुर्वाणाः - सा०मु०; दुर्धरस्य कर्मणः कर्तारः - वें०; difficult to be assaulted - मो०वि०; hard to be administered- मैक्डा०, move by themselves - ग्रि०; self moving - मैक्स० ।

हिरण्ययेभिः पविभिः - स्वर्णमय रथों के पहिये से । सुवर्णमयैः रथानां चक्रैः - सा० मु०; हिरण्यमयीभिः रथचक्रधाराभिः - स्कन्द०; with golden tire of a wheels - मो०वि०; मैक्स०; with golden wheels - वि०; with golden fell-ies- ग्रि०: ।

उज्जिघ्नन्ते - उड़ा देते हैं । ऊर्ध्वं गमयति - सा०मु०; उद्घाधयन्ति - वें०; raised - मो०वि०; lifted - मैक्डा०; increase - मैक्स०; drive- वि०; drive forward - ग्रि० ।

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं, रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।

रजस्तुरं तवसं मारुतं गण, मृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १३ ॥

अन्वय - मरुतः वः ऊती यं वै आवत सः गर्तः शवसा जनान् अति नु तस्थौ अर्वद्भिः वाजं नृभिः धना भरते पुष्यति आपृच्छयं क्रतुं आ क्षेति ।

अनुवाद - युद्ध में (संघर्ष में) चतुर पवित्रता करने वाले, वन में विचरण करने वाले, विशेष प्रकार से हलचल करने वाले, रुद्र पुत्र मरुतों का प्रार्थना करते हुए प्रशंसा (स्तुति) करते हैं। ऐश्वर्य के लिए धूल उड़ाने वाले (वेगपूर्वक गमन करने वाले) बलिष्ठ, वीर्यवान तथा सोम पान करने वाले मरुत् समुदाय को प्राप्त हो जाओ।

धृष्णुं - संघर्ष में। शत्रूणां बलस्य धर्षकं विनाशयितार: - सा0मु0; धर्षणशीलें - वें0।
exuberant - मैक्डा0; foe destroy वि0; the brisk- ग्रि0, मैक्स0।

विचर्षणि - विशेष प्रकार से हलचल करने वाले। विशेषेण सर्वस्य द्रष्टारम् - सा0मु0; विद्रष्टारम् - वें0; the active - मो0वि0; non-rishing- मैक्डा0; the active ones - ग्रि0; the active- मैक्स0।

हवसा - आह्वान के द्वारा। आह्वान साधनेन स्तोत्रेण - सा0मु0; स्तोत्रेण स्तुम:- वें0; with invocation - मैक्डा0; with prayer - मैक्स0, ग्रि0; invoke - वि0; with an invocation - राथ।

गृणीमसि - प्रशंसा करते हैं। शब्दयाम: - सा0मु0; स्तुम: - वें0; स्तुमोवयम - स्कन्द0; praise - मो0वि0; sing - मैक्डा0; with praise -वि0; invoke- मैक्स0; invoke(with prayer) ग्रि0।

रजस्तुरम् - धूल उड़ाने वाले (वेगगामी)। पार्थिवस्य पांसोस्त्वरयितारं - सा0मु0; उदकस्य प्रेरयितारम् - वें0; law grain of dust - मैक्डा0; grain of dust - मो0वि0; the chasers of the sky - ग्रि0; मैक्स0; in its ordinary sense, is a frying-pan but here it may mean any sacri~~fic~~ficial vessel - V.

वृषणम् - वें0; वर्षितारम् ; मु0; कामाभिवर्षकम्; ग्रि0; powerful - शक्तिशाली; वि0; Rains(Blessings) जो आशीर्वादों के वर्षक हैं। लेन0-संटी0 पृष्ठ 251-252. Vrisan adj. and subject describing on denoting all that was distinguished for its strength and virility -----------

मो0वि0; powerful - ग्रास0; starken- पुष्टिदायक है । 'उक्षन्' {बैल तथा 'वृषन्' सांड की उपधा का अकार सर्वनामस्थान से पूर्व कहीं दीर्घ एवं कहीं ह्रस्व हो जाता है । द्वि0 एकवचन - उक्षाणम् - उक्षणम् , वृषाणम् , वृषणम् । 'वा ष पूर्वस्य निगमे' पा0 6.4.9 इत्युपधादीर्घाभाव: । अतएव समस्त अर्थ का विश्लेषण करने पर वृषाणम् का अर्थ कामना सेचक उचित प्रतीत होता है । वृषन् पद 'वृष्' वीर्यसेचन करने से निष्पन्न है । इसका मूल अर्थ 'नर' था । किन्तु बाद में इसका प्रयोग प्रधानता श्रेष्ठता, विशिष्टता, प्रतिष्ठा के द्योतक के रूप में हुआ । वेद मंत्रों में इसका प्रयोग अनेकश: मिलता है । 'वीर' शक्तिशाली' आदि अर्थ विशेषण एवं देवताओं के नाम और प्रशंसावाचक रूप में इसका प्रयोग किया गया है । अंग्रेजी अनुवादकों ने बैल अर्थ किया है । किन्तु यह अर्थ स्वीकार करने योग्य नहीं है । इसका विस्तारित अर्थ 'शक्ति' तो स्वीकार किया जा सकता है । सायण ने इस शब्द का अर्थ अधिकतर स्थलों पर 'कामना सेचक' किया है अतएव कामना सेचक अर्थ उचित है ।

श्रिये - ऐश्वर्य के लिए । to make a show - मो0वि0; to make a bliss - मैक्डा0; for happiness - ग्रि0, मैक्स0 ।

सश्चत - प्राप्त हो जाओ । प्राप्नुत-सा0मु0; सेवध्वं - वें0; get into motion - का0कै0; get into quiver - मो0वि0; get into pass- मैक्डा0; cleave (for happiness) - ग्रि0; receiving -वि0; cling (for happiness) - मैक्स0 ।

प्र नू स मर्त: शवसा जनाँ अति, तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभि, रापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ 13 ॥

अन्वय - मरुत: व: ऊती यं वै आवत स: मर्त: शवसा जनान् अति नु तस्थौ अर्वद्भि: वाजं नृभि: धना भरते पुष्यति आपृच्छ्यं क्रतं आक्षेति ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारी संरक्षण शक्ति द्वारा जिसकी रक्षा करते हो, वह मनुष्य बल में अन्य लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ होकर स्थिर बन जाता है । {वह}

घोड़ों के दल की सहायता से अन्न पाता है । वीरों के द्वारा धन इकट्ठा करता है ॥और॥ पुष्ट होता है । बिना पूछे ॥सम्माननीय॥ यज्ञ की ओर चला जाता है ॥यज्ञ करता है॥ ।

व: ऊती - अपनी संरक्षण शक्ति द्वारा । ऊत्या रक्षणेन - सा०मु०; युष्माकं पालनेन-स्कन्द०; यूयं रक्षणेन - वें०; with self comfort-मो०वि०; for self aid - मैक्डा०; through your protection- मैक्स०; have guarded - ग्रि०; defend with your protection -वि० ।

नृभि: - वीरों के द्वारा । स्वकीयैर्मनुष्यै: - सा०मु०; दासै: - वें०; yedraw into your elaves - ग्रि०; be royal favourite - मैक्डा०; by favourit men - मो०वि०; man whom - वि०; with his men - मैक्स०; ग्रि० ।

पुष्यति - पुष्ट होता है । प्रजया पशुभि: पुष्टो भवति च - सा०मु०; nourishment-मो०वि०; मैक्डा०; prospers - मैक्स०; वि०; prospereth - ग्रि०; to flowrish - लेन० ।

आपृच्छ्यम् - सराहनीय, सम्माननीय, पूज्य, बिना पूछे । आपृष्टव्यं शोभनं - सा०मु०, वें०; Praise worthy - मैक्डा०; honourable -रा०, to be reserved - मो०वि० ।

आक्षेति - चला जाता है, प्राप्त होता है, यज्ञ करता है । आप्नोति - सा०मु०; सर्वदा द स्वस्मिन् स्थाने निवसति-स्कन्द०; अधितिष्ठति-वें०: प्राप्नोति-मु०; to giving up - मैक्डा०; surpasseth - ग्रि०; quickly surpasses-वि०; surpasses - लेन०; carries off - मैक्स०; to struck - मो०वि०।

चर्कृत्यं मरुत: पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।

धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं, तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमा: ॥ 14 ॥

अन्वय - मरुत: मघवत्सुचर्कत्यं पृत्सु-दुस्-तरं धुमन्तं शुष्मं धनस्पृतं उक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं-
तनयं धत्तन शतं हिमा: पुष्येम ।

अनुवाद - मरुतों ! धनिक तथा वैभवसम्पन्न लोगों में उत्तम कार्य करने वाला, युद्धों में
[विजेता], तेजस्वी, बलिष्ठ, धनसम्पन्न सराहनीय सब लोगों के हितकर्ता
पुत्र एवं पौत्र होते रहें । [तथा हम] सौ वर्ष तक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें ।

पृत्सु - युद्धों में । संग्रामेषु-सा0भु0; in the battles -मैक्डा0; in combts -
मो0वि0; in battle - मैक्स0; ग्रि0; in hostile attacks -
का0कैम्प0 ।

चर्कृत्यम् - सर्वकार्य कुशल । कार्येषु पुन: पुरस्कर्तव्यम् - सा0भु0; glorious - मैक्डा0;
with praise - मो0वि0; the deserver of praise -वि0; Praise
worthy know at all - ग्रि0; praise worthy - मैक्स0, लेन0 ।

धत्तन - होते रहें । स्थापयत - सा0भु0; sefix in mation- का0कैम्प0; give -
मैक्स0; ग्रि0 ।

शतं हिमा: पुष्येम - सौ जाड़ों [ऋतु] तक पुष्ट होते रहें । अत्र हिमशब्देन तद्युक्ता हेमन्त-
र्तवोऽभिधीयन्ते तथा च ब्राह्मणमेवमाम्नायते । 'शतं हिमा इत्याह
शतं त्वा हेमन्तानिन्धिषीयेति वावैतदाह - तै0सं0 ।.5.8.5 हेमन्तर्तूपलाक्षितान् शतं संवत्
त्सरान् जीवन्त: सन्त: पुष्येम-पोषयेम-सा0भु0; may be cherish for a hundred
winters- वि0; let us foster during a ~~x~~ hundred winters -
मैक्स0; may be faster will during a hundred winters - ग्रिफिथ ।

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्त मृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।

सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ 15 ॥

अन्वय - मरुत: नू स्थिरं वीरवन्तं ऋतीषाहं, [शतिनम् सहस्रिणं] रयिं अस्मासु धत्त । प्रात: धियावसु: शूशु-
-वांसं [मक्षू] जगम्यात् ।

अनुवाद - हे मरुतो ! हममें स्थायी तथा वीरों से युक्त शत्रुओं का पराभव करने वाले सैकड़ों और सहस्रों प्रकार के वर्धिष्णु धन को अवश्य ही स्थापित करो । प्रातःकाल बुद्धि द्वारा कर्मों का सम्पादन करके धन पाने वाले॥तुम॥ शीघ्र हमारे निकट चले आओ ।

नूष्ठिरम् - स्थायी रूप से निश्चित । स्थास्नु निश्चित स्थान । सा०मु०; durable- मो०वि०; मैक्स०; ग्रिफिथ, sure - मैक्डा०; solid - का०कैप० ।

अतिषाहम् - शत्रुओं का पराभव करने वाले । गन्तॄणां शत्रूणामऽभिभवितारं एवं विधेन - सा०मु०; defying assault - मो०वि०; lasling -मैक्डा०; mor- tifying to our enemies - वि०, लैन०, defying all - मैक्स०; defying - ग्रि० ।

शश्वन्तं - वर्धिष्णु प्रवृद्धम् - सा०मु०; giving vigour- मैक्डा०; giving courage- मो०वि०; (always) increasing - मैक्स०; ever increasing - ग्रि०; वि०; giving strength- का०कैप० ।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो, यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।

रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे, मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥

अन्वय - सप्तयः सुदंससः ये रुद्रस्य सूनवः जनयः न यामन् प्रशुम्भन्ते हि {ते} मरुतः रोधसी वृधे चक्रिरे घृष्वयः विदथेषु मदन्ति ।

अनुवाद - सर्पणशील सुकर्मा जो रुद्रपुत्र स्त्रियों की भाँति गमनकाल में भलीभाँति अलंकृत होते हैं निःसन्देह वे मरुद्गण द्युलोक तथा पृथ्वीलोक को प्रबुद्ध होने के लिए कर देते हैं । घर्षणशील वीर यज्ञों में मस्त होते हैं ।

प्रशुम्भन्ते - अलंकृत होते हैं । प्रकर्षेण स्वकीयान्यङ्गानि अलंकुर्वन्ति - सा०भा०; glance for - मैक्स०; decorate themselves- वि०; adorn themselves- मैक्डा०; where glacing forth - ग्रि० ।

जनयो न सप्तयः - सर्पणशील {सहगामिनी} स्त्रियों की भाँति । जनयो न जाया इव । यथा योषितः स्वकीयान्यङ्गान्यलं कुर्वन्ति तद्वत् । कीदृशाः मरुतः सप्तयः सर्पणशीला; जाया इव अश्वा इव च - सा०भा०; like unto wives like unto horses - मैक्स०; like wives and yakefellows is like wises of the same husband -- like fema-les- वि०; मैक्स० ने सप्तयः को अश्ववाचक न मानकर सपत्नी का समानार्थक मानते हुए जनयो न गर्भम् यथा पतिं न जनयः के सन्दर्भ में जैसे स्त्रियाँ पति की ओर या पुत्र की ओर दौड़ती हैं वैसे ही मरुत् दौड़ पड़ते हैं - अर्थ किया है ।

यामन् - गमन काल में । यामनि गमने निमित्तभूते सति - सा०भा०; on the way- मैक्स०; ग्रि०; the maruts who are going-forth- विल्सन् । on their course - मैक्डा० ।

रुद्रस्य सूनवः - सूनु नुः तु च स्ला synu - आ०तै० sunu, अं० son; अवे० hunus - गा०; sunus - लिथु, sunus - प्रा-नार्स sunu, son, son, डेनिश, son- स्वी०सन् प्रा आ. सूनु म.अ. सुने सौन, प्र ज. सून {उ}

भ, ड., ज सुनु अ solrue - सर्वोकेरी-सेहेनियन; पोलिस, स्सी-सिन् सोन् ।

सुदंसस: - शोभनकर्माण: - सा0मु0; gutes wirkenden - गेल्डनर, ग्रास0; deers of good works - वि0; the powerful - मैक्स0; deers of mighty deeds - ग्रिफिथ ।

विदथेषु - यज्ञों में । यज्ञेषु-सा0मु0; sacrifices - मैक्स0; विल्सन्; in the rites of worship-मैक्डT0; विदाथ-विदथ-सेना0 (S. B. Vol. 32, p. 350) दुधाप्धारणपोषणयो विदथ ओल्डेनबर्ग (DDE. Vol. 96, pp. 2627) वि - धा यद्वा विध् थीमे विदथ-विधान (पीटर्सन H.R.P. 100) वस्तुत: विदथ वरिवस्या पूज्या सपर्या विधान दैवी विधान यज्ञस्तोत्र आदि । ज्ञानिष्पत्यर्थ प्र अथम् उचथ् वक्षथ् सचथ, स्रनथ, स्रवथ, शपथ, जरथ (av-zbaraga) - सम्भवत: अत = अथ -= अठ, तु यजत दर्शत अपि च जरठ, शरठ ।

घृष्वय: - घर्षणशील । घर्षणशीला: - सा0मु0; wied - मैक्स0; the empeteous- का० कैप०, मो०वि०; मैक्ड0; to be exieted - मैक्स0; who grind (the sale drocks) - विल्सन् ।

ते अ॒क्षितासो॑ महि॒मान॑माशत, दि॒वि रु॒द्रासो॒ अधि॑ चक्रिरे॒ सद॑: ।

अर्च॑न्तो अ॒र्कं ज॒नय॑न्त इन्द्रि॒यम् अधि॒ श्रियो॑ दधिरे॒ पृश्नि॑मातरः ॥२॥

अन्वय - उक्षितास: ते रुद्रास: महिमानमाशत दिवि सद: अधिचक्रिरे अर्कं अर्चन्त: इन्द्रियं जनयन्त: पृश्निमातर: श्रिय: अधिदधिरे ।

अनुवाद - अभिषिक्त उन रुद्रपुत्रों ने (मरुद्गण) ने गरिमा अर्जित कर ली । द्युलोक में निवास बनाया । अर्चनीय (इन्द्र) को अर्चना करते हुए, इन्द्र में शक्ति उत्पन्न करते हुए पृश्निसंज्ञक माता वाले (मरुतों) ने ऐश्वर्य धारण किया ।

उक्षितास: - अभिक्त । देवैरभिषिक्ता: सन्त: - सा0मु0; वर्ष बिन्दुभि: सिक्ता: - मा0; grown up - मै0; उक्षिता: वृधु + उक्षु + क्त, to grow - to waxnost of - उक्षु to sprinkle to anoint to inaugurate - मैक्स0; grown to their perfect strengthग्रि0 ।

महिमानमाशत - महत्वंप्रापयन - सा0मु0; महत्वं आप्नुवन् - सा0मु0; greatness have they attained - मैक्स0; greatness have they attaineग्रि0 ।

जनयन्त इन्द्रियम् - जनयन्त च बलम् - मा0, इन्द्रस्य लिङ्ग वीर्य जनयन्त: इन्द्रियम् । वाक्येनोत्पादयन्त:-सा0मु0; generating might - ग्रि0; generating the might of Indraमैक्डा0; increasing their vigourमैक्स0; इन्द्रियका मूलार्थ - इन्द्र की शक्ति Indras peculiar might इन्द्रत्व; Indra-hood, शक्ति ।सामान्य। तु0अवे0- veroth raghn वृत्रहन्ता, विजय विजय; सामान्य ।

अधिश्रियो दधिरे - ऐश्वर्य धारण किया । ऐश्वर्याणि आधिक्येन अधारयन् - सा0मु0; have clothed themselves in beauty - मैक्स0; they have put glory - ग्रि0, सो० वि०।

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभि: स्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मत: ।

बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ 3 ॥

अन्वय - यत् गोमातरो अञ्जिभिः शुभयन्ते ।तत्। शुभ्रास: ।ते। तनूषु विरुक्मत: ।अपि। दधि विश्वमभिमातिनपबाधते ।तदानीम्। घृतं एषां वर्त्मानि अनुरीयते ।

अनुवाद - जब धेनु ।पृथ्वी। रूपमाता वाले ।मरुद्गण। अलंकरणों से अलंकृत होते हैं ।तब। दीप्तिपूर्ण ।वे। शरीरों पर विशेष चमकवाले ।शस्त्रों। को ।भी। धारण करते हैं। वे सभी उद्दृप्त शत्रुओं को दूर से बाधित कर देते हैं । ।उस समय। क्षरणशील ।जल। इनके मार्गों से प्रवाहित होने लगता है ।

गोमातर: - गोरूप माता वाले । गोर्माता भूमिर्मता येषां ते - सा०भा०; ग्र० पृश्नि-
मातर:, सिन्धुमातर:, children of cow - ग्रि०; sons of
cow (Prishni) - मैक्स० ।

तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मत: - शुभ्रा: मरुत: स्वकीयेषु शरीरेषु विशेषेण रोचमाना-अलं-
-कारान् धारयन्ति - सा०भा०; on their limbslay
their golden ornaments - ग्रि०, ------ bright weapons on their
bodies - मैक्स० ।

बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप - They drive away each adversary from
their path - ग्रि०, मैक्स० । अभिमातिनम-
पादगत दशमाक्षर लघु है । द्र० - वैदिका पृ० 124 लेनमन noun inflection
पृ० 378-543; अभिमाति: शत्रु: पाप्मा वा अभिमाति - तै०सं०; अभिमति: तु० -
अ - समाप्ति:; उप-माति । अभिमाति - साह् = अतिसाह् , अभिमातिन् - अभि
मा यद्रामीड्हिंसायाम् क्त ; धात्वर्थ तु दुर्भायु: । मात्रा प्रमायुक:; द्र० आतमयि-
नामयिना: प्रोतमाया: ऋ० 1.32.4 ।

घृतम् √घृ क्षरण दीप्तयो: + क्त । तु भारो घृतो Gheto - तथा घेटो Gheto =
दूध मक्खन (S. Verma : Ety. P. 55-56. Magr hafer CESD Vol.I,P.361)
निघण्टु 1.12 में जल पर्याय कहा गया है ।

वि ये भ्राजन्ते सुमखास: ऋष्टिभि:, प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा, वृषव्रातास: पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ 4 ॥

अन्वय - सुमाखास: ये मरुत: ऋष्टिभि: विभ्राजन्ते, हे मरुत: यत् मनोजुव: वृषव्रातास:
रथेषु पृषतीरयुग्ध्वम् अच्युताचित ओजसा प्रच्यावयन्त: ।

अनुवाद - शोभनशील यज्ञकर्मा जो मरुत् शस्त्रों के साथ चमकते हैं । हे मरुतो । मन की
भाँति वेगगामी सामर्थ्यशाली अपने रथों में चितकबरी हिरणियाँ घोड़ियाँ

जोतते हो तब अडिगों को भी हिला देते हो ।

सुमखास: - शोभनशील । सुमखा शोभनयज्ञा: - सा0मु0; सुयज्ञा:-मा0; the power-
ful - वि0; mighty warrious - ग्रि0; A.S. Great
warrious - ॥कर्मधारय॥ मैक्डा0 ।

वृषव्रातास: - वृष्ट्युदकसेचनसमर्थसप्तसंघात्मका: - सा0मु0; वर्षितागणो येषां ते वृषव्राता:
मा0 । Ye the host that send the rain - ग्रि0; the
manly host. M.M.; with their strong host - Macdonel.

पृषती: - चितकबरी । पृषद्भि: श्वेतबिन्दुभिर्युक्ता मृगी: - मु0;सा0; spotted
deers - मैक्स0, ग्रि0, वि0; पृषद्वर्णा: अश्वा: - मा0,तु0 पृषदश्वा
मरुत: पृश्निमातर: ॥ऋ0 1.88.7॥ पृषत् √पृषु सेचने शतृ; पृश्नि- पृश्-पृष पृष प्लुष्
तु प्ल पृ प्लुवने, पृषदाज्यम् अपि च तु पृश्नि: आशु. अश्वा: ॥ऋ0 4.58.1॥ प्र यत्
अयासिष्ट पृषतीभिरश्वै: ॥ऋ0 5.58.6॥ इत्यादि द्र0-वर्गेइने ॥ऋग्वेद, पृष्ठ 378॥ ।

आख्यानविद् - पृषती का अर्थ - मृगी:; नैरुक्त 1.64.8 चित्रलमेघराशि तथा राथ चित्र-
लगौ:; यद्वा चित्रलाश्व ग्रहण करते हैं । अश्वार्थ सुसमीचीन है । अन्यत्र
भी मरुतों के वाहन के रूप में उल्लिखित हैं ।

प्रयद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं, वाजे अद्रिं मरुतो रहयन्त: ।

उतारुषस्य विष्यन्ति धारा, श्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ 5 ॥

अन्वय - हे मरुत: वाजे अद्रिं रहयन्त: यत् रथेषु पृषती प्र अयुग्ध्वं उत अरुषस्य धारा:
विष्यन्ति उद्भि: चर्म इव भूमिं व्युन्दन्ति ।

अनुवाद - हे मरुतों । युद्ध में उपल वृष्टि करते हुए ॥तुम सब॥ जब रथों में चित्रल मृगियों
को संयुक्त करते हो ॥तब॥ लाल रंग ॥के जल॥ की धारायें खुल पड़ती हैं ॥और॥
चर्म ॥मसक॥ के समान भूमि को गीला कर देती हैं ।

वाजे अद्रिं रंहयन्तः - युद्ध में उपलवृष्टि करते हुए । वाजे अन्ने निमित्त भूते सति अद्रिं मेघं रंहयन्तः वर्षणार्थं प्रेरयन्तः - मु0सा0; urging the thunderbolt to the tray - ग्रि0; बले सति अद्रिमपि उत्क्षिपन्तः - सा0; harling the stone (thunderbolt) in the fight- मैक्स0; wahrend ihr marut in wattcauf den stein (mit laufen easset)- गेल्डनर ।

उतारुषस्य विष्यन्ति धारा - लाल रंग की धारायें खुल पड़ती हैं । उत् तदानीम् अरुषस्य अरोचमानस्य सूर्यस्य सकाशात् वृष्टमुदकधारा भवन्तः विष्यन्ति प्रम्र विमुञ्चन्ति - सा0मु0; तदानीम् दीप्तस्य मारुतस्य गणस्य सकाशात् धारा पतन्ति - सा0; they discharge streams of readly (steeds) - मैक्डा0; then the streams of the red (horse) rush forth - मैक्स0; forth rush the torrents of the dark red stormy clouds - ग्रि0; dann entfesseln sie auck die strahlendes ratlechen (Rosses) - गेल्डनर ।

चर्मेवोदभिःव्युन्दन्ति भूमि - चर्म (मसक) के समान भूमि को गीला कर देते हैं । उदभिः उदकैः चर्मेव परिमितमल्पं विशेषेणार्द्रां कुर्वन्ति - सा0मु0 सर्वां भूमिं खल्वल्पपरिमाणंचर्म इव उदकैः विविधं क्लेदयन्ति = सा0; wie ein fall begieBen sie die Erde mit wasser - गे0 moisten the eas earth like a skin with waters - वि0; they moisten like a skin the earth with water flood- ग्रि0 ।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो, रघुपत्वानः प्रजिगात बाहुभिः ।

सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ 6 ॥

अन्वय - रघुष्यदः सप्तयो वः आवहन्तु रघुपत्वानः (यूयं) बाहुभिः (धनमाहृत्य) प्रजिगातु आसीदत उरु बर्हि वो सदस्कृतम् । मध्वः अन्धसः मादयध्वम् ।

अनुवाद - तीव्रगामी अश्व तुम्हें (यज्ञ में) लावें । तीव्रगामी (तुम सब) हाथों से (धन लेकर) आगे बढ़ो, बैठो । तुम्हारे लिए विस्तीर्ण आसन बनाया गया है । हे मरुतों मधुमय अन्न से तृप्त होओ ।

रघुष्यद: - तीव्रगामी, शीघ्रगन्ता । लघुगामिन: - मा0; लघुशीघ्रस्यन्दमाना: वेगेन-गच्छन्त: - सा0मु0; swift gliding - मैक्स0; ग्रि0; रघुष्यद: रघुद्रुव:, क्षिप्रगति: शीघ्रगन्ता, तीव्रगामी, लघुष्तनक:, शीघ्रगमन; त्यसत्वर: इत्यादि । रघु-क्षिप्रम् swift, quick, light, 7 रहूं रंघ; तु लिधु languas लै0 levis lenhu 5 licht - आ0सै0 lung - re quickly, अं lung - आ0सै0; Loaht light.

आवहन्तु - लावे ; अस्मद् यज्ञ प्रापयन्तु - मु0सा0; may (horses) carry hither- मैक्स0; clit (your coursers bear (you) hither word - ग्रि0 ।

बाहुभि: प्रजिगात् - प्रजिगात् च शत्रून् बाहुभि: - मा0; यूयं स्वकीयैर्हस्तैरस्मभ्य दातव्यं धनमाहृत्य प्रजिगात प्रकर्षेण गच्छत - सा0मु0; come forth with your arms - मैक्स0, ग्रि0 ।

मादयध्वम् - तृप्ताभवत - सा0मु0; तर्पयतास्मान् - स्कन्द0; rejoice in seweet juice - मैक्डा0; rejoic in the sweet food - मैक्स0; delight in the pleasent food - ग्रि0;

ते वर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सद: ।

विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ 7 ॥

अन्वय - स्वतवस: ते (मरुत:) महित्वना अवर्धन्त, नाकं सदा चक्रिरे, तस्थरुरु, (चक्रिरे) यत् विष्णु: वृषणं मदच्युतं आवत वय: न प्रिय बर्हिषि अधिसीदत ।

<u>अनुवाद</u> - स्वत: शक्तिसम्पन्न के {मरुद्गण} अपनी महिमा से प्रवृद्ध हो गये। नाकलोक पर आकर स्थित हो गये। बैठने के स्थान को विस्तृत कर दिया। जब विष्णु ने शक्तिशाली मदच्यावी {इन्द्र} की सहायता की {तब वे} पक्षियों की भाँति कुशासन पर बैठ गये।

<u>अवर्धन्त</u> - वृद्धि को प्राप्त हो गये। वृद्धि प्राप्ता - स्कन्द०; वृद्धिमता: - मु०सा०; to greatness they grown - ग्रि०; they grew (with might)- मैक्स० ।

<u>स्वतवस:</u> - आत्मबला: - स्कन्द०; स्वबला: - मा०; स्वाश्रयबला: नान्यस्य कस्यचित् बलमपेक्षन्ते - सा०मु०; strong in themselves - मैक्स०; selfstrong मैक्डा०; strong in their nature strength- ग्रि० ।

<u>महित्वा</u> - महानता से। **महात्म्येन** - मा०; महिमहत्वेन - मु०सा०; स्वेन माहात्म्येन स्कन्द०; with might - मैक्स०; ग्रि०; by their greatness मैक्डा०; महित्वम्, महत्त्वम्, महित्रा √मह् पूजायाम् इ प्रत्यये तदनुभावे त्वन् प्रत्यय। तु कवित्वन्, मर्यत्वन्, जनित्वन्, वसुत्वन्, सस्वित्वन् आदि महत्वना को स्कन्द तथा मैक्डा० एवं मैक्स ने अवर्धन्त तथा मु० ने तस्थु: से अन्वित किया है। द्र०-फ्रकेट - त्वन् की तुलना ग्रीक ovvn(ovvov) से करते हैं। द्र०; कुद Vzeischrriff Vol.I., पृष्ठ 482 मूल के लिए द्र० वेनफे bid Vol.7, P. 120, अपि च altind gram Bond II. पृष्ठ 716.

<u>आवत</u> - तर्पयति - स्कन्द०; रक्षति - मु०सा०मा०; saved - मैक्स०; ग्रि०; defends- वि०; Schiitzt - वेनफे, गेल्डनर, rauschtrank - लुडविग; rauscherregten - ग्रासमान, helped- Mac. मैक्डा०;

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मय:, श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।

भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो, राजान इव त्वेषसंदृशो नर: ॥ 8 ॥

अन्वय - शूराइव इत युयुधय: न जग्मय: श्रवस्यव. न पृतनासु येतिरे मरुद्भ्य: विश्वा भुवना भयन्ते नर: राजान: इव त्वेष संदृश: ।

अनुवाद - [वे मरुत् लोग] वीरों की ही भाँति [युद्ध स्थल में] जाने वाले युद्धेच्छकों की भाँति तथा यश चाहने वाले की भाँति संग्रामों में जाते हैं । [तब] हमारे प्राणी मरुतों से डर जाते हैं । नेतृत्व करने वाली [वे] प्रदीप्त स्वरूप वाले राजाओं के समान दिखाई देते हैं ।

शूराइवत - शत्रूणां जेतार: एवं मरुतइत्यर्थ. - स्कन्द0; शूरा इव योद्धार: - मा0, शूरा इवइत शौर्योपेता युयुत्सव: पुरुषा इव च - सा0मु0; like herees indeed- मैक्स0; in sooth like heroes - ग्रि0 ।

श्रवस्यो न - श्रवो न्नं धनं कीर्तिर्वा तत्कामा: श्रवस्यव: । यथा च श्रवस्यो मनुष्यो एवं मरुत: - स्कन्द0; शत्रुभ्योऽन्नं इच्छमाना इव - मा0; श्रवो वृमात्मान इच्छन्त पुरुषा इव - सा0मु0; like (combatants)ear for glory-मैक्स0 ।

त्वेषसंदृश: - दीप्त दर्शना: - सा0मु0, दीप्तसंदर्शना - मा0, दीप्तदर्शना उज्जतरूपा:- स्कन्द0; तु घोरवर्पस: घोररूपा: - सा0 [ऋ0 1.19.5] विपरीतार्थ द्र0 एवं सदृक् [ऋ0 2.16.5] हिरण्यरूप: हिरण्यसंदृक् हिरण्यवर्ण: [ऋ0 2.35.11] त्विष् दीप्तौ । दृशिर प्रेक्षण क्विप् ।

त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।

धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे हन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ 9 ॥

अन्वय - [यद्] स्वपा । त्वष्टा सुकृत सुकृत हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं वज्रं अवर्तयत् [ततो] इन्द्रो नरिं अपांसि कर्तवे धत्त । अर्णवम् वृत्रम् अहन् अपां नि: औब्जत् ।

अनुवाद - कुशल त्वष्टा ने अच्छी प्रकार बनाये हुए सुवर्णमय सहस्रधाराओं वाले वज्र को [इन्द्र को] दिया । इन्द्र ने [उसे] युद्धों में शूरता की अभिव्यंजना के लिए

धारण किया । जल को रोकने वाले शत्रु को मारा, जलों के स्रोत को पूर्णतः प्रवाहित किया ।

हिरण्ययम् - स्वर्णिम । हर्यगतिकान्त्योः - कन्यन् प्रत्यय - हिरण्यम् , हिरण्य + मयट् , मकार लोप । 'बज्रम' का विशेषण ।

कर्तवे - करने के लिए । कृ + तवेन् तुमुर्थक, यद्वा, कृ + तृन् च०ए०व०।

अपार्णवम् - जलों का स्रोत सायण ने अर्णव को वृत्र का विशेषण मानकर अपाम् अर्णवन् का अर्थ 'जलपूर्णमिघ' किया है तथा अपां निरोब्जत को अलगकर चतुर्थी के लिए षष्ठी का प्रयोग माना है ।

सहस्रभृष्टिम् - भ्रंशयति शत्रूनिति भृष्टि. - 'भ्रस्ज भर्जने' क्तिचक्तौ संज्ञायाम् (पा० 3.3.174) इति क्तिच प्रत्यय । 'भृष्टयोऽत्रश्रय उच्यन्ते, सहस्राश्रिम' - स्कन्द० ; सहस्रभृष्टि का अर्थ सहस्रधार वाले सहस्रकोणीय इत्यादि । तु० विशङ्गभृष्टिम् तिग्मवृष्टिः इत्यादि सहस्रं भृष्टयोयस्मिन् तं पूर्वपदोदात्तता ।

स्वपाः - सुकर्मा शोभनानि अपांसि यस्य सः, बहुव्रीहिः 'सोर्मनसी अलोमोषसी' (पा० 6.2.176) इति उत्तरपदाद्युदात्तता ।

अर्वतयत् - घुमाया, दिया (√'वृतु वर्तने लङ्. प्र०पु० ए०व० । यद्योगादनिघातः ।

धत्ते - धारण किया । भूतकाल के अर्थ में लट् का प्रयोग । √धा धारणा के षष्ठी पु०; प्र०पु०ए०व० ।

नरि - संग्राम में । नर स०ए०व० + अपांसि सायण । नर्य - अपांसि - मैक्डानल ।

निरौब्जत - तिरछा किया, पूर्णतः प्रवाहित किया । निः√'उब्जी आर्जवे' लङ्.' प्र० पु०ए०व० । वाक्यगता प्रधान क्रिया निघातः ।

त्वष्टा - शिल्पदेवता । विशेष 'त्वक्षू तथा वा तनूकरणे तृन् यद्वा√त्विष दीप्तौ तृन् । नैरक्तं - तेजं, तूर्ण व्याप्तौ अर्णवम् - स्रोत, जलयुक्त । √ऋ गतौ-असुन् , नुगागम एवं णत्व विधान, मत्वर्थीय व प्रत्यय, सलोप द्वि०ए०व० ।

ऊर्ध्वं नुनुद्रे वतं त ओजसा, दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो, मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ।। 10 ।।

अन्वय - ते ओजसा अवतं ऊर्ध्वं नुनुद्रे दादृहाणं चित् पर्वतम् विविभिदुः वाणं धमन्तः सुदानवः मरुतः सोमस्य मदे रण्यानि चक्रिरे ।

अनुवाद - उन्होंने ।अपनी। शक्ति से कूप को ऊपर प्रेरित कर दिया । दृढ़ होते हुए भी पर्वत को विदीर्ण कर दिया । वाण को बजाते हुए शोभनदान देने वाले मरुतों ने सोम के मद में वीरतापूर्वक कार्य कर दिया ।

ऊर्ध्वं नुनुद्रे अवतम -ते मरुतः अवतम् कूपम् ऊर्ध्वम् उपरि यथा भवति तथा प्रेरितवन्तः - उतवातवन्तः - सा0मु0; ऊर्ध्वं सत्तमेयं नुदन्ति प्रेरयन्ति अधोगतम् अधेयमुखमित्यर्थं अथवा अवतः ।नि0 3.23। इति कूपनाम तत्सादृश्याच्चात्र तद् व्यपदेशः। बहूदक त्वादिना सादृश्येन कूप सदृशं मेघमूर्ध्वं प्रेरयन्ति क्षिपन्तीत्यर्थं - स्कन्द0; कूपं उच्चिक्षिपुः दूरस्थम् - मा0; they pushed the well upon ligh - ग्रि0; they pushed the well oloft - मैक्स0 ।

अवतम् - अव - त राजवाड़ों निरुक्त मराठी अनुवाद ।पृ0 408-409। तु0 अव-त-उत्- स, उद्-रिन्; अवत सिच् वाल्दे0 let verg etym warter butch - ------ तु0 लै0 अ-उत्सः (awuts)tourtain- निर्झर, भारो aue to wet- आर्द्रीभावे सेचने लै0 auots - a soureia spring - निर्झर ।

जिह्मं नुनुद्रे वतं तया दिशा, सिं चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः, कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ।। 11 ।।

अन्वय - ।मरुतः। अवतंतया दिशा जिह्मं नुनुद्रे तृष्णजे गोतमाय उत्सं असि चन् चित्रभानवः ईम् अवसा आगच्छन्ति विप्रस्य कामं धामभिः तर्पयन्तः ।

अनुवाद - ।मरुतों ने। कुएं को उस दिशा की ओर तिरछा कर दिया, प्यासे गोतम के लिए

जलप्रवाह बहा दिया । विचित्र रश्मियों वाले वे इस [गोतम ऋषि] के पास सहायता के साथ आये तथा स्तोता ऋषि की कामना को [अपनी] शक्ति से पूर्णकर दिया ।

अस्किचन् - आहावेऽवानयम् - सा0मु0; [परितवन्त: - स्कन्द0; उदसि चन् - मा0
boured out- मैक्स0; poured - ग्रि0; ।

तृष्णजे - others-a dryende तौ0 Tarret . Tarr - et, goisdry -
ज0 darr - et - grous dry - 'तृषा तृष्णा तृष्णा'' तृषक तृष्णा पिपासवे - मा0; for thirsting - ग्रि0; 'तृष्णक् तृष्यते: ' इति यास्क: [नि0 ।।.15] तृष्णजे प0पा0 तृष्ण जे [5.57.।] तृष-तु0 भारो-तृस् (trs) to be dry - ग्रा0; 'thaursus-dry- ज0 TEPOONAI-became dry - लै0 Tera - 1.

चित्रभानव: - विचित्रदीप्तयो: मरुत: - सा0 स्कन्द0 मु0; चित्रदीप्तय: मा0, with
beautiful spendous - मैक्स0; shining with varied light - ग्रिफिथ ।

तर्पयन्त - अतर्पयन् - सा0मु0मा0; तर्पयन्ति पूरयन्तीत्यर्थ: - स्कन्द0; fulfiled -
ग्रि0; satisfied - मैक्स0 ।

धामभि: - धारकै जलै: - मा0; स्थानैरिति - स्कन्द0 ; आयुधो धारकै: रुदकै: - मु0
सा0; in their own ways - मैक्स0; with their might - ग्रिफिथ ।

या व: शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषण: सुवीरम् ।। 12 ।।

अन्वय - व: या [यानि] शर्म [शर्माणि] शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि [तानि] दाशुषे अधि यच्छत, हे मरुत: । तानि अस्मभ्यं वियन्त, हे वृषण: । न: सुवीरं रयिं धत्त ।

अनुवाद - तुम्हारे जो सुखकर निवास स्तुति करते हुए [व्यक्ति] के लिए हैं, तिहरे [उन सब को] हविष्य अर्पित करते हुए को दे दो, हे मरुतों । उन्हें हमें दे दो; हे वृषण [और] हमें सुन्दर पुत्र [से संयुक्त] धन [भी] दे दो ।

शर्म - सुखकर निवास । शर्म-जस् , जस् का लोप ।

शशमानाय - स्तुति करते हुए के लिए । 'शश् प्लुतगतौ - चानश् , च०ए०व० ।

दाशुषे - हविष्यप्रदातार्थ √'दाशृदाने - क्वसु च०ए०व० ।

अधियच्छत - दे दो । अधि -√यच्छ लोट् म०पु०ब०व० वाक्यमध्यस्थक्रिया, निघात् ।

वियन्त - दे दो ।√यम् परिवेषणे लोट् म०पु०ब०व० वाक्यमध्यस्थक्रिया निघात: ।

सुवीरम् - सुन्दर पुत्रों से संयुक्त । शोभना: वीरा: यस्मिन् तम् 'नञ्सुभ्याम्' से उत्तरपदो - दात्तता ।

धत्त - दो ।√धा [दा] लोट् म०पु०ब०व० मध्यस्थ क्रिया निघात ।

त्रिधातूनि - तीन प्रकार के, तिहरे तीन स्थानों में अवस्थित, शर्म का विशेषण ।

वृषण : वृष् कनिन् प्रथमा ब०व० ।

1. मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः,
स सुगोपातमो जनः ॥ 1 ॥

अन्वय - विमहसः मरुतः दिवः यस्य हि क्षये पाथ सः सुगोपतमः जनः ।

अनुवाद - विलक्षण ढंग से तेजस्वी मरुतों । अन्तरिक्ष में से उतरकर जिसके घर में तुम सोमरस पीते हो, वह अत्यन्त ही सुरक्षित मानव होता है ।

विमहसः - विशिष्ट प्रकाशाः - सा0मु0, विविधं महान्तः - स्कन्द0, विशिष्ट-दीप्तयः - वें0 mighty मैक्स0, resplendent वि0, ग्रि0 mfn. bright मो0 वि0, Vimahas occurs only once more as an epithet of the Maruts 5.87.4. Being an adjuective derived from Mahas' strength, It means very strong.

पाथ :- (सोम) पीना । सोमं पिबथ - सा0 मु0 पिबथ सोमम् - वें0 स्कन्द0 drink(the Soma)मैं0, ग्रि0, वि0, राथ, water -मो0वि0, मैक्डा0 ।

सुगोपातमः - शोभनैः पालकैरत्यन्तं युक्तो भवति - सा0 मु0 । अत्यन्त शोभनं गोप्तृकः जनः - वें0 going well- मैक्डा0, mfn. good protectedमो0 वि0, the best guardians - मैक्स0 the best of guardiansग्रि0, with most able protectors - वि0, राथ ।

2. यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ,
मरुतः शृणुता हवम् ॥ 2 ॥

अन्वय - यज्ञवाहसः मरुतः यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां वा हवं शृणुत ।

अनुवाद - यज्ञ का गुरुतर भार उठाने वाले मरुतों । यज्ञों के द्वारा विद्वान् की बुद्धि की सहायता से तुम हमारी प्रार्थना को सुनो ।

यज्ञवाहसः - यज्ञस्य वोढारः - सा0, मु0, वें0, यज्ञ उह्यते यान् प्रति ते यज्ञवाहसः
ing
स्कन्द0 । Worship Carry/ मो0वि0 sacrifice conveying
मैक्डा0, with sacrifice वि0, ग्रि0 propitiated - मैक्स0 ।

मतीनां - स्तुतीनां सम्बन्धिनः - सा0 मु0, स्तुतिभिस्तच्छुश्रूषया - वे0 make even
by rolling - मो0वि0, invocation of the praises - वि0,
Honoured with sacrifice ग्रि0, from the prayers -मैक्स0 ।

हवम् - आह्वान करना । आह्वानम् - सा0मु0मा0, स्कन्द0 calling -मो0वि0,
invocation - मैक्डा0, ग्रि0 to the call-मैक्स0वि0 ।

श्रुणुत - यज्ञवतो यजमानस्य यागरहितस्य स्तोतुश्चाह्वानमवश्यं भवद्भिः श्रोतव्यम् ।
यतो भवन्तो यज्ञस्य वोढारः स्तुतिप्रियाश्चेति भावः - सा0मु0 hear -
मैक्स listen to -ग्रि0, मैक्डा0, bear - वि0 ।

3. उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत,
स गन्ता गोमति व्रजे ॥ 3 ॥

अन्वय - उत वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत सः गो - मति व्रजे गन्ता ।

अनुवाद - (उतना) अथवा जिसके बलवान् ज्ञानी अनुकूल हों, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं,
वह अनेक गौओं से भरे प्रदेश में चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गौएं
पाता है ।

वाजिनः - हविर्लक्षणान्नोपेता ऋत्विजः - सा0मु0 हविष्मन्तः ऋत्विजः, वें0,
have sharpended - वि0, strong man - ग्रि0, powerful man -
मैक्स0, couragous - मो0वि0 ।

विप्रमनु अतक्षत - विप्रं मेधाविनं मरुद्गणम् - सा०वे०मु०, मेधाविनं ऋत्विजं प्रति - स्कन्द०, ministrant priests - वि०, have sharpendend the sapient - ग्रि०, have granted a sageमैक्स०, animated by their offerings - मो०वि० ।

गोमति - बहुभिर्गोभिर्युक्ते - सा०, मु०, प्राप्नोति गोभिः - स्कन्द०; वें० possessing cows - मैक्डा०, consisting of cows-मो०वि०, rich in kine - ग्रि०, rich in cattle - मैक्स०, crowded with cattle - वि० ।

व्रजेगन्ता - व्रजे गोष्ठे गन्तागमनशीलो भवति - सा०मु० पूर्णगोष्ठ०मित्यर्थः - स्कन्द० । cowpen to be gone - मैक्डा०, flock to be gone - मो० वि०, walk among pasture - विल्सन, live in stable - मैक्स०, into a stable - ~~[illegible]~~ ग्रिफिथ।

4. अस्य वीरस्य बर्हिषि, सुतः सोमो दिविष्टिषु

उक्थं मदश्च शस्यते ॥ 4 ॥

अन्वय - दिविष्टिषु बर्हिषि अस्य वीरस्य सोमः सुतः उक्थं मदः च शस्यते ।

अनुवाद - इष्टि के दिन में (होने वाले) यज्ञ में, इस वीर के लिए, सोम का रस निचोड़ा जा चुका है । (अब) स्तोत्र का गान होता है (और) सोमरस से उद्भूत) आनन्द की प्रशंसा की जाती है ।

दिविष्टिषु - इष्टि के दिन में । यजनीय दिवसेषु - सा०मु० दिविष्टयः स्वर्गफला इज्याः - स्कन्द०, दिवसागमनेषु - वें०, in sacrifice - मैक्डा०, in worship - मो०वि०, on the appointed days - वि०, in daily rites-

ग्रि0 in daily sacrifice - मैक्स0, religious procedure in daily यथ ।

बर्हिषि - यज्ञे - सा0मु0वें0, placed on the sacrificial grass of eminent man- मो0वि0, on the alter- मैक्स0, sacred grass - ग्रि0 ।

मद: च शस्यते - आनन्द की प्रशंसा की जाती है । मरुद्देवताक शस्त्रं, मदश्च इति मदिधातुना युक्ता 'मरुतोदेवा: सोमस्य मत्सन् ॥वि0 5.5.9॥ इत्यादिका मारुती निवित् च अस्य मरुद्भक्षस्य हर्षाय ॥वि0 5.5.9॥ शस्यते इति होत्रा पठ्यते - सा0मु0, शस्त्रं च मदकरम् शस्यते - वें0, saying be drank is laughtered -मो0वि0 accompanied by praise rejoice rassay - मैक्डा0, praise and joy are sung - मैक्स0 hymn is respected and their joy(is exited)वि0, praise and delight are sung aloud - ग्रि0 ।

5. अस्य श्रोषन्त्वा भुवो, विश्वा यश्चर्षणीरभि,

सूरं चित् ससुषीरिषः ॥ 5 ॥

अन्वय - विश्वा चर्षणी: सूरंचित् इषः ससुषी: ॥इसलिए॥ य: अभिभुव: अस्य आश्रोषन्तु।

अनुवाद - सभी मानवों को तथा विद्वान् को भी अन्न मिले ॥इसलिए॥ जो शत्रु का पराभव करता है उसका ॥काव्यगान सभी वीर॥ सुनें ।

सूरमचित - स्तुतेः प्रेरयितारं यजमानमपि - सा0मु0, सूर्यं च प्रति - स्कन्द0, सुवीर्यं पुरुषम् - वें0, bright as the sun - मो0वि0, their worshipper- वि0, even to the sun - ग्रि0, the sun - मैक्स0 ।

इषससुषी - मरुद्भिः प्रत्तान्यन्नानि प्राप्तानि भवन्तु - मु0श्रा0, vigour running-

मैक्डा० food be obtained- वि०,reaches even to the sun-ग्रि०,as the rain clouds (pass over the sun) - मैक्स० । the human begening with

अस्य आश्रोषन्तु - यजमानस्य स्तुतिं आभिमुख्येन श्रृण्वन्तु - मु० सा० मम श्रृण्वन्तु -वें०, आश्रृण्वन्तु दास्याम इत्येवं मरुत: - स्कन्द०; the human begening with the words-मो०वि०,Learnt sacred knowledge - मैक्डा०, hear-वि०, ग्रि० listen to himn - मैक्स०, राथ ।

6. पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् ,
अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुत: चर्षणीनां अवोभि: वयं पूर्वीभि: शरद्भि: हि ददाशिम ।

अनुवाद - हे मरुतो ! कृषकों की तथा मानवों की (समुचित रक्षा करने की शक्तियों से युक्त) हम लोग अनेक वर्षों से सचमुच दान देते आ रहे हो ।

अवोभि: - रक्षा के द्वारा । रक्षणैर्युक्ता: सन्त: - सा०मु०, रक्षणार्थमिति - वें० ; पालनैर्निमित्तभूतै: पालनार्थमित्यर्थं - स्कन्द० the protection of - वि०, through the mercies -मैक्स०; through the swift god loving help-ग्रि० ।

पूर्वीभि: शरद्भि: - अनेक वर्षों से । बह्वीभि: संवत्सरै: - मु०सा०; पूर्वेष्वपि संवत्सरेषु - स्कन्द०, बह्वीभि: शरद्भि: संवत्सरै: in many an autumn - ग्रि० at many harvests - ग्रि० for many time - मो०वि० for many years - मैक्डा० ।

हि वयं ददाशिम - सचमुच हम दान देते आ रहे हैं । युष्मभ्यं हवींषि दत्तवन्त: - सा०मु०, हि दत्तवन्त: भवद्भ्यो हवींषि मनुष्याणाम् - वे०,

हि शब्दो यथे दत्तवन्तो हविर्युष्मभ्यं - स्कन्द0 । we have offered up - वि0, have sacrificed-मैक्स0, we have offered - ग्रि0 ।

7. सुभगः स प्रयज्यवो, मरुतो अस्तु मर्त्यः

यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ 7 ॥

अन्वय - प्रयज्यवः मरुतः सः मर्त्यः सुभगः अस्तु यस्य प्रयांसि पर्षथ ।

अनुवाद - हे (प्रकृष्ट ज्ञानी) पूज्य मरुतों । वह मनुष्य सौभाग्यशाली हैं जिसके अन्न का सेवन (तुम) करते हो ।

प्रयज्यवः - प्रकर्षेण यष्टव्याः - सा0मु0वे0, स्कन्द0, O, charing (Maruts) - मैक्स0, O Maruts most adorable - ग्रि0 ।

सुभगः - शोभनधनो - सा0मु0, सुभगः भगः (निघं0 2.10) इति धननाम; सुधनः - स्कन्द0, सुभगः - वें0 be blessed - मैक्स0, fortunate -ग्रि0, वि0 ।

यस्य प्रयांसि पर्षथ - यस्य यजमानस्य प्रयांसि हविर्लक्षणान्यन्नानि पर्षथ आत्मनि सिञ्चथ स्वीकुरुथ इत्यर्थः - सा0मु0; स्वभूतानि प्रयांसि हविर्लक्षणान्यन्नानि पर्षथ - पारयथ प्राप्नुथ भक्षयेत्यर्थः - स्कन्द0, हवींषि आत्मानं नयथ - वें । whose offering you carry - मैक्स0, whose offerings ye bear away - ग्रि0 ।

8. शशमानस्य वा नरः, स्वेदस्य सत्यशवसः,

विदा कामस्य वेनतः ॥ 8 ॥

अन्वय - सत्यशवसः मरुतः शशमानस्य स्वेदस्य वेनतः वा कामस्य विद ।

अनुवाद - सत्य से प्रादुर्भूत बलशाली मरुतों । शीघ्र गति के कारण स्वेद (पसीने) से
भीगे हुए तथा तुम्हारी सेवा करने वाले की अभिलाषा पूर्ण करो ।

शशमानस्य - युष्मान् स्तुतिभि: सम्भजमानस्य - सा0मु0, शशमान: स्तुतिकरणशीलस्तस्य
वा - स्कन्द0, भजमानस्य - वें0, who sings your praise -
ग्रि0, who praises you - मैक्स0 ।

स्वेदस्य - पसीने के । स्तावकमन्त्रोच्चारणजनितेन श्रमेण स्विद्यमान गात्रस्य - सा0मु0,
प्रस्विन्नस्य वा युष्मत् परिचर्याश्रमेण, महता यत्नेन युष्मान् परिचरत् -
स्कन्द0, स्विन्नगात्रस्य वा श्रमेण - वें0, ... the sweets-मैक्स, the toil -
ग्रि0 ।

वेनत: कामस्य विद - वेनति: कान्ति कर्मा । कामयमानस्य वा शब्द: समुच्चये,
एवम्भूतस्य स्तोतुश्च कामस्य काममभिलाषम् विद - लम्भयत
प्रयच्छतेत्यर्थ: - मु0सा0, कामयमानस्य कामं जानीत् - वें0 । वेनति: कान्तिकर्मा
(तु0 निघं0 2.6) you know the horse desire of him who loves -
- ग्रि0; you take the notice of the desire the suppliant -
मैक्स0 ।

9. यूयं तत् सत्यशवस, आ विष्कर्त महित्वना,
विध्यता विद्युता रक्ष: ॥ 9 ॥

अन्वय - सत्यशवस: यूयं तत् आविष्कर्त, विद्युता महित्वना रक्ष: विध्यत् ।

~~अनुवाद xx सत्यशवस xx यूयं xx तत् xx आविष्कर्त xx विध~~
अनुवाद - हे सत्य बलयुक्त वीरो । तुम वह अपना बल प्रकट करो । उस अपने तेजस्वी
बल से राक्षसों को मार डालो ।

आविष्कर्त - प्रकट करो । आविष्कुरुत प्रकाशयत - सा०मु०, आविष्कुरुत बलम् - वें०
सर्वलोकं प्रकाशं कुरुत - स्कन्द० ; make this manifest (with might) मैक्स०, make this manifest (by your greatness) - ग्रिफिथ ।

रक्षः विध्यत - राक्षसों को मारो । अस्माकमुपद्रवकारिण राक्षसादिकम् विध्यत् ताडयत नाशयेत्यर्थः - सा०मु० व्यध ताडने' । विद्युत्प्रजनेन रक्षांसि हतेव्यर्थः - स्कन्द०, विध्यत च अशन्या युद्धे रक्षः - वें०, strike the demon - ग्रि०, strik the fiend - मैक्स०, मैक्डा०, मो०वि० ।

10. गूहता गुह्यं तमो, वियात विश्वमत्रिणम् ,
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ 10 ॥

अन्वय - गुह्यं तमः गूहत, विश्व अत्रिणम् वि यात् यत् ज्योतिः उश्मसि कर्त ।

अनुवाद - गुफा में विद्यमान अंधेरे को (अन्तःकरण के अज्ञान को) ढक दो, विनष्ट करो । सभी पेटू दुरात्माओं को दूर करो । जिस तेज को हम पाने के लिए लालायित हैं, वह हमें प्राप्त करा दो ।

गुह्यं - गुहायां स्थितं सर्वत्र व्याप्य वर्तमानं - सा०मु०, गुह्यं गुहायां शरीरान्तरगत गुहारूपे हृदये भवं तमो भावरूपाज्ञानं तद्गूहत विनाशयत । अत्रिणं पुरुषार्थस्यात्तारं कामक्रोधादिकं सर्व विनिर्गमयत । यज्ज्योतिः परतत्वसाक्षात्काररूपं ज्ञानं कामयामहे । प्राणापानादिपञ्चवृत्तिरूपा हे मरुतस्तत्कर्त कुरुत । संवरणयोग्यम् अतिमहदेवत् - स्कन्द०, सर्वरक्षः - वें, conceal the barried - ग्रि०, hied the hideness - मैक्स०, मैक्डा०, मो० ।

अत्रिणम् - राक्षसों, दुरात्माओं को । अत्तारं राक्षसादिकं - सा०मु०, सर्व भक्षयितारं रक्षः - स्कन्द०, नाशयत नाशयितव्यम् - वें०, fiend-मैक्स०, demon's-

ग्रि0, मो0वि0, मैक्डा0 ।

<u>वियात्</u> - दूर करो । विविधं यापयत् अस्मत्सकाशात् निर्गमयत - सा0मु0, derive for (from us) - ग्रि0, destroy (every trusky fiend) - मैक्स0 ।

<u>1.87</u>

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनो नानता अविथुरा ऋजीषिणः ।

जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिः व्यानिज्रे केचिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ । ॥

<u>अन्वय</u> - प्रत्वक्षसः प्रतवसः विरप्शिनः अनु आनताः अविथुराः ऋजीषिणः जुष्टतमासः नृतमासः केचित् उस्राइव स्तृभिः वि आनज्रे ।

<u>अनुवाद</u> - शत्रुहन्ता, बलशाली सुवक्ता, सदैव अपना मस्तक ऊँचा करके रहने वाले, अविवेकी, सोमरससेवनकर्ता ॥और॥ वे प्रमुख नेतृत्वशाली मरुद्गण वस्त्रालंकारों से सुसज्जित किये जाने पर सूर्यकिरणवत् सुहाते हैं ।

<u>जुष्टतमासः</u>- अतिशयेन यष्टृभिः सेविताः सा0मु0, प्रियतमाः अवितृतमा वा - स्कन्द0, the most welcome मैक्स0, मैक्डा0 best beloved - ग्रि0, mfn. most welcome - मो0वि0 ।

<u>केचिदुस्रा इव</u>- केचित् पद मरुतों का संकेतसूचक है जो धीरे-धारे बढ़ते हुए प्रतिनिधित्व कर रहे हैं अथवा आकाश में एकाकी नक्षत्र की भाँति परिलक्षित हो रहे हैं । Ke kit some is apposed to sarve all. यही भाव 5.52.12 में कहा

गया है । जहाँ मरुद्गण की तुलना चोरों (theves) से की गई है । वेनफे और राथ जो उनका अनुसरण करते हैं वे इसका अर्थ उस्र: इव स्तृभि: के द्वारा अपने ऊपर ॥सामने॥ तारों के साथ गायों की भाँति संकेत देते थे अर्थ किया है । वहाँ निवास (dwelling) के बारे में कोई शंका नहीं है प्रत्युत् यह कठिनता से कहा जा सकता था कि येतारे अपने आभूषणों से सुसज्जित मरुतों की भाँति आसानी ॥सुगमता॥ से दिखाई देते हैं । हम यहाँ उस्र: को ध्रुव: के अर्थ में लेते हैं । 2.34.2 में यह कहा गया है कि मरुत 'ध्रुव: न स्तृभि: ' से स्वर्ग के तारों सदृश अनुभव करते थे । दूरे दृश: ये दिव्या इव स्तृभि: ॥1.166.2॥

तारों के द्वारा स्वर्ग की भाँति जो बहुत और इसी प्रकार अग्नि के सम्बन्ध में दूर दृष्टिगोचर है - कहा गया है ॥2.2.5॥ । ध्रुव: न स्तृभि: कित्यास रोदसीति अनु । स्तृभि: 1.68.5; 4.7.3; 6.49.3; 3.1, 12 में वर्णित है कि सदैव इसका अर्थ तारा होगा और व्युत्पत्ति करने क्र पर उसका अर्थ अवशेष किरणों का होगा। सन्ध्याकाश अधिक उपयुक्त होगा, उस्र की अपेक्षा वे जो मुख्य रूप उषाकाल (dawn) के लिए प्रयुक्त है किन्तु भारतीय मनीषी दो उषाकाल मानते हैं । एक उषाकाल (dawn) प्रात:काल, भोर, दूसरा गोधूलि वेला । इस प्रकार ये मिले जुड़े हैं और परस्पर सम्बन्धित हैं कि उनके नाम भी बारम्बार ॥dawn ॥ विनिमेय है ।morning light- मो0वि0, dawn - अध्0 ॥नीचे॥ light of morn- मैक्डा0, like the heavens (with the stars) - मैक्स0, like the heaven (with stars) - ग्रि0, । ये केचन सूर्यरश्मयो यथा नभसि दीप्यते तद्वत - सा0मु0, रश्मय: इव प्रभाभि: वें ।

<u>व्यानज्रे</u> - प्रकाशित होते हैं, सुहाते हैं । नभसि व्यक्ता दृश्यन्ते - सा0मु0, व्यक्ता अभवन् - वें0, have displayed themselveग्रि0, have decked themselves - मैक्स0 ।

प्रत्वक्षस: - प्रकर्षेण तनूकतारि: शत्रूणाम् - स्कन्द0, शत्रूणां प्रकर्षेण तनूकर्त्तार: - मु0 सा0, वें0, never flinching-Mm.never lumbledग्रि0, Palbh.

प्रतवस: प्रकृष्ट वलोपेता: - सा0मु0, प्रकृष्ट बला: - स्कन्द0, with exceding vigour and power -मैक्स0, exceding power - वि0, ful of strength - ग्रि0 vigorous - मैक्डा0 energetic - मो0वि0 ।

विरप्शिन: - विविधं जयघोषोपेता - सा0मु0 the impetuous singers - मैक्स0, loud singers -ग्रि0, mfn. copious- मो0वि0, exubrant - मैक्डा0 ।

अनानता: - अनत । आनति रहिता: सर्वोत्कृष्टा - सा0मु0 never flenching the immovable - मैक्स0, immovable - ग्रि0, unbowed - मैक्डा0, mfn. unbent not humbled - मो0वि0 ।

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वयइव मरुत: केनचित् पथा ।

श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ 2 ॥

अन्वय - मरुत: वय: इव केन चित् पथा यत् उपह्वरेषु ययिं अचिध्वं व: रथेषु कोश: उपश्चोतन्ति: अर्चते मधुवर्णं घृतम् आ क्षत ।

अनुवाद - हे मरुतों पक्षी की भाँति किसी भी मार्ग से आकर जब हमारे समीप आगन्तुकों में तुम एकता प्रस्थापित करते हो । तुम्हारे रथों में विद्यमान ।कोश। भंडार ।हम पर। धन की वर्षा करने लगते हैं । भक्त या उपासक के लिये मधुसदृश स्वच्छ वर्ण वाले घी या जल की ।तुम। वर्षा करते हो ।

केनचित् पथा - केनचिदाकाशमार्गेण शीघ्रं गच्छन्तः - सा०मु०, शीघ्रं गच्छन्तः - वें०
केनापिमार्गेण कश्चिदपि गन्तुं न शक्नोति तेन केनापीत्यर्थः ।
साकाङ्क्षत्वात् शीघ्रमिति वाक्यशेषः -स्कन्द० । What soever path it be -
ग्रि०: Your way through the lefts -------- What ever road it be -
मैक्स० ।

ययिम् - गतिमन्तम् मेघम् - सा०मु०, गन्तारम् - स्कन्द०, moving cloud on
your chariets trickle - मैं०: water's go on their path -
मैक्डा० ।

Yayi not by a goer, a traveller बल्कि बादल यही अर्थ सायण की भी मान्य है । वेनफे भी रास्ते के द्वारा by path का अर्थ स्वीकार करते हैं । सायण ने 4.3.13.7 में गतिम् के द्वारा ययिन् का साम्य बताया है । शब्दार्थ में 'ययि' का अर्थ 'या तो' आदि कुछ स्थानों पर मुझे सन्देह है कि इस शब्द का मूल अर्थ क्या होगा । लेकिन समाजार्थी पदों में ययि स्पष्ट रूप से के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

8.7.2 यत् ययं शुभ्रः अधिक्यम् ।
जब मरुद्गण अपने पथ पर द्योतित दिखाई देते हैं ।
8.7.4 यत् यमम् यान्ति वायुभिः ।
जब ॥मरुद्गण॥ वे वायु के साथ गमन करते हैं ।

यद्यपि ऋग्वेद में 'ययि' शब्द स्पष्ट रूप पथ के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ प्रत्युत् अनेक स्थानों पर यात्री Traveller अर्थ में मिलता है । ॥त्वैषः ययिः' 5.87.5॥ हे मरुतों । तुम्हारे रास्ते चमकते हैं (Your Path O Maruts is blazing)

See - Vadic Hymns. By MaxMuller.

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।

ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ 3 ॥

अन्वय - यत् ह शुभे युञ्जते एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विथुरा इव प्रेरजते, ते क्रीलयः धुनयः भ्राजत् - ऋष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।

अनुवाद - जब निश्चित रूप से ये शुभकर्म के लिए कटिबद्ध (नियोजित) हो उठते हैं उनके वेगवान हमलों में पृथ्वी अनाथ नारी की भाँति कम्पायमान हो उठती है । वे खिलाड़ी गतिशील चमकीले हथियारों से युक्त शत्रु को कंपा देने वाले ये वीर अपना बड़प्पन या महत्व विख्यात कर डालते हैं ।

शुभे - शोभनाय वृष्टयुदकाय - सा0मु0, they harness (their deer) for victory-मैक्स0, they yoke their cars for victory - ग्रि0 । 'शुभम्' इत्युदकनाम् (निघ0 1.12) उदकार्थम् - स्कन्द0 । for the good work - वि0, decoration - मो0वि0 ।

अज्मेषु - मेघानामुत्क्षेपकेषु - सा0मु0 उत्क्षेपकेषु - वें0, at their racing - वि0, मैक्स0, ग्रि0 ।

अज्मेषु यामेषु - मेघानामुत्क्षेपकेषु मेघानां नियमनेषु सत्सु - सा0मु0, यदा च यामेषु स्वरथेषु पृषतीः अश्वा (युञ्जते) यदा गच्छति मरुतः सन्नह्यति च मेघान् - स्कन्द0, at their racing for victory -ग्रिफिथ, मैक्स0, at their racing for progress - विल्सन ।

प्रेरजते - प्रकर्षेण कम्पते - सा0मु0, कम्पयितारः - वें0 shakers of all trembles- ग्रि0, (earth) trembles- वि0, earth shakers - मैक्स0, trembles - मो0वि0 ।

पनयन्त - व्यवहरन्ति प्रकटयन्तीत्यर्थं - सा0मु0, स्तावयन्ति, स्तुवन्तीत्यर्थं - स्कन्द0

agitating- विल्सन, themselves admire - ग्रि0, bright spears मैक्स0 । mfn. admirable -मो0वि0 ।

स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणो ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।

असि सत्य ऋणयावानेद्यो ऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ 4 ॥

अन्वय - स हिषः गणः युवा स्वसृत पृषत् अश्वः तविषीभिः आवृतः अया ईशानः, अथ सत्य ऋणयावा अनेद्यः वृषा गणः अस्याः धियः प्र अविता असि ।

अनुवाद - सचमुच वह ‹वीरों का› संघ, यौवनपूर्ण, स्वयंप्रेरक, रथ में धब्बे वाले घोड़ने जोड़ने वाला ‹अनेक प्रकार के› बलों से युक्त ‹आवृत› । इस संसार का प्रभु या स्वामी बनने के लिए उचित एवं सुयोग्य है । सत्य, ऋण दूर करने वाला, अनिंदनीय ‹और› बलवान ‹यह› संघ इस हमारे कर्म तथा ज्ञान की रक्षा करने वाला है ।

अयाईशानः - अया अस्य सर्वस्य जगतः - ईशानः ईशनशीलः भवति - सा0मु0, ईश्वरः सेना लक्षणैर्बलैः अयेति बहुवचनस्य स्थाने व्यत्ययमेनैकवचनम् - स्कन्द0 ।

Lords of this (earh) and invested with vigour - वि0,
It hath lordly sway endued with power and might - ग्रि0,
It exercises lordship, invested with powers - मैक्स0,
(instr adv.) thus in this way - disposing of able; m.ruler; E. of Shiva and other gods F.E.of Durga शक्तिधात्री-दुर्गा, in this manner-owning - मो0वि0 ।

ऋणयावा - स्तोतृणामृणस्यापगमयिता बहुलस्य धनस्य दातेत्यर्थ-सा0मु0, स्तोतृणाम् ऋणं प्रतिगन्ता - वें0, Liberators from debt - वि0, without invested (debt) - मैक्स0, Invested (without debt or one who does not take a loan) - ग्रि0, mfn. striving for or demanding - मो0वि0, indebted - कैथ0,

अनेद्यः - प्रशस्यनामैतत । सर्वैरनिन्दितः - सा0मु0, प्रशस्यः - वें-स्कन्द0, without blemish - मैक्स0, Blameless - ग्रि0, Irreproachable - वि0, to be blamed - मो0वि0, blameless - मैक्डा0 ।

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्रजिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ 5 ॥

अन्वय - प्रत्नस्य पितुः जन्मनः वदामसि सोमस्य चक्षसा जिह्वा प्रविगाति । यत् शमि ईं इन्द्रं ऋक्वाणः आशत । आत् इत् यज्ञियानि नामानि दधिरे ।

अनुवाद - पुरातन पिता से जन्म पाये हुए ॥हम॥ कहते हैं कि सोम के दर्शन से जिह्वा वाणी प्रगति करती है । अर्थात् वीरों के काव्य का गायन करती है । जब ॥ये वीरं॥ शत्रु को शान्त करने वाले युद्धों में उस इन्द्र को स्फूर्ति देकर सहायता करते हैं तभी वे प्रशंसनीय नाम यश धारण करते हैं ।

प्रत्नस्यपितुः जन्मना - प्रत्नः इति पुराणनाम् ॥निघं0 3.27॥; स्द्रारवस्य पितुः पुराणस्य सकाशाधत् मरुतां जन्म तेन हेतुना - स्कन्द0 ।
प्रत्नस्य चिरंतनस्य पितुः अस्माकं जनकस्य रहूगणस्य सकाशात् यत् जन्मतेन वयं वदामसि ब्रूमः । वक्ष्यमाणां वृत्तान्तम् अस्माकं पितोपदिदिष्टवान् अतो वयं ब्रूमः इत्यर्थः सा0मु0, पितुः पुराणस्य स्तोत्रकुशलस्य सकाशात् जननेन वयमपि स्तुतिकुशलास्तुमः

वें0, we declare by your birth from our ancient sire ( a term of address for father or king or ruler -
वि0, we speak by our decent from our primeval rire -
ग्रि0, ancient juice ( nourishment ) be born -
मो0वि0, मैक्ड0, ancient nourishment be born -
मैक्स, का0, कैप0 ।

शमि - वृत्रवधादिरूपे कर्मणि - सा0मु0, कर्मणि स्तोत्रवन्तो - वें0, वृत्रवधादौ कर्मणि स्कन्द0, by encouraging Indra in the conflict -
वि0, had joind Indra indeed -मैक्स0, (They) had joined Inra in toil of fight G.effortमैक्ड0 Labour - मो0वि0, endeavour- का0कैप0 ।

श्रवाण: - स्तुत्या युक्ता: सन्त: - सा0मु0, स्तोत्रवन्तो - वें0, stirs itself- ग्रि0, have acquired names - वि0, singers gainasinger - मैक्स0,

आशत - प्राप्नुवन् न पर्यत्याक्षु: - सा0मु0, व्याप्नुवन् । अन्तरमेव - वें0, व्याप्नुवन्ति - स्कन्द0, obtained - ग्रि0, that are to be gain - वि0, they took or gain - मैक्स0having hope-मो0वि0, expecting -मैक्ड0।

यज्ञियानि नामानि दधिरे - यज्ञे सोमाहुति: स्तुतिश्च क्रियते - सा0मु0मा0 उदकानि प्रयच्छन्ति - वें0, तैस्तैर्निमित्तैरिष्टिषु यष्टृभिरिज्यते - स्कन्द0, then only they took their holy names - मैक्स0, to be recicted at sacrifices -वि0, worship from taken (under taken) Bold - मैक्ड0 to worship name (application) strongly - मो0वि0 ।

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।

ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ 6 ॥

अन्वय - ते कं श्रियसे भानुभि रश्मिभिः सं मिमिक्षिरे ते ऋक्वाभिः सुखादयः वाशीमन्तः इष्मिणः अभीरव ते प्रियस्य मारुतस्य धाम्न विद्रे ।

अनुवाद - वे वीर मरुत् श्रेय ॥यश॥ के लिए तेजस्वी किरणों से सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । वे कवियों के साथ उत्तम अन्न का सेवन करने वाले या अच्छे आभूषण धारण करने वाले, कुल्हाड़ी धारण करने वाले शीघ्रगामी तथा अभय वे वीर प्रिय मरुतों के स्थान को प्राप्त करते हैं ।

संमिमिक्षिरे - सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं । सेक्तुमिच्छन्ति - स्कन्द० । समाददुः - वें० । पृथिवीं वृष्टयुदकेन सम्यक् सेक्तुमिच्छन्ति - सा०मु०। to celebrate - ग्रि०, to celebrato them - मैक्स०, they have willingly poured down (rain) - [illegible]विल्सन०। mfn. I mimish) mixed - मो०वि० celebrate - मैक्डा० ।

सुखादयः - शोभनीय आभूषण धारण करने वाले । शोभना खादयो येषां ते सुखादयः - वें० शोभनस्य हविषो भक्षयितारो भवन्ति - सा०मु०, (who) were bright rings - ग्रि०, with beautiful rings obtained- मैक्स०, have been pleased partakers of the (sacrificial foodवि०, giving pleasure delight) मो०वि०, giving pleasure - मो०वि०, promising happiness - का० कैगलर ।

इष्मिणः - गतिमन्तः - सा०मु०, गन्तारः शत्रून् प्रति - स्कन्द०, गन्तार - वें० Impetuous - ग्रि०, का०कै०, speeding along -मैक्स०, moving swiftly - वि०, springing (moving quickly)मो०वि०।

विद्रे - लब्धवन्त: - सा0मु0 to find, to discover - मो0वि0, procure-
मैक्डा0, (They) found (the beloved domain of the Maruts)
मैक्स0, (they) have passessed (the Maruts own beloved home).

1.88

आ विद्युन्मद्भिर्मरुत: स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णै: ।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमाया: ॥ १ ॥

अन्वय - मरुत: विद्युन्मद्भि: सुअर्कै: ऋष्टि-मद्भि: अश्वपर्णै: रथेभि: आयात । सुमाया: वर्षिष्ठया इषा वय: न न: आ पप्तत ।

अनुवाद - हे मरुतों । बिजली की भांति अतितेजस्वी, अतिशयपूज्य, हथियारों से सुसज्जित घोड़ों से युक्त होने के कारण वेगपूर्वक जाने वाले रथों से इधर आओ । शोभनीय वीरों । [तुम] श्रेष्ठ अन्न के साथ पक्षियों की भांति [वेगपूर्वक] हमारे निकट चले आओ ।

विद्युन्मद्भि: - विद्योतनं विद्युत - सा0, विशिष्ट दीप्तयुक्तै: मु0, विद्युता संयुक्तै: - स्कन्द0, दीप्तिमद्भि: - वें0, with lightning- मैक्स0 ग्रिफिथ0।

स्वर्कै: - स्वजनै: शोभनगमनयुक्तै: - सा0, Resounding with beautiful songs- मैक्स0, sounding with sweet sings - ग्रि0 ।

अश्वपर्णै: - अश्वं व्याप्तं पर्ण तपनं गमनं येषाम् । अन्तरिक्षं व्याप्यवत्मानैरित्यर्थ: - सक्सेना, अश्वपतनै: - स्कन्द0 winged with horse मैक्स0, winged with steeds - ग्रिफि0।

ते रुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।

रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ 2 ॥

अन्वय - ते अरुणेभिः पिशङ्गैः रथन्तूर्भिः अश्वैः शुभे वरं कं आयान्ति । रुक्मः न चित्रः स्वधिति-वान् रथस्य पव्या भूमं जंघनन्त ।

अनुवाद - वे ‡वीर‡ रक्तिम वर्ण वाले, पिशङ्गवर्ण वाले त्वरापूर्वक रथ खींचने वाले घोड़ों के साथ शुभकार्य करने के लिए श्रेष्ठ कल्याण करने के लिए आते हैं। ‡वे वीर‡ सुवर्ण की भाँति प्रेक्षणीय तथा शस्त्रों से युक्त हैं। ‡ये वीर‡ वाहन के पहियों की लौह पट्टिकाओं से ‡सम्पूर्ण‡ पृथ्वी पर गति करते हैं, गतिशील बनते हैं।

रथतूर्भिः - रथस्य प्रेरयितृभिः - सा0, मु0, स्कन्द0, रथस्य तारकैः - वें0, hasten their chariots - मैक्स0, speed their chariots- ग्रि0, car bearing horses (with their chariots) - विल्सन0।

भूम जङ्घनन्त - भूमिं अत्यर्थं घ्नन्ति - सा0, भूमिं घ्नन्ति मरुतः - वें0 they have struck the earth- मैक्स0, they furrow the earth - विल्सन0, hold the thanker earth have they smi- tten- ग्रिफिथ0।

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृण्वन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजाता स्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ 3 ॥

अन्वय - श्रिये कं वः तनुषु वाशीः अधि वना न मेधा उर्ध्वा कृण्वन्ते सुजाताः मरुतः तुविद्युम्नासः युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते ।

अनुवाद - विजयश्री तथा सुखपाने के लिए तुम्हारे शरीरों पर आयुध लटकते रहते हैं। वनों की भाँति ‡वनों में पेड़ जैसे ऊँचे बढ़ते हैं उसी तरह तुम्हारे उपासक

तथा भक्त अपनी़ बुद्धि को उच्च कोटि की बना देते हैं। हे कुलीनोत्पन्न मरुतों। अत्यन्त दिव्यमन से युक्त ़तुम्हारे भक्त़ तुम्हें सुख देने के लिए पर्वत से भी धन का सृजन करते हैं। ़पर्वतों से सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं।

वाशी: - शत्रूणामाक्रोशकम् आराद्यमायुधं - सा0मु0, मा0, वाशी: आयुध: - वें0, daggers for beauty; may they stire up our minds. मैक्स0, throatening (weapons) are upon your persons (able to win) - विल्सन, have swords upon your bodies (weapon with a long sharp blade) - ग्रिफिथ।

मेधा[1]वना - मेधान् यज्ञान् - सा0मु0, मा0, यज्ञान वनानीव - वें0, they raise lofty sacrifices, like (tall) trees - वि0, as they stire woods so may they stire ~~xxx~~ our sprits- ग्रिफिथ, Stire up run minds as they stire up the forestsमैक्स0 ।

---

1. Medha as here written in the Pada text could only be a plural of a neutur "Medha" but such a neuture does nowhere exit in the Veda. We only find the masculine medha 'sacrifice, which is out of the question here on account of its accent. Hence the passage 3.58.2 Urdhvah bhavanti pitara-iva medha is of no assistance unless wealter the accent. The feminine medha means will thought prayer 1.18.6, 2.34.7; 4.33.10; 5.27.4; 7.6.10; The construction does not allow as to take medha as a vedic instrumental instead of medhaya, nor does such a form occur any where else in the Regveda,

By Max.Muller. V.H. Page, 1.73,174.

अहानि गृधा: पर्यावृ आगु रिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कै रूर्ध्वं नुनुद्रे उत्सधिं पिबध्यै ॥ 4 ॥

अन्वय - गोतमास: गृधा: व: अहानि परि आ आ अगु: । वार-कार्यां च इमां देवीं धियं अर्कै: ब्रह्म कृण्वन्त । पिबध्यै ऊर्ध्वं उत्सधिं ननुद्रे ।

अनुवाद - हे गौतमों ! जलेच्छुक तुम्हें अब अच्छे दिन प्राप्त हो चुके हैं । ।अब तुम। जल से करने योग्य इन दिव्य कर्मों को मन्त्रों से,ज्ञान से पवित्र करो । जल को पीने के लिए ऊपर की ओर तुम्हारी ओर मुख कर दिया ।

गृध: व: अहानि परि आ अगु: - व: युष्मान् अहानि शोभनोदकोपेतानि दिनानि परि आ अगु: - पर्यागतानि परित: आभिमुख्येन प्राप्तानि-सा0मु0, Fortunate day have be fallen you (sons of Gotam) when thirsty- वि0, Days went round you and came back - मैक्स0, may the wind to us that pleasant medicine - ग्रिफिथ ।

पिबध्यै ऊर्ध्वं उत्सधिं ननुद्रे - स्वकीयपानाय देशान्तरे वर्तमानं उत्सोजलप्रवाहोस्मिन्धीन्यते इति कूप: कूपमुतखातवन्त: - सा0मु0. have raised aloft the well provided for their dwelling[1] - विल्सन, Pushed up the lid of the well (the cloud) for to drink - मैक्स0, Pushed the well's lidup to drink the water - ग्रिफिथ ।

1. The well - In this and the next stanza 1.14.1.11 (Pra ye slumbhyante), allusion is made a lenged in which it is related that the Push Gotam being thirsty prayed to the Maruts for relief, who there upon brought a well from a distance to his hermitage. This exploit is subsequently (1.17.1) related of the Aswins.

By A.H. Wilson.

एतत् त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।

पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून् ॥ 5 ॥

अन्वय - मरुतः हिरण्यचक्रान् अयोदंष्ट्रान् विधावतः वराहून पश्यन् गोतमः यत् एतत् योजनं सस्वः ह त्यत् न अचेति ।

अनुवाद - हे मरुतों (हिरण्य) स्वर्णमय चक्र (हथियार) धारण करने वाले तीक्ष्ण धारों से युक्त आयुध लेकर विभिन्न प्रकार से (शत्रु पर आक्रमण करने वाले) वलिष्ठ शत्रुओं का विनाश करने वाले तुम्हें देखने वाले ऋषि गोतम ने जो यह तुम्हारी स्तुति गुप्तरूप से वर्णित की है वह सचमुच अवर्णनीय है ।

हिरण्य चक्रान् - हिरण्यमयचक्ररथारूढान् हितरमणीयकर्मयुक्तान् वा - सा0मु0, Chariots with golden wheels - विल्सन, on golden wheels - मैक्स0, upon your golden wheels - ग्रि0, मैक्डा0 ।

सस्वः - उच्चारितवान् खलु-सा0मु0, with sacred versa - वि0, was ever known-मैक्स0, inspirer of soul - ग्रि0 ।

वर-आ-हून- वरस्योत्कृष्टस्य शत्रोर्हन्तृन् - सा0मु0, which suited (to your merits) glorifies every one of you-वि0, wil boar - मैक्स0, wil boars sushing - ग्रि0 ।

न अचेति - सर्वैर्ज्ञायिते - सा0मु0, ज्ञायते-वेंकट, ever known - मैक्स0, ग्रि0, is known-विल्सन ।

एषा स्या वो मरुतो नुभर्त्री प्रतिष्टोमति वाधतो न बाणी ।

अस्तोभयद् वृथासा मनु स्वधां गभस्त्योः ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुत: गभस्त्यो: स्व - धां - अनु स्या एषा अनु-भ्रर्त्री वाधत: वाणी न व: प्रतिस्तोभति । आसां वृथा असतोभयत् ।

अनुवाद - हे मरुतों [तुम्हारे] बाहुओं की धारक शक्ति को ध्यान में रखकर वही यह [तुम्हारे] यश का पोषण करने वाली हम वाणियों ने किसी विशेष हेतु के सिवा इसी भाँति सराहना की थी ।

गभस्त्यो: स्वधा - अनु - अस्मदीययोर्बाह्वो: स्वधाम् - अन्नामैतत् - सा0भु0, food in your hands - वि0, It rushed freely from our hands- मैक्स0, ग्रिफिथ0।

अनुभ्रर्त्री - युष्माननुहरन्ती युष्मद्गुणसदृशी - सा0भु0 rushes sounding twards you- मैक्स0[1], which suited (to your merits) glorifies every one to you- वि0[2], as these libation wont flow - ग्रि0 ।

---

1. my own translation is to agreat extent conjectural. It seems to me from verse 3, that the poet offers both a hymn of praise and a libation of Soma. Possibly Varkarya in verse 4 might be taken in the sense of Soma-juice and be derived from Valkala, which is later Sanskrit means the bark of trees. In that case, verse 5 would again refar to the hymn of Golam and verse 6 to the libation which is to accompany it. Anu-Bharatri does not occure again but it can only mean what supports or refreshes and therefore would be applicable to a libation of Soma which supports the gods. The verb 'stobhati' would be express the rushing sound of the Soma as in 1.168.8, it expressing the rushing noise of the waters against the fellies of the Chariots. The next live odds little beyond stating that this libation of Soma rushes forth freely from the hands the gabbastis being specialy mentioned in other passages where the crushing of the Soma-plant is described. 9.71.3-A ribhi sutah pavate gabhastyoh.

   The Soma suggeezed by the stones runs from the hands.

   By Max Muller, Vadic Hymns, P.177-78,Vol.IVth

2. This verse is very obcure. I follow M. Ms. translation which is to a great extent conjectional.

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।

ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥

अन्वय - मरुत: रभसाय जन्मने वृषभस्य केतवे तत् पूर्वं महित्वं नु वोचाम् तुविष्वन: शक्रा: युधा इव यामन् ऐधा इव तविषाणि कर्तन ।

अनुवाद - हे मरुत । पराक्रम करने के लिए,सुयोग्य जीवन प्राप्त करने के लिए, बलिष्ठों का नेतृत्व करने के लिए,उस प्राचीन (काल से चले आ रहे) महत्व का ठीक-ठीक वर्णन कर रहे हैं । गरजकर चलने वाले, समर्थ युद्ध बेला के सदृश शत्रु पर चढ़ाई करते हुए धधकते हुए अग्नि सदृश बलपूर्वक शत्रु सेना को काटो ।

वोचाम् - सा०मु० ब्रूम: ; वें० - मरुताय गणाय - मरुतों की गणना के लिए । शब्दं कुर्वन् । Max.M. To proclaim - ऐलान करना, घोषणा करना । उपदिशेम 1.166.1; वदेम - 2.30.7; अन्यत्र ऋ०सं० 15.31.12। 'बदन शब्दं कुर्वन्; 19.113.6। उच्चारयन् ; 136.4। अभिषववेलायां शब्दं कुर्वन् । 117.7 शास्त्रार्थं ब्रुवाण: । ग्रि०-द०हि०भा० Ringing voice - ध्वनि करते हुए । वि० Proclaim - ध्वनि उच्चारित करते हुए । गा० - दे०भा० Ceton - कार्य करते हुए । अतएव वर्णन करते हुए अर्थ उचित है ।

तुविष्वणा: - सा०ऋ०सं० - गमन संरम्भेण प्रभूत ध्वनि युक्ता । वें० - गमने बहुस्वना:
Max. M. Strong voiced .............. V. Hymns.
जोर से आवाज करते हुए Loud of Voice - तीव्र आवाज से हुंकार पूर्वक । ग्रिफिथ० (The Hyms. of Rg. P. 297) - तीव्र आवाज से । म्योर० - ओ०सं०टे० strong voiced - गम्भीर आवाज करने वाले । मो०वि० - सं०इं०डि० loud of voice - तेज आवाज । मैक्डा० loud of voice -तेज आवाज; का० कैप० loud of voice- तेज आवाज; पी०-हि०फ्रा०भ० strong voiced - तेज आवाज । विल्सन Loud roaring - लैन०-सं०री० Loud roaring.

शक्रा: - शक्ति निमित्ता ॥मातृ॥ 5.41.15; मैक्स0वै0हि0 Prove your powers -
अपनी शक्ति प्रदर्शित करने हेतु; ग्रिफिथ - द0हि0अ0- Prove your powers
विल्सन अ0 - अपनी शक्ति प्रदर्शित करने हेतु; लेन0 exert your vigorous energies - अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हुए; का0कैप0 prove your powers ;
मो0वि0अ0 prove yours powers; विल्सन अ0 exert your vigorous
energies - अपनी शक्ति को द्योतित करते हुए ।

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप, क्रीलन्ति क्रीला विदथेषु घृष्वय: ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं, न मर्धन्ति स्तवसो हविष्कृतम् ॥ 2 ॥

अन्वय - नित्यं सूनुं नु मधु बिभ्रत: धृष्वय: क्रीला: ॥मरुत:॥ विदथेषु उप क्रीलन्ति ।
रुद्रा: नमस्विनं अवसा नक्षन्ति स्वतवस: हविस्-कृतं न मर्धन्ति ।

अनुवाद - औरस पुत्र के समान मधुरहवि धारण करने वाले शत्रुधर्षक, खिलाड़ी ॥मरुत॥ यज्ञों में जाकर विहार करते हैं । रुद्र-पुत्र ॥मरुत॥ नमस्कार के निमित्त स्तोत्रयुक्त हवि: प्रदाता ॥यजमान॥ को व्याप्त करते हैं । स्वाधीन बल वाले मरुत् यजमान को कष्ट नहीं देते हैं ।

विदथेषु - यज्ञ में; सभा में, √विद् ज्ञाने, पा0धा0पा0 1064 अ0प0 । रुविदिभ्यां कित्' इति अथ प्रत्यय: । विद्यते फलसाधनत्वेन इति विदथ: । विदथानि वेदनानि ज्ञानानि इति यास्क: । निघ0 6.7। सा0-विदथ पद का अर्थ ऋ0सं0 में 1.31.6। कर्मम् ; 140.6। यज्ञ, 1.23.166 यागेषु; 1.143.7 में स्तोत्र करते हैं । वेंकट-मु0 - यज्ञेषु; ग्रि0 - to the synod - सभा में; मैक्स0; sacrificial performance याज्ञिक performance मैक0; Divine worships - देव-पूजाओं अनुष्ठानों में; वि0- At the sacrifice - यज्ञ में; पी0प0हि0फ्रा0अ0 They deeds - आपके कर्मों; ग्रास0-द0अ0ए0 worship - पूजा; ओल्डेनबर्ग - विधान, गेल्ड0 - लुडविग - यज्ञ; विद्वानों का मत है कि विदथ वि उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से व्युत्पन्न हुआ है । प्रो0 एम0 ऐनगाल्ड ने इसे विदाथ का रूप माना है । S.B.E. Vol. 32. P.350;

ओल्डेनवर्ग ने इसे 'वि √डुधाञ् 'धारणपोषणयोः' से निष्पन्न करके 'विधान' का वाचक बताया है (S. B. E. Vol. 46, pp. 26027)। प्रो० भीमे इसे वि उपसर्ग-पूर्वक √धा या √विध् सेवा करना से निष्पन्न माना है। तु० 'अथथ' स० 10.28.10; उचथ 1.73.10; चरथ; वक्षथ; सचथ; स्तनथ; स्तवथ; शमथ एवं जरथ इत्यादि। मैक्डानल विथ् से निष्पन्न मानते हैं। निरुक्त √विद् से निष्पन्न किया गया है। वैदिक ऋषियों की विचार सरणि में 'यज्ञ' विहित है। अतः विदथ एवं यज्ञ एकार्थक हो गये हैं। कालान्तर में यह पद सभा के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होने लगा। 'विदथ' का अर्थ पूजा-विधान-पूजाविधि तथा पूजासमिति है। अतएव विद्वज्जन 'विदथ्य एवं 'सभेय' जैसे पद विदथ एवं सभा को समान अर्थ स्तर पर प्रस्तुत करते हैं। मैक्समूलर का कथन है कि विदथ किसी धार्मिक कार्य का नाम रहा होगा जो यज्ञ के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होने लगा। लेन० सं०री० पृ० 244 'Vidatha 'n. directions, orders (Prof. knowledge given, I.C. instructions vid,).

एस० वर्मा - इ०एटि०पा०, पृ० 52 विदथ 10 थानि ऋ० 3.27.7; वेदनानि नि० 6.7। 'direction' instruction is traced to विद् to know; Indo-Eur, vid is Soc' इस पद को √विद् या √विध् से अथ प्रत्यय द्वारा निष्पन्न मानना उचित है। अतएव यज्ञ अर्थ उचित है।

<u>अवसा</u> - सहायतार्थ। स्कन्द-पालनाय। वेंकट०म० - 'रक्षणाय'; मु०। अवितुम् अनुष्ठातारं रक्षितुम्'; ग्रि०। 'Give them succour' सामयिक सहायता देने के लिए; मै० पी० 'For help' सहायता के लिए; मैक्स०; To sheild, मैक्स०; Vedic Hymns with their protection 2.9रक्षा से; वि० For succour' सामयिक सहायता के लिए; मो०वि० For protection सहायता के लिए; with protect. रक्षा के साथ। protection derived from अव to protect, √अव् रक्षणे धातु से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ सहायता के लिए उचित है।

<u>उप</u> - इस भाँति। उप शब्द विभिन्न पदों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

ऋ0 3.35.2 "उप इमाम् पागम् अवहत: इन्द्रम्" में उप शब्द इन्द्र के समीप के लिए प्रयुक्त है । 1.25.4 में वयो न वसतीरुप यहाँ भी उप का अर्थ सामीप्य है । जैसे पक्षी अपने घोंसले की ओर बढ़ता है । As birds (fly.) to their, nests - Max. Vedic Hymns P. 214.

नित्यम् - नि + त्य ; As birds (fly) to their, nests. -

'नित्य' की तुलना 'निग' से भलीभाँति की गई है । Literally einge-boren, then like nity ones own- भीतर, आन्तरिक, वस्तु, अथवा स्थान जो कि प्राय: बदला न जाता है । दूसरा अर्थ नित्य का One's own, unchanging, internal. - - - —— अत: नित्य का प्रयोग आन्तरिक internal or domestic - - गृह्य अर्थ में पाया जाता है । ऋ0 1.37.4 'तम् त्व नर: दमे आ नित्यम्' । यहाँ नित्यम् का अर्थ अनवरत आया है । ऋ0 7.1.2 'दक्षाय्य: या: दमे अस् नित्य:' में नित्य का अर्थ सदैव है । मुख्य रूप से नित्य का प्रयोग सूनु: के साथ 1.66.1 में 'नित्यो न सूनु:' ; 185.2; तनय; 3.15.2; 10.39.14; तोका 2.2.3; अपि 7.88.6; पति 1.71.1 और सदैव अपने अकेले अर्थ में संस्कृत के 'निग' शब्द की तरह प्रयुक्त है जो ऋग्वेद में न मिलकर अथर्वण में प्रकट होता है । 6.75.19 में य: न: स्व: अरण: या: क नित्य: जिघमस्ति 10.133.5 के य: न: इन्द्र: अभि दासति स-नाभि: या: क नि:त्य: । 8.1.13 में भ भूम: नि:त्य: इव इन्द्र त्वदमरण- इव । Let us note be like outsiders, O Indra ! not like strangers to thee. Ludwig - Wie einen nicht absterbenden Sohn das Madhu bringend.

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत, रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।

उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव, पुरु रजांसि पयसा मयोभुव: ॥ 3 ॥

अन्वय - उमास: अमृता: यस्मै हविषा ददाशुषे राय: पोषं अरासत अस्मै हिता: इव मयोभुव: रजांसि पुरु पयसा उक्षन्ति ।

अनुवाद - रक्षणकर्ता अमर [वीर मरुतों ने] जिस सोमादि हविष्यान्न देने वाले को धन की पुष्टि प्रदान की । उसके लिए हितैषी मित्रों के समान मंगलकारी [वे वीर] जोती गई भूमि को जल से अतीव सींचते हैं ।

हविषा - सा०ऋ०सं० - हविष्यान्न । विल्सन० sacred offering धार्मिक दान । मो०वि०- didicated. का०कैप०- of oblation ; मैक्डा०- of oblation; मैक्स० - giver of oblation. हविर्दर्जिन - ऋ० भ०/38 ।

ददाशुषे - √दाशृदाने क्वसु च०ए०व० भ्वा० । सा०-सोमादिहविर्दत्तवते हविषा प्रीता: । विल्सन- Doner; ग्रिफिथ - giver; मैक्स०- a giver; का० कैप०- giver; मो०वि०- Doner; मैक्डा०- Giver.

रजांसि - सा०ऋ०सं० - लोकान् ।

उक्षन्ति - सा० - सिञ्चन्ति । मैक्स०- Pour out; विल्सन- Pour out; ग्रिफिथ - to water; का०कैप०- to water; मैक्डा०- Pour out.

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत, प्र व एवास: स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या, चित्रो वो याम: प्रयतास्वृष्टिषु ॥ 4 ॥

अन्वय - ये एवास: तविषीभि: रजांसि आव्यत स्व-यतास: प्र-अध्रजन् प्र-यतासु व: ऋष्टिषु विश्वाभुवनानि हर्म्या भयन्ते व: याम: चित्र: ।

अनुवाद - जो इस प्रकार तुम [मरुत] अपने सामर्थ्यों तथा बलों द्वारा सभी को संरक्षण देते हो तथा स्वमेव नियन्त्रित तुम जब शत्रुओं पर वेगपूर्वक दौड़ जाते हो और जब अपने हथियार आगे बढ़ाते हो उस समय सम्पूर्ण विश्व, बड़े-बड़े प्रसाद भी भयभीत हो उठते हैं [क्योंकि] तुम्हारी यह हलचल [शूरता] सचमुच आश्चर्यजनक है ।

भयन्ते - भय कम्पित होते हैं । वेंकट - बिभ्यति; ग्रि०- stirred; कम्पित होते

हैं + मैक्स0- Are of raid'; आक्रान्त होते हैं । वि0- Are appalled; पा0- Are in fear.

तविषीभि: - मु0सा0 - प्रज्ञावान बलवान का । स्कन्द0 - तुविष्मान् तुविषशब्दस्य बहुनाम्नो पं सकार आगमो द्रष्टव्य. । पर्यायान्तरं वा । बहुभि: बलैस्तद्वान् । वेंकट0 - बुद्धिमान; ग्रि0-मै0-ग्रिस0 'The mighty'; शक्ति-शाली । वि0- The Powerful' पी0- 'A strong(bull)'बलवान (वृषभ) म्योर0-ओ0सं0टे0 Of his strenght' - उसकी शक्ति को । गेल्ड0- मैक्डा0 के मतानुसार 'तु' धातु शक्तिशाली बलवान, समर्थ हेतु प्रयुक्त होता है । वै0री0पृ0 234। सामासिक पदों में इस पद का प्रयोग प्राय: होता है । तुविजात, तुविवाच, तुविद्युम्न, तुविमन्यु, तुविप्रति, आदि; मैक्डोनेल के मतानुसार यान्त प्रत्यय को मात्र अजन्त प्रकृति के ऊत्तर रहते ही अवगृहीत किया जाता है । यथा-गोडमान । अतएव शक्तिमान, (शक्ति के द्वारा) अर्थ उचित है ।

प्रअध्रजन - वेगपूर्वक दौड़ते हैं । सा0भा0 प्रकर्षेण गच्छन्ति व्याप्नुवन्ति । वेगपूर्वक चलते हैं और व्याप्त (सम्पूर्ण संसार में) हो जाते हैं । वेंकट0 - आ गन्तुं प्रवृत्त: तीव्रगमन में प्रवृत्त । मैक्स0- Adhragan from dhrag, a root which, by metathesis of aspiration, would assume the form of dragh or dragh. In Greek the final medial aspirate being hardended reacts of the initial media, and changes it to t, as bahu becomes παχυς budh πυθ bandh πενθ. This would give us JPEX, the Greek root for running, Goth, thrag-jan, P. 216. ~~Grif(ith) brilliant is your~~

ग्रि0 - brilliant is your comming, P.2.97. ग्रा0-uncontrolled- अनियंत्रित । पी0 a running away - वेगपूर्वक पलायन । वि0 - (be in operation, action or use) चलते, रहना चलना, ~~रहना~~, चालू होना ।

यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।

विश्वो वो अजमन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥5॥

अन्वय - त्वेषयामाः यत् पर्वतान् नदयन्त वा दिवः पृष्ठम् नर्याः अचुच्यवुः [तदा] वः अज्मन् विश्वः वनस्पतिः भयते [तथा] ओषधिः रथीयन्तीवप्रजिहीते ।

अनुवाद - तीव्रगामी जो [मरुत] पर्वतों के गिरिगह्वर में स्थित मेघों को शब्दायमान कर देते हैं अथवा अन्तरिक्ष के पृष्ठ भाग पर से मनुष्यों [नर] के हितकारी जाते हैं, तब तुम्हारे इस गमनकाल के समय विश्व का वृक्षसमूह भयभीत हो जाता है । तथा ओषधियाँ भी रथ में विराजित स्त्री की भाँति विकंपित [तीव्रगति से] हो जाती हैं ।

त्वेषयामाः - तीव्रगामी । वें0-दीप्तगमना: । सा0मु0-मा0-प्रदीप्तगमना: । स्कन्द0 - दीप्तगमना: । मै0 - march तीव्रगति से, नियमित रूप से प्रस्थान करना । ग्रि0- dazzling rush - विस्मित दौड़ चकाचौंध - दौड़ । ग्रा0 - movement; गति, चाल । पी0- a running away.

नदयन्त - आवाज, शब्दायमान । शब्दयन्ति । प्रेरणार्थक णिजन्त, कारणवाचक - चिल्लाना, चीख मारना । यदि हम 'पर्वत' को बादल या मेघ के अर्थ में लें तब हम इसका अनुवाद दहाड़ना, गरजना, डकारना, resound हो सकता है। यदि हम 'पर्वत' को पर्वत [चोटी] [पहाड़] अर्थ में लें तब प्रो0 विल्सन के अनुसार इस पद का अर्थ 'When your brilliant coursers make the mountains echo.' "तुम्हारी तीव्रता की नुकरी से उत्पन्न पर्वतों की आवाज ।" किन्तु दूसरे अर्थ में जो इसके बाद प्रयुक्त होता है "अवाज" का अर्थ होगा to shake - कंपाना, to vibrate, कम्पायमान होना [ V I.) कंपाना] गूंजना [of sound); वें0हि0 P. 218. मैक्स0,पी0218. यदि 'सदृश पदों से जहाँ नद् का प्रयोग हुआ है, से तुलना करें तो वैदिकों के द्वारा इसका अर्थ वही है । ऋ0सं0 8.20.5 में "अचुच्यु

क्वित् व: अश्मा अननदति पर्वतासा: वनस्पति: भूमि: यामेषु रेजते ।" जब इसका अर्थ अचल, अटल चट्टानों, वृक्षसमूहों और पृथ्वी के कम्पायमान से होगा वहाँ यह 1.37.7 के अर्थ से साम्य रखता है । √नद शब्दे (भ्वा०) धातोर्निजि-लाल् लड्।अडभावश्छान्दसः।

प्रजिहीते - स्कन्द० - प्रकर्षेण गच्छन्ति । वेंकट०-प्रगच्छति । सा०-प्रकर्षेण गच्छति, नितरां कम्पन्ते; भृशं शंसन्तीत्यर्थ: । स्वा०द०-गच्छन्ति जो आप लोगों को जंगल प्राप्त होते हैं उनको जाने वाले आप लोग ‌‌‌॥प्र जिहीते॥ तीव्रगति से कंपाइये। दूकॅन जिश दी वेल्दर-गेल्ड०; ग्रिफिथ०- Shake the ridge of heaven in their heroic strength. √ओहाङ् गतौ (जु०) धातोर्लिट्।अन्यत्र लट्।

यूयं न उग्रा मरुत: सुचेतुनारिष्टग्रामा: सुमतिं पिपर्तन ।

यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्व: सुधितेव बर्हणा ॥ 6 ॥

अन्वय - उग्रा: मरुत: यूयं सुचेतुना अरिष्टग्रामा: न: सुमतिं पिपर्तन यत्र व: क्रिविर्दती दिद्युत् रदति पश्व: रिणाति, सुधिता बर्हणा ।

अनुवाद - उग्र बलशाली मरुत । तुम उत्तम अन्त:करणपूर्वक ॥सज्जनों के॥ गाँवों का विनाश न करते हुए हमें अच्छी बुद्धि प्रदान करते हो । जिस समय तुम्हारा धारदार ॥दानेदार॥ तीक्ष्ण और चमकीली तलवार शत्रु दल के टुकड़े टुकड़े कर डालती है ॥सुष्ठ प्रेरित॥ वह मानो हनन हेतु ही प्रयुक्त हुई हो ।

सुचेतुना - सा०-शोभन चेतसा । वेंकट-सुमत्या; मैक्स० - Kindness, good mindedness, favour ॥दयालु उत्तम दिलो दिमाग से युक्त॥ । Kindness of the goods; not like 'sumati' to the kindness of the worshipper also.
ऋ० 1.79.9 आनो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् माडीकं धेहि जीवसे ॥
give us, O Agni, through thy favour wealth which supports our whole life, give us grace to live.
मैक्स०- Favourably. kindness, good mindedness, ~~उत्तम~~

Su-ketuno, the instrumental of Suketu, kindness, good-mindedness, favour. This word occurs in the instrumental only, and always refers to the kindness of the Gods; not, like sumati to the kindness of the worshipper also.

"आ नो अग्ने सुचेतना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ।

give us, o Agni through thy favour wealth which supports our whole life, give us grace to live.

In one passage of the ninth mandala (9.65.30) we met with Suchetnam Su-Ketunam, as an accusative, referring to Soma, the gracious and this would pre-suppose a substantive Ketuna, which, however, does not exist.

By Max - Vadic Hyms. P. 219.

सुधिता इव बर्हणा: - अच्छी प्रकार से प्रेरित हथियार के समान । सा0-सुहिता, सुष्ठु प्रेरिता । इव । हति: बर्हणा - हति: तत्साधना हेतिर्वि तथा रिणाति । वेंकट0 (तेज धारदार हथियार) हिंसा साधनभूता स्वधिति: पशून हिनस्ति एवं रदति । प्रो0 राथ-बर्हणा इति - as an instrument, a weapon. (विरोधी, या शत्रु के ऊपर प्रयोग किया गया शक्तिशाली हथियार) एक अन्य अर्थ में सुधिता काअर्थ है - well placed, of a thing which is at rest, well arranged, well ordered. वह वस्तु जो अच्छे स्थान पर अच्छी या भली प्रकार से व्यवस्थित हो । or it means well sent; (विधिवत भेजी गई), well thrown (अच्छी प्रकार फेंकी गई) of a thing which has been in motion.

सा0ऋ0 3.23. । में नि: माथित: सु:धिता: असधस्थे । भलीभाँति । ऋ0 7.42.4 में रगड़कर अग्नि उत्पन्न करके एवं घर में भलीभाँति स्थित करते हुए । मैक्स0-वै0हि0 3.29.2. 'Cherished and well placed in the house'.
संजोकर अच्छे स्थान पर घर में रखना- like an embryo in the mothers - माता के भ्रूण के सदृश Cf. 10.27.16 पृ0 224 वै0हि0 8.60.4 'अभि प्रयांसि सुधिता वसो ॥इति॥ गहि' (Come (, Vasu to these) well placed offering Cf. I.135.4; 4.15.15; 10 1.135.4, 4.15.15; 10,53.2; 10.70.8 सुधिता हविमषि In well placed offerings'.
बुलाकर सुव्यवस्थित रखना । 4.50.8 स: इत् क्षेति सुधिता: ओकसी स्वे । That man dwells secure in his house. अपने मकान में, सुरक्षित रखना । प्रक्षेपणास्त्र हथियार(missiles, weapons) सुधिता may mean well placed. 5.3.2 मित्रम् सुधितम् ; 6.15.2 मित्रम् न यं सुधितम् 10.115.7 मित्रस: न ये सुधिता: । 8.23.8 - मित्रम् न गणे सुधितम् ऋतावनि: । बिना किसी सन्दर्भ के उपर्युक्त पदों में 'सुधिता' का अर्थ 'अच्छा.' Good ही होगा । 1.133.5 Jiery weapons, strike down every Rakshas'.
रक्षा के लिए सुनियोजित लड़ाकू हथियार । बर्हणा - शत्रु को मारने या काटने का अस्त्र (a weapon intended to an enemy, a block of stone or heavy club ॥भारी गदा या मुद्दर, मारने का औजार॥ Brihaspati strike down the scoffers of the gads. Cf. 6.61.3.
8.63.7 - club scattered the spears or scatters the spears with his club
ग्रा0द0ऋ0 'ein wohlgezielter Pfeil' अतएव उत्तर प्रकार के प्रेरित हथियार से युक्त अर्थ उचित है ।

<u>रिणाति</u> - हिंसित करता है । सा0 - अरिणन् अगप्सन् - सर्वत्र प्रवहन्ति । वेंकट0 निर्गमयन । क्रकचाकारम् । ग्रि0 - 'Sentest down' ढकेल दिया । वि0 - 'Arrosting by force the breath of the enemy'.
शत्रुबल को तीव्रता से रोकते हुए ।

रदति - सा0ऋ0 - बिलिखति मेघसंस्थापं । वेंकट0 ऋ0 विलिखति । वेद में 'रद' शब्द का अर्थ 'रदेरे' और 'रोदेरे' से मैक्स0मानते हैं । radati the smile of the teeth. (मुस्कराना); in the Veda, too, the original meaning of radere and radere, to scratch - खरोंचना, खुरचना, बकोटना । to gnaw - कुतरना, क्षय करना, नष्ट करना; विल्सन0ऋ0 harass - सताना । 'रद' और रदना का अर्थ परवर्ती संस्कृत में दांत, दन्त है ऋग्वेद के अन्य पदों में इसका अर्थ 'काटना' है । to bite, to cut; 1.61.12.

अधिकांश स्थान पर 'रद' का अर्थ देना है । 'रद', 'रध' zend अवेस्ता - rad, to give; In German theilen in zutheilen, of giving - दे रहा ।

Greek dalw - to devide, but yields dais, Portion, meal, just as Sanskrit day to divide yields dayas, share, i.e. inheritance 7.79.4, 7.79.4- देना; 1.116.7 कक्षिवेत अरदतम् पुरम् धिम् - बुद्धि प्रदान करना । ऋ0 1.169.8 रद मरुद्भिः शुरुधो गो ग्राः । पशुधन रूपी उपहार मरुतों को देना । Give to the Maruts gifts, rich in cattle. ऋ0 9.93.4 रद् धन, wealth; ऋ0 7.32.18 रदवसोइति इन्द्र जो कि प्रभूत धन प्रदाता है । कुछ पदों में 'रद' का अर्थ रास्ता way, पथ है । शानदार मार्ग, to cut a way open for same one. zend. अवेस्ता में भी वही अर्थ और प्रो0 जस्टी Prof. Justi- 'prepare a way सही मार्ग । ऋ0 6.30.3 में 'यत् अभ्यः अरदः गातुम् इन्द्र ।' thou hast cat a way for them (the rivers). Cf. 7.74.4).

झाड़ियों को 'काटकर' नदियों का रास्ता बनाया । ऋ0 4.19.2 cut open the paths - काटना, काटकर रास्ता प्रदान करना । ऋ0 10.75.2 अरदत - गमन हेतु रास्ता काटना । ऋ0 7.87.1 'रद्रत पाथाः वरुणाः सूर्यायाः ; वरुण ने

सूर्य के लिए 'काटकर' रास्ता बनाया । ऋ0 7.60.4 'यस्मै आदित्य: अध्वन: रदन्ति' जिसके लिए आदित्य ने रास्ता बनाया । (to cut roads).

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रमराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुता: ।

अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ৳ ॥

<u>अन्वय</u> - स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधस: अलातृणास: सुष्टुता: विदथेषु मदिरस्य अर्कं प्र-अर्चन्ति । वीरस्य पौंस्या विदु: ।

<u>अनुवाद</u> - आश्रयदाता जिनका धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, शत्रु विनाशक, स्तुत्य, {पूजनीय इन्द्र} की अर्चना करते हैं {क्योंकि वीरों के मुख्य बल{वृत्र वध आदि} पौरुष को जानते हैं ।

<u>अल-आ-तृणास:</u> - शत्रुओं का पूरा पूरा विनाश करने वाले । सा0 - अनातृणास: आतर्दनरहिता: । यद्वा । अलम् अत्यर्थं दातार: फलानाम् । स्वरूपा मरुत: । यास्क - अबोधगम्य । निरु0 (the cloud which opens easily) - बादल जो आसानी से खुल जायँ । यह अनुवाद प्रो0 राथ द्वारा बिना किसी हिचकिचाहट के किया गया है । मैक्स0 - do not revile. विल्सन - devoid of malevalences Langlois trastates Leureus de nos Louarges . ग्रिफिथ - do not revile; मो0वि0- devoid of malevalence.

<u>विदु:</u> - $\sqrt{}$विद् ज्ञाने {सु0} सा0 - जानन्ति । मैक्स0 (they) know. ग्रिफिथ (they) know ; मो0वि0 - to be aware ; का0कैप0 (They) recognize. विल्सन0- (They)know.

<u>मदिरस्य पीतये</u> - मदिरा को पीने के लिए {सु0} सा0 - मदिरस्य मादनसाधनस्य सोमस्य पानाय । मैक्स, ग्रि0 - for to drink the sweet juice. विल्सन0- for to drink the sweet juice. मीठा सोमरस पीने के लिए ।

अर्कं प्र अर्चन्ति - सोमरस पान करने के लिए अर्चनीय, पूजनीय की अर्चना करते हैं ।

सा० - अर्चनीयमिन्द्रं स्पष्टीभूतम् , अर्चन्ति पूजयन्ति स्तुत्यादिना संभावयन्तीत्यर्थः । अर्चनीय इन्द्र की अर्चना करना । वेंकट० श्रद्धधते धारकदाना: ।
ग्रिफिथ० - at sacrifices glorified. मैक्स०- highly praised at the sacrifices. वि०: highly praised at the sacrifices.
मो०वि० - highly praised at the sacrifices.

शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् , पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।

जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिन:, पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥ 8 ॥

अन्वय - उग्रा: तवस: वि-रप्शिन: मरुत: यम् अभिह्रुते: अघात् आवत यं जनं तनयस्य पुष्टिषु शंसात् पाथन् तं शतभुजभि: पूर्भि: रक्षत ।

अनुवाद - शूर बलिष्ठ और समर्थ मरुत् । जिसे विनाश से, पाप से ‡तुम‡ सुरक्षित रखते हो जो लोग बच्चों का भरणपोषण करते हैं, निन्दा से बचाते हो, उसे सैकड़ों उपभोग के साधनों से युक्त दुर्गों से रक्षित करो ।

विरप्शिन: - सा०‡ऋ०सं० महन्नामैतत् । महान्त: । रपणीया: शब्दा: रपा: । ते येषां ते रप्शिन: । विविधा रप्शिन: स्तोतारो येषां ते यथोक्ता हे तादृशा यूयं Powerful. मैक्स०-वै०हि० Powerful singers protect from reproach.

अभिह्रुते: - विनाश से । कुटिलाचरण से । अभि √ह्रृ कौटिल्ये' ‡भ्वा०‡ क्तिन् √ह्रु ह्रुरेश्छन्दसी' ति ह्रु रादेश: । मैक्स० - From injury. मो० वि०- From assault. का०कैप० From hurt. मैक्डा०-From harm.

अघात आवत - सा० - सापात् अरक्षत । मैक्स० Protect from reproach.
मैक्स०,मो० वि०, ग्रिफिथ० विल्सन०- Protect from reproach.

विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो, मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।

अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो,ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ 9 ॥

अन्वय - मरुतः । वः रथेषु विश्वानि भद्रा, वः अंसेषु आ, मिथः स्पृध्या इव तवि-
-षाणि आहिता, प्रपथेषु खादयः, वः अक्षः चक्रा समया वि वावृते ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारे रथों में सभी कल्याणकारक वस्तुएं रखी हैं । तुम्हारे कंधों पर परस्पर प्रतिस्पर्धी की भांति शक्तिशाली हथियार लटकाये हुए हैं । सुदूर यात्रा के लिए खाद्य-पदार्थ पर्याप्त हैं । तुम्हारे रथ की धुरी एवम् चक्र उचित समय पर घूमते हैं ।

प्रपथेषु - सा० - प्रगताः पन्थानो येषु विश्रामस्थानेषु तानि प्रपथानि । प्रप्रथिन्
पदयो समासः । मैक्स० - on your journeys. विल्सन० - on your journeys. ओ० वि० on your journeys

तविषाण्याहिता - सा० - तविषाणि बलानि अंसेषूक्तलक्षणान्यायुधानि वा आहितानि।
मैक्स० - strong weapons. तविषा - Certainly means strength and that it is used in the plural in the sense of acts of strength, we can see from the first verse of our hymn and other passages. But when we read that Tavishani are placed on the chariots of the Maruts, just as before 'bhadra, good things, food, See. are mentioned, it is clear that so abstract a meaning as strength or powers would not be applicable here. We might takes it in the modern sense of forces, i.e. your armies, your companions are on your chariots, striving with each other; but as the word is a neuter, weapons as the means of strength seemed

a preferable rendering. As to mithaspridhya. See. 1.119.3, Page.

See Vadic Hyms Page 164, Vol. IV in 1.119.3.

By Max Muller.

<u>खादिन:</u> - सा० - शत्रूणां खादका मरुत: स्वकीयैराभरणै[illegible]यन्ते । यद्वा खाद: कटकम्

विल्सन- the ornaments. मैक्ड०- the ornaments.

ग्रिफिथ - the rings. मैक्स0- the rings. आभूषण ।

In VI.58.2 the Maruts are called Khadi - hasta, holding the quoits in their hands. There is one passage which was mentioned in 1.64.4, where the Khadis are said to be on the feet of the Maruts and on the strength of this passage Profess or Roth proposes to alter pra-patheshu (Prapatheshu) to Pra-patheshu and to translate. The Khadis are on your prefect. I do not think emendation necessary. Though we do not know the exact shape and character of the Khadi, we know that it was a weapon, most likely a ring, occasionally used for ornament, and carried along either on the feet or on the shoulders, but in actual battle held in the hand. The weapon which Vishnu holds in one of his sight hands, the so-called Kadra (Chakra) may be the modern representation of the ancient Khadi.

By Max. Muller,

Vadic Hymns. Vol. IV. Page 230.

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु, वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।

अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि, वयो न पक्षान् व्यनुश्रियो धिरे ॥ 10 ॥

अन्वय - नर्येषु बाहुषु भूरीणि भद्रा वक्षः सुरुक्माः अंसेषु एताः रभसासः अञ्जयः पविषु अधि क्षुराः वयः पक्षान् न अनुश्रियः वि धिरे ।

अनुवाद - लोगों के हितैषी [इन वीरों की] भुजाओं में यथेष्ट शक्ति विद्यमान है । वक्षस्थलों पर लावण्यमयी हार, कन्धों पर विभिन्न रंग के सुदृढ़ आभूषण हैं । वज्रों पर तीक्ष्ण धारें हैं । पक्षी के पंख की भाँति वे विविध प्रकार से शोभा धारण करते हैं ।

नर्येषु - मानव हितैषी । सा० - मनुष्येभ्यो हितम् 1.40.3; इसी स्थल पर व्याकरणांश में व्युत्पत्ति दी है - नर्यम् । नरेभ्यो हितम् । प्राक्क्रीतीय उगवादिलक्षणो यत्प्रत्ययो द्रष्टव्यः [पा०सू० 5.12] अन्यत्र नर्यम् का अर्थ [ऋ०सं० 2.22.4; 6.23.4; 7.100.1; 10.74.5] भा० नराणां हितकरं, मनुष्यहितं; नरेभ्यो हितं विष्णुं; नरेभ्यो हितम् किया है । वें०; स्कन्द 1.40.3; नृभ्यो हितम्, मु० मनुष्यो हितम्; ग्रि० द हि०ऋ० Lover of man kinds. मानवतावादी; विल्सन- Beneficial of men. [मनुष्य हितकारी] उ०महीधर०यजु० 33.89 नृभ्यो हितम्, मनुष्यो हितम् । निरुक्त 11.36 नर्यो मनुष्यो नृभ्यो हितः; मैक्डा० एवम् कीथ ने भी [वै०इ० पृ० 493 प्रथम भाग 1962 अनु० रामकुमार राय ने 'नर्य को व्यक्तिवाचक माना है । अतएव सायण का अर्थ उपयुक्त है । मैक्स० - Many good things.

विधिरे - विविध प्रकार से धारण करते हैं । सा०-ऋ० विविध धारयन्ति । अनेकों प्रकार से धारण करते हैं । वेंकट० विधारयन्ति । मु० विविधं धारयन्ति। ग्रिफिथ - द मैक्डा० Held in. खाते हैं, धारण करते हैं । विल्सन - मैक्स० - spread out.

क्षुरा - तीक्ष्ण धार वाला औजार । सा० ऋ० क्षुरधारा । वेंकट० ऋ० - तीक्ष्णाग्रा - तीक्ष्ण अग्रभाग वाला । क्षुरा का अर्थ तेजधार से है लेकिन साहित्य में भी

भी इसका अर्थ छुरा 'razors' ब्लेड, तेज धारदार हथियार से है। केवल वैदिक युग में ही नहीं आर्यों के युग में भी था। संस्कृत में 'छुरा' का ग्रीक Greek में ξυρός or ξυρόν वेद में इसका अर्थ दाढ़ी बनाने का औजार भी है। देखिये मैक्स0वै0हि0 पृ0 235.

When the wind blows after thy blast, then thou shavest the earth as a barber shaves the beard. Cf.1,65.4.
जर्मन में इसे snabul, beak (schnepfe, snipe) and old Narse nef. by मैक्स0,वै0हि0 पृ0 235. । 10.142.4 में छुरा का अर्थ 'वप्ताइव' का अर्थ Vapter, barbar संस्कृत में 'नापित' किया गया है। वेदर - 'Napit' Proposed by Prof. Bever (Kuhn's Beitrage, Vol. P.505),who takes snapitar blaneator or Lavotor.

Who takes napit as a dialectic from of snapitar, balenator or Lavator, might be admitted if it could be proved that in India also the bar ber was at the same time a balneator. Burnouf, Lotus P.452, translating from the Samanna-Phala Satta---barbier and baigneur. तीखा, काटने का यन्त्र। सामान्य फल Samanna - Phala. सुत्त, Protier barbier and beugner. मैक्स0 - वै0हि0 - sharp edges. See-Vadic Hymns Vol IV Page 235; By Max Muller

महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो, दूरे दृशो ये दिव्या इव स्तृभिः।
मन्द्राः सुजिह्वा स्वरितार आसभिः,संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

अन्वय - ये मरुतः मह्ना महान्तः विभ्वः विभूतयः स्तृभिः दिव्याः इव दूरेदृशः मन्द्राः सुजिह्वाः आसभिः स्वरितारः, इन्द्रे संमिश्ला परिष्टुभः।

अनुवाद - जो मरुत् (अपनी) महत्ता के कारण बड़े, सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यशाली, नक्षत्रों से शोभित, स्वर्गीय देव सदृश, दूरदर्शी, हर्षित, और सुन्दर जिह्वा वाले

मुखों से विधिवत् बोलने वाले हैं। इन्द्र को सहायता देने वाले हैं, सभी प्रकार से सराहनीय हैं ॥वे हमारे पक्ष में आते हैं॥ ।

विभूतयो - ऐश्वर्यशाली । सा० विविधैश्वर्यवन्तः । अनेकों प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त।
वेंकट० - विभोरपि विभव., वैभवयुक्त । Pervading - व्याप्त, ऐश्वर्य सम्पन्न । ग्रि० All powerful power - ऐश्वर्यशाली-मैक्स० । Powerful - शक्तिशाली - विल्सन०। "विभूतयः का अर्थ यहाँ वास्तविक अर्थ संज्ञार्थक 'शक्ति' है । लेकिन दूसरे संज्ञार्थक शब्द में यह सम्बन्धसूचक संज्ञा के साथ प्रयुक्त होकर विशेषण के सदृश प्रयुक्त होता है ।"

See Befey - Kuhn's Zeitschrift, Vol.II, P. 216.

इन्द्रे संमिश्लाः - इन्द्र के सहायतार्थ । सा०॥० सम्यग्मिश्रयितारः । इन्द्र सहायिन इत्यर्थः । इन्द्र के भलीभाँति सहायता देने वाले । 'मरुतो हैनं नाजहु ।' ॥ऐ०ब्रा० 3.20॥ इति श्रुतेः । वें० इन्द्रे च आत्मानं संयोजयन्तः । मैक्स० united with Indra. ग्रिफिथ - "Joined with Indra". इन्द्र के साथ-साथ। विल्सन०- united with Indraइन्द्र के साथ समेकित ।सम् मिश्र पदयो समास 'रेफस्य लत्व कपिल कादित्वात् ।

तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं, दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति, तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ 12 ॥

अन्वय - सुजाताः मरुतः वः तत्महित्वनं, अदितेः इव दीर्घं व्रतं वः दात्रं यस्मै सुकृते जनाय त्यजसा अराध्वं तत् इन्द्रः चन वि ह्रुणाति ।

अनुवाद - कुलीन मरुत्गण । तुम्हारा वह बड़प्पन ॥प्रसिद्ध है॥ अदिति के विस्तृत व्रत सदृश तुम्हारी उदारता बड़ी है । जिस पुण्यात्मा मानव को तुम ॥अपनी॥ त्यागवृत्ति से दान ॥देते हो॥ उसे इन्द्र भी विनष्ट नहीं कर सकता ।

महित्वनम् - महानता ।सायण - महत्वं । वेंकट० - महत्वम् । मु०मा०॥० महत्वम्।

ग्रिफिथ- your majesty (अपना महानता) ; विल्सन० - greatness.
मैक्स० your greatness. आपकी महानता । प्रो० Prof. Aufrecht
has identified with the Greek Ovven (OVVOV); See Kuhn's Zeitsch-
rift, Vol. I, P. 482 इस प्रत्यय की उत्पत्ति प्रो० बेनफे के अनुसार ibid. Vol. VII,
P. 120 Who traces it back to the suffix 'त्वन' ; for instance
i-tvan, goer, in pratah-itvo = pratah-yava.

अदितेः इव (व्रतम्) - वेंकट० - भूमेरिव च धारण व्रतम् । विल्सन० - sway of Aditi.
अदिति के क्षेत्र के समान । ग्रिफिथ - far as the
sway of Aditi your bounty spreads.
मैक्स० - As the sway of Aditi. व्रत - वृ वृणोति । enclosed
लगातार; protected, संरक्षित, set a part, the Greek - rouos:

तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे, पुरु यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥2 13 ॥

अन्वय - अमृतासः मरुतः वः तत् जामित्वं, यत् परे युगे शंसं पुरु आवत् , अया धिया
मनवे साकं नरः दंसनैः श्रुष्टिं आव्य आ चिकित्रिरे ।

अनुवाद - हे अमरणधर्मा मरुद्गण । तुम्हारा वह बन्धुत्व बहुत अधिक है । जिस
प्राचीनकाल में निर्मित स्तुति को सुनकर (तुम हमारी बहुत रक्षा कर चुके हो
(और) इस बुद्धि से मानव म त्र के लिए साथी बनकर नेता बने तुम अपने कर्मों से ऐश्वर्य
की रक्षाकर उसमें विद्यमान दोषों को दूर भगाते हो ।

शंसं - स्तुति सुनकर । सा० - अस्माभिः क्रियमाणं स्तुतिं , ~~आशं~~ वेंकट - आशंसनं
यजमानानाम् ; वि० Prayer - प्रार्थना, स्तुति । ग्रिफिथ - द०हि०अ०
पूजा करना । विल्सन० - worship- प्रार्थना, स्तुति । मैक्स० Prayer.

प्रार्थना सुनकर, स्तुति । spell शंसं का अर्थ है spell, मंत्र, मंत्र, तन्त्र, सम्मोहन। जो अच्छाइयों और बुराइयों दोनों के लिए है जिसमें आशीष व शाप दोनों सम्मिलित हैं । a spell whether for good for evil, a blessing as well as a curse. ‖Let not the curse of the enemy, the onslaught of a mortal hurt us. 3.18.2 शंसम् का अर्थ burn the curse शाप से जला सुखाये । 7.25.2 शंसम् = For away the curse of the reliver ! Ct VII.34.12.2 it means blessing ‖आशीष‖ । 2.31.6 शंसम् = आशीष ; 10.31.1 आशीर्वचन ; 10.7.1 महान आशीष से ; 2.26.1 स्तुतियों के द्वारा । B.R. = riguh samsah = requiring the right. उचित ढंग से माँगना । By B.R. (in the second edition of their Dictionary).7.56.19,1.33.7प्रार्थना । 10.42.6 यस्मिन् वयम् दधिम् शंसम् इन्द्रे ।

Indra in whom we place our hope. Cf. as ams, westergaard, Redices Linguae Sanscritae, S.V. Sams.

चिक्रिरे - दूर भगाते हो । सा०-सर्वतो जानीथ । मैक्स० - to protect, रक्षा करना, विल्सन०- to protect . रक्षा करना, ग्रिफिथ०- displayed - उपयोग किया ।

येन दीर्घं मरुत: शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरास: ।

आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम ॥ 14 ॥

अन्वय - तुरास: मरुत: युष्माकेन येन परीणसा दीर्घं शूशवाम् , यत् जनास: वृजने आ ततनन् तत् इष्टिं एभि: यज्ञेभि: अभि अश्याम् ।

अनुवाद - हे वेगवान मरुतों ! तुम्हारे जिस ऐश्वर्य के सहयोग से ‖हम‖ बड़े-बड़े कार्य करते हैं, जिससे लोग संग्रामों में चतुर्दिक् फैल जाते हैं, तुम्हारी इस दृष्टि ‖शुभ इच्छा‖ को ‖हम‖ इन यज्ञ कर्मों से प्राप्त करें ।

<u>जनास:</u> - लोग, मानव । जना अस्मदीया:, सभी लोग । वेंकट0 - जना: ≬लोग≬
ग्रिफिथ0- men - लोग ; मैक्स0 - men - लोग ; अतएव लोग men
अर्थ उचित है ।

<u>यज्ञेभि:</u> - यज्ञ कर्मों से । सा0 क्रियमाणै. स्तोत्रादिरूपै: पूजनै: । यज्ञो वै तुम्नन्
≬यजु0 12.67≬ श0 7.2.2.4, 7.3.1.34; यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म ≬यजु0
1.1≬ श0 1.7.1.5; यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म तै0 3.2.1.4, यज्ञो वै तार्प्यम् तै0 1.3.
7.1; 3.9.20.1; यज्ञो वै वसु: ≬यजु0 1.2≬ श0 1.7.1.9. वेंकट0 यज्ञै: ≬यज्ञ के
द्वारा≬ । मैक्स0 rite - धार्मिक कृत्य, या अनुष्ठान, कार्यविधि । विल्सन् 5
rite धार्मिक अनुष्ठान धार्मिक कृत्य । ग्रिफिथ0- complete the rite
धार्मिक अनुष्ठान सम्पादित करना ।

एष: व: स्तोमो मरुत इयं गी मान्दार्यस्य मान्यस्य कारो: ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ 15 ॥

<u>अन्वय</u> - मरुत: मान्दार्यस्य मान्यस्य कारो: एष: स्तोम: इयं गी: व: इषा तन्वे
आ यासीष्ट वयां इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम् ।

<u>अनुवाद</u> - हे मरुतों ! हर्षित मनोवृत्ति के सम्मानार्ह कवि कृत यह काव्य तथा यह
प्रशंसा तुम्हारे लिए है । ≬यह सारी सराहना हमारे≬ अन्न के साथ तुम्हारे
शरीर की वृद्धि के लिए तुम्हें प्राप्त हो । हमें अन्न, बल और चिरकालजीवन प्राप्त
करें ।

<u>मरुत:</u> - वायव: पु0 - मृगोरुति उ0 1.94 इति √मृङ्. धातो उति प्रत्यय: मरुत इति
पदनामसु पठितम् निघं0 5.5.। अनेन गमनागमनक्रियाप्रापका वायवो गृह्यन्ते।
1.52.2 सभाद्यध्यक्षादयो मनुष्या: 1.87.2; मरणधर्माण: ≬मर्या: मनुष्या:≬ 3.54.
13; विद्वांसो मनुष्या: 5.58.6; सुशिक्षिता मानवा: 5.58.4; मननशीला:≬मनुष्या:≬

5.59.4; मरणधर्माणो मनुष्यास्तत्सम्बुद्धौ । 1.85.12, पुरुषार्थिनो मनुष्या. 5.54.14; शिल्पिनो मनुष्या: 5.6.3.5; विद्वत्तमा: ‡जना:‡ 1.165.15; मरुद्वत्सुयेष्टा ‡जना:‡ 1.166.6; महाबलिष्ठा: ‡जना:‡ 1.167.9; ब्रह्मण्डस्था अन्ये वायवा: 18.17; हिरण्यानि रूपाण्ययृत्विजो विद्वांसश्च ‡गृहस्था:‡ 8.31; मरणधर्मयुक्ता: ‡विद्वांसो जना:‡ 2.34.1; मरणधर्मस्य ‡देवस्य =विदुषो जनस्य 6.48.20; उत्तमा मनुष्या: 6.66.8; परीक्षका विपश्चित: 1.86.2; प्राणादय: 1.52.9; प्राण इव प्रिया: सभासद: 1.171.4; वायुवद् बलिष्ठा: शूरवीरा 17.40; पवना: 1.107.2; सूक्ष्मा वयवा: 1.161.14; वायव इव ज्ञानयोगेन शीघ्र गन्तारो मनुष्या: 1.85.6; प्राण इव नेतार: ‡मनुष्या: 7.59.1 शरीरत्यागहेतव: ‡वायव:‡ 1.64.6; वायु विद्यावेत्तार: ‡जना:‡ मरणशीला: - ‡मनुष्या:‡ 5.57.8; ज्ञान क्रिया निमित्तेन शिल्पव्यवहारप्रापकान् ‡वायून्‡ पृ0 मरुत् इति पदनामसु पठितम् निघं0 5.5; अनेन प्राप्त्यर्थो गृह्यते 1.23.10, मननशीलान् मनुष्यान् 33.49; विदुषोऽतिथीन् अ0 - ऋत्विज:, भा0 यज्ञसम्पादका: मनुष्या: 3.44; ।

<u>1.167</u>

स॒ह॒स्रं॑ त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्र॒मिषो॑ हरिवो गू॒र्तत॑माः ।

स॒ह॒स्रं॒ रायो॑ माद॒यध्यै॑ सह॒स्रिण॒ उप॑ नो यन्तु॒ वाजाः॑ ॥ 1 ॥

<u>अन्वय</u> - हरिव: इन्द्र: । न: उतय: ते सहस्रम् , गूर्ततमा: सहस्रं इष:, मादयध्यै सहस्रं राय:, सहस्रिण: वाजा: न उपयन्तु ।

<u>अनुवाद</u> - हे इन्द्र । तुम्हारी सहस्र रक्षाएँ हमें प्राप्त हों । हे हरिसंज्ञक घोड़ों वाले । ‡तुम्हारे‡ सहस्र उद्गूर्ण अन्न ‡हमें प्राप्त हों‡, आनन्दित करने के लिए ‡तुम्हारे‡ सहस्र धन ‡हमें प्राप्त हों‡, ‡तुम्हारे‡ सहस्र बल हमें प्राप्त हों ।

गूर्ततमा: - सा० - अतिशायिना उद्यमा: । मैक्स० - driver of the bays; ग्रिफिथ - Lord of bays; विल्सन - Lord of bays.

गूर्तमा: - गुरी उद्यमने (तुदा०) २ क्त: । अतिशायिना उद्यमा: - सा० - driver of the bays - मैक्स०; Lord of the bays - ग्रिफिथ, विल्सन ।

मादयध्यै - मोदयितुम् - सा०; मैक्स० - Most delightful; ग्रिफिथ- to cheer. मो०वि०- to cheer; विल्सन - to cheer.

उपयन्तु - समीप प्राप्नुवन्तु - सा०; मैक्स० - Come to us. ग्रिफिथ -Come nigh to us. विल्सन- Come to us. हमारे समीप आओ।

आ नोऽवो॑भिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवै: सुमाया: ।
अध यदेषां नियुत: परमा: समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ 2 ॥

अन्वय - सुमाया: मरुत: । अवोभि: ज्येष्ठेभि: वृहत् दिवै: वा न: अच्छ आ यान्तु । अध यत् एषां परमा: नियुत: समुद्रस्य पारे चित् धनयन्त ।

अनुवाद - शोभन प्रज्ञा वाले मरुत् । रक्षाओं के साथ हमारे पास आयें । प्रशस्यतम मणिमुक्तादिधनों के साथ हमारे पास आएं । क्योंकि अब इनके श्रे० घोड़े समुद्र के पास भी धनों का वहन करते हैं ।

नियुत: - एतन्नामका: - सा० (प्रकार के) मैक्स० - Furthext steeds. ग्रिफिथ- the most noble horses. विल्सन० - the most noble horses.

पारे - परिस्मिंस्तीरे - सा० ; मैक्स० - on the distant shore of the sea; -- विल्सन, ग्रिफिथ - On the sea's extremest limit.

धनयन्त - धनधारणं वहनं कुर्वन्ति - सा0मु0 । मैक्स0- have rushed forth.
ग्रिफिथ0- speeds. विल्सन0- motion.

मिम्यक्ष येषु सुधिता हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टि: ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ 3 ॥

अन्वय - सुधिता घृताची उपरा न हिरण्यनिर्णिक् ऋष्टि. येषु [मरुत्सु] मनुष: गुहा चरन्ती योषा न, विदथ्या सभावती वाक् इव [च] सं मिम्यक्ष ।

अनुवाद - जिन मरुतों के पास सुदृढरूप से धारण किया गया, धारणशील जल को धारण करने वाला एवं हितकर तथा रमणीय रूप वाला विद्युत् संज्ञक आयुधविशेष परदे में रहने वाली महिषी के समान तथा प्रैष-स्तोत्रादिरूपा यज्ञिय एवं विद्वत्सभा मे प्रकट होने वाली वाणी के समान विद्यमान है, [वे मरुत् देवयजन में आयें] ।

विदथ्या - विदथो यज्ञ: - सा0मु0; मैक्स0 - courtly, eloquent.
ग्रिफिथ0- talk at gathering or in Festal synod.
विल्सन0- elequient.

हिरण्यनिर्णिक ऋष्टि: - हिरण्य निर्णिक् [हितरमणीयरूपा । निर्णिगिति रूपनाम् । एवं रूपा, ऋष्टि: विद्युदाख्यायुधविशेषो वा - सा0मु0; मैक्स0 - Gold adorned spear. ग्रिफिथ0- a lances bit with gold adornment. विल्सन0- Gold adorned spear.

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षु: ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधे सख्याय देवा: ॥ 4 ॥

अन्वय - शुभ्रा: अयास: मरुत: साधारण्या: इव यव्या परा मिमिक्षु घोरा: रोदसी न अप नुदन्त । देवा: सख्याय वृधं जुषन्त ।

अनुवाद - तेजस्वी शत्रु आक्रामक अतिवृष्टि प्रदान के कारण भयोत्पादक मरुत् द्युलोक एवं पृथ्वी लोक दोनों को तिरस्कृत नहीं करते अर्थात् उन्हें भी वर्षा से तृप्त करते हैं । लोगों को प्रसन्न करने वाले मरुत् अन्य लोकों की मैत्री के लिए द्युलोक एवं पृथ्वी लोक की वृद्धि करते हैं ।

परामिमिक्षुः - प्रकर्षेण सिन्चन्त्युदकसंस्त्यायम् - सा0भा0; मैक्स0- aling to their young maid. ग्रिफिथ0- have tronged. विल्सन0- have fronged.

न अप नुदन्त - अपनोदनं वर्षणरूपं तिरस्कारं न कुर्वन्ति - सा0भा0, मैक्स0- did not drive away; ग्रिफिथ0- scare not off. विल्सन0- did not drive away.

जुषन्त - सेवन्ते - सा0भा0; मैक्स0 - wished her to grow. ग्रिफिथ - aid- ग्रि0, विल्सन ।

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणा: ।

आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ 5 ॥

अन्वय - असु-र्या नृ-मना: रोदसी तत् ईं सचध्यै जोषत् । विसितस्तुका त्वेषप्रतीका सूर्या इव विधत: रथं नभस: इत्या न आ गात् ।

अनुवाद - जीवनदायिनी वीरों [मनुष्यों] पर मन रखने वाली पृथ्वी या विद्युत जो इनके सहवास के लिए [उनकी] सेवा करती है, [वह] केश संवारकर ठोक बांधे हुए तेजस्वी अवयव वाली सूर्य सावित्री के समान विधाता के रथ पर सूर्य की गति के समान [विशेष] गति से आ पहुँची ।

रोदसी - द्युलोक एवं पृथ्वी लोक । असुन् प्रत्यय । पृषोदरादि0 से 'ध' को 'द' आदेश उदितश्च । पा0सू0 4.1.61 इति ङीप् । 'रुद् रोदने' असुन् प्रत्यय +

डीप् । पु0कि0ब0 । ग्रि0 - दुत्ह0अ0; मै0वै0री0- Two worlds दो लोक । मैक्स0 वै0हि0 - विट0अ0; पी0 हि0फ्रा0अ0 Heaven and earth द्युलोक और पृथ्वी लोक । म्योर0 ओ0सं0टे0 पृ0 378 'Both worlds' दोनों लोक लेन0 सं0 री0 पृ0 232 Rodasi duel 8th two world i.e. heaven and earth; ग्रिस0 द0अ0स0 the two world. दो लोक ; उ0, मही0 शु0यजु0 5.16; 12.6 द्यावापृथिव्यौ द्विवचने - अथर्व0 1.32.3। The heaven and earth. द्युलोक एवं पृथ्वी लोक; निरु0 11.49 में रोदसी 'रुद्रस्यपत्नी' 'विषितस्तुका रोदसी नृम्णा' में माधव भा0 में रुद्र की पत्नी कहा गया है । 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' पा0 6.1.97 से इसका आदि वर्ण सदैव उदात्त रहता है । 'ञिदन्त एवं निदन्त' शब्दों के आदि वर्ग में उदात्त होता है । रोदसी निदन्त पद है । रुद्र जन्म के प्रसंग में रोदन के कारण इसे ब्राह्मणों में रुद्र से निष्पन्न किया गया है - 'यदरोदीत् तद् न यो रोदस्त्वम् ।'

नभस: इत्या न - सा0 - अन्तरिक्षादित्यो: साधारणो यं नभ: शब्द: - सा0 , मैक्स0- as with the pace of a cloud. ग्रिफिथ0- like surya from the clouds. विल्सन0- as with the pace of a cloud.

आस्थापयन्त युवतिं युवान: शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।

अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुत: यत् अर्क: हविष्मान् सुत-सोम: व: दुवस्यन् विदथेषु गाथं आ गायत । युवान: निमिश्लां पज्रां युवतिं शुभे आस्थापयन्त ।

अनुवाद - हे मरुद्गण । जैसे हविष्मान् स्तोता यज्ञ में सोम उड़ेलता हुआ स्तोत्र गान करता है । ‹तथैव› यौवनसम्पन्न ‹तुम› बलवती एवं युवती ‹विद्युत्› को अपनी संगिनी के रूप में विजय पाने के लिए अपने रथ में बैठाते हो ।

आगायत - गायन करता है । गायति - सा0भु0 ; मैक्स0 - had sung;
विल्सन0 ग्रिफिथ0- (when) your songs sounds.

आस्थापयन्त - सा0भु0 - आस्थापयन्ति । देवतात्वेन रथे धारयन्ति । मैक्स0 -
Placed. ग्रिफिथ0- have set. विल्सन0- have set.

प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।

सचा यदीं वृषमणा अहंयु. स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागा: ॥ 7 ॥

अन्वय - एषां मरुतां । य: वक्म्य: सत्य: महिमा अस्ति तं प्र विवक्मि । यत् ई
स्थिरा चित् सचा वृषमना: अहं-यु: सुभागा: जनी: वहते ।

अनुवाद - इन मरुतों का जो वर्णनीय सत्य महिमा है उसका वर्णन (गुणगान) करता हूँ।
जो यह स्थिर (पृथ्वी भी) अनुगामी बलवानों से अहंकार धारण करने वाली
सौभाग्ययुक्त प्रजा धारण करती है ।

प्रविवक्मि - सा0-प्रवच्मि वर्णयामि । मैक्स0, विल्सन0 - praise. ग्रिफिथ0-
(I) will declare.

वृषमना: - बरसने की इच्छा वाली । सा0भु0 - वृषमणा: वृष्टयादिवर्षणमनस्का ;
मैक्स0 - manly - minded. ग्रिफिथ0- strong-minded.
विल्सन0- manly minded.

वहते - भु0सा0 - धारयति ; वें0 - धारयति - मैक्स0 - drives (with)
ग्रिफिथ0, विल्सन0, travels (to).

पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।

उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवार: ॥ 8 ॥

अन्वय - मरुत: । मित्रावरुणौ अवद्यात् ईं पान्ति अर्यमा उ अ प्रशस्तान् चयते, उत
अच्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते, दातिवार: ववृधे ।

अनुवाद - हे मरुतों ! मित्र एवं वरुण निन्दनीय दोषों से रक्षा करते हैं। अर्यमा भी निन्दनीय वस्तुओं को एक ओर कर देता है। [और] उसी प्रकार अडल तथा दृढ़ शत्रुओं को भी [अपने पदों पर से] ढकेल देते हैं, यह तुम्हारा दानी वर हमेशा बढ़ता जाता है अर्थात् तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है।

अर्यमा उ - सा0-अर्यमा उ इति निपात् समुदायात्मकम् एकं पदम्। उ शब्दो पिशब्दार्थे। अर्यमापि। मैक्स0- Aryaman also, ग्रिफिथ Aryaman also

दातिवार: वर्धते - सा0मु0 - प्रदेश जल: खाण्डतमेघो वा यदा वर्धते। दातिवारो दत्तवरणीयहविर्लक्षणधनो यजमान: हे मरुत: ईम् एनान्युष्मान्वधृधे वर्धयति यदा तदेत्यर्थ.। मैक्स0 - He who dispenses treamres.
ग्रिफिथ - He who gives choice oblations. विल्सन0- He who givers.

च्यवन्ते - सा0मु0,0स0 पातयन्ति, नाशयन्ति। मैक्स0 - Is being shaken.
ग्रिफिथ0- Are overthrown, विल्सन0,- Is being shaken.

पान्ति - √पा रक्षणे। लट् प्र0पु0 ब0व0। मैक्स0 - वै0टि0 - (They) protect.
ग्रि0, वि0, मैक्स0- Preserve from censure.

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापु.।

ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसो र्णो न द्वेषो धृषता परिष्ठु: ॥ 9 ॥

अन्वय - मरुत: ! व: शवस: अन्तं अन्ति आरात्तात् चित् अस्मै नहि नु आपु:। ते धृष्णुना शवसा शूशुवास: धृषता द्वेष: अर्ण: न परिस्थु:।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे सामर्थ्य की परम सीमा समीप से या दूर से भी हमें सचमुच प्राप्त नहीं हुई है, वे वीर आवेशयुक्त बल से बढ़ने वाले अपने शत्रुदल को पराजित करने वाले बल से शत्रुओं को जल के समान घेर लेते हैं।

नहि न आपुः - सदयुद प्राप्त नहीं हुई है । सा० - कश्चु नैव प्राप्नुवन्ति । मैक्स0-
Indeed have ever found. ग्रिफिथ - वि0 - मैक्डा0-
Hath ever reached.

धृष्णुना शवसा - धर्षकेण बलेन - सा0मु0- Strong in daring. मैक्स0 -
strength. ग्रिफिथ द0वि0भ0 In courageous
might. विल्सन0 - In courageous might.

परिस्थु - सा0मु0 - परिभवन्ति, वशीकुर्वन्ति । मैक्स0 - Surrounded their.
haters. ग्रिफिथ - Shall compass round their foemen.
विल्सन - Surrounded their haters.

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।

वयं पुरा महि च नो अनु द्यूतन्नं ऋभुक्षा नरामनुष्यात् ॥ 10 ॥

अन्वय - अद्य वयं इन्द्रस्य प्र-इष्ठा: वयं श्व: पुरा वयं न: महि च द्यून् अनु समर्ये वोचे-
महि तत् ऋभुक्षा न: अनुस्यात् ।

अनुवाद - आज हम इन्द्र के अतीव प्रिय हैं । हम कल (भी उसी तरह उसके प्यारे
बनेंगे । पहले हमें बड़प्पन मिल जाय (इसलिए) हम प्रतिदिन युद्धों में घोषित
कर चुके हैं अथवा प्रार्थना कर चुके हैं कि वह इन्द्र मानवों में हमें अनुकूल बनें ।

इन्द्रस्य - इन्द्र के । इन्द दयार्थिक । रन् प्रत्यय । इतिद्-रन् । परमेश्वरे ।
इन्द्रोमायाभि: पुरुरुप ईयते श्रुति: इति । वाचस्पत्यम् - द्वि0भा0 पृ0940.
इन्दति इन्द्र: । इदि परमेश्वर्ये भ्वा0प0सं0 । ऋज्रेन्द्र - उ0 2.28 इत्यादिना रन्
1.1.41 इति अमरकोषे पृ0 5, इदि परमेश्वर्ये, तस्माद् रन् प्रत्यय: । इति हलायुध:
पृ0 61; इन्द्र: ऋजेन्द्र इति रन्नन्तो निपातित: ; सा0 माधवीयधातुवृत्ति 1.53,
इन्दति शातनं करोतीन्द्र. ; चन्नवीरकवि, काशकृत्स्नधातु पा0 1.9; भानुजिदीक्षित
अ0को0 1.41; भारतीय व्याख्याताओं में इन्द्र शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की

हैं : यास्क0 निघ0 10.8 इष इरा +√दृ । विदारना, विदीर्ण करना, इरां दृणातीति, सा0ऋ0सं0 1.3.4; इरामन्नमुद्दिदाय तन्निष्पादकजलसिद्धयर्थं दृणाति मेघं विदीर्णं करोति।
इरा +√दा ; देना; इरां ददाति, सा0 वहीं इरामन्नं वृष्टिजनिष्पादनेन ददाति ।
इरा +√धा; धारण करना, पोषण करना । इरां दधाति, सा0 - वहीं । इरामन्नं तृप्तिकारणं सत्यं दधाति जलप्रदानेन पुष्णाति । इरा + दृ, इरा दारयति, सा0 वही । इरामुत्पादयितुं कर्षकसुखेन भूमिं विदारयति । इन्द्र + रम् , क्रीडा करना, रमना, कांपना । इन्दौ रमते, सा0 - वहीं । सोमे रमते क्रीडति ।

ऋभुक्षा - सा0भ0 - महन्नामैतत् । महान्निन्द्रः इत्यर्थः । मैक्स0 - The most beloved (of Indra) ग्रिफिथ - ऋभुन् - Of the heroes.
विल्सन - Of the heroes.

वोचेमहि - सा0भु0 - स्तोतुं समर्था भूयास्म । मैक्स0 - (May) be called.
ग्रिफिथ - Let us call on him (in fight to - morrow).
विल्सन - (May) be called.

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ 11 ॥

अन्वय - मरुतः मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः एषः स्तोमः इयं गीः (वः) वः । इषा तन्वे अयासिष्ट । वयां इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हर्षित मनोवृत्ति के तथा सम्मान के योग्य (कवि का) किया हुआ यह (स्तोम) काव्य तथा यह प्रशंसा तुम्हारे लिए है । (यह सारी सराहना हमारे) अन्न के साथ तुम्हारे शरीर की वृद्धि के लिए तुम्हें प्राप्त हो । हम अन्न बल और शीघ्र विजय प्राप्त करें ।

जीरदानुम् - मैक्स0 (with) quickening rain, (ग्रिफिथ -(with) running water.

1.168

यज्ञा यज्ञा व. समना तुतुर्वणिर्धियं धियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वो र्वाच. सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभि. ॥ 1 ॥

अन्वय - यज्ञा - यज्ञा व: समना: तुतुर्वणि: धियं धियं देव-या: उ दधिध्वे रोदस्यो: सुविताय महे अवसे सु-वृक्तिभि: व: अर्वाच. आ ववृत्याम् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! सभी यज्ञकर्म में तुम्हारा मन समभाव सेवा करने में शीघ्रता करने वाला है । अपना प्रत्येक विचार दैवी सामर्थ्य पाने की इच्छा से ही धारण करते हो । आकाश एवं पृथ्वी को सुस्थिति के लिए सबके रक्षण के लिए अच्छे प्रशंसनीय मोगों से तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करता हूँ ।

दधिध्वे - धारण करते हो । सा0भा0 धारयथ धारयध्वे वा । वेंकट0 - धारयथ, accept- मैक्स0, विल्सन0- welcome - ग्रिफिथ0।

अवसे -√'अव रक्षणे' । विस्तृत विवरण देखें 1.166.2 में ।

ववृत्याम् - सा0 आवर्तयामि । वेंकट0 - वर्तयामि । मैक्स0 - there fore bring you. विल्सन - to come hither. ग्रिफिथ - to attract.

वव्रासो न ये स्वजा: स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतय: ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षण: ॥ 2 ॥

अन्वय - ये वव्रास न स्व-जा. स्वतवस. धूतय: इषं स्व: अभिजायन्त अपां अर्मय: न सहस्रियास: वन्द्यास: गाव. उक्षण: न आसा ।

अनुवाद - जो सुरक्षित स्थानों के समान सबको सुरक्षित रखते हैं, जो निजी स्फूर्ति से कार्य करते हैं, स्वयं बलयुक्त होने के कारण शत्रुओं को कंपा देते हैं । अन्न-प्राप्ति तथा स्वप्रकाश के लिए [सब तरह से] जन्म लेते हैं [वे] जल की तरंगों के समान सहस्रों को प्रिय [होते हैं] [वे ही] पूज्य गौ तथा बैलों के समान हमारे समीप रहें ।

वप्रास: - सा० - वप्रिरिति रूपनाम । रूपवन्त इव ‡रूप के समान अलग‡ ते यथा प्रकृष्टा लक्ष्यन्ते तद्वत् । यद्वा । अल्पा अपि सल्पा इव । वेंकट - कूपसाम्यं वर्णान्ते । ग्रिफिथ०- Surrounding as it were मैक्स० - Like spring.

गाव: उक्षण: - सा० - गाव इव पृष्टपुदकस्य सेक्तार: । वेंकट - बह्वीरा: गाव: इव सेक्तार: उदकानाम् - Like bullocks and like kine. ग्रिफिथ०। विल्सन०- Like cows (yielding milk). P.124, Vol. I, मैक्स० - Like unto excellent bulls. तेजस्वी गाय के बछड़े की भाँति।

स्वजा: - सा०मु० स्वयमेव जायमाना: । वें० - स्वस्मादेव जायमाना: । सा० - स्वयमेव स्वस्मात् वा जायमाना: । Self born- विल्सन० ग्रि०, मैक्स०, मैक्डा०, self born be -पी० ।

अभिजायन्त - प्रकट करते हैं । ‡अ० अभिलक्ष्य प्रादुर्भवन्ति - सा० । मैक्स० - (who) were born. ग्रि० - sprang to life.

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।

एषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ 3 ॥

अन्वय - ये सुता: तृप्तांशव: सोमास: न पीतास: हृत्सु दुवस: न आसते । एषाम् अंसेषु रम्भिणी इव आ रारभे । हस्तेषु खादि: च कृति: च संदधे ।

अनुवाद - जो मरूद्गण । निचोड़े हुए, तृप्ति करने वाले, सोमरस के समान पिये हुए हृदय में जाकर पूज्य मानवों के समान ही ‡जो वीर पुरूष राष्ट्र में रहते हैं, उनके कंधों पर लाठी ले चढ़ाई करने वाली सेना के समान हथियार विद्यमान है ‡उसी प्रकार‡ वे हाथों में अलंकार तथा तलवार भी भली प्रकार से धारण किये हैं ।

रारभे - सा० - आरेभे आश्लिष्यति । वेंकट० - आरब्धा सीत् । विल्सन - Pourd out. ग्रिफिथ - With in the breast dwell.

ग्रास० - आलिंगन । dwell - मैक्स० ।

सोमास: न: - सा० सोमा: इव । सोमरस के समान । यथा बल्लीरूपा: सोमा: अभिषवात्पूर्वमाप्यायनेन तृप्तावयवा: सन्त. पश्चात् सुता: अभिषुता: रसभूता: । विल्सन - Soma plants. वेंकट - सोमा: इव । मैक्स० like soma drops, ग्रि० - like soma.

अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययु रमर्त्या: कशया चोदतत्मना ।

अरेण वस्तुविजाता अचुच्यवु र्दृह्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टय: ॥ 4 ॥

अन्वय - स्वयुक्ता: दिव वृथा अव आ ययु: अमर्त्या. त्मना कशया चोदत, अ-रेणव. तुविजात: भ्राजत ऋष्टय: मरुत: दृह्हानि चित् अचुच्यवु ।

अनुवाद - स्वयमेव कर्मनिरत ‡वे वीर‡ द्युलोक से अनायास ही नीचे आये हुए हैं । अमर वीरों । तुम अपने कोड़े से ‡घोड़ों को‡ प्रेरित करो । निर्मल शक्ति के लिए प्रसिद्ध तथा तेजस्वी हथियार धारण करने वाले ‡वीर‡ मरुत् सुदृढ़ों को भी हिला देते हैं।

दिव: - द्युलोक । सा० - 1.168.5 द्युलोकात् । वेंकट० - दिवसेनैव । मैक्स० - from heaven. ग्रि० - विल्सन - From the sky.

चोदत - प्रेरयेत । √चुद् ~~सं~~ चोदने ‡चुरा०‡ धातोर्लोट् । अनित्यण्यन्तारचुरादय: इति णिचो भाव: । प्रेरयेत 7.27.3; सा० प्रेरयत । वेंकट० - चोदिता; ग्रिफिथ Great encourager महान प्रेरक; विल्सन - Stimilator. प्रेरक ; मो०वि० - Caused to more quickly.

अरेणव: - रेणवो - सा० - अपापा: अपापा. समुन्दनेन पांसुविरोधिनो वा । वेंकट०- रेणुवर्जिता: - रेणुरहित । मैक्स० - Dustless path. मैक्डा०- dustlessधूलरहित । गेल्ड० - das feste. discharge dustless.विल्सन- ग्रि० - unstained by dust.

को वो अन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युतं इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ॥ 5 ॥

अन्वय - ऋष्टिविद्युत: मरुत: इषां पुरुप्रैषा: धन्वच्युत. न अहन्य: एतश: न: अन्त. त्म
 जिह्वया हन्वा इव क: रेजति ।

अनुवाद - आयुधों से सज्जित मरुद्गण । ।तुम। अन्न के लिए बहुत ही प्रेरणा करने वाले
 हो । धनुष से छोड़े गये बाण की भाँति, जिसे मारने की कोई आवश्यकता
नहीं ।ऐसे। सिखाये हुए घोड़ें की भाँति तुममें स्वयमेव जीभ के साथ वाणी सहित ठुड्डी
जैसे हिलती है, वैसे ही कौन भला प्रेरणा करता है ।

धन्वच्युता: - धनुष से छोड़े गये । सा0-धन्व छन्दो न्तरिक्षस्य पवन: ' तेन ।।दस्यमुपय
 लक्ष्यते । उदक स्रा विणो मेघा इव । वेंकट0 - अन्तारक्षे च्यवमाना. ।
पी0 - with armed. ग्रिफिथ0-rush from heaven's floor as
through. मैक्स0 - I teel doubtful about dhanva kyut and feel
inclined twards. Sayans explaination who takes dhanvan for anta
ksha
अन्तरिक्ष; It would then correspond to parvata-kyut dhru-va-kyut, 8

विल्सन - P.124, Vol. I, lightning armed. मैक्स0 - (Shake)
the sky.

हन्वा इव - सा0 - हनू इव । हनु की भाँति । वेंकट0 - हन्वोरिव जिह्वा इति
 छन्दोनुविधानार्थमन्त्रापि विभक्तिव्यत्यय ऋगन्तेषु दृष्ट: । हन्वोर्मध्ये
जिह्वा विचलति । ऋ0स0 पृ0 1090. ऋग्वेद में यह सदैव दो द्विवचन के अर्थ में प्रयुक्त
होकर इसका अर्थ दो जबड़ा या दोनों होंठ है । Ait Br.VII,iii हनु hanu
sagihve; AV.X,2.7 hanvor hi gihvam adadhah,
जबड़ों के मध्य में जिह्वा । मैक्स0वै0टि0 - as the jaws stired by the tong.
 'who amongst you, O Maruts, moves by himself, as the jaws

by the tongue', but the simile would not be so perfect. The meaning is the same as in the preceding verse, viz. that the Maruts are self born, self-determined and that they move along without harses and chariots. In 10.78.2 Maruts are called svayug like the winds. (by the tangue).

× × × × ×

विल्सन०- as the jaws are Cset in motion) by the tongue.

ग्रि० - as with the tongue his jaws.

रेजति - कम्पित करता है। सा०भा० प्रकर्षेण कम्पते। यदा, यदा खलु मत्तः स्व-
कीयान् रथान् यु जते अश्वैर्योजयन्ति तदानीमेषां रथानां संबन्धिषु पर्वतादेरुपेक्ष-
केषु यामेषु गमनेषु भूमिश्चार्त्या कम्पते। स्कन्द० - विभेति भयेन वा कम्पते। वेंकट० -
मु०-कम्पते। ग्रिफिथ०- द०हि०अ० विल्सन - अ० Trembled कम्पित हो गये।
देवराज यज नैघण्टु टीका परिशिष्ट 25। भ्यत एवं √रेज् धातु दोनों भय एवं कम्पन के
अर्थ को व्यक्त करता है। तु०अ० 5.44.9 भुवनस्य रेजरे 5.60.2. वो भिया पृथ्वी
चिद्रेजते ॥चिद्रेजते॥ पर्वतश्चित् 6.505; 'रेजन्ते भुवनानि प्रविवते' 6.66 9; रेजते अग्ने
पृथिवी चिद्रेजते एव य भयः; 7.213 रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा; 7.61.10 भिया
वृष्णो रेजमानाः 8.20.5; भूमिर्यामेषु रेजते; 8.103.3 रेजन्ते वृष्टय. आदि। इन
निदर्शकों के परिसर में √रेजृ कम्पने का अर्थ मानना उचित है।

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुतः यस्मिन् आयय अस्य महः रजसः परं क्व स्वित्। अवरं क्व ? यत् संहितं
च्यावयथ अद्रिणा विथुरा इव त्वेषं अर्णवं विपतथ।

अनुवाद - हे मरुद्गण ! जहाँ से तुम आते हो उस विस्तृत अन्तरिक्ष लोक के उस ओर का छोर (किनारा) कौन सा है । (और) इस लोक का भी कौन है । जब कि (तुम) एकत्र हुए मेघों तथा शत्रुओं को हिला देते हो, उस समय वज्र से निराश्रित के समान उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओं को (तुम) नीचे गिरा देते हो ।

रजस: √रञ्ज् रागे (भ्वा0) धातो. भूरञ्जिभ्यां कित्' उ0 4.217 सूत्रेणासुन् किच्च ।

सा0 - वृष्ट युदकस्य लोकस्य 1.168 6। , वेंकट - अन्तरिक्षे । अन्तरिक्ष लोक से । मैक्स0 - the bottom of the mighty sky. विल्सन - Vast region. ग्रि0 - mighty region.

व्यायवथ - वेंकट0 - Proceed. मैक्स0 - P.274, across the terrible. ग्रिफिथ - have set. मैक्डा0- Proceed. गेल्ड0 - strecke.

विपतथ - सा0 - विशीर्णं पातयथ 1.168.6. वेंकट0 वि0 पातयथ - नीचे गिरा देते हो । वि0 अ0 hurl down. मैक्स0वै0हि0- P.279,throw down. मैक्डा0 - throw down. गेल्ड0 - wassernut. ग्रि0द0हि0अ0 - cast down.

सातिर्न वो मवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुत: पिपिष्वती ।

भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ 7 ॥

अन्वय - मरुत: ! व: साति: न व: राति: अम वती, स्वर-वती, त्वेषा, विपाका, पिपिष्वती भद्रा पृणत: दक्षिणा न पृथुज्रया असुर्या इव जञ्जती ।

अनुवाद - हे वीर मरुद्गण ! तुम्हारे देने के समान ही तुम्हारी कृपा भी बलवती, सुख-दात्री, तेजस्विनी, विशिष्टफलदायिनी, शत्रुसंहारकारिणी तथा कल्याणकारक है । जनता को संतुष्ट करने वाले धनाढ्य पुरुष की दी हुई दक्षिणा के समान विशेष दिलाने वाली और दैवी शक्ति के समान शत्रु से जूझने (लड़ने) वाली है ।

त्वेषा - सा०भ० प्रदीप्ता - तेजस्वी । वेंकट० - (प्रकाशकम्) दीप्तम् । विल्सन - भ० - brilliant. मैक्स०वै०रि० पृ० 280. delightful. मैक्स० - वै०री० - delightfull. वेनफे० - Greatness. ग्रि०द०रि०भ० - dazzling.

पिपिष्वती - सा०भ० - पेषणवती (धूली)भि: कणिमती । वृष्टी सत्या कर्षन्तीति प्रसिद्धम् । स्वविरोधिपेषणवती । वेंकट०भ० पेषणवत् । मैक्स० वै०रि० - terrible. ग्रि०-द रि०भ० - victorious. वि० - terrible.

जयजती - √जिजि युद्धे' (भ्वा०) धातो: शत्रन्तान् ङीप् । सा०भ० - सर्वानभिभवन्ता शक्तिरिव' । सा यथा अन्येभ्यो आहृत्य अन्यस्मै दातुं समर्था तद्वदियमपि मेघस्थमुदकमपहृत्य जगतो दातुं शक्तेत्यर्थ: । वेंकट० - जजियोधनकर्मा । मैक्स - वै०रि० crushing. ग्रि० द रि०भ० - (victorous) in war.

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धव पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युत: पृथिव्यां यदी घृतं मरुत: प्रुष्णुवन्ति ॥ 8 ॥

अन्वय - यत् पविभ्य: अभ्रियां वाचम् उदीरयन्ति सिन्धव: प्रतिस्तोभन्ति, यदि मरुत: घृतं प्रुष्णुवन्ति, पृथिव्यां विद्युत: स्मयन्त ।

अनुवाद - जब (ये वीर) रथ के पहियों से मेघसदृश गर्जना प्रवर्तित कर देते हैं, (तब) नदियाँ बौखला उठती हैं । जिस समय वीर मरुत् जल बरसाने लगते हैं (तब) ऐसा प्रतीत होता है मानो धरती पर बिजलियाँ (विद्युत्) हंसती हैं ।

उदीरयन्ति - √उद् + इर गतौ कम्पने च (अदा०) धातोर्णिचि लोट् । लटौ । √ईर् क्षेपे (चुरा०) धातोर्वा रूपाणि । सा०भ० उच्चारयन्ति वज्राणि । गर्जना करते हैं । वेंकट० भ०समा० - वाचम् उदीरयन्ति, पृ० 1991. मैक्स०वै०रि० - gush forth voice of the clouds. ग्रि०- are uttering the voice of rain-cloud.

वि0 - are uttring the voice of rain-cloud.

पृष्णुवन्ति - सा0भा0 - पृष्णन्ति, सि चन्ति । मैक्स0वै0हि0 - shower down. (firtile-rain). ग्रि0 - द हि0भा0 - scatter forth (their fatness)वि0 - shower down.

स्मयन्त - सा0 भा0 स्मयन्ते अवाङ्मुखं प्रकाशन्ते । वेंकट0 - प्र स्मयन्त हसन्ति । मैक्स0 - वै0हि0 - (the lightenings)-smiled upon the earth. ग्रि0 - (The lightnings) laugh upon the earth. विल्सन - laugh upon the earth.

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासो जनयन्ताभ्व मादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ 9 ॥

अन्वय - अर्थक्रम पृश्नि. महते रणाय अयासां मरुतां त्वेषम् अनीकम् असूत, ते सप् सरास: अभ्वं अजनयन्त, आत् इत ष्भि - रा- स्व - धां परि अपश्यन् ।

अनुवाद - पृश्नि माता मातृभूमि ने महान् संग्राम के लिए गतिशाल मरुतों का तेजस्वी सैन्य उत्पन्न किया । वे एकत्र होकर हलचल करने वाले घोर महती शक्ति उत्पन्न किए तत्पश्चात् उन्होंने अपनी अन्नदात्री धारक शक्ति को ही चतुर्दिक् देख लिया ।

अनीक - सा0भा0 समूहम् एकोनपञ्चाशत्संख्याकम् । सैन्यवद्द्रावयित्री स्त्री 1.113.19; वेंकट0 - सङ्घम् असूत । मैक्स0,वै0हि0 - the terrible train. ग्रि0 द हि0भा0 - the glittering army of the Maruts.

अजनयन्त - सा0भा0 उत्पादयन्ति 1.168.9; प्रकटयन्ति 1.59.2; जनयन्ति 4.1.12; वेंकट0 - जनयन्ति, पृ0 1091, ग्रि0 - द हि0भा0 - brought forth. मैक्स0 वै0हि0 - brought forth. वि0 - brought forth.

अपश्यन् - सा०भा० परिपश्यन्ति सर्वे जनाः । वेंकट० - परितः पश्यन्ति, पृ० 1091.
मैक्स० - वै०हि० - looked about. ग्रि० दहि०भा० - (men) saw.
वि० - saw by men.

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ 10 ॥

अन्वय - मरुतः ! मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः एषः स्तोमः इयं गीः व. इषा तन्वे आयासिष्ट, वयां इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हर्षित मनोवृत्ति के तथा सम्मान के योग्य कविकृत यह स्तोम, यह काव्य तथा यह प्रशंसा तुम्हारे लिए है । ‡यह सारी सराहना हमारे‡ अन्न के साथ बल तथा शीघ्र विजय प्राप्त करें ।

जीरदानुम् - ह्विटने, ग्रासमान मो०वि० आदि पाश्चात्य विद्वान् 'जीर' की व्युत्पत्ति जिन्व + र प्रत्यय से एवं 'क्षिप्र' अर्थ स्वीकार करते हैं । वें० - क्षिप्रदानः
ग्रि० - Lord of swift founty. मैक्डा०- having queckning gifts.
वि० - The swift giver मैक्स०- Bringing queckening rain. लैन०स०रा०- a having swift drops swift dropping, i.e. well watered.

इषं - सा० - स्वैरेष्टव्यां । अन्नं निघानं वा 7.84.4, अन्नाद्यमर्थम् 17.16 21;
अन्नादि पदार्थ समूहम् पृ० इषमित्यन्नामसु पठितम् निघ० 1.7, 1.16, मैक्स०
वै०हि० - with quickening rain. ग्रि० द०हि०भा० - with running water.

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।

रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ 1 ॥

अन्वय - मरुतः ! अहं एना नमसा सूक्तेन वः प्रति एमि; (अहं) तुराणां सुमतिं भिक्षे, वेद्याभिः रराणता हेळ निधत्तः, अश्वान् विमुचध्वम् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! मैं इस नमन से (तथा) सूक्त से तुम्हारे समीप आता हूँ । मैं वेगगामी (तुम वीरों की) सद्बुद्धि की याचना करता हूँ । (इन) जानने योग्य स्तुतियों से आनन्दित होते हुए तुम मनसे अपना द्वेष एक ओर दो (तथा) (अपने रथ के) घोड़ों को मुक्त करो ।

भिक्षे -√भिक्ष् भिक्षायाम् अलाभे लाभे च (भ्वा0) धातोर्लट् अन्यत्र लङ् लिङ् च । सा0 याचे । वेंकट0 - याचे । ग्रि0 (I) crave. मैक्स0 - (I) implore.

रराणता -√'रा दाने' (अदा0) धातोः शानच् । सा0भा0 - रममाणेन मनसा । ददमानाः (भव) - मेधाविजनाः 4.36.8; वेंकट0 - ऋ0समा0, पृ0 1095. रममाणेन । मैक्स0 - वै0हि0 - with this adoration. ग्रिफिथ - with this mine adoration.

मुचध्वम् -√'मुच्लृ मोचने' (तुदा0) धातोर्लेटि । सा0-मुचध्वम् । वेंकट0 - ऋ0समा0 मुचध्वम् = त्याग । मैक्स0 - put down (all anger)
ग्रि0 - suppress your anger.

एषः व. स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।

उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ 2 ॥

अन्वय - मरुतः एषः नमस्वान हृदा तष्ट वः स्तोमः मनसा धायि, देवाः मनसा जुषाणाः उप आयत, यूयं हि नमसः इत् वृधासः ।

अनुवाद - हे मरुद्गण ! यह नम्रता से (तथा) मन लगाकर रचा गया अपनी प्रशंसा से सम्बद्ध ऋचाओं को मन लगाकर सुनो । हे देवों ! मन से यह हमारा काव्य स्वीकार कर (तुम) हमारी ओर आओ । क्योंकि तुम सत्कर्मों की ही समृद्धि करने वाले हो ।

जुषाणा -√'जुषी प्रीति सेवनयोः' (तुदा०) धातोः शानच् । ब्रह्म वै जुषाणः कौ० 3.51; प्रीताः (विद्वांसो जनाः) 28.11; सा० - सेवमानाः, वेंकट० - सेवमानाः, मैक्स० - have rejoiced. ग्रि० - (A hymn that truly) makes (you) joyful.

नमसः -√'नम् प्रह्वत्वे शब्दे' (भ्वा०) धातोर्बाबे घ् । सा० - ऋ० अन्नायैश्वर्यस्य । अन्नेन सत्कारादिना वा 7.16.1, पृ० ऋ० नमो यज्ञः यानैवैनानेतत्करोति- शत० 2.3.4.24, 2.32. वेंकट० - भक्षं अन्नस्य ऋ०समा० पृ० 1096.

स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः ।

ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ 3 ॥

अन्वय - स्तुतास मरुतः नः कृळयन्तु, उत शंभविष्ठः मघवा स्तुतः, (मरुतः) जिगीषा नः विश्वा अहानि ऊर्ध्वा कोम्या वनानि सन्तु ।

अनुवाद - स्तुत होकर मरुत् हमें सुखी करें । और सबके लिए सुखी होने वाला ऐश्वर्यवान इन्द्र भी स्तुत होकर हमें सुखी करें । हे मरुतों ! भविष्य के हमारे सब दिन उन्नत तथा स्पृहणीय और सबके द्वारा चाहे जाने योग्य हों ।

सन्तु √अस् भुवि (अदा०) धातोर्लट् । अन्यत्र लोट् । सा०ऋ० - भवेयुः 1.21.5 होवे । स०पृ० 190; वेंकट० - सन्तु । ऋ० समा० पृ० 1097.

जिगीषा -√'जि जये' (भ्वा०) धातोरिच्छायां सन् । ततः स्त्रियाम् अ प्रत्ययात्' इत्यकार प्रत्यये टाप् । सा० ऋ० जेतुमिष्टानि (अहानि दिनानि) 1.173 3; जेतुमिच्छा 1.186.4; वेंकट० - भवतां गमनेच्छास्तु ऋ०सभा० पृ० 1096.

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।

युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ५ ॥

अन्वय - मरुत. अस्मात् तविषात् इन्द्रात् अहं भिया ईषमान. रेजमानः युष्मभ्यं हव्या निशितानि आसन, तानि आरे चकृम, नः मृळत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! इस बलवान इन्द्र से मैं डरकर भागता व काँपता हूँ । ﴾इसी डर के कारण﴿ तुम्हारे लिए हवियाँ तैयार करके रखी गयी थीं । उन्हें हमने दूर कर दिया । ﴾इसलिए﴿ हमें सुखी करो ।

~~तविषात्~~ ~~द्रष्टव्य~~ -

रेजमानः - रेजते वेपने ﴾नि० 3.21﴿ धातोः शानच् । सा०ऋ० - कम्पमानः ﴾तत्पुत्रः﴿ 3.31.3. वेंकट० - कम्पमानः । ऋ०सभा० पृ० 1096. √रेजृ कम्पने।

हव्या -√हु दानादयोः ﴾जु०﴿ धातोर्यत् । सा०ऋ० 1.171.4 अदातुमर्हाणि 1.171.4; अत्तुमर्हाणि ﴾वस्तूनि﴿ 29.10. अदातुमर्हाणि होमद्रव्याणि 1.139.3. ऋ० होतव्यापि द्रव्याणि द्र० - अत्र 'शेश्छन्दसि बहुलम्' इति लोपः 3.1. ﴾हव्य प्राति० शेलोपश्छन्दसि ।﴿ वेंकट० - हव्यानि । ऋ०सभा० पृ० 1096.

चकृमा -√डुकृञ् करणे ﴾तना०﴿धातोः सामान्ये लिट् । लट्लिटोरर्थेलिट् 3.45; सा० - कुर्याम् । कुर्याम 25.30; विदध्याम् 1.10.1.9 वेंकट० कृतवन्तः ।

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।

स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ 5 ॥

अन्वय - येन शवसा मानासः उस्राः शश्वतीनां व्युष्टिषु चितयन्ते, वृषभ उग्रः उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः सः, मरुद्भिः नः श्रवः धाः ।

अनुवाद - हे इन्द्र ! जिस तेरे बल से प्रकट की गई किरणें अनेक उषाओं के प्रकाशित होने पर चमकने लगती है । ﴾हे बलवान इन्द्र ! वीर शक्तियों से सर्वश्रेष्ठ तथा बल देने वाला वह तू मरुतों के साथ ﴾मिलकर﴿ हमें अन्न दें ।

चितयन्त -√'चिती संज्ञाने' ﴾भ्वा0﴿ धातोर्णिजन्तात् लङ् । अडभावश्छान्दस. । सा0- चितं कुर्वन्ति 2.34.2.1, ज्ञापयन्ति 4.51.3, वेंकट0 - प्रज्ञापयन्त ।

शश्वतीनाम् -√'शश् प्लुत गतौ' ﴾भ्वा0﴿ धातो: । सा0 - अनादि भूतानां चोदकानाम् 1.113.8, अनादिभूताना प्रकृति । वेंकट0 - रश्मयो यान् उषसाम् ।

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नृन्भवा मरुद्भिरवयातहेळा: ।

सुप्रकेतेभि: सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ 6 ॥

अन्वय - इन्द्र त्वं सहीयस: नृम् पाहि मरुद्भि: अवयात हेळा: भव सुप्रकेतेभि: सासहि: दधान: इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम ।

अनुवाद - हे इन्द्र ! तू शत्रुहन्ता नेताओं की रक्षा कर और मरुतों के साथ ﴾रहने वाला तू﴿ गुस्से से रहित हो । तुम उत्तम तेजों से युक्त ﴾तथा﴿ शत्रुओं को नष्ट करने वाले बल को धारण करने वाले हो । ﴾हम भी﴿ अन्न, बल और शीघ्र दान के स्वभाव को प्राप्त करें ।

वृजनं -√'वृजी वर्जने' ﴾अदा0﴿ धातो: 'कृपृवृजिमन्दि0' उ0 2.81 सूत्रेण क्यु: वृजनं बल-नाम् निघं0 2.9, सा0 - सन्मार्गम् 1.73.13, गमनम् 1.180.10; वर्जनीयम बलम् 6.11.6, धर्म्यमार्गम् 1.174.10; वेंकट0 - गतमन्यत ऋ0सभा0 पृ0 1096.

1.172

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः ।
मरुतो अहिभानवः ॥ 1 ॥

अन्वय - सुदानवः अ-हि-भानवः मरुतः वः याम चित्र. ऊती चित्र. अस्तु ।

अनुवाद - अच्छे दान शूर [और] न घटने वाले तेज से युक्त अथवा शत्रुओं का हनन करने वाले मरुतों ! तुम्हारी गति आश्चर्यकारक है । [तथा तुम्हारा] संरक्षण शक्ति भी विलक्षण है ।

ऊती - ऊत्या रक्षणादया क्रियया 4.1.5, ऊतये । वेंकट० - ऋ०सभा० - रक्षणार्थम् । पृ० 1097. ऊतया रक्षणादि क्रियया - 4.31.1; ऊतये रक्षणाद्याम् अत्र सुपां सुलुग०

सुदानवः - शोभन दान । वेंकट० - सुदानाः । सुदान विलपं । ऋ० सभा०, पृ० 1097.

अहिमानवः - अहिर्मेघवाची । भानु = भा दीप्तौ [अदा०] धातोः 'दाभाभ्यां नुः' उ० 3.32. सूत्रेण नु प्रत्ययः । सा०ऋ०सं० अहेर्मेघस्य प्रकाशकाः [आपदः] । वेंकट० - ऋ०सभा० आहन्तृदीप्तयः । पृ० 1097.

आरे सा वः सुदानवो मरुतः ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ 2 ॥

अन्वय - सुदानवः मरुतः वः सा ऋञ्जती शरुः आरे, यं अस्यथ अश्मा आरे ।

अनुवाद - हे दानी मरुतों ! तुम्हारी स्वकीय तेज से आत्म-प्रसाधन करने वाली अथवा प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली हिंसक ऋष्टि दूर हो । जिसे फेंकते हो, वह व्यापक आयुधविशेष दूर हो अर्थात् मेरे पास तक न पहुँचे ।

आरे - आरे दूरनाम निघ० 3.26, सा० - समीपे दूरे वा 7.32.1, दूरे समीपे च 1.114.10, दूरे 7 56.17, दूरे विप्रकृष्टे देशे 6.47.??, वेंक० - दूरे ।

अश्मा - अशुङ् व्याप्तौ संघाते च (स्वा0) अश्मामेघनाम् निघं0 1.10, अश्नुतेव्याप्नोति स मेघः (17.60) । गावाणवद्दृढम् (तनूः शरीरम्) 6.75.12, वेंकट0 ऋ0 सभा0 - अश्मा पृ0 1098, अश्मान् ऋ0सं0 6.75.12; अश्मा ऋ0सं0 5.47.3 ।

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ 3 ॥

अन्वय - सुदानवः तृणस्कन्दस्य विशः नु परिवृङ्क्त, नः जीवसे ऊर्ध्वान् कर्त ।

अनुवाद - हे शोभनदान-सम्पन्न मरुतों ! तृण के समान चंचल स्वभाव वाले अथवा शुष्यमाण मेरी पुत्रभृत्यादिरूप प्रजाओं की बाधायें दूरकर (उनकी) रक्षा करो । हमें चिरजीवन के लिए ऊर्ध्व कर दो ।

विशः - प्रजाः । भा0 - सुसन्तानाः 12.55, मनुष्याः 6.14.2, धनानि 2.24.10, या विशन्ति ताः (प्रजाः 15.60) । प्रजायाः 13.11, वेंकट0 - ऋ0सभा0 - विशः, प्रजाः, पृ0 1097.

जीवसे -√'जीव प्राणधारणे' (भ्वा0) धातोस्तुमुर्थे से प्रत्ययः । भा0 - जीवनाय प्राणधारणाय 1.155.4, जीवितुम् । पृ0 अत्र 'तुमुर्थे सेसेन' इत्यसे प्रत्ययः 3.54, आरोग्य, देह शुद्धमानस, बल और विज्ञान इत्यादि के लिए आर्याभि0 1.16, ऋ0 1.3.10.14, वेंकट0 ऋ0सभा0 - जीवनाय पृ0 1097.

2.34

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो, मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो, भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥

अन्वय - धारावरा धृष्णुओजसः मृगा न भीमाः तविषीभिः अर्चिनः अग्नयः न शुशुचानाः ऋजीषिणः भृमिं धमन्तः मरुतः गाः अप अवृण्वत् ।

अनुवाद - युद्ध के समय श्रेष्ठ प्रतीत होने वाले, शत्रु को वृक्षादि जल की धाराओं से अन्तरिक्ष को आवृत करने वाले अथवा स्थिर पदार्थों को प्रकम्पित करने वाले, सिंह की भाँति भीषण, स्वबल से अर्चनीय, अग्नि के समान तेजस्वी सोम रसपायी (वेग गामी), वेग को उत्पन्न करने वाले, मरुद्गण किरणों को (गौओं को) (शत्रु के कारागार से) रिहा करते हैं ।

ओजसा - संज्ञा० - light, splendor, Manifestaion appearance, strength, support, stay, to live, & असुन् affix; or with अच् affix ओज (स्) की उब्ज त्यनेन । उब्ज आर्जवे, 'उब्जेर्बले बलोपश्च' इति असुन् बलोपश्चगुणः बलम् ; 'रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयास्याम' इति रघुवंशे (2.54) । तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणामहौजसाम्' इति मनुः (1.19) ।

धारावरा - सा० - उदकधारया अन्तरिक्षमावृण्वन्तः । यद्वा धाराणां घृतानां स्थिराणां वृक्षादीनां निवारयितारः. वालयितारः । मैक्स० with rain, a word of doubtful import, possibly meaning washing for rain. The Maruts are some times represented as varas or suitors; Cf. 5.60.4; P. 298.

मैकडा० - heavy rain; ग्रासमैन-the rain; पिशल - give wents to its (collected) rain.

अर्चिन. - ग्रि० - singer द०हि०अ०, पृ० 387. वि० singer. ऋ०सं०मै०, मैक्स० blazing; वे०हि०, पृ० 295, सत्कारणीय (अर्च पूजायाम् (भ्वा०) अर्चि-शुचिहु०' उ० 2|108 सूत्रेण इसि प्रत्यय ।

अर्चिन: Chantres, singers, deriving it, as it would seem, from ark, which, as he maintains Journ. Asiat 1884, IV, PP. 194 Seq.) means always song in the RV. (Rel.Ved. I.279) This however is not the case, as has been well shown by Pischel, Ved. Stud. P. PP. 23 Sq. Besides, unless we change arkinah into arkindh, we must connect it with arki light. Thus we read VIII 41.8. Arkina Pada,

Vaidic Hymns P. 298.

तविषीभि: - 'तवेर्णिद् वा' सा० - आत्मीयैर्बलैर्वृष्टिप्रदानादिना । मैक्स० - in their strenth; विल्सन०- by their energies;

मैक्डा० - by their energies; ग्रिफिथ०- in their strenth.

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो, व्यभ्रिया न द्युतयन्त वृष्टय: ।

रुद्रो यद्वो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्या: शुक्र ऊधनि ॥ 2 ॥

अन्वय - स्तृभि. न. द्याव: खादिन: चितयन्त वृष्टय: अभ्रिया: न वि द्युतयन्त, यत् रुक्मवक्षस: मरुत: व: वृषा रुद्र: पृश्न्या: शुक्रे ऊधनि अजनि ।

अनुवाद - ये कंगनधारी वीर । नक्षत्रों से शोभित द्युलोक की भाँति सुशोभित होते हैं । वर्षा ऋतु में मेघाश्रित बिजली की भाँति विशिष्टरूपेण द्योतित होते हैं, क्योंकि वक्षस्थल पर सुवर्णहार धारण करने वाले मरुतों । तुम्हें शक्तिशाली रुद्र ने भूमि के पवित्र उदर से उत्पन्न किया ।

पृश्न्या: - पृश्निप्रातिо भवार्थे यत् । सा० - पृश्निर्नानावर्णयं भूमि: पुरा गोरूपधरासीत् तस्यां महेशो वृषो भूत्वा मरुतउत्पादयामासेत्याचक्षते । विल्सन०- Pure womb of Prishni, ध०, Vol. II,P. 254. मैक्स० - In the bright lap of Prishni; वै०हि० पृ० 295, मरुत रुद्र के पुत्र

हैं - 5.60.5, 6.66.3, and as the son of Prishni, fem. being called Prishni-matarah पृश्निमातर.॥

'When Rudra had begotten you in the bright lap of Prishni, The bright lap sukram ऊधः Udhah is an idionatic expression (6.66.1; 4.3.10) and I see no reason why we sould with roth, K.Z. XXVI, 49 change the sukre of the Padopatha into sukrah and refer it to vrisha.

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँइवा जिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः, पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ 3 ॥

अन्वय - अत्मान इव अश्वान उक्षन्ते नदस्य कर्णैः आशुभिः आजिषु तुरयन्ते हिरण्यशिप्राः स-मन्यवः मरुतः दविध्वतः पृषतीभिः पृक्षं याथ ।

अनुवाद - मरुद्गण घुड़दौड़ के घोड़ों के समान ॥अपने॥ घोड़ों को प्रक्षालित करते हैं । नाद करने वाले ॥हिनहिनाने वाले॥ शीघ्रगामी युद्धों में वेग से चलते हैं । सुवर्ण शिरस्त्राण पहने हुए उत्साही गरुत शत्रुओं को हिलाने वाले चितकबरी हिरणियों के सहित अन्न के समीप जाते हैं ।

उक्षन्ते - सा० - सिञ्चन्ति । मैक्स० - wash धोना । उक्षन्ते (Ukshante is explained by washing eleoning the horses before they start for a new race. See V.59.1, Ukshante asvan, followed by tarushante a ragah; ix.104.10; asvah na niktah dhanaya; satap Br. XI.5.5.13, Pischel (Ved.Stud. I.189) supposes that it always refers to the washing after a race.

हिरण्यशिप्रा - सा0 - शिप्रं शिरस्त्राणम् । सुवर्णमया शिरस्त्राणाः । मैक्स0वैo हि0 - golden - jawed. ग्रि0 - with helms of gold.
वि0 - with hilms of gold.

तुरयन्ते - सा0 - #0 वर्षणार्थं वृष्ट्युत्पादनाय त्वरित गच्छन्ति । तु0 - to go quick, to hurry, to make haste; this root is restricted to the vedas. See - त्वर, जुहो0 परा अक् सेट् । swift मैक्स0 - quick steeds. वि0 - to go quick. ग्रि0 - hasten (on their ways).

नदस्य - सा0 - शब्दवतो नाद करने वाले #हिनहिनाने वाले# मैक्स0 - of the reed. ग्रि0 - with the stream's rapid. लुडविग - roaring of the tempest. वि0 - on the skrits of the sounding.

दविध्वत: - विगागम #कारलोपश्च निपात्यैते । मैक्स0 - violently shaking (your jaws) ग्रि0 - (make all things) shake, वि0 - shake कंपाना। √धूञ् कम्पने। अधीरुहादिकं कम्पयन्तो यूयम्।

पृक्षं - ग्रि0 drip; मैक्स0 - ad zaquick; वि0 - vigorous like the german snel. The view is supported by Pischel. Ved. Stud. I.96.

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे, मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस, #जिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ 4 ॥

अन्वय - जीरदानवः पृषदश्वासः अनवभ्रराधस. #जिप्यासः नः वयुनेषु धूर्षदः पृक्षे मित्राय सदं वा ता विश्वा भुवना आ ववक्षिरे ।

अनुवाद - शीघ्र विजय पाने वाले चितकबरे घोड़ों वाले जिनका धन कोई छीन नहीं सकता, #ऐसे और# सीधे उन्नतिकर्ता के समान सभी कर्मों में अग्रभाग में

अधिष्ठित (ये वीर) अन्नदान के समय मित्रों को स्थान देने के समान उन सब भुवनों को आश्रय देते हैं ।

वयुनेषु - मैक्स0 - on their ways. अपने पथों पर । अपने मार्गों पर ।

On Vayuna, see pischel in Vedische Studian P.301. But why does Pischel translate rigipya by bulls, reffering to 6.67.2. ग्रि0 - on their ways; वि0 - on their ways; ग्रि0 - going straight (to the goal).

मित्राय सद वा - मै0 - have grown to feed; ग्रि0 - Mitra all that live to feed; ग्रासमन - zur habung netzten alle diese. Wesen sie. लुडविग - zunnarung habem sie alle dise wesen sie; ग्रि0 - upon the food as upon a friend.

अनवभ्रराधस: - मैक्स0 - cannot be taken; ग्रि0- riches never fail. वि0 - of inexhaustible riches.

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभि: पथिभिर्भ्राजदृष्टय: ।

आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुत: समन्यव: ॥ 5 ॥

अन्वय - समन्यव: भ्राजदृष्टय: मरुत: इन्धन्वभि. रप्शत् ऊधभि: धेनुभि: अध्वस्मभि: पथिभि: मधो. मदाय हंसास. स्वसराणि न आ गन्तन ।

अनुवाद - उत्साही, तेजस्वी, अस्त्र धारण करने वाले मरुतों । प्रज्वलित, तेजस्वी स्तुत्य और महान धनों से युक्त गायों के साथ अविनाशी मार्गों से सोमरसजन्य आनन्द के लिए (इस यज्ञ के समीप) अपने निवास स्थान को जाने वाले हंसों के समान आओ ।

इन्धन्वभि. - समिन्धनवद्भि: - सा0 - fiery; -मैक्स0, with brightly; ग्रिफिथ, with shining lances- विल्सन, flaming - मो0वि0।

रप्शत ऊधभि: - सा0 (प0सं0 विरप्शीति महन्नाम् । महोधस्कै: ऊधांसि जलान्तोमार्ग:।

मैक्स0 - (Cows clouds) where udders are swelling;

ग्रि० - (whose) udders swell with milk; मो०वि० - udders swell with milk; वि० - full uddered pine.

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो, नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वमिव पिप्यत धेनुमूधनि, कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ 6 ॥

अन्वय - स मन्यवः मरुतः नरां शंसः न, नः ब्रह्माणि सवनानि आ गन्तन अश्वां इव धेनुं ऊधनि पिप्यत् जरित्रे वाजपेशसं धियं कर्त ।

अनुवाद - उत्साही मरुतों ! शूरों में प्रशंसनीय वीरों के समान हमारे ज्ञानमय सोमयज्ञ की ओर आ जाओ । घोड़ी के समान हृष्ट पुष्ट गाय का थन, दुग्ध प्रवर्द्धित कर दो । उपासक को अन्न के द्वारा सम्यक् सुरूपता देने का कर्म करो ।

नरां - शूरों में । 'नयतेर्डिच्च' उ0 2 90, √णीञ्प्रापणे [भ्वा0] धातो. नयतेर्डिच्च उ0 2.100, सूत्रेण ऋ0 प्रत्ययो डित्वाच्च टेर्लोपः । सा0 'नर' शब्द ष0 ब0 व0 । नराणाम् 6.24.2, नायकानां नृणां मध्ये 7.19.10, धर्मस्य नेतृणाम् [जनानाम्] 1.173.10 मैक्स0-वै0हि0 - by men. Naram na samarah, the original form of Narasamsah. I take here as a proper name 'Mannerlob - (like Frauenlob, the poet) refering to Indra. Pergaigne, I. P.305. doubts whether Narasamsa can be a proper name in our passage but on P. 308 he calles it an appellation of Indra.

By Max. Muller.

Vedic Hymns Vol. IV P.303.

ग्रि० - to our libation like the praise of men. वि० - who are of one mind.

वाजपेशसं - वाजस्य विज्ञानस्य पेशो रूपं यस्यां ताम् [धियं प्रज्ञाम्] 2.34.6, सा0 वाजैरन्नैराश्लिष्टम् । पृ0 143, √पिश् अवयवे । मैक्स0 - glorious by booty.

ग्रि0 - with plenteous strength; पि0 - came to the food that is offered it (our) sacrifices.

अश्वां इव - ग्रि0 - like a cow. मैक्स0- of a barren cow;

वि0 - may be like a more.

Aswam iva, gives a sense but one quite in appropriate to to the Veda. It would mean, fillth cow in her udder like a mare' I therefore propose to read asvam iva (asum iva) from Asu, a cow that is barren, or a cow that has not yet calued. Thus we read, I.112.3; with the same help which you nourish a barren cow. Cf. I.116.22. Staryam pipyathuh gam. 'You havefilled the barren cow'.

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।

इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे, सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सह. ॥ 7 ॥

अन्वय - मरुत् रथे वाजिनं दिवे दिवे आपानं ब्रह्म चितयत् ॥ तं इषं स्तोतृभ्य. न. दात वृजनेषु कारवे सनि मेधां अरिष्टं दुष्तरे सह: ।

अनुवाद - हे मरुतों । हमें रथारोही वीर ॥और॥ प्रतिदिन प्राप्तव्य ज्ञान का संवर्धन करने वाला ज्ञानी पुत्र दो । ॥तथा इस भाँति॥ वह अभिष्ट अन्न भी हम उपासकों को दो । युद्धों में पराक्रमी वीर को धन देने, बुद्धि तथा अविनाशी एवम् अजेय सहनशक्ति भी दो ।

आपानं - सा0 - आप्नुवन्तम् । व्याप्त । मैक्स0 - वै0टि0 - A drought.

Apana may mean a drinking or carousing and I do not see

why should not take in that sense. Sacrifices in ancient times were often festivals; VII.22.3 ima brahma sadhamade gushasva, 'accept these prayer at our feast'. If we suppose that apana refers to the drinking of soma, then nothing is more appropriate than to call the drinking kitayat exciting brahma, a hymn. Anyhow I can discover no better meaning in this line. Grassmann whowho knows that kitayati means to excite, yet translate; Gebt Gebet, das durchdringt, euch erinnernd Tag Fur Tag.' Ludwig; Das erfalgreiche brahma, das ernnernde tag. fur tag. Possibly we should have to change the accent from apana to apana. Apana in Ix.10.5 is equally abscure. Mac. in distinct.

वृजन: - 'कृपृवृजिमन्दि0' उ0 2.81, सूत्रेण क्यु: । सा0 - संग्रामेषु, संग्राम में ।

वृजते शत्रून् येन तस्मिन् (आजौ = सङ्ग्रामे) 1.63.3; वर्जन्ति दु:खानि येन बलेन तस्मिन् ग0 51.15, मैक्स0 - home steads; गेल्डनर, Ved. Stud. I.139; ओल्डेनवर्ग - gottinger get. Anzeigen, 1890. Pp. 410 seq. Ph. colinet, Les principes de I, exegese vedique diapres M.M. Pischel et. geldner, P.28. Ludwig, Uber Methode Bei Interpretation des Rigveda 1890, PP. 27 seq."

See Vedic Hymns Vol. P. 304.

Grifth - bard in deeds of might, Vil. deeds of mighty.

सनि - धन देना । सा० - धनदातृत्वं च । मैक्स० - Luck. "Sani means acquiring success, Luck, gain and is often placed in juxtaposition with medha wisdom."

Vedic Hyms. Vol. IV. P. 304.

Grifith - give winning wisdom; Wil.- give food.

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥

अन्वय - यत् सु-दानवः रुक्म - वक्षसः मरुतः भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते धेनुः शिश्वे न रातहविषे जनाय स्वसरेषु महीं इषं पिन्वते ।

अनुवाद - जब दानशूर एवं वक्षस्थल पर स्वर्ण से बना हार धारण करने वाले मरुत् ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए अपने घोड़ों को रथों में जोड़ देते हैं । (तब वे) बछड़े के लिए दूध देने वाली गाय के समान हविष्यान्न देने वाले लोगों के लिए अपने घरों में ही पर्याप्त मात्रा में विशाल अन्नसमृद्धि प्रदान करते हैं ।

सुदानवः - शोभनदानशील । शोभनदानाः - सा०मु०मा०; bountous. मैक्स०; Lavish on their gift ग्रिफिथ, golden breasted munificent- विल्सन०।

पिन्वते - प्रदान करते हैं । √पिवि सेचने सेवने च (भ्वा०) धातोर्लट् । सा० - सिंचन्ति किरन्ति । मैक्स० - poured out. ग्रि० - all obtain; वि० - milck cow (gives milk).

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो, रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव, रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ 9 ॥

अन्वय - वसवः मरुतः यः मर्त्यः वृकताति नः रिपुः दधे रिषः रक्षत तं तपुषा चक्रया
अभि वर्तयत रुद्राः अशसः वधः आ हन्तन् ।

अनुवाद - बसाने वाले मरुतों ! जो मानव वृक (भेड़िया) के समान क्रूर बनकर हमारे
लिए शत्रु होकर बैठा हो, उस हिंसक से (हमारी) रक्षा करो । उसे
संतापदायक पहिये (चक्र) के समान शस्त्र से घेर डालो, हे शत्रु को रुलाने वाले (रुद्र:)
वीरों अत्यधिक खाने वाले (अति भोजा) हननीय (शत्रु) का बध करो ।

वृकताति -√वृक् आदाने' । 'वृकज्येष्ठाभ्यां तिलतातिलौ च छन्दसि' (पा०सू० 5.4.
41, इति स्वार्थिकस्तातिल् प्रत्ययः । सा० - वृकताति अदाता, वृकः ।
मैक्स० - Wolves. ग्रिफिथ० - upon as wolves, वि० - wolf like enmity.

Vrikatati is ana old locative of vrikatat walfhood. To
place us in walfhood meansk to treat us as walves or as vogel-
frei, others lake it to mean treating us as a woff would treat
us. It to mean treating us as a wolf would treat us.

See. Vedic Hy. Vol. IV. P. 304.

तपुषा - तपुः तपते - निघं० 6.11, सा० - तापयित्र्या । मैक्स०- with burning
heat; लेनमैन - (P. 371) might be taken as an acc. dual fem.
ग्रि० - with a flame; मैक्डा० - म० - with gleam of fine;
मो०वि० - with blaze; वि० - with (your) burning diseases.

हन्तन - सा० - अवप्लुत्य अस्मतः पृथक्कृत्य नाशयत । हन्तेर्लोटि । तप्तनप्तनथनाश्च
इति तनप् । मैक्स० - Shield us from hurt; ग्रि० - save us from
injuror; वि० - of the murerous of the devorer.

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ 10 ॥

अन्वय - मरुत: व: तत् चित्रं याम चेकिते यत् आपय: पृश्न्या: अपि ऊध. दुहुः, यत्
अ-दाभ्या: रुद्रिया: नवमानस्य निदे त्रितं जुरतां जराय वा ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारा वह आश्चर्यकारी आक्रमण सर्वविदित है । क्योंकि
ॐसबसेॐ मित्रता करने वाले तुम गौ के दुग्धाशय का दोहन करके दूध पीते हो। उसी प्रकार हे न दबने वाले महावीरों ! तुम्हारे उपासक की निन्दा करने वाले तथा त्रित ॐनाम वाले ऋषिॐ को मारने की इच्छा करने वाले शत्रुओं के विनाश के लिए तुम ही प्रयत्नशील हो यह बात विख्यात है ।

दुहुः - दोहन करते हैं । 'दुहेश्छान्दसो लिट् । 'छन्दसि वेति वक्तव्यम्' इति द्विवच-
नाभाव: । सा० - ऋ० - दुहन्ति । मैक्स० - have milked the udder (of Prishni) ; ग्रि० - milked (Prishni's)udderमो०वि०- milked from udder (Prishni's वि० - milked it the rain. √दुह् दोहने।

निदे - सा० - निन्दकाय शत्रवे हिंसां कृतवन्त इति शेष: । 'णिदि कुत्सायाम्' +
क्विप् च इति क्विप् । निन्दाकर्त्रे ॐदुर्जनायॐ 6.45.27ॐ निन्दनाय 3.41.6
मै०वै०हि० - to blame; ग्रि० - to blame; वि० - to find fault;
मो०वि० - fault.

The second line is obscure. Neither grassman nor Ludwig nor Sayan canx extract any intelligible meaning from it. I have translated it but I am far from satisfied. There may be an antihesis between the friends (the Maruts themselves - 5.53.2) milking the udder of Prishni and the Marut coming to blame their friends for not offering them sacrifices or offering them sacrifices in common with Indra. In the first case when they, as friends milk the cloud, heir approach is brilliant and auspicious.

In the secondæ case when they came to blame those who right to celebrate them or those who are actually hostile to them by causing the rain or decay of a friend of the Maruts such as Trito, there approach is like wise brilliant but not auspicious. Trita is a friend of Maruts whom they assist in battle, and it is possible that this legend may be alluded to here ..........
............................................ Prof. Oldenburg conjuctures that possibly 'Gurtam' might be changed to 'Guratam' and that the dual of the verb might refer to Rudra and Prishni; or we might read 'Gurata' for 'Gurata' ifk it refers to Rudriyas. Navamanasya might also be used in the sense of making a noise (see 1.29.5) and possibly 'navamanasya nide' might have been intended for shouting and laughing to scorn. But all this leaves the true meaning of the verse as a unfathomable as ever.

By MaxMuller. Vedic Hymns. Vol. IV, P. 305-06.

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो, ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राधे ईमहे ॥ ११ ॥

अन्वय - मरुतः एव यान्नः महः तान् वः विष्णोः एषस्य प्रभृथे हवा महे ब्रह्मण्यन्त. यत् स्रुचः हिरण्यवर्णान् ककुहान् शंस्यं राधः ईमहे ।

अनुवाद - हे मरुतों । तीव्रगामी, महनीय तुम्हें हमारे व्यापक हित की इच्छा की पूर्ति के लिए हम बुलाते हैं । ज्ञानेच्छुक पुण्यकर्म के लिए कटिबद्ध हो उठने वाले हम सुवर्णवत् तेजस्वी एवं अत्यन्त उत्कृष्ट ऐसे इन वीरों के समीप सराहनीय धन की याचना करते हैं ।

विष्णौ - √विष्लृ व्याप्तौ (जु०) धातोः 'विषेः किच्च' उ० 3.38. सूत्रेण नु
प्रत्ययः । व्याप्तशील । सा० - व्यापकस्य गृहक्षेत्रादिषु सर्वत्र व्याप्य वर्तमानस्य । 2.34.11; एषस्य - एषणस्य प्रार्थनीयस्य सोमस्य । व्याप्तुं शीलस्य विद्युद्रूपाग्नेः 12.5; विष्णु यज्ञनाम निघं० 3.17; पदनाम निघं० 4.2; यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः तां० 9.7.10; यो वै विष्णुः स यज्ञ. श० 5.2.3.6; विष्णुर्यज्ञः गो०उ० 1.12; तै० 3.3.7.6; विष्णुर्वै यज्ञः ऐ० 1.15; यज्ञो वै वैष्णवारुणः कौ० 16.8; पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ यजु० 1.12; इति; यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञिये स्थ इत्येवैतदाह श० 1.1.3.1; सर्वान्तः प्रविष्टः (जगदीश्वर.) 5.59; सर्वव्यापन् जगदीश्वर व्यापन शील: प्राणो वा 5.16; वीर्यं विष्णुः तै० 1.7.2.2; प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः श० 6.5.2.8; यदह दीक्षिते तद्विष्णुर्भवति श० 3.2.1.17; विष्णुः सर्वा देवताः ऐ० 1.1. तस्माद् आहुर्विष्णुर्देवानां श्रेष्ठ इति श० 14.1; मैक्स० - of the rapid Vishnu.

Vishnor eshasya Prabhrithe is obscure. At the offering of the is supposed to mean, when the rapid Vishnu offers Soma. The name pharse occures again. VI.40.5. In VIII.20.3. We can translate, 'We know the strength of the Maruts and of the hastin Vishnu, the bounteous gods.' In VII.39.5 the reading is Vishnum esham. Bergaigne (II,419) is inclined to take Vishnu esha as Soma. We should then translate, 'at the offering of Soma.

See. Vedic Hymns Vol. IV. P. 306, M.Muller.

Grifith - to Vishnu speeder on; Vil. Vishrun. Speeder on; Ludvig - Vishnu is the representative (sacrifice in general).

<u>राध:</u> - धन । √राध् संसिद्धौ [स्वा0] धातोरौणा असुन् । राध: धननाम् निघं0 2.10; सा0 द्रव्यम् 5.39.1, धनम् 2.34.11; धनम् 1.121.5; मैक्स0 - the wealth ; ग्रि0 - the wealth; वि0 -for excellent wealth; मो0वि0 - the riches.

ते दशग्वा: प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।

उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो, ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ 12 ॥

अनुवाद
<u>अन्वय</u> - दश-ग्वा: प्रथमा. ते यज्ञं ऊहिरे ते न: उषस. व्युष्टिषु हिन्वन्तु उषा: न अरुणै: रामी: मह शुचता गो अर्णसा ज्योतिषा अप ऊर्णुते ।

<u>अनुवाद</u> - दस मास तक यज्ञ करने वाले अद्वितीय [ऐसे] उन [वीरों ने] यज्ञ किया । वे हमें उष: काल के प्रारम्भ में प्रेरणा दें । उष: जिस प्रकार रक्तिम किरणों से अंधेरी रात्रि को आच्छादित करती है [वैसे हो वे वीर] महान् तेजस्वी किरणों के तेज से प्रकाश से सारा संसार ढक देते हैं ।

<u>दशग्वस:</u> - दश गोपदयो: समास: । छान्दसरूप । सा0 - ये दशाभमासै: सिद्धं गता अङ्गिरसस्तद्रूपा भूत्वा । वि0 - of the ten months' rite. Then Dasagvas are mentioned as an old Priestly family, like the Angiras and they seem also, like the Angiras, to have their prototypes or their ancestors among the divine hosts.

<u>Vedic Hymns. P. 306.</u>

P. The former C may be taken as an adjective refening to the Dasagvas or Maruts unless we take it as an adverb, quickly, like makshu. (See Lanman P. 501).

Grifith - the Dasagvas.

अप ऊर्णुते - √ऊर्णुञ् आच्छादने ‡अदा0‡ धातोर्लेट् लट् लेट च । सा0 - अप वृणोत्यप-

सारयन्ति । 2.34.12. आच्छादयति 1.92.4; मैक्स0 वैo०० -
uncover the dark nights with the red (rays).
Grifith - with her purple beams uncovereth the nights. Wil. with purple rays drives away the might.

हिन्वन्तु - √हि गतौ वृद्धौ च ‡स्वा0‡ धातोर्को0 । सा0 - प्रेरयन्तु हि गतौ वृद्धौ

च । मैक्स0 - rouse (us at the brak of dawn). Lenman - excite; Grifith - with great light glowing (like a billowy sea of milk. Wil. at the raising down.

ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।

निमेघमाना अत्येन पाजसा, सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ 13 ॥

अन्वय - रुद्राः ते क्षोणीभिः अरुणेभिः न अञ्जिभिः ऋतस्य सदनेषु वावृधुः निमेघमानाः अत्येन पाजसा सु-चन्द्रं सु-पेशसं वर्णं दधिरे ।

अनुवाद - शत्रुओं को रुलाने वाले वे ‡वीर‡ चूर्णीकृत के सरिया के समान पीत वर्ण वाले वस्त्रालंकारों से युक्त होकर उदकयुक्त घरों में बढ़े । ‡उसी प्रकार‡ पूर्णतया स्नेहपूर्वक मिलकर कार्य करने वाले वे अपने वेगयुक्त बल से अत्यन्त आह्लादकारी एवं अति सुन्दर कान्ति को धारण करते हैं ।

अरुणः अञ्जिभिः - सा0 - न शब्दः समुच्चये आरोचमानैः अरुणवर्णैः वा रूपाभिव्य - - जकैरलंकारैश्च समन्विताः सन्तः । व्यक्तीकरण धर्मैः 1.64.4;
मैक्स0- with glittering rad ornaments; ग्रि0 - have rejoiced ornaments; वि0 - decorated with purple ornaments.

अत्येनपाजसा - अश्वेनेव वेगेन । अत्य: अश्वनाम निघं0 1.14; अत्या: अतना: निघं0 4.13; पाजसा: - पाज: अन्ननाम निघं0 2.7, बलनाम निघं0 2.9, पाज: पालनात् नि0 6.12; सततगामिनाशीघ्रं व्याप्नुवता - आत्मीयेन बलेन पृ0 146, Max.- with rushing splendour; Grassman - mit schnell erregtem schiunmer; Ludvig - mit eilender kraft. (net for catching) ; Rath - In the Allgenueine Montsschrift of 1851, p. 57. he suggested for pagas the meaning of 'impression of a foot or of a carriage, porhaps also reflection.

See. Vedic Hymns. P. 310.

Grifith - vigour sending down the rain; Wil. Scattering the clouds with rapid vigour.

ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप, घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान्प च होतृनभिष्टय, आववर्तदवरा चक्रियावसे ॥ 14 ॥

अन्वय - यान् अवरान् पंच होतृन् चक्रिया अवसे अभीष्टये न त्रित: आववर्तत् , तान् ऊतये महि वरूथम् इयान: एना नमसा उप इत् गृणीमसि ।

अनुवाद - जिन अत्यन्त श्रेष्ठ पाँच याजकों (वीरों को) की रक्षा करने के लिए तथा अभीष्ट पूर्ति के लिए त्रित ने चक्राकार अस्त्र को घुमाया था । संरक्षण के लिए हम नमस्कार के द्वारा उनका सामीप्य प्राप्त कर उनकी स्तुति करते हैं ।

अभिष्टये - सा0 - इष्ट सिद्धये अभिलषितसिद्धयर्थ । मैक्स0 - victory;

अभिष्टये, for superiority or victory, rather than for assistance. Abhishti with accent on the last syllable, means conqueror or victorious; see; RV. I.9.I; III,34.4; X.100.12; 104.10; Grifith - saliciting (their) high protection for our help; Wilson - for the sacrifice.

गृणीमसि - स्तुवीम: 1.64.12; अर्चाम: स्तुम 1.53.2; मैक्स0 - sing praise.
वि0 - sing praise; ग्रि0 - with this praise;

आववर्तत - सा0 - स्वस्मान्निर्जिगमिषून् प्राणान् स्वात्माभिमुखमावर्तयत् । मैक्स0-
may bring near; वि0 - Insploring(them) ; ग्रि0 -
Solicitivy.

यया रध्रं पारयथात्यंहो यया, निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व, ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ 15 ॥

अन्वय - मरुत: यया रध्रं अंह: अति पारयथ, यथा वन्दितारं निद: मुंचथ, या व:
ऊति:, सा अर्वाची, सुमति: वाश्रा इव ओ सु जिगातु ।

अनुवाद - हे मरुतों ! जिससे उपासक को पाप के पार ले जाते हो, जिससे वन्दना
करने वाले को निन्दा करने वाले से छुड़ाते हो, जो इस भाँति तुम्हारी
संरक्षणीय शक्ति है, वह हमारी ओर आये । तुम्हारी सुबुद्धि रंभाने वाली गाय के
समान अच्छी हमारे पास अच्छी तरह है ।

पारयथ - पार ले जाते हो । सा0 - अतिक्रमयथ; पारं प्रापयथ । मैक्स0 -accros
( all anguish) ; वि0 - Convey; ग्रि0 - be turned to
(us-ward).

रध्रं - उपासक को । सा0 - आराधकं यजमानम् ; मैक्स0 - the wretched;
वि0 - worshipper; ग्रि0 - worshipper.

जिगातु - आवें । जिगाति गतिकर्मा निघं0 2.14; सा0 - गच्छतु । मैक्स0 -
come hither (your faver approach us like a cow)-going to
her calf).
वि0 - be present with us ; ग्रि0 - approach us.

प्रश्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभि. ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञिया: ॥ 1 ॥

अन्वय - श्यावाश्व धृष्णुया ऋक्वभि: मरुद्भि: प्रअर्च ये यज्ञिया: अनुष्वधं अद्रोघम् श्रव: मदन्ति ।

अनुवाद - हे ऋषि श्यावाश्व । तुम धैर्यपूर्वक स्तुतियों से मरुतों की अर्चना करो । जो यज्ञ के पात्र हैं एवं प्रतिदिन हविरूपी अन्न को निर्बाध रूप में पाकर प्रसन्न होते हैं ।

धृष्णुया - सा0 = धृष्णुत्वम् । वि0 - दत्त with preservance ग्रि0मै0 - Boldly
ऋक्वभि: । सा0 - स्तुत्यान् , मै0वि0 - in offensive.

ते हि स्थिरस्य शवस: सखाय: सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वत: ॥ 2 ॥

अन्वय - ते हि धृष्णुया स्थिरस्य शवस: सखाय: सन्ति ते यामन्ना धृषद्विन: त्मना शश्वत: पान्ति ।

अनुवाद - वे धीर हैं एवं शक्ति के मित्र हैं । वे मार्ग में भ्रमण करने वाले हैं एवं स्वयमेव हमारी सन्तान की रक्षा करते हैं ।

पान्ति - सा0-रक्षन्ति, मै0वि0दत्त, मो0वि0 - willingly pro- ग्रि0 - guard (all men). Max. Protect. M.V. Protect.

शश्वत: - सा0मु0 बहूनस्मान् पुत्रभृत्यादीन् , वि0 numerous (descendants)

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति स्कन्दन्ति शर्वरी: ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ 3 ॥

अन्वय - ते स्पन्द्रास: उक्षण: न शर्वरी: अति स्कन्दन्ति मरुताम् अध महो दिवि क्षमा च मन्महे ।

अनुवाद - गतिशील एवं जलवृष्टि करने वाले मरुद्गण रात्रियों को लांघते हुए हमारे पास आते हैं। इसी कारण मरुतों का तेज धरती एवं आकाश में व्याप्त तथा स्तुतियोग्य है।

स्कन्दन्ति - अतिक्रम्य गच्छन्ति - सा0मु0 - overtake ग्रि0 - Pass through वि0, मैक्स, मो0वि0।

उक्षण: - जलस्य सेक्तारश्च, सा0वि0, मो0वि0, दत्त0 - bath manifested in a ग्रि0 - in rapid motion.

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिष:॥ 4 ॥

अन्वय - (हे अध्वर्यु होत्रादय:) व: मरुत्सु धृष्णुया दधीमहि। स्तोमं यज्ञं च (दधीमहि) ये विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिष: पान्ति।

अनुवाद - हे अध्वर्यु एवं होताओं। तुम लोग धैर्यपूर्वक मरुतों की स्तुति करते हो एवं हव्य देते हो। इसका क्या कारण है? केवल यही कारण है कि वे मनुष्यों की युगों से मरणधर्मा हिंसक यजमान की शत्रुओं से रक्षा करते हैं।

मर्त्यं रिष: पान्ति - सा0मु0 मरणधर्माणं यजमानं हिंसकात् सकाशात् रक्षन्ति। वि0 Protect the mortal worshipper from harm, guard mortal man from injury.

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवस:।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्य:॥ 5 ॥

अन्वय - ये यज्ञियेभ्य: यज्ञम् अर्हन्त: सुदानव: असामिशवस: नर: दिव: मरुद्भ्य: प्र अर्चा।

अनुवाद - जो यज्ञ कर्ता के लिए यज्ञ का (सत्कार कर्म का) योग्यता प्राप्त होते हुए उत्तम दान देने वाले लोग कामना करते हुए मरुतों के लिए कर्म सम्पादन करते हैं वे अर्चनीय हैं।

असामिशवसः - सा०भा० अनल्पबलाः, विल्सन, दत्त, मैक्स० - Possessors of unequalled strength. मो०वि० - unequalled strength.

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।

अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥ 6 ॥

अन्वय - नरः ऋष्वा रुक्मैः आरोचन्त युधा आ, (रोचन्ते) ऋष्टी असृक्षत, एनान् मरुतः विद्युतः जज्झतीरिव अनु अह दिवः भानुः त्मना अर्त ।

अनुवाद - वर्षा करने वाले महान मरुद्गण चमकने वाले आभरणों एवं अलंकरणों से सुशोभित हैं तथा मेघ का भेदन करने के लिए आयुध चलाते हैं । कलकल बहने वाले जल के समान विद्युत मरुतों के पीछे चलती है एवं उनकी प्रकाश स्वयं ही इधर-उधर फैलता है ।

ऋष्टीरसृक्षत - सा०भा० - आयुध विशेषान् प्रक्षिपन्ति मेघ भेदार्थम् । मो०वि०, विल्सन, hurl javelins ; ग्रिफिथ - Weapons bright with gleaning gold; Brilliant weapons-Max.

जज्झतीरिव - सा०भा० शब्दकारिण्यं आप इव । जज्झतीरापो भवन्ति शब्दकारिण्यः निरु० 6.16 इति निरुक्तम् ।

ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।

वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ 7 ॥

अन्वय - ये पार्थिवा उरावन्तरिक्षा आ वावृधन्त, य वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः वृजने ।

अनुवाद - जो मरुद्गण पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष में वृद्धि प्राप्त करते हैं वे नदियों की धाराओं एवं महान स्वर्ग के स्थान में उन्नति करें ।

पार्थिवाः ववृधन्त - पृथिवी सम्बद्धाः सन्तः वर्धन्ते । waxed mighty of the earth;

of the earth (augmented) ~~xxxx~~_ Wilson; waxed mighty of the earth - Grifith.

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।

उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ 8 ॥

अन्वय - हे स्तोतः मारुतं ऋभ्वसं सत्यशवसं उत् प्र शर्धं शंस । उत स्म नरः ते शुभे (उदकार्थं) त्मना प्रयुजत ।

अनुवाद - हे स्तोताओं ! मरुतों के अत्यन्त विस्तृत एवं सत्य पर आधारित उत्तम बल की स्तुति करो । वर्षा करने वाले वे मरुद्गण जल बरसाने के लिए अपने आप सब की रक्षा के विचार से स्वभावतः परिश्रम करते हैं ।

सत्यशवसंऋभ्वसं शर्धं शंस - सा0भु0 सत्यवेगम् महदतिप्रवृद्धम् बलं स्तुहि । glorify the truth - in vigorated and infinite strength - Wilson; the valorous and truly strong - Grifith.

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।

उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ 9 ॥

अन्वय - परुष्ण्याम् उत स्म ते शुन्ध्यवः ऊर्णाः वसत । उत रथानां पव्या ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति ।

अनुवाद - परुष्णी नामक नदी में रहने वाले मरुद्गण सबको शुद्ध करने वाले प्रकाश से घिरे रहते हैं । वे रथ के पहिए की नेमि एवं अपनी शक्ति द्वारा बादल को भेदते हैं ।

रथानां पव्या अद्रिं भिन्दन्ति - सा0भु0 स्वकीयानां रथ चक्रेण मेघं गिरिं वा विदारयन्ति । with their chariat tires they cleave the rock asunder in their might- Grifith; break through the clouds with strength by the wheels of their chariots-Wilson.

आपथ्यो विपथ्यो न्तस्पथा अनुपथा: ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ 10 ॥

अन्वय - आपथ्य: विपथ्य: अन्तस्पथा: अनुपथा: एतेभि: नामभि: [मरुत:] विस्तार: मह्यं यज्ञं ओहते ।

अनुवाद - अभिमुख चलने वाले, विमुख चलने वाले, प्रतिकूल मार्ग में चलने वाले एवं अनुकूल मार्ग में चलने वाले - इन चारों नामों वाले मरुद्गण विस्तृत होकर हमारे यज्ञ को धारण करें या वहन करें ।

आपथ्य: - सा0मु0 अस्मदभिमुखा मार्गा येषां ते तादृशा: । Following the paths that lead-Wilson; from the way-Grifith.

विपथ्य: - सा0मु0 विष्वङ्गमार्गा - speeders on - Grifith; (the paths) that spread to the path diversely- Wilson.

अनुपथा - those that extend smoothly-Wilson.

अन्तस्पथा - अध्व दरीसुषिरादिमार्गा: । सा0मु0 those that sink into the hollows-(Of the mountain)-Wilson.

अधा नरो न्योहते वधा नियुत: ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ 11 ॥

अन्वय - अध नर: न्योहते । अध नियुत: ओहते । अध परावता: इति रूपाणि चित्रा दर्श्या ।

अनुवाद - वर्षा आदि इष्ट कार्यों के नेता देवगण संसार को धारण करते हैं, सबको मिलने वाले जगत को धारण करते हैं । दूरवर्ती आकाश के,गह तारों आदि को धारण करने वाले देवों का रूप विचित्र एवं दर्शनीय है ।

नियुत: - सा०मु० स्वयमेव मिश्रयितार: सन्त: । blending together - Wilson; well attend-Grifith.

दशर्या: - सा०मु० स्वव्यापारैर्दर्शनीयानि भवन्तिवति शेष: । visible (are their varied ferms)-Grifith; so may their manifold forms be manifest-Wilson.

छन्दस्तुभ: कुभन्यव. उत्समा कीरिणो नृतु. ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृषि त्विषे ॥ 12 ॥

अन्वय - छन्दस्तुभ: कुभन्यव: कीरिण: उत्सं आ नृतु:, ते के चित् मे तायव: न ऊमा: दृषि आसन् त्विषे ।

अनुवाद - छन्दों द्वारा स्तुति करने वाले एवं जल के अभिलाषी स्तोताओं ने एवं कूप के इच्छुक प्यासे गोतम के लिए मरुतों की प्रार्थना की । मरुतों में से कुछ ने चोर के समान छिपकर हमारी रक्षा की थी, एवं कुछ स्पष्ट रूप से हमारी शक्ति बढ़ाने में कारण बने थे ।

छन्दस्तुभ: - छन्द: स्तुभश्छन्दोभि: स्तुत्या: स्तोभर्ति स्तुतिकर्मा कुभन्यव: सेक्तारों वृष्टियुदकस्य कुभिरुन्दनकर्मा । कीरिण: स्तोतुर्गोतमस्य पानार्थम् उत्सं कूपम् आनृतु: आनीतवन्त: इति चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे । ऋ०सं० 1.85.11 इति उक्तम् । नृ नये ।

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युत: कवय: सन्ति वेधस: ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ 13 ॥

अन्वय - श्यावाश्वाये ऋष्वा: ऋष्टि ऋष्टि विद्युत. कवय: वेधस:, सन्ति तं मारुतं गणं रमया गिरा नमस्या ।

अनुवाद - हे ऋषि श्यावाश्व जो (मरुद्गण) दर्शनीय विद्युत रूपी आयुध धारण करने वाले बुद्धिमान एवं सबके निर्माता हैं । उन मरुतों की रमणीय स्तोत्रों द्वारा स्तुति करो ।

ऋष्टि विद्युत: - सा०भा० आयुधैर्विद्योतमाना: bright with lightning lances- विल्सन - sublime with lightnings for their spears - ग्रिफिथ ।

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव:ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ ।4 ॥

अन्वय - ऋषे दाना धीभि: मारुतं गणं मित्रं न योषणा अच्छ । ओजसा धृष्णव: दिवो वा (द्युलोकाद्वावाशब्दश्रुते: इतरलोकद्यद्वा) स्तुता: इषण्यत ।

अनुवाद - हे ऋषि तुम हव्य देते हुए एवं स्तुतियाँ करते हुए मरुतों के समीप आदित्य के समान जाओ । हे शक्ति द्वारा शत्रुओं को हराने वाले मरुतों ! तुम हमारी स्तुतियाँ सुनकर स्वर्ग लोक से हमारे यज्ञ में आओ ।

स्तुता: धीभि: इषण्यत - सा०भा० यज्ञम् गच्छत । यज्ञ में आओ |V.glorified by our hymns/haste hither glorified with songs- G.

नू मन्वान एषां देवां अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभि: ॥ ।5 ॥

अन्वय - मन्वान: एषां (मरुतां) नु देवान् वक्षणा अच्छ न, सूरभि: यामश्रुतेभि: अञ्जिभि: दाना सचेत ।

अनुवाद - स्तोता मरुतों को स्तुति द्वारा शीघ्र ही प्राप्त करके अन्य देवों को पाने की अभिलाषा नहीं करता । वे ज्ञानी, शीघ्रगतिशील के रूप में प्रसिद्ध एवं फल देने वाले मरुतों से दान पाते हैं ।

सूरभिः - सा०मु० मेधाविभिः - Wise dirinities - वि० ।

यामश्रुतेभिः - सा०मु० शीघ्रगमनेन विश्रुतैः । शीघ्र गतिशील के रूप में प्रसिद्ध । विल्सन- renowned for their velocity.

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ 16 ॥

अन्वय - ये मे बन्ध्वेषे सूरयः गां प्र वोचन्त पृश्निं मातरं वोचन्त, इष्मिणं शिक्वसः रुद्रं पितरं वोचन्त ।

अनुवाद - जब मैं अपने बन्धुओं को खोज रहा था, तब समर्थ मरुतों ने मुझे बताया कि पृश्नि उनकी माता है । उन्होंने अन्न के स्वामी रुद्र को अपना पिता बताया।

सप्तं मे सप्त शाकिनः एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्र्व्यं मृजे ॥ 17 ॥

अन्वय - सप्त मेसप्त शाकिनः एकमेका मे शता ददुः । गव्यं राधः यमुनायां अधि श्रुतं उत् मृजे अश्व्यम् राधः धनं नि मृजे ।

अनुवाद - उनचास संख्या वाले शक्तिशाली मरुतों ने एकत्र होकर मुझे सैकड़ों गायें दीं । मरुतों द्वारा दिये गये गोरूप धन को [यमुना] नदियों के तट पर प्राप्त किया । अश्वरूप धन को [नदियों के तट पर] प्राप्त किया ।

सप्तमे सप्त - सप्तसंख्यकाः संघाः । "सप्तगणा वै मरुतः" [तै०सं० 2.2.11.1] इति श्रुतेः । अदितिगर्भे वर्तमानं वायुनिन्द्रः प्रविश्य सप्तधा विदार्य पुनरेकैकं सप्तधा व्यदारयत् ते एकानप चाशन्मरुद्गणा अभवन्निति पुराणेषु प्रसिद्धम् ।

शाकिनः - वि० all potents (Maruts) Grifith - mighty ones.

गव्यम् - वि० wealth of cows.

अश्व्यम् = ग्रिफिथ - wealth of kine.

5.53

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ 1 ॥

अन्वय - जानम् को वेद को वा पुरा मरुताम् सुम्नेषु आस यत् किलास्यः युयुज्रे ।

अनुवाद - इन मरुतों का जन्म कौन जानता है ? मरुतों का सुख सर्वप्रथम किसने अनुभव किया ? जब इन्होंने रथ में पृश्नि को जोड़ा था तब इनकी शक्ति किसने जानी ?

युयुज्रे - सा०मु०मा० - रथे योजितवन्तः । विल्सन, मो०वि० - are harnessed (to their chariots; ग्रिफिथ, मैक्स- were yoked.

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ 2 ॥

अन्वय - एतान् रथेषु तस्थुषः कः आ शुश्रावकथा ययुः कस्मै सुदासे आपयः वृष्टयः इळाभिः सह अनु सस्रुः ।

अनुवाद - मरुतों को रथ पर बैठा हुआ किसने सुना था ? इनके गमन का ढंग कौन जाता है ? बन्धुरूप एवं वर्षाकारक मरुद्गण अन्न लेकर किस दानशील के लिए अवतीर्ण होते हैं ।

इळाभिः - सा०मु०मा० - बहुविधैरन्नैः । मो०वि०ग्रि० - with food of sacrifice विल्सन, दत्त -with manifold food. मैक्स०-with manifold food.

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ 3 ॥

अन्वय - ते मे आहुः ये उप आययुः द्युभिः विभिः मदे, नरः मर्याः अरेपसः इमान् पश्यन् स्तुहि इति ।

अनुवाद - वे तेजस्वी घोड़ों पर सवार होकर जो मरुद्गण सोमरस का आनन्द प्राप्त करने आये थे, उन्होंने मुझसे कहा कि वे नेता मानव हितकारी एवं आसक्ति रहित हैं। हे ऋषि इस प्रकार के मरुतों को देखकर उनकी स्तुति करो।

अरेपस: - मर्या: अरेपस: - सा0मु0 मनुष्येभ्यो हिता: अलेपास्ते। friends of man- वि0। Heroes free from spot- ग्रिफिथ।

ये अ॒ञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानव: स्र॒क्षु रु॒क्मेषु खा॒दिषु।
श्रा॒या रथेषु धन्वसु ॥ 4 ॥

अन्वय - ये स्वभानव: अञ्जिषु स्रक्षु:। ये वाशीषु रुक्मेषु खादिषु रथेषु धन्वसु (श्राया:)

अनुवाद - जो अपनी कान्ति से आभरणों आयुधों, सीने पर पहने जाने वाले मालाओं हाथ पैरों एवं उनमें से पहने जाने वाले कंकणों रथों एवं धनुषों में जो बल आश्रित है उनकी हम स्तुति करते हैं।

अञ्जिषु - सा0मु0 - आभरणेषु। ग्रिफिथ, मैक्स0 - with arnaments; Wilson- विल्सन - in arnaments.

वाशीषु - आयुधेषु स्रक्षु: माल्येषु, रुक्मेषु-उरोभूषणेषु, खादिषु-हस्तपादस्थितकटकेषु "हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च" (ऋ0 1.168.3) पत्सु खादय:(ऋ0 5.54.11) इति हि श्रुतीभवत: - सा0मु0।

यु॒ष्माकं स्मा॒ रथाँ॑ अनु मु॒दे दधे मरुतों जीरदानव:।
वृ॒ष्टी द्यावो य॒तीरिव ॥ 5 ॥

अन्वय - जीरदानव: मरुत: वृष्टी यती: द्याव: युष्माकं रथान् अनु मुदे दधे स्म।

अनुवाद - शीघ्रदानी मरुतों। वर्षा के निमित्त सभी जगह जाने वाला दीप्ति के समान तुम्हारे रथ को देखकर हम प्रमुदित होते हैं।

जीरदानव: मुख्ता0 शीघ्रदाना । ~~विल्सन,~~ ग्रि0 - swift to pour your bounties down (Maruts).Wilson.manificient.(Maruts).

आ यं नर: सुदानवो ददाशुषे दिव: कोशमचुच्यवु: ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टय: ॥ 6 ॥

अन्वय - नर: सुदानव: यं कोशम् ददाशुषे दिव: आ अचुच्यवु: पर्जन्यं रोदसी अनु वि सृजन्ति धन्वना वृष्टय: यन्ति ।

अनुवाद - नेता शोभनदानशील मरुद्गण जो कोश (मेघ को) हविर्दाता यजमान के लिए अन्तरिक्ष से अच्युत करते हैं, मेघ को द्युलोक एवं पृथ्वी लोक के मध्य विमोक्ष करते हैं जिससे सर्वत्र वर्षा होती है ।

ददाशुषे - हविर्दत्तवते यजमानाय । सा0मु0 - विल्सन - For (the benifit of) the doner. मैक्स0ग्रिफिथ - For the worshipper's behoof.

ततृदाना: सिन्धव: क्षोदसा रज: प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वाइवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्य: ॥ 7 ॥

अन्वय - सिन्धव: ततृदाना: क्षोदसा रज: प्र सस्रु: धेनवो यथा स्यन्ना अश्वाइव अध्वन: विमोचने यत् ऐन्य: वि वर्तन्ते ।

अनुवाद - भेदन किये गये बादल से निकलती हुई जलधाराएं वेग के साथ आकाश में इस प्रकार गमन करती हैं जिस प्रकार दुधारू गाय दूध देती है । शीघ्रगामी अश्व जिस प्रकार मार्गों पर चलते हैं उसी प्रकार नदियाँ तेजी से बहती है ।

विवर्तन्ते - सा0मु0 - विविधं स चरन्ति । ग्रिफिथ - to every side run; विल्सन - rush in various directions.

आ यात् मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावत: ॥ 8 ॥

अन्वय - मरुतः दिवः आ यात अन्तरिक्षात् आ यात, उत् परावतः अमात माव स्थात ।

अनुवाद - हे मरुतों तुम स्वर्गलोक से यहाँ आओ अन्तरिक्ष से यहाँ आओ, तुम दूरवर्ती स्थान में मत रहो ।

परावतः - अमात भाव स्थात - सा0मु0 अत्यन्त दूरदेशात् । ग्रिफिथ - far away; विल्सन - far off. मैक्स0मो0वि0 - far away.

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ 9 ॥

अन्वय - वः रसा अनितभा कुभा मा नि रीरमत क्रमुः सिन्धुः मा पुरीषिणी सरयुः मा परिष्ठात् अस्मे इति वः सुम्नम् अस्तु ।

अनुवाद - हे मरुतों ! रसा, अनितभा एवं कुभा नाम की नदियाँ एवं सर्वत्रगामी सिन्धु तुम्हें न रोके । जलपूर्ण सरयु तुम्हें न रोके । तुम्हारे आने का सुख हमें प्राप्त हो ।

रसा0 - सा0मु0 - नदीनामैतत् । रसा नदी भवति (नि0 11.25) रसनवती शब्दवती।
पुरीषिणी - पुरीषमुदकम् ।

तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनम् ।
अनु प्रयान्ति वृष्टयः ॥ 10 ॥

अन्वय - आह्वानार्थं तं वः शर्धं रथानां त्वेषं ~~अव्यसीनम्~~ वृष्टयः अनु प्र यान्ति ।

अनुवाद - हे मरुतों तुम्हारे तीव्र रथों के वेग एवं दीप्ति की हम प्रशंसा करते हैं । वर्षा मरुतों के पीछे पीछे चलती है ।

वृष्टयः प्रयन्ति - सा0मु0 वर्षका: मरुतो नु अनुकूलं प्रकृष्टं यन्ति गच्छन्ति । वि0 - You whom the rains attend.

शर्धं शर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।

अनुक्रामेम धीतिभिः ॥ ।। ॥

अन्वय - एषां वः शर्धं शर्धं व्रातंव्रातम् गणंगणं सुशस्तिभिः धीतिभिः अनुक्रामेम ।

अनुवाद - हे मरुतों । हम सुन्दर स्तुतियों एवं हव्य देने आदि कर्मों द्वारा तुम्हारे बलों समूहों एवं गणों के पीछे चलते हैं ।

धीतिभिः - सा०भा० - कर्मभिर्हविष्प्रदानादिलक्षणैः, अनुक्रामेम - अनुगच्छेम ।

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।

एना यामेन मरुतः ॥ ।2 ॥

अन्वय - अद्य कस्मै रातहव्याय सुजाताय एना यामेन मरुतः प्रययुः ।

अनुवाद - आज किस उत्तम हवि देने वाले यजमान के पास अपने रथ द्वारा मरुद्गण जायेंगे ।

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ ।3 ॥

अन्वय - येन तोकाय अस्मभ्यं तनयाय अक्षितम धान्यं बीजम् बहिध्वे तत् धत्तन, यत् वः ।ईमहे। राधः विश्वायुः सौभगम् ईमहे ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम जिस कृपालु मन से हमारे पुत्र-पौत्रों के लिए नष्ट न होने वाले अन्नों के बीज देते हो उसी मन से हमें भी अन्नों के बीज दो । हम तुमसे पूर्ण आयु एवं सौभाग्ययुक्त धन माँगते हैं ।

सौभगं - सा०भा० - सौभाग्यं च तद्धत्तनेति समन्वयः । तोकाय - पुत्राय, ईमहे - याचामहे ।

अतीयाम निदस्तिर: स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमराती: ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुत: सह: ।। 14 ।।

अन्वय - स्वस्तिभि: अवद्यं हित्वा निद: अराती: तिर: अतीयाम् वृष्ट्वी शं यो: (पापानां) आप: उस्रि भेषजम् सह स्याम मरुत: ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हम कल्याण द्वारा पाप को त्यागकर निंदक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें । तुम्हारे द्वारा की गई वर्षा से हम सुख, पापों का नाश, जल गायों एवं औषधियों को पावें ।

निदस्तिर: - वि० secret and reviling.

अराती: - सा०मु०वें० शत्रून् - adversaries - वि० enemies - ग्रिफिथ.

अतीयाम् - सा०मु०वें० अतिक्रम्य गच्छेम तिरस्कुर्मइत्यर्थ: । overcome - वि०, overcome- ग्रिफिथ ।

सुदेव: समहासति सुवीरो नरो मरुत: स मर्त्य: ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ।। 15 ।।

अन्वय - समह नर: मरुत: यं मर्त्य: त्रायध्वे स: सुदेव: सुवीर: असति यं ते स्याम (त्रायध्वे) असति ।

अनुवाद - हे पूजित एवं नेता मरुतों ! तुम जिस मनुष्य की रक्षा करते हो वह अन्य देवों का कृपापात्र एवं उत्तम पुत्र-पौत्रों वाला बनता है । हम तुम्हारे सेवक इसी प्रकार बनें ।

समह: - सा०मु० - प्रशस्तवचन: समहशब्द: - blessed with progeny-Wilson. वि० । possed of noble sons-Grifith.

त्रायध्वे - सा०मु०-पालयध्वे, असति-भवति ।

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो नयवसे ।
यत: पूर्वाइव सखीरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिन: ॥ 16 ॥

अन्वय - स्तुवत: अस्य यामनि भोजान् स्तुहि गावो न यवसे रणन् यत: पूर्वान् सखीन् इव ह्वय कामिन: गिरा गृणीहि ।

अनुवाद - हे ऋषि ! स्तोता इस यजमान के यज्ञ में तुम फल देने वाले मरुतों की स्तुति करो । गायें जैसे घास चरने के लिए प्रसन्न होती हैं उसी प्रकार मरुत प्रसन्न हों । तेज चलने वाले मरुतों को पुराने मित्र के समान बुलाओ एवं स्तुति की अभिलाषा करने वाले मरुतों की वाणी से स्तुति करो ।

गिरा गृणीहि - सा0भा0 स्तुत्या स्तुहि । विल्सन - **Praise them desirous of praise, with a cacred hym** ग्रिफिथ - **hymn those who love thee with a song.**

5.54

प्रशर्धाय मारुताय स्वभानव. इमां वाच मनजा पर्वतच्युते ।
धर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ 1 ॥

अन्वय - स्वभानवे पर्वतच्युते धर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे मारुताय शर्धाय इमां वाचं प्र अनज महि नृम्णं अर्चत।

अनुवाद - स्वायत्त तेज वाले, पर्वतों को च्युत करने वाले धर्मस्तुभ स्वर्ग से आने वाले रथ के उपरिभाग पर विराजमान एवं तेजस्वी अन्न वाले मरुतों के बल की वाणी द्वारा प्रशंसा करो तथा उन्हें पर्याप्त अन्न दो ।

द्युम्नश्रवसे - सा0भा0 द्योतमानान्नाय । विल्सन-मैक्स0 - **of aboundant food.**

ग्रिफिथ - **illustrious in renown.**

धर्मस्तुभे - धर्मस्य स्तोभयित्रे, पर्वतच्युते - पर्वतस्य च्यावयित्रे ।

प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापो वना परिज्रयः ॥ 2 ॥

अन्वय - मरुतः वः तविषा उदन्यव. वयोवृधः अश्वयुजः परिज्रय. विद्युता सं दधति
त्रितः वाशति गणाः प्रादुर्भवन्ति । आपः परिज्रयः अवना xस्वरन्ति ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारे दीप्त जगत् की रक्षा के लिए जल के इच्छुक अन्न की
वृद्धि करने वाले, चलने के लिए रथ में घोड़े जोड़ने वाले, सभी ओर गमन-
शील, बिजली के साथ संगत होने वाले व तीन स्थानों में शब्द करने वाले गण प्रकट
होते हैं एवं जलराशि धरती पर सर्वत्र गिरने लगती है ।

परिज्रयः - अवना स्वरन्ति - सा0मु0-परितो गन्त्र्य आपः भूमौ अधः पतन्ति ।
वि0 - spreading everywhere; waters fall upon earth-Grif.

वयोवृधः - अन्नस्य वर्धयितारः । augmenting food-Wilson.

विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ 3 ॥

अन्वय - विद्युन्महसा नरः अश्मदिद्यवः वातत्विषः पर्वतच्युतः अब्दया मुहु. ह्रादुनीवृतः
स्तनयदमाः रभसां उदोजसः मरुतः ।

अनुवाद - बिजली रूपी तेज वाले वर्षा आदि के नेता पत्थरों के आयुध वाले, दीप्ति-
प्राप्त करने वाले, पर्वतों को च्युत करने वाले, बार-बार जल देने वाले, वज्र
को प्रेरित करने वाले, मिलकर गर्जन करने वाले एवं उद्गत बल-सम्पन्न मरुद्गण वर्षा के
निमित्त प्रकट होते हैं ।

अब्दया मुहुः - सा0मु0 - उदकानां दातारः । जस. याजादेश चिदिति पूरणः ।

विल्सन - repeated distributors of waters.

विद्युन्महसः - विद्योतमान तेजस., वातत्विषः प्राप्तदीप्तय. - सा०भ्रु०, स्तनयदमाः- अमाशब्दः साहित्यवाची । शब्दोपेतगणा इत्यर्थः । विल्सन- radiant with lightning.

व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ 4 ॥

अन्वय - रुद्राः अक्तून वि (अजथ) अहानि वि शिक्वस. अन्तरिक्षं वि, रजांसि वि । धूतयः यत् अज्रान् वि अजथ नाव ईं यथा दुर्गाणि वि मरुतो नाह रिष्यथ ।

अनुवाद - हे रुद्रों ! तुम रात्रि एवं दिन को प्रकट करो । हे सर्वथासमर्थ मरुतों ! तुम अन्तरिक्ष तथा अन्य लोको को विस्तृत करो । हे कंपाने वाले मरुतों ! सागर जिस प्रकार नाव को हिलाता है उसी प्रकार तुम बादलों को चंचल बनाओ एवं शत्रु नगरों को नष्ट करो । हे मरुतों ! हमारी हिंसा मत करना ।

नाह रिष्यथ - सा०भ्रु० नैव हिंसथ । मो०वि, विल्सन - do no harm; मैक्स०, ग्रिफिथ - are not harmed. अक्तून-रात्रीः, शिक्वसः-शक्ताः सर्वमपि कर्तुम् धूतयः कम्पकाः - सा०भ्रु० दुर्गाणि-शत्रुनगराणि । शत्रु नगरों को ।

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषो नश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ 5 ॥

अन्वय - (मरुतः वः) एतान यामे ततान तद्वीर्यं महित्वं दीर्घं (ततान) अगृभीतशोचिषः गिरिं न्ययातन यत् अनश्वदां ।

अनुवाद - हे मरुतों ! जिस प्रकार सूर्य अपना प्रकाश योजन फैलाते हैं अथवा देवों के घोड़े गमनकाल में दूर दूर तक जाते हैं उसी प्रकार स्तोता तुम्हारे बल एवं महत्व को दूर तक प्रसिद्ध बनाते हैं । हे अगृहीत तेजस्वी मरुतों ! तुमने उस पर्वत को तोड़ा था जिसमें पणियों ने चुराए हुए घोड़े छिपाये थे ।

अनश्वदां - व्यापकोदकादातारं पणिभिरपहृतानामश्वानामप्रदातारं वा, गिरिं मेघं
पर्वतं वा न्ययातन-निहतवन्त. स्थ - सा0मु0 ।

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ 6 ॥

अन्वय - वेधसः शर्धः अभ्राजि यत् अर्णसम् वृक्षम् मोषथ कंपनेव मरुतो व. शर्धः अभ्राजि ।
अध स्म नः सजोषसः सुगं चक्षुरिव ।यूयं व. अरमतिम् यन्तमनु नेषथ ।

अनुवाद - वर्षा करने वाले एवं वृक्षों के समान बादलों को कंपित करने वाले मरुतों ।
तुम्हारी शक्ति सुशोभित हो रही है । हे परस्पर प्रीतिसम्पन्न मरुतों।
जिस प्रकार आँखे मार्ग प्रदर्शन करती हैं उसी प्रकार तुम हमें सरल मार्ग से रमणीय धन
के समीप पहुँचाओ ।

सुगं चक्षुरिव - सुगमनं मार्गम् चक्षुरिव-तहाथा मार्गप्रदर्शनेन नायकं भवति तद्वत् । सा0मु0.
अरमतिम् यन्तमनु - आरमणं धनादिकं प्रति गच्छन्तम् - सा0मु0 ।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ 7 ॥

अन्वय - मरुतः यं ऋषिं राजानं वा सुषूदथ सः न जीयते न हन्यते न स्रेधतिन व्यथते न
रिष्यति । अस्य रायः न उपदस्यन्ति नोतयः ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम जिस ऋषि या राजा को यज्ञ कर्म में लगाते हो वह दूसरों
द्वारा न हारता है और न मारा जाता है । वह न क्षीण होता है न
कष्ट पाता है और न उसे कोई कष्ट पहुंचा सकता है । उसका धन एवं रक्षा साधन
भी कभी समाप्त नहीं होते ।

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो र्यमणो न मरुत: कवन्धिन: ।

पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरज्व्युन्दन्ति पृथिवीमध्वो अन्धसा ॥ 8 ॥

अन्वय - नियुतवन्त: ग्रामजित: नर: अर्यमणो न मरुत: कवान्धन: यत् इनास: उत्सं

पिन्वन्ति अस्वरन अन्धसा पृथिवीं मध्व. व्युन्दन्ति ।

अनुवाद - नियुत नाम वाले घोड़ों के स्वामी, संयुक्त पदार्थों को पृथक् करने वाले तथा

नेता, सूर्य के समान तेजस्वी मरुद्गण जल से युक्त होते हैं । जब वे ईश्वर शक्तिशाली बनकर कुएं, तालाब पृथ्वी पर निचले स्थानों को मधुर जल से भर देते हैं ।

नियुतवन्त. - नियुत्संज्ञकैरश्वैस्तद्वन्तो मरुत: - सा0मु0 ।

ग्रामजित: - सा0-संघात्मकस्य पदार्थस्य विश्लेषयितार: । विल्सन - over comers

of multitudesमैक्स ग्रिफिथ - over comming troops.

व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्व: - मधुरस्योदकस्य, पृथिवीं व्युन्दन्तीति - सा0मु0विल्सन -

moisten the earth with sweet(watery)sustenance.

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भय: प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भय: ।

प्रवत्वती: पथ्या अन्तरिक्ष्या: प्रवत्वन्त: पर्वता जीरदानव: ॥ 9 ॥

अन्वय - इयं पृथिवी मरुद्भय: प्रवत्वती भवति द्यौ: प्रयद्भय: प्रवत्वती अन्तरिक्ष्या:

पथ्या: प्रवत्वती: पर्वता: प्रवत्वन्त: जीरदानव: । क्षिप्रदाना मरुद्भय: ।
(प्रवत्वतो:)।

अनुवाद - यह विस्तृत पृथ्वी मरुतों के लिए है । विस्तृत द्युलोक भी गतिशील मरुतों

के लिए है । आकाश का मार्ग मरुतों के चलने के लिए विस्तृत है एवं बादल मरुतों के लिए शीघ्र वर्षा करते हैं ।

मरुद्भय: प्रवत्वती - मरुतामर्थाय प्रवन्त: प्रकर्षवन्तो विस्तीर्णा: प्रदेशा यस्यां सा प्रव-

त्वती - सा0मु0विल्सन - The wide-extended earth is

for the Maruts.

जीरदानव. - क्षिप्रदाना: मरुद्भय: - सा0भु0 पर्वता: अद्रयो मेघा वा । विल्सन -
for them the expanding clouds quickly bestow their gifts.

यन्मरुत: सभरस: स्वर्णर: सूर्य उदिति मदथा दिवो नर: ।
न वो श्वा: श्रथयन्ताह सिस्रत: सद्यो अस्याध्वन:पारमश्नुथ ॥ 10 ॥

अन्वय - सभरस: स्वर्णर: मरुत: [त्वम्] दिवो नर: [त्वम्] सूर्ये उदिते मदथ । [त्वम्]
वो श्वा: सिस्रत न अह श्रथयन्त [च] सद्य: अस्याध्वन: पारमश्नुथ ।

अनुवाद - हे समान शक्ति वाले एवं सबके नेता मरुतों । तुम स्वर्ग के नेता हो । तुम
सूर्य निकलने पर सोमपान करके प्रसन्न होते हो । तुम घोड़े चलाने में शिथि-
लता नहीं करते एवं तुम देवयजन मार्ग को करते हो । या तीनों लोकों के मार्ग को
पार करते हो ।

वो श्वा: सिस्रत: न श्रथयन्ताह - त्वदीया अश्वा न शिथिला भवन्ति । विल्सन -
- then your rapid steeds know no relaxation.

अंसेषु व: ऋष्टय: पत्सु खादयो वक्ष:सु रुक्मा मरुतो रथे शुभ: ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो: शिप्रा: शीर्षसु वितता हिरण्ययी ॥ 11 ॥

अन्वय - मरुत: व: अंसेषु, पत्सु खादय:, वक्ष:सु रुक्मा: रथे शुभ: [व:] गभस्त्यो:
विद्युतो शीर्षसु वितता: हिरण्ययी: शिप्रा: [अस्ति] ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारे कंधों पर आयुध, पैरों में कटक, सीने पर हार एवं रथों
पर दीप्ति विराजमान हैं । तुम्हारे हाथों में अग्नि के समान चमकने वाली
बिजली तथा शीशो पर विस्तृत सुनहरी पगड़ी है । ~~अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्तयो~~

अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्तयो: - अग्निभ्राजस: अग्निदीप्ता: विद्युतो गभस्तयो हस्त-
योर्भासन्त इत्यर्थ: - सा0भु0

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत् स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ ।2 ॥

अन्वय - अर्य मरुतः वः अगृभीतशोचिषम् तं नाकम् रुशत् पिप्पलं वि धूनुथ । यत् वृजना समच्यन्त अतित्विषन्तः, ऋतायव. ।तत्। घोषं विततं स्वरन्ति ।

अनुवाद - हे गतिशील मरुतों । तुम असुरो द्वारा अपहृत न होने वाले तेज से युक्त प्रसिद्ध स्वर्ग एवं उज्ज्वल जलसमूह को भलीभाँति से चचल बनाओ । जब तुम हमारे द्वारा दिया हुआ हव्य पाकर शक्तिशाली बनते हो, अतिशय दीप्ति धारण करते हो एवं जल बरसाना चाहते हो, तब भयानक रूप से विस्तृत गरजना करते हो ।

ऋतायवः - उदकमिच्छन्तो यूयम् । यद्वा । उत्तरार्ध ऋत्विग्यजमानपरतया व्याख्येय । यत् यदा ऋतायवः यज्ञकामा यजमानादयो यदा समच्यन्त संगताः वृजना बलान्यतित्विषन्तः च स्वरन्ति घोषं स्तोत्र विवत तदानीं पिप्पलं वि धूनुथेति संबन्धः ।

अगृभीतशोचिषम् - असुरैरनपहृततेजस्कं तं ।

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वत. ।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ ।3 ॥

अन्वय - विचेतसः मरुतः । रथ्यः ।वयम्। युष्मादत्तस्य वयस्वतः रायः स्याम । यः न युच्छति । यथा दिवः तिष्यः । मरुतः न. सहस्रिणम् रारन्त ।

अनुवाद - हे विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न मरुतों । रथ के स्वामी हम लोग तुम्हारे द्वारा अन्नयुक्त धन प्राप्त करें । वह तुम्हारा दिया धन कभी समाप्त नहीं होता। जैसे आकाश से सूर्य कभी लुप्त नहीं होता । हे मरुतों । हमें असीमित धनयुक्त बनाकर सुखी करो ।

यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ ।4 ॥

अन्वय - मरुत: । यूय स्पार्हवीर रयिं धत्थ । यूयं सामविप्र ऋषिमवथ । यूयम् अर्व-
न्तम् भरताय ॥धत्थ॥, राजानं वाजम् धत्थ श्रुष्टिमन्तं ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम अभिलषित पुत्र पौत्रादि सहित धन हमें दो एवं सोमपान को
प्रेरणा देने वाले ऋषि की रक्षा करो । तुम देवयज्ञ करने वाले राजा श्यावा-
श्व को सपत्ति दो एवं सुखी बनाओ ।

स्पार्हवीरं धत्थ - स्पृहणीयैर्वीरै: पुत्रभत्यादिभिरमेतं दत्थ - सा0मु0 ।

सामविप्रं - साम्नां विविधं प्रेरयितार यद्वा सामसहिता विप्रा यस्य तादृशम् - सा0मु0 ।

यद् वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमा: ॥ 15 ॥

अन्वय - सद्य: ऊतय: व: तत् द्रविणं यामि । येन स्वर्ण नॄन् अभि ततनाम । मरुत. मे
इदम् वच: सुसुष्ठु । यस्य तरसा शतं हिमा: तरेम ।

अनुवाद - हे शीघ्र रक्षा करने वाले मरुतों ! हम तुमसे धन की याचना करते हैं । जिस
धन से हम सूर्य किरणों के समान अपने परिवार का विस्तार कर सकें। हे
मरुतों ! तुम इस स्तुति को पसंद करो । जिन स्तोत्र वचनों की शक्ति से ॥हम॥ सौ
हेमन्तों को पार कर सकें ।

नॄन् - अस्मत्पुत्रभृत्यादीन् - सा0मु0

यस्य तरसा शतं हिमा. तरेम - स्तोत्रवचस: बलेन शतसंख्याकान् हेमन्तान् शतसंवत्सरं जीवे-
मेत्यर्थ: - सा0मु0 ।

5.55

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद् वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।

ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 1 ॥

अन्वय = प्रयज्यवो भ्राजदृष्टयः रुक्मवक्षसः मरुतः बृहत् वयः दधिरे । सुयमेभिः आशुभिः अश्वैः ईयन्ते शुभं यातां रथाः अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - अतियजनीय, प्रकाशित आयुधों वाले एवं वक्षःस्थल पर सुवर्ण हार धारण करने वाले मरुद्गण अधिक अन्न धारण करते हैं । वे सरलता से वश में होने योग्य एवं तीव्रगति वाले अश्वों द्वारा वहन किये जाते हैं । मरुतों के रथ जल के पीछे चलते हैं ।

प्रयज्यवो - भ्राजदृष्टयः । सा०भा० - प्रकर्षेण यष्टारः । मैक्स० - The chasing; ग्रासमन - With OHG. Jagon (Venari); लेन० - to try to injure; ग्रि० - power, hold high.

रुक्मवक्षसः दधिरे - धारयन्ति - सा०भा० ; adorned with gold ; ग्रि० (on their breast) adorned with gold - पि०, have gained with gleaming spears the golden breasted; - मैक्स० ।

ईयन्ते - प्राप्यन्ते - सा०भा० ; have gained - मैक्स०; to be controlled - ग्रिफिथ, विल्सन ।

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।

उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 2 ॥

अन्वय - तविषीं यथा विद स्वयं दधिध्वे, महान्तः उर्विया विराजथ । उत ओजसा अन्तरिक्षं वि ममिरे, याता रथा शुभं अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे ज्ञान की सामर्थ्य असीमित है । तुम स्वयं हो शक्ति धारण करते हो । हे महान् मरुतों ! तुम विस्तृत रूप से सुशोभित बनो (होओ) एवं अपनी कांति से आकाश को भर दो । मरुतों के रथ जल के पीछे चलते हैं ।

दधिध्वे - सा०भु०, धारयध्वे कुरुध्व इत्यर्थः । मैक्स० - have (yourself) ; ग्रि० - have gained ; वि० - have gained.

अन्तरिक्षं ममिरे - सा०भु० - व्याप्नुथ । मैक्स० - have even measured the sky; ग्रि० - have even measured out the sky; वि० - have even measured the sky.

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिता श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।

विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 3 ॥

अन्वय - साकं जाताः (मरुतः) साकं उक्षिताः सुभ्वः, श्रिये चित् प्रतरं आववृधुः, नरः विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः । यातां रथाः शुभं अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - एक साथ उत्पन्न होने वाले महान मरुत् एक साथ हो बढ़ें । वे शोभा पाने के लिए अतिशय प्रबुद्ध हुए । वे नेतृत्व के लिए प्रबुद्ध हुए । पानी की ओर चलने वाले मरुतों के रथ सबसे पीछे रहते हैं ।

उक्षिताः - √उक्ष् सेचने (भ्वा०) धातोः क्तः प्रत्ययः । उक्षितः महन्नाम निघं० 3.3 सा०भु०, सेक्तारो वर्द्धकाः । मैक्स० - together have further grown ; ग्रि० - together have waxed (great).

श्रिये - 1.85.2 सं०स्त्री० 'ऐश्वर्य के लिए' श्रयते नपाजन इति श्रीः; श्रि क्विप् श्रीः च०ए०व० , मैक्स० - to real beauty; ग्रि० - waxed; waxed great.

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।

उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 4 ॥

अन्वय - मरुत: व: महित्वनं आभूषेण्यं सूर्यस्येव चक्षणं दिदृक्षेण्यं, उतो अस्मान् अमृतत्वे दधातन, याताँ रथा शुभं अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारी महत्ता (स्तुत्य प्रशंसनीय) है तथा रूप सूर्य के समान सुन्दर है । तुम हमें अमर बनाओ । जल की ओर जाने वाले मरुतों का रथ सबसे पीछे चलता है ।

आभूषेण्यम् - सा0भु0 - स्तुत्यम् । आ + भूष् + केन्य । मैक्स0 - to be honoured ; ग्रि0 - to be adored; वि0 - adorable.

चक्षणम् - दिदृक्षेण्यम् - √चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शने पि (अदा0) धातोर्भावे ल्युट् । 'चक्षिङ् ख्याञ्' इति ख्याआदेशे प्राप्ते 'असनयोश्चे' ति प्रतिषेध: । सा0भु0 - रूपमिव (दर्शनीयम्) ।

दिदृक्षेण्यम् - √दृशिर प्रेक्षणे + केन्य । सा0भु0 : रूपमिव दर्शनीयम् । ग्रि0 - worthy

वि0क0 - right to be longed for like the shining ( of the sun ) ; मैक्स0 - वै0वि0 - to be yearned for like the sight ( of the sun ) ; वि0 - sight to be longed for like the shining.

उदीरयथा मरुत: समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिण: ।

न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनव: शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 5 ॥

अन्वय - मरुत: यूयं समुद्रतो उदीरयथ वृष्टिम् वर्षयथ, दस्रा. पुरीषिण: व: धेनव. न उप दस्यन्ति, याताँ रथा शुभं अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - हे जलयुक्त मरुतों ! तुम अन्तरिक्ष से जल को प्रेरित कर के वर्षा करो । हे शत्रुनाशक मरुतों ! तुम्हारे प्रसन्न करने वाले बादल कभी जलरहित नहीं होते । जल की ओर जाने वाले मरुतों का रथ सबसे पीछे चलता है ।

उदीरयथा - उत् +√ईर् गतौ कम्पने च (अदा०) धातोः शतृ । सा०मु०, प्रेरयथ । मै० - raise; क्रि० ईरयथा सकर्मक है । द्रष्टव्य - Gaedicke, Accusativ, p. 54 and compare. Av. IV.27.4 apah samudrad divam ud vahanti; Grifith uplift; raise-Wil.

पुरीषिणः - सा०मु० - पृणतेः पुरीषमितेर्वा पुरीषयुक्तम् । मैक्स० - Yeo men. ग्रि० - (ye) wonder-workers; वि० - wonder, workers.

दस्रा - √दसु उपक्षये (दिवा०) धातोः स्फायितंचि० उ० 2.13 सूत्रेण रक् प्रत्ययः । दस्रौ दर्शनीयौ निघं० 6.26; सा०मु० - दर्शनीयाः शत्रूणामुपक्षपयितारो वा । मैक्स० - destroyers; ग्रि० : ruinous; वि० - ruinous; लेनमैन - destroyers.

यदश्वान् धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुतः यत यूयं धूर्षु पृषतीः अश्वान् अयुग्ध्वं; हिरण्ययान् उत्कान् प्रति अमुग्ध्वं विश्वा इत् स्पृधः व्यस्यथ । याता रथा शुभं अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! जब तुम रथों के अग्रभाग में चितकबरी घोड़ियों को जोड़ते हो, तब स्वर्णनिर्मित कवचों को उतार देते हो । (तुम) (सभी) संग्रामों में विजय प्राप्त करते हो । जल को ओर जाने वाले मरुतों का रथ सबसे पीछे चलता है ।

पृषतीरयुग्ध्वं - पृषतीं गौर्धेनुर्दक्षिणा, आ हि वैश्वदेवा मै० 2.3.2; वैश्वदेवा हि पृषता काठ 12.2; सा०मु० - पृषत्यो मरुतामित्युक्तत्वात् पृषद्वर्णा वडवा. । सारंगी वात्राश्वशब्द वाच्या योजितवन्तः स्थ । मैक्स० - the deer as horses. have joined ; ग्रि० - have yoked (your) spotted deer. वि० - have joined (your)spotted deer.

स्पृधः - व्यस्यथ । सा०भु० - सर्वाण्यपि संग्रामान् । मैक्स० वैo टि० - scatter; ग्रि० - disperse (all enemies)abroad; वि० - disperse.

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।

उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 7 ॥

अन्वय - मरुतः न नद्यः पर्वताः न वरन्त, वः यत्र अचिध्वं तत् गच्छथेदु, उत द्यावा-पृथिवी परियाथन, यातां रथा शुभं अनु अवृत्सत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! नदियाँ तथा पर्वत तुम्हें रोकने में समर्थ नहीं है । तुम जहाँ जाना चाहते हो, वहाँ अवश्य पहुँच जाते हो । वर्षा करने के लिए तुम धरती एवम् आकाश में फैल जाते हो । जल की ओर जाने वाले मरुतों का रथ सबसे पीछे चलता है ।

वरन्त - न √वृञ्वरणे । वारयन्ति नि० 10.29; सा०भु० - न वारयन्तु ; not (rivers)have kept ग्रि० - nor (the rivers) keep (you) back ; वि० - not (rivers) have kept.

अचिध्वम् - सा०भु० - जानीथ संकल्पयथ । मैक्स० - (where ever you) see. ग्रि० - (you) have resolved; वि० - (where ever you)see.

यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।

विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 8 ॥

अन्वय - वासकाः मरुतः यत् पूर्व्यं यत् यच्च नूतनं, यत् उद्यते (वासकाः) यच्च शस्यते तस्य विश्वस्य नवेदसः भवथ ।

अनुवाद - हे निवासस्थान प्रदाता मरुतों ! प्राचीन काल में जो यज्ञ किए गये अथवा जो वर्तमान काल में किए जा रहे हैं, जो कुछ प्रार्थना या स्तुति की जाती

है, तुम उन सबको भली-भाँति जानो । जल की ओर जाने वाले मरुतों का रथ सबसे पीछे चलता है ।

शस्यते - शंसु स्तुतौ (भ्वा०) धातोः कर्मणि लट् । सा०मु० - शंसनं क्रियते । ग्रि० is spoken ; मैक्स० - be it spoken; वि० - is spoken.

नवेदसः - न + वेदसपदयोः समासे कृते 'नभ्राणनपात्०' अ० 6.3.75 सूत्रेण न + प्रकृति-भाव. । वेदस् - √विद् ज्ञाने (अदा०) √विद् सत्तायाम् (दिवा०) √विद् लाभे (तुदा०) धातोर्वाअसुन् प्रत्ययः । नवेदा मेधाविनाम् निघं० 3.15, सा०मु०-जानन्त. ग्रि० - take cogizance ; वि० - cogizance ; मैक्स०- cogizance.

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टना स्मभ्यं शर्म बहुलं वियन्तन ।

अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ 9 ॥

अन्वय - मरुतः नः मृळत, मा वधिष्टन, अस्मभ्यं शर्म बहुलम् वि यन्तन, (नः) स्तोत्रस्य सख्यस्य अधिगातन, याता रथा शुभमनु अवृत्सत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हमें सुखी बनाओ । हमें कोप से नष्ट मत करो, अपितु हमारे सुख का विस्तार करो । हमारी स्तुति सुनकर तुम हमारे प्रति मित्रता का भाव बनाओ । जल की ओर चलने वाले मरुतों का रथ सबसे पीछे रहता है ।

वियन्तन - सा०मु० - कुरुत । करो, फैलाओ, विस्तृत करो । मैक्स० - extend (to us); वि० - extend (to us);ग्रि० द हि०अ० extend (ye unto us).

अवृत्सत - √वृतु वर्तने (भ्वा०) धातोर्लुङ् । सा०मु० - अनुवर्तन्ते । मैक्स० - went in triumph (the chariots)followed;ग्रि० - moved onwards; वि० - moved on wards.

यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ 10 ॥

अन्वय - मरुतः यूयमस्मान् वस्यः अच्छ नयत, गृणानाः अंहतिभ्यः निनयत । यजत्राः जुषध्वं न हव्यदातिं, वयं रयीणां पतयः स्याम ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम हमें ऐश्वर्य के समीप ले आओ एवं हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें पाप से दूर करो । हे यजनीय (मरुतों) ! (तुम) हमारा दिया हुआ हविष्यान्न स्वीकार करो । हम लोग विविध संपत्तियों के स्वामी बनें ।

जुषध्वं - √जुषी प्रीतिसेवनयोः (तुदा०) धातोर्लोट् व्यत्ययेन परस्मैपदम् । जुषतिः कान्ति कर्मा नि० 2.6; सा०भा० - सेवध्वं । मैक्स० - accept our offering; वि०ग्रि०; accept (ye).

रयीणाम् - धन को । रयि शब्दात् आत्मान इच्छायामर्थे क्यजन्ताच्छतृ । सा०भा०- श्र०सं० - बहुविधानां धनानाम् । मै० greater wealth; ग्रि० द हि० श्र० - to higher fortune.

5.56

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चित रोचनादधि ॥ 1 ॥

अन्वय - अग्ने शर्धन्तं रुक्मेभिः अञ्जिभिः पिष्टम् गणम् आ । अद्य रोचनात् दिवः अधि चित् अव ह्वये ।

अनुवाद - हे अग्नि । चमकते हुए आभरणों से युक्त एवं शत्रुओं को डराने में कुशल
मरुद्गण को आज बुलाओ । हम आज दीप्तिशाली स्वर्ग से अपने सामने उपस्थित होने के लिए मरुतों को बुलाते हैं ।

रुक्मेभि: - अञ्जिभि. - सर्वधातुभ्य इन् उ0 4.123 इति कर्तरीन् प्रत्यय: । तृ0ब0
व0 । सा0भा0 - आभरणैश्च । मैक्स0 - with golden chains and ornaments ; ग्रि0 - adorned with ornaments of gold ;
वि0 - with golden ornaments.

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशस: ।

ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन तान् वर्ध भीमसंदृश: ॥ 2 ॥

अन्वय - [अग्ने] यथा हृदा चिन्मन्यसे तदित् मे आशस: जग्मु: । ये नेदिष्ठम् ते
हवनानि आगमन् तान् भीमसंदृश: वर्ध ।

अनुवाद - हे अग्नि । जिस प्रकार तुम हृदय में मरुतों के प्रति पूजा का भाव रखते हो,
उसी प्रकार वे हमारे समीप शुभकामनायें लेकर आयें । जो केवल पुकार सुनकर तुम्हारे समीप आ जाते हैं, ऐसे भयानक दिखने वाले मरुतों को हव्य देकर बढ़ाओ ।

जग्मुराशस: - जग्मु: = गम्लृ गतौ + लिटि । प्र0ब0व0 । सा0भा0 - आशंसितार-
इच्छन्त: शत्रून् हिंसतो वा गच्छन्तु । मैक्स0- wishes have gone.
ग्रि0 - wishes also tend.

भीमसंदृश: - सा0भा0 - कालबिलम्बासहनेनभयङ्कर दर्शनान् । मैक्स0 - terrible
to behold ; ग्रि0 - fearful to behold; वि0 - dreadful to behold ; लेनमैन - Panicky to behold. अतएव डरावना, भयानक अर्थ उचित है ।

मीलहुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।

अक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ 3 ॥

अन्वय – मीलहुष्मती पराहता पृथिवी इव मदन्ती अस्मत् आ एति, इतियैवः मरुतः अमः वः, ॥मरुतः॥ अक्षो न शिमीवान् गौरिव भीमयुः दुधंः ।

अनुवाद – धरती पर रहने वाली एवं प्रबल राजा वाली प्रजा जिस प्रकार दूसरे से पीड़ित होकर अपने स्वामी के समीप जाता है, उसी प्रकार मरुतों का बलवान समूह हमारे ॥पास आता है॥ । हे मरुतों ! तुम्हारा समूह अग्नि के समान कुशल एवं भीषण वृषभ के समान दुर्धर्ष हो ।

मीलुहुष्मतीव – मीलष्मती इव पदयो समासः । मीढुष्मती √मिह् सेचने ॥भ्वा0॥ + लिट्, क्वसुः + मतुप् + स्त्रियां ङीप् । सा0भु0 – प्रबलस्वामिका । मैक्स0 – like a bountiful lady ; ग्रि0 – lika a bounteous lady ; वि0 – like a bounteous lady.

शिमीवान् – 'छन्दसीरः' इति मतुपो मकारस्य वलम् 'शिमीति कर्मनाम्' निघं0 2. 9, 1.100.13, स्त0भु0 – like a wild bull ; ग्रि0 – as a dreadful bull ; वि0 – like a Panicky bull.

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।

अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ 4 ॥

अन्वय – ये गावो न दुर्धर. ओजसा नि रिणन्ति वृथा । स्वर्यं अश्मानं पर्वतं गिरिं यामभि. प्रच्यावयन्ति ।

अनुवाद – जो दुर्धर्ष वृषभों के समान अपने ही ओज से शत्रुओं का नाश करते हैं । वे गरजने वाले, व्याप्त एवं जलवर्षा द्वारा संसार को प्रसन्न करने वाले मेघों को अपने गमन द्वारा बरसने को विवश करते हैं ।

वृथा - /वृञ् वरणे ॥स्वा0॥ धातोः था प्रत्ययश्छान्दसः । अव्ययमेतत् । सा0मु0 -
अनायासेन स्वसंचारणमार्गेण । मै0म0 - (disperse) wildly ; ग्रि0 -
strength over through ; वि0 - violently; मो0वि0- excitaly.
वृथा का अर्थ Pell - mell, confusedly wislly ;
See Geldner, Ved.Stud. P. 115.

गिरिंच्यावयन्ति - /च्युङ् गतौ ॥भ्वा0॥ धातोर्णिजन्तात् लट् । सा0मु0 - उदक-
निर्गमनार्थम् । मैक्स0 - the rocky mountain (cloud)
to shake ; ग्रि0 - Shake the rocky mountain;
वि0 - shake the rocky mountain.

उत तिष्ठ नूनमेषा स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ 5 ॥

अन्वय - नूनं एषां स्तोमैः उत्तिष्ठ समुक्षितानां पुरुतमं गवां अपूर्व्यम् मरुताम् सर्गमिव
ह्वये ।

अनुवाद - ॥हे मरुतों॥ हम स्तोत्रों द्वारा उन्नति प्राप्त, अतिशय महान् व जलराशि
के समान अपूर्व मरुद्गण के को बुलाते हैं ।

स्तोमैः - स्तोमः स्तवनात् निघं0 7.22; वीर्यं वै स्तोमा. ता0 2.5.4; स्तोमः -
सप्तस्तोमाः ऋ0 9.5.2.8; सा0मु0 - स्तोत्रैः । मैक्स0 - (with my) hymns.
ग्रि0 - with louds; वि0 - with x hymns.

ह्वये - सा0मु0 प्रभूततमम् । पुरुमपदे /तमु कांक्षायाम्' + अप् । मैक्स0 - the manifold
the incomparable ; ग्रि0 - unequalled. (the very numerous
company) ; वि0 - unequalled.

युञ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।

युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ 6 ॥

अन्वय - (मरुतः) वः रथे अरुषी युङ्ग्ध, रथेषु रोहितः युङ्ग्ध्वं, धुरि वोळ्हवे अजिरा हरी, वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम अपने रथों में लाल रंग की घोड़ियों अथवा लाल रंग के घोड़ों को जोड़ो । तुम भार-वहन-समर्थ हरि नामक शाघ्रगामी घोड़ों को बोझा ढोने में लगाओ ।

वोळ्हवे - /वह् प्रापणे (भ्वा०) धातोस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः । सा०भा० - वहनाय । मैक्स० - to drive; ग्रि० - the best at drawing ; वि० - to drive.

अरुषी - अरुषा उषो नाम निघं० 1.8; सा०भा० - आरोचमानाः वडवाः । मैक्स० - the red mares ( to the chariot ) ; ग्रि० - ( the bright red mares ; वि० - the red mares.

उतस्य वाज्यरुषस्तुविष्वणि रिह स्म धायिदर्शतः ।

मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत् प्रतं रथेषु चोदत ॥ 7 ॥

अन्वय - (मरुतः) उत स्यः वाजी अरुषः तुविष्वणि, इह दर्शतः धायि स्म, मरुतः वो यामेषु चिरं मा करत् , तं रथेषु प्रचोदत ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे रथ में जुड़े हुए दीप्तिशाली, जोर से शब्द करने वाले एवं सुन्दर घोड़े तुम्हारे द्वारा इस प्रकार से हाँके जाते हैं कि वे तुम्हारी यात्रा में विलम्ब नहीं करते ।

धायिदर्शता - धायि = √डुधाञ् धारणपोषणयोः [जु0] धातोर्लुङ् । आग्मा छान्दस. ।
दर्शता = पश्यन्ति येन स दर्शत इति विग्रहे √दृशिर् प्रेक्षणे [भ्वा0]
धातोः 'भृमृदृशियजिपर्वि0' उ0 3.110 सूत्रेण अतच् प्रत्यय । दर्शतदर्शनीय नि0 10.2;
सा0भा0 - रथे नियोजितः दर्शनीयः ।

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।

आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ 8 ॥

अन्वय - वयम् मारुतं [तं] श्रवस्युम् रथं अद्य [नु] हुवामहे । यस्मिन् सुरणानि बिभ्रती
रोदसी मरुत्सु सचा आ तस्थौ ।

अनुवाद - हम लोग मरुतों के उस अन्नपूर्ण रथ का आज [नु] आह्वान करते हैं, जिसमें
[रथ में] [रमणीय] मरुतों के साथ जलों को धारण करने वाला रोदसी [रुद्र
की पत्नी मरुतों की माता] बैठती है ।

हुवामहे - √ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च [भ्वा0] धातोर्लट् । छान्दसे सम्प्रसारणे गुणे वादेशे
चाकारस्योकारश्छान्दसः । अथवा √हु दानादानयोः [जु0] धातोर्लोट
छान्दसं रूपम् । हुवे आह्वये नि0 11.31, सा0भा0 - ऋ0सं0 आह्वयाम. ।

रोदसी - द्रष्टव्य 1.167.3

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।

यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥ 9 ॥

अन्वय - वः शर्धं त्वेषं पनस्यु रथेशुभं आ हुवे + यस्मिन् सुजाता सुभगा मीळ्हुषी मरुत्सु
सचा महीयते तं हुवे ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हम तुम्हारे सुशोभित, दीप्त एवम् स्तुतियोग्य उस रथ का
आह्वान करते हैं, जिसमें शोभन उत्पत्ति वाली तथा सौभाग्य वाला मरुत्
माता विराजती हैं ।

आ रुद्रासः इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यति मति स्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥ 1 ॥

अन्वय - इन्द्रवन्तः सजोषसः हिरण्यरथाः रुद्रासः । सुविताय आ गन्तन । इयं अस्मत् मतिः वः प्रति हर्यति । तृष्णजे उदकेच्छवे दिवः उत्सा ।

अनुवाद - हे इन्द्र से युक्त परस्पर प्रीति सम्पन्न सुवर्णरथों पर आसीन रुद्रपुत्र मरुतों । सरल गमन वाले तुम हमारे यज्ञ में आओ । हमारी यह स्तुति तुम्हारी कामना करती है । [जिस प्रकार तुमने] प्यासे एवं जल के इच्छुक [गोतम के पास] स्वर्ग से आकर जल पहुँचाया था उसी प्रकार तुम हमारे समीप आओ ।

गन्तन - √गम्लृ गतौ [भ्वा0] धातोर्लोट् । शपोलुक् । सा0भु0 - अ0सं0 - आगच्छत ।

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ 2 ॥

अन्वय - वाशीमन्तः ऋष्टिमन्तः मनीषिणः सुधन्वान, इषुमन्तः निषङ्गिणः स्वश्वाः [मरुतः] स्थ । पृश्निमातरः स्वायुधाः शुभं याथन ।

अनुवाद - हे तक्षणसाधनवाशी नामक आयुधधारी भालों वाले मनस्वी धनुर्धारी बाणों वाले तूणीर वाले शोभन अश्व एवं रथ वाले मरुतों । तुम लोग शोभन आयुध धारण करो । हे पृश्निपुत्र मरुतों । तुम हमारे कल्याणार्थ आओ ।

धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ 3 ॥

अन्वय - [मरुतः] द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु धूनुथ, वः यामनः भिया वना नि जिहते । उग्राः पृश्निमातरः शुभे पृथिवीं कोपयथ । [वः रथेषु] पृषतीः अयुग्ध्वम् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! जब तुम चितकबरी घोड़ियों को नियोजित करते हो । आकाश बादलों को ‡इधर उधर बिखेरो‡ तथा हवि प्रदान करने वाले यजमान को धन दो । तुम्हारे आने के भय से वन कांपने लगते हैं । हे उग्रपृश्निपुत्र मरुतों ! वर्षा द्वारा पृथ्वी को विचलित करो । अपने रथ में‡ चितकबरी घोड़ियों को जोतते हो ।

वातत्त्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।

पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ 4 ॥

अन्वय - मरुतः वातत्त्विषः वर्षनिर्णिजः यमा इव सुसंदृशः सुपेशसः पिशाङ्गाश्वा, अरुणाश्वाः, अरेपसः प्रत्वक्षसः महिना द्यौरिव उरवः ।

अनुवाद - मरुद्गण सदा दीप्तिसम्पन्न, वर्षाकारक, अश्विनाकुमारों के समान शोभन सादृश्य वाले, शोभनरूप पीले घोड़े वाले, लाल रंग के घोड़ों के स्वामी, पापरहित, शत्रुनाशकर्ता तथा महिमा से अन्तरिक्ष के समान विस्तृत हैं ।

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।

सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥ 5 ॥

अन्वय - पुरुद्रप्सा: अञ्जिमन्तः सुदानवः त्वेषसंदृशः अनवभ्रराधसः सुजातासः जनुषा रुक्मवक्षसः अर्काः दिवः अमृतम् नाम भेजिरे ।

अनुवाद - अधिक जल युक्त, आभरणों से सुशोभित, शोभन दानशील, दीप्त आकृति वाले, क्षयरहित धन के स्वामी, उत्तम जन्म वाले, जन्म से ही वक्षस्थल पर स्वर्णाभूषण धारण करने वाले एवं पूज्य मरुद्गण स्वर्ग से आकर अमृत प्राप्त करते हैं ।

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।

नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ 6 ॥

<u>अन्वय</u> - मरुत: व: अंसयोरधि ऋष्टय: व: बाह्वो सह ओज: बलं हितं शीर्षसु नृम्णा रथेषु आयुधा व: श्री. तनूषु अधि पिपिशे ।

<u>अनुवाद</u> - हे मरुतों ! तुम्हारे कन्धों पर ऋष्टि नामक आयुध, भुजाओं में शत्रुओं को पराजित करने वाला बल, ~~सिरों~~ पर सुनहरी पगड़ियाँ, रथों में भाँति - भाँति के अस्त्र-शस्त्र तथा शरीरों में कान्ति विराजमान है ।

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा न. ।
प्रशस्तिं । कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वो वसो दैव्यस्य ॥ 7 ॥

<u>अन्वय</u> - मरुत: न: गोमत अश्वावत रथवत् सुवीरं चन्द्रवत राध. दद । रुद्रियास. न: प्रशस्तिम् कुरुत, व: अवस. दैव्यस्य भक्षीय ।

<u>अनुवाद</u> - हे मरुतों ! ﴾तुम﴿ हमें गायों, घोड़ों, रथ, उत्तम सन्तान एवं सोने से युक्त अन्न दो । हे रुद्रपुत्र मरुतों ! हमें समृद्ध बनाओ । ﴾हम﴿ तुम्हारी उत्तम रक्षा प्राप्त करें ।

हये नरो मरुतो मृळता न स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञा: ।
सत्यश्रुत: कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाण: ॥ 8 ॥

<u>अन्वय</u> - हये नर: तुवीमघास:, अमृता:, मृळत, ऋतज्ञा: सत्यश्रुत: कवय: युवान: मरुत: बृहद्गिरय: बृहत उक्षमाण: ।

<u>अनुवाद</u> - हे नेता, असीमित धन के स्वामी, अमर, जल बरसाने वाले सत्य के कारण प्रसिद्ध, मेधावी व तरुण मरुतों ! तुम बहुत सी स्तुतियों के विषय एवं अधिक वर्षा करने वाले हो ।

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।

य आश्वश्वा अमवद् वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ 1 ॥

अन्वय - नूनं तमु मारुतं गणं तविषीमन्तं (स्तुषे) ये अश्वाश्वाः अमवत वहन्ते उत ईशिरे अमृतस्य स्वराजः स्तुषे ।

अनुवाद - आज हम इन मरुतों के तेजस्वी, स्तुतियोग्य, अत्यन्त नवीन, शीघ्रगामी अश्वों वाले, शक्ति की अधिकता के कारण सर्वत्र व्याप्त (सब जगह पहुँचने वाले) जल के स्वामी एवं प्रभासम्पन्न समूह की स्तुति करते हैं ।

स्तुषे - ,ष्टुञ् स्तुतौ धातोः क्तः स्त्रियाँ क्तिन् । मैक्स - Praise[1] प्रशंसा या स्तुति करना । वि० - Praise; प्रशंसा या स्तुति करना । ग्रि० - Glorify.

---

On stushe, see M.M.; Selected Essays I.P. 162; Wilhelm, De infinitivi forma et usu, p.10; Barthalomae, in Bezzenberger's Beitrage, XV,p.219; I take stushe as I pers.sing.Aor.Atm.(not,as Avery, of the Present) in manyplaces where it has been taken as an infinite. For instance, II,31.5; VI.49.8;51.3(with voke); 62, 1 (with hune); VIII.5,4; 7,32; 74;1;84.1 (here the second pāda must begin with stushe). It may be an indicative ~~or a subjunctive~~ or a subjunctive. As to stushe, without an accent, its character ~~the character~~ cannot be doubtful; see I.22.8; 159;1; 5.33.6,6.21. 48,14; 8.21.9; 23.2; 23.7 (grive). In 2.20.4, tam 4 stushe indram tam grivishe grinishe is an aorist with vikarana, like Punisha, I praise that Indra, I laud him. In 1.46.1 stushe may be the infinite in 1.122.7; stushe su vam varuna mitra ratih, your gift varuna and mitra, is to be praised. Likewise in 8.4.97 (See Br.S-V- Saman.); 24.1.63.3,

See V.Hymns. P.345.

वहन्त - वह् प्रापणे ॥भ्वा०॥ धातोः शतृ । ब्रह्मचर्यादि तप का आचरण करते हुए

सा०पु० 423,9.83.1; सा०मु० - गच्छन्ति । मैक्स० - (infinite in greatness) praise ; वि० - (greatness is) unbounded. ग्रिफिथ - Venerate thou singer.

त्वेषं गणं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।

मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ 2 ॥

अन्वय - विप्र त्वेषं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारं गणं ॥मारुतं॥ वन्दस्व।
ये मयोभुवः अमिताः महित्वा ॥तान्॥ तुविराधसः नॄन् ॥मरुतः॥॥वन्दस्व॥ ।

अनुवाद - हे होता । तुम दीप्तशाली, शक्तिसम्पन्न, आभूषण शोभित हाथों वाले, सब को कंपित करने वाले, ज्ञानयुक्त एवं धन देने वाले मरुतों की स्तुति करो ।
सुखदेने वाले, असीमित ऐश्वर्यसम्पन्न, अधिक धन वाले एवं नेता मरुतों की वन्दना करो।

वन्दस्व - √वदि अभिवादन स्तुत्योः लोट् । वन्दते । सा०मु० - स्तुतीहीति सम्बन्धः । मैक्स० - (infinite in greatness) praise ;
वि० - (greatness is) unbounded. ग्रिफिथ - Venerate thou singer.

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।

अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्धः एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ 3 ॥

अन्वय - विश्वे वृष्टिं जुनन्ति उदवाहासः ये मरुतः अद्य वः आ यन् ।
युवानः मरुतः यः अयम् अग्निः समिद्धः । एतं जुषध्वं ।

अनुवाद - सर्वत्र व्याप्त वर्षा को प्रेरित करने वाले एवं जल वहन करने वाले मरुत् आज हमारे पास आवें । हे कान्त प्रज्ञ युवक मरुतों । तुम लोग इस समिद्ध अग्नि की सम्यक् सेवा करो ।

जुनन्ति - जुन इत्येके । पृ०पु०ब०व० । सा०मु० - प्रेरयन्ति । मैक्स० - stir up(the rain); वि० - urge (on the rain) ग्रि० - appr oach (us to impel.

जुषध्वम् - 10.15.4 कि० 'सेवने को' √जुष् आ०प० लोट् म०पु०ए०व० तिनि । मैक्स० be pleased; वि० - be pleased. ग्रि० - hath been duly kindled. or (or let it find) favour with (you).

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्रा: ।

युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत् सदश्वो मरुत: सुवीर: ॥ 4 ॥

अन्वय - यजत्रा: मरुत: यूयं जनाय जनयथ युष्मत: एति मुष्टिहा विभ्वतष्टम् [मरुत:] बाहुजूत: युष्मात् सदश्व: सुवीर: ।

अनुवाद - हे यजनीय मरुतों । तुम यजमान को ऐसा पुत्र दो । जो शत्रुओं को पतित करने वाला विभु नामक देवता द्वारा निर्मित हो । हे मरुतों । तुमसे प्राप्त होने वाला पुत्र स्वभुजबल से शत्रुनाशक, शत्रुओं पर हाथ उठाने वाला, अगणित अश्वों का स्वामी एवं शोभन शक्तिवाला हो ।

विभ्वतष्टं - विभ्व = वि + √भू सत्तायाम् + क्विप् [?] सा०मु०, विभ्वा नाम ऋभूणा मध्यम: । मैक्स० - fashioned by Vibhwan ; made by a master or by Vibhwan, one of the Ribhus. See(Bergaigne, II, A10-411) वि० - modelled by ViBhawan. ग्रि० - An active.

यजत्रा - 1.35.3,4, वि०पु० 'पूज्य, पूजनीय, श्रेष्ठ यज् - अत्रन् ; पृ०ए०व० । सा मु० पूजनीय: मैक्स० - worshipful ; पूजनीय, विल्सन - Adorable (to be born to the men)who worship you; ग्रि० - a master's hand hat fashioned.

अराइवेदचरमा अहेव प्र प्र जायन्ते अकवा महोभिः ।

पृश्नेः पुत्रा: उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ 5 ॥

अन्वय - अराइवेत् अचरमाः, अहेव महोभिः प्र प्र जायन्ते अकवाः पृश्नेः उपमासः, रभिष्ठाः मरुतः स्वया मत्या संमिमिक्षुः ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम रथ-चक्र के अरों के समान एक साथ ही उत्पन्न हुए हो एवं दिनों के समान एक बराबर हो । पृश्नि के पुत्र उत्कृष्ट हैं एवं तेज से उत्पन्न हुए हैं । तीव्रगति वाले मरुद्गण अपनी ही प्रेरणा से भली प्रकार जल बरसाते हैं ।

मिमिक्षुः - सा०मु० - सिंचन्ति । मैक्स० cling firmly to their own will. वि० - of their own free fravour send down (the rains): ग्रि० - fir to their own intention cling. or spring forth.

प्र जायन्ते - √जनी प्रादुर्भावे । लट् प्र०पु०ब०व० । मैक्स० - are born an ; वि० - are born ; वि० - are born ; ग्रिफिथ - spring forth more and more.

यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।

क्षोदन्त आपो रिणते वना ऽवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुतः यत् पृषतीभिः अश्वैः (प्रायासिष्ट) वीळुपविभिः रथेभिः प्रायासिष्ट आपः क्षोदन्ते, वनानि रिणते, उस्रियः वृषभः द्यौः अव क्रन्दतु ।

अनुवाद - हे मरुतों । जब तुम चितकबरी घोड़ियों द्वारा खींचे जाने वाले एवम् सुदृढ़ पहियों वाले रथ पर बैठकर आते हो, तब जल बरसता है । वनों के वृक्ष टूट जाते हैं । सूर्य किरणों द्वारा निर्मित एवं बरसने वाला बादल नीचे की ओर मुंह करके गरजता है ।

पृषती भिरश्वैः - सा0मु0 पृषत्तङ्कैः वाहनसाधनैरश्वैः । अश्वशब्दोऽत्रवाहनसामान्य वचनः । अतः पुल्लिंगता । मैक्स0 - (with your) speck deer as horses ; वि0 - (drawn) by spatted steeds; ग्रि0 - on with spotted coursers.

क्षोदन्ते - सा0मु0 - क्षरन्ति । मैक्स0 - (the forests go) as under; वि0 - (the forests) are damaged; ग्रि0 - are shattered.

पृथिष्ट यामन् पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।

वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ 7 ॥

अन्वय - एषां यामन पृथिवी चित् पृथिष्ट, (यथा) भर्ता गर्भम् इव स्वमित् शवः धुः हि रुद्रियासः वातान् अश्वान् धुरि आयुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे ।

अनुवाद - इन (मरुतों) के आने से धरती उपजाऊ बनती है, जिस प्रकार पति पत्नी में गर्भ धारण करता है उसी प्रकार मरुद्गण धरती में अपने गर्भ का आधान करते हैं । जब रुद्रपुत्र मरुत् तेज चलने वाले घोड़ों को अपने रथ के जुए में जोतते हैं (तब) वर्षारूपी पसीना उत्पन्न करते हैं ।

चक्रिरे - √डुकुञ् करणे (तना0) धातोसामान्ये लिट् । सा0मु0 कुर्वन्ति - वि0 - have harnessed; मैक्स0 - have harnessed ; वि0 - have harnessed or have immitted ग्रि0 - have made (rain).

ह्ये नरो मरुतो मृळता न स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणा ॥ 8 ॥

अन्वय - हये नरो अधासो अमृतो बृहदुक्षमाणाः सत्यश्रुतः कवयो युवानो मरुतो न स्तुवीम अतघ्राः वृहद्गिरः ।

अनुवाद - हे नेता, प्रशंसित धन के स्वामी, मरणरहित, जल बरसाने वाले, सत्य के कारण प्रसिद्ध, मेधावी एवं तरुण मरुतों । तुम बहुत सी स्तुतियों के विषय एवं अधिक वर्षा करने वाले हो ।

5.59

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दानवे यर्च दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।

उक्षन्ते अश्वान् तरुषन्त आ रजो नु स्व भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥ । ॥

अन्वय - मरुतः वः सुविताय दावने स्पट् प्र प्रकर्षेण अक्रन् । हे होता दिवे प्र अर्च, पृथिव्यै ऋतं भरे । अश्वान् उक्षन्ते । रजः आ तरुषन्ते, अर्णवैः सह स्वं भानुं अनु श्रथयन्ते ।

अनुवाद - हे मरुतों । अच्छी प्रकार से प्राप्त तुम्हें हव्य प्रदान करने के लिए होता भली-भाँति स्तुति करते हैं । हे होता । तुम स्वर्ग का पूजा करो एवं धरती की स्तुतियाँ बोलो या संपादित करो । मरुद्गण दूर-दूर तक पानी बरसाते हैं । आकाश में सर्वत्र भ्रमण करते हैं एवं बादल-मेघों के साथ अपना तेज विस्तृत करते हैं ।

अश्वान् उक्षन्ते - सा०भु० - सिंचन्ति । मैक्स० -(the maruts)wash their horses. ग्रि० - bathe their steeds. वि० - to cleans with water their horses.

श्रथयन्ते - सा०भु० - श्लेषयन्ति, अनुकूलं प्रापयन्तीत्यर्थः । मैक्स० - soften their splendour ; ग्रि० -spread abroad their radiance ; वि० - spread abroad their radiance.

अमा देषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।

दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिः स्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ 2 ॥

अन्वय - एषाम् भियसा भूमिः एजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिः यती । दूरेदृशः ये एमभिः चितयन्ते । नरः (मरुतः) अन्तः विदथे महे येतिरे ।

अनुवाद - मरुतों के भय से धरती (इस तरह) काँपती है (जिस प्रकार) सवारियों से भरी हुई नाव हिलती हुई चलती है । दूर दिखाई देने पर भी गति के कारण मरुद्गण का अस्तित्व प्रतीत हो जाता है । नेता (मरुद्गण) धरती एवम् आकाश के मध्य में रहकर यज्ञ में हव्य पाने का यत्न करते हैं ।

व्यथिरयती[1] - सा०भा० - व्यथाः गच्छन्ती । मैक्स० - trembles with fear; ग्रि० - shakes and reels in terror वि० - trembles with fear.

महे विदथे - महे = √मह् पूजायाम् (भ्वा०) धातोः क्विप् महे महते नि० 9.27; सा०भा० - महते हविषे हविर्भक्षणाय यज्ञे । मैक्स० - strive together with in great(sacrificial)assembly ग्रि० - Press between in mighty ornament ; वि० - with in great (sacrifical) ornament ; ग्रासमन - reunion,rencontre combat ; गेल्डनर - from Vid.( in the sense of art, science ; लुडविग - Bekanntschaft, then Gesellschaft.

---

1. with regard vyathiv yati cf. 5.117.15, samadram avyathir gaganvan and 8.45.19. vyathir gaganvamsah; Bergaigne., Journ. As. 1884; P.490.

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।

अत्या इव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥ 3 ॥

अन्वय - (मरुतः) गवाम् उत्तमं शृंगम् इव श्रियसे सूर्यो न रजसः विसर्जने चक्षुः । नरः अत्याइव सुभ्वः चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथ ।

अनुवाद - हे मरुतों जिस प्रकार गाय के सिर पर उत्तम सींग होते हैं (उसी प्रकार) सूर्य की भाँति तुम शोभा के लिए सिर पर कांतियुक्त तेज (पगड़ी) धारण कराते हो । (हे नेता मरुतों ! (तुम) अश्वों के समान तेज चलने वाले एवं सुन्दर तथा यजमानों के समान यज्ञकार्य को जानने वाले हो ।

श्रियसे - √श्रिञ् सेवायाम् तुमर्थे क्सेन् । श्रयितुमाश्रयितुं सेवितुं वा । सा॰भा॰ - जानन्ति यज्ञादिकं तद्विचिछ्ये । मैक्स॰ - for glory; ग्रि॰ - for splendid might ; वि॰ - for glory.

सूर्यो - मैक्स॰ - like the sun. ग्रि॰ - as the sun's.

I see no necessity for changing Suryah into Suryh, see. Bergaine, Melanges Renier, P. 94. He would translate, they are like the eye of the sun. See-Vedic. Hymns, P. 350, by MaxMuller.

को वो महान्ति महतामुदश्नवत् कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।

यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद् भरध्वे सुविताय दावने ॥ 4 ॥

अन्वय - महतां मरुतः ! वः श्रेवांसि कः उदश्नवत् ? वः काव्या (उत अश्नवत्) , को ह पौंस्या, यत् यूयं सुविताय दावने प्र भरध्वे ह भूमिं किरणं न रेजथ ।

अनुवाद - हे पूजनीय मरुतों ! तुम्हारी पूजा कौन कर सकता है ? तुम सब की स्तुतियाँ कौन पढ़ सकता है ? तुम्हारे पौरुष का वर्णन कौन कर सकता

है । जब तुम उत्तम जल का दान करने के लिए वृष्टि करते हो तब पृथ्वी को किरण के समान कम्पमान बना देते हो ।

अश्वा इवेदरुषास: सबन्धव: शूरा इव प्रयुध: प्रोत युयुधु: ।

मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नर: सूर्यस्य चक्षु: प्र मिनन्ति वृष्टिभि: ॥ 5 ॥

अन्वय - अश्वा इव अरुषास: सबन्धव: शूरा इव प्रयुध: उत् प्र युयुधु: । नर: [मरुत.] सुवृध: मर्या इव वावृधु:, वृष्टिभि: सूर्यस्य चक्षु: प्र मिनन्ति ।

अनुवाद - घोड़ों के समान तेज चलने वाले तेजस्वी व समान बन्धुता वाले मरुद्गण परस्पर प्रेम करने वाले शूरों के समान युद्ध करते हैं । नेता [मरुद्गण] वृद्धि शाली मानवों के समान बढ़ते हैं एवम् वर्षा के द्वारा सूर्य के तेज को ढक लेते हैं ।

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो मध्यमासो महसा वि वावृधु: ।

सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ 6 ॥

अन्वय - उद्भिद: ते [मरुत:] अकनिष्ठास: अज्येष्ठा: अमध्यमास:, महसा वि ववृधु: । सुजातास: जनुषा पृश्निमातर: मर्या: दिव: न: अच्छ आ जिगातन ।

अनुवाद - शत्रुओं का नाश करने वाले मरुतों में न कोई छोटा है, न बड़ा है और न मध्यम है । [वे सभी] तेज से बड़े हैं । हे शोभन जन्म वाले पृश्निपुत्र एवम् मानव हितकारी मरुतों ! तुम अपने जन्मस्थान आकाश से हमारे सामने भली प्रकार आओ ।

वयो न ये श्रेणी: पप्तुरोजसान्तान् दिवो बृहत: सानुनस्परि ।

अश्वास एषामुभये यथा विदु: प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवु. ॥ 7 ॥

अन्वय - ये श्रेणी वयो न ओजसा दिवः अन्तान् बृहतः सानुनः परि पप्तुः, एषाम् अश्वासः पर्वतस्य नभनून प्र अचुच्यवुः उभये यथा विदुः ।

अनुवाद - हे मरुतों । जिस तरह पंक्ति बनाकर उड़ने वाले पक्षी ऊँचे और विशाल पर्वत के ऊपर बलपूर्वक उड़ते हुए समस्त आकाश में उड़ते हैं, उसी प्रकार तुम भी उड़ते हो । तुम्हारे घोड़े बादलों से पानी गिराते हैं, यह तथ्य देवता और मनुष्य दोनों को ज्ञात है ।

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।

आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेते ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ 8 ॥

अन्वय - द्यौ नः वीतये अदितिः मिमातु । दानुचित्राः उषसः सं यतन्ताम् । रुद्रस्य मरुतः गृणानाः ऋषे एते दिव्यं कोशम् आचुच्यवुः ।

अनुवाद - धरती और आकाश हमारी संख्या की वृद्धि के लिए वर्षा करें । विचित्र दान करने वाली उषा हमारी भलाई के लिए यत्न करे । हे ऋषि । ये रुद्र पुत्र मरुद्गण तुम्हारी स्तुतियाँ स्वीकार करके आकाश से वर्षा नीचे गिरावें ।

को ष्ठा नर: श्रेष्ठतमा य एक एक आयय ।

परमस्या: परावत. ॥ 1 ॥

अन्वय - श्रेष्ठतमा: पर: को ष्ठा । ये एकएक. परमस्या: परावत: । आयय ।

अनुवाद - हे सर्वोत्तम नेताओं ! तुम कौन हो ? तुम दूरवर्ती आकाश से एक एक करके आते हो ।

परमस्या परावत: 11.72; अतिश्रेष्ठाया: (ईश्वरसृष्टे:); परावत: = परशब्दाद् मतुप् पूर्वस्य च दीर्घश्छान्दस: । परावत: प्रेरितवत: परागताद्वा नि० 7.26; अन्तो वै परावत: ऐ० 5.2; सा०भु० - अत्यन्तदूरदेशात् , अन्तरिक्षादित्यर्थ। मैक्स० - from the furthest distance; ग्रि० - (forth) from a region most remote.

क्व वो श्वा: क्वाऽभीशव: कथं शेक कथा यय ।

पृष्ठे सदो नसोर्यम: ॥ 2 ॥

अन्वय - व: अश्वा: क्व । क्व अभीशव: । कथं शेक । कथा यय । पृष्ठे सद: नसो: यम: ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे घोड़े और उनकी लगामें कहाँ है ? तुम शीघ्र कैसे चल पाते हो एवं तुम्हारी गति कैसी है ? तुम्हारे घोड़ों की पीठ पर जीन एवं दोनों नथनों में लगाम दिखाई देती है ।

सद: - √षदलृ विशरणगत्यवसादेषु भ्वा० धातो: लोट् , मध्यमैकवचने । सा०भु० सीदति तिष्ठत्यस्मिन्निति सद: पर्याणम् । ग्रि० - rein was on nose and seat on back; मैक्स० - the seat on the back, the rein in the nostrils.

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः ।

पुत्रकृथे न जनयः ॥ 3 ॥

अन्वय - एषां जघने चोदः । नरः पुत्र कृथे जनयः न सक्थानि वि यमुः ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारे घोड़ों की जंघाओं पर कोड़े लगते हैं । हे नेताओं । नारियाँ पुत्र को जन्म देने के लिए जिस प्रकार जाँघे फैलाती हैं उसी प्रकार तुम घोड़ों को जाँघें फैलाने पर विवश करते हो ।

जघने - जघनं व्याख्यातम् । ततो मत्वर्थीयप्रत्ययस्य 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुग्वक्तव्य : अ0 5.2.94 वा0 सूत्रेण लुक् । सा0मु0 - हन्तव्य प्रदेशे । मारने के स्थान में [पर] ग्रि0 - upon the flank; मैक्स0 on the croup.

पुत्रकृथे - पुत्रोपपदे √डुकृञ् करणे [तना0] धातोर्बा0 औणादिकः स्थन प्रत्ययः । सा0 मु0 - पुत्रकरणे उत्पादने । मैक्स0 - stretched their legs apart ; ग्रि0 - (when) the babe is born.

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः ।

अग्नितपो यथासथ ॥ 4 ॥

अन्वय - वीरासः मर्यासः परा भद्रजानयः एतन, अग्नितपः यथा । असथ ।

अनुवाद - हे वीर । मानव हितकारी एवं शोभन जन्म वाले मरुतों । तुम्हारा रंग तपे हुए अग्नि के समान है ।

भद्रजानयः - √भदि कल्याणे सुखे च [भ्वा0] धातोः 'ऋजेन्द्राग्र0' उ0 2.28 सूत्रेण रक्। सा0मु0 - भद्रा स्तुत्यो जनिर्जन्म येषां ते तथोक्ताः । रुद्रपुत्राः इत्यर्थः। मैक्स0 - (the sans.) of an excellant mother; ग्रि0 - (bridegrooms) with a lovely spouse.

अग्नितपो - अग्नि + तप् + णिच् + अच् । पर्णशुष्यिण्यग्निलुक् भावप्यति' ॥ सहा० 7.4.65॥ यथा पर्णानि शोषयन्ति पर्णशुषो धाता इत्यादौ णिचपि 'बहुलमन्यत्रापि संज्ञाछन्दसो' रिति णिलुक् भवत्येवम् 'अग्नि तप' इत्यादावपि । सा० मु० - अग्निना तप्तास्ताम्रादय: । मैक्स० - (That ye may) warm at the fire ; मैक्स० - (so that you) warm your selves at our fire.

य ई॑ वहन्त आशुभि: पिबन्तो मदिरं मधु ।

अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ 11 ॥

अन्वय - ये ॥मरुत:॥ ईम् आशुभि: वहन्ते । मदिरे मधु पिबन्त: । अत्र श्रवांसि दधिरे ।

अनुवाद - जो मरुद्गण तेज घोड़ों द्वारा लाये गये थे, वे मदकारक सोमरस का पान करते हुए यहाँ अनेकों प्रकार की स्तुतियाँ सुनते हैं ।

श्रवांसि दधिरे - √श्रु श्रवणे ॥भ्वा०॥ धातोरौणा० । असुन् । श्रव. अन्ननाम् निघं० 2.7; श्रव: प्रशंसाम् निघं० 4.24; सा०मु० स्तुतीं जनितानि यशांसि। मैक्स० - have gained glory. ग्रि० - have attained high glories.

आशुभि: वहन्ते - मैक्स० - drive on their quick horses; ग्रि० - borne by rapid steeds.

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।

दिवि रुक्म इवोपरि ॥ 12 ॥

अन्वय - येषां श्रिया रोदसी अधि रथेषु विभ्राजन्ते आ उपरि दिवि रुक्म: इव ।

अनुवाद - जिन ॥मरुतों॥ की शोभा से धरती और आकाश चमक उठते हैं, वे रथों पर इस प्रकार बैठते हैं जैसे द्युलोक में सूर्य विराजता है ।

रोदसी विभ्राजन्ते - रोदसी इति √रुधिर् आवरणे (रुधा०) धातोरौणा० असुन्। वर्णव्यत्ययेन धकारस्य दकार.। द्यावापृथिव्यौ 20.60; पदनाम् निघं० 5.5; यद्रोदीत् (प्रजापतिः) तदनयोः (द्यावापृथिव्योः) रोदस्त्वम् तै० 2.2.9.4; इमे वै० द्यावापृथिवी रोदसी - श० 6.4 4.2; इमे (द्यावापृथिव्यौ) ह वाव रोदसी जै०उ० 1.32.4; द्यावापृथिवी वै रोदसी ऐ० 2.41; विभ्राजन्तेण सा०मु० - द्यावापृथिव्यौ विशेषेण दीप्यन्ते। मैक्स० - Rodası glitters, See 6.66.6
ग्रि० - splendour both the words.

श्रियाधि - श्री शब्दस्य रूपाणि। श्रीः √श्रिञ् सेवायाम् (भ्वा०) धातो. 'क्विब् वचि पृच्छिश्रि०' उ02.57 सूत्रेण क्विप्। शुभगुणाधरणोज्ज्वलया चक्रवर्त्ति राज्यसेवमानया प्रकृष्टया लक्ष्म्या श०भू० 131, अथर्व० 12.5.1; सा०मु० - कान्त्या अधिष्ठिते भवत इति शेषः। मैक्स० - in glory; ग्रिफिथ - (as the) gold gleams.

युवा स मारुतो गण स्त्वेषरथो अनेद्यः।

शुभंयावाप्रतिष्कुत. ॥ 13 ॥

अन्वय - सः मारुतो गणः युवा त्वेषरथः अनेद्य. शुभंयावा अप्रतिष्कुतः।

अनुवाद - वे मरुद्गण युवक, तेजस्वी रथ वाले, निन्दारहित, शोभन गति वाले एवं निर्बाध गति वाले हैं।

अप्रतिष्कुत - बाधाहीन गति वाले। नञ्+ प्रति + √कृञ् हिंसायाम् (स्वा०) धातो क्त. सुडागमश्च स्प्वल स चलने (भ्वा०) धातोर्वा क्त प्रत्यये धातोः 'स्कुः' आदेशः, अप्रतिष्कुतो प्रतिकृतो प्रतिस्खलितो वा नि० 6.16; सा०मु० - अप्रतिगतो प्रतिशब्दितो वा। एवं महानुभावो गणो दीप्यते। मैक्स० irresistible ; ग्रिफिथ - checked by none.

को वेद नूनमेषा यत्रा मदन्ति धूतय: ।

ऋतजाता अरेपस: ॥ 14 ॥

अन्वय - एषां यत्र को वेद । नूनं धूतय: ऋतजाता: अरेपस: (मरुत:) मदन्ति ।

अनुवाद - मरुतों के उस स्थान को कौन जानता है, जहाँ शत्रुओं को भय से कंपित करने वाले यज्ञ के निमित्त उत्पन्न एवं पापरहित मरुत् प्रसन्न होते हैं ।

मदन्ति - √मदी हर्षे (दिवा0) धातोर्लट् । विकरण व्यत्ययेन शप् । मदति अर्चतिकर्मा निघं0 3.14; मदन्ति तर्पयन्ते निघं0 10.25; सा0भा0 - हृष्यन्ति।
मैक्स0 - refoice, the well born the faultless ; ग्रि0 - delight born spotless.

यूयं मर्तं विपन्यव: प्रणेतार इत्था धिया ।

श्रोतारो यामहूतिषु ॥ 15 ॥

अन्वय - विपन्यव: यूयं मर्तं इत्था धिया । यामहूतिषु श्रोतार: ।

अनुवाद - हे स्तुति की अभिलाषा करने वाले मरुतों ! तुम यजमानों की स्तुति सुनकर उन्हें स्वर्ग प्रदान करते हो एवं यज्ञों में उनका आह्वान करते हो ।

यामहूतिषु - यामहूतिपदयो: समास: । 'याम्' इति व्याख्यातम् । हूति: =√ह्वेञ् स्पर्द्धायाम् (भ्वा0) धातो: स्त्रियां क्तिन् । सा0भा0 यामो गमनम् । तदर्थं हूतयो यस्मिन्निति यामहूतयो यज्ञा: । मैक्स0 - (to his) imploring invocations ; ग्रि0 - through holy hymns.

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादस: ।

आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ 16 ॥

अन्वय - रिशादसः यज्ञियासः पुरश्चन्द्राः काम्या वसूनि ते ह आ ववृत्तन ।

अनुवाद - हे शत्रुनाशक, यज्ञ के पात्र एवं प्रमोद दायक धनसम्पन्न मरुतों । तुम लोगों को मनोनुकूल धन दो ।

रिशादसः - रिशयदासिनः निघं० 6.14; रिशोपपदे √दसु उपक्षये (दिवा०) धातोः क्विप् अथवा रिशोपपदे √अद् भक्षणे (अदा०) धातोरौणा० असुन् । रिशः = √रिश् हिंसायाम् (तुदा०) धातोरिगुपधलक्षणः कः । सा०भु० - हिंसकानां शत्रूणामत्तारो । मैक्स० - destroyers of the enemies ग्रिफिथ - destroyers of the foe; वि० - destroyer of the foe.

आववृत्तन - आ+√वृतु वर्तने (भ्वा०) धातोर्लोट् व्यत्ययेन परस्मैपदम् । शपः स्थाने श्लुः, तस्य च तनप् । मो०वि० came to press. सा०भु० - आवर्तयेत्यर्थः । मैक्स० rich in cattle ; ग्रिफिथ - send down the treasurers.

5.87

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ १ ॥

अन्वय - एवयामरुत् गिरिजाः मतयः प्रयन्तु वः विष्णवे प्रयन्तु शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये मन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ।

अनुवाद - एवयामरुत् नामक ऋषि की स्तुतियाँ मरुतों के स्वामी एवं शक्तिशाली अतिशय यजनीय, शोभन आभरणों वाले तेजस्वी, स्तुति अभिलाषी एवम् शीघ्रगामी मरुतों के पास जावें ।

गिरिजा - मैक्स० - voice-born[1] may mean 'Produced on the mountains!

वि० - mountain born ; ग्रि० - born in song (go forth).

शवसे - मैक्स० - to the shouting power or the strong ;

ग्रि० - to the impetuous strong bank or rears for vigour.

सुखादये - खादि: आभरणविशेषा: । 'हस्तेषु खादिश्च' ऋ० 1.168.3 'पत्सु खादय' ऋ5.54.11 ता०मु० - शोभनाभरणाय । मैक्स० - adorned with good rings ; ग्रि० - adorned with bracelets ; वि० - adorned with wrist band.

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।

क्रत्वा तद् वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रय: ॥२॥

अन्वय - एवयामरुत् ये महिना प्र जाता:, ये च नु क्षिप्रं स्वयम् एव विद्मना प्र जाता ब्रुवते । मरुत: व: तत् शव: क्रत्वा न आधृषे । एषां व: तत् दाना महना अधृष्टास: अद्रय: न ।

---

1. Girija may mean 'Produced on the mountains'. but it may also mean 'produced in the throat or voice', and it is so explained dlsewhere, for instance in SV.I.462 (Bibl.Ind., Vol.I, P.922) (Girau gata' yagnagata va ity uktam) oldenburg suggests girige, which would be much better, considering,how Vishnu is called girikshit, girishtha, Sc.; see Bergaigne, II, 47.
2. I take Savase as a substantive, like sardhas not an adjective to dhunivacata, See V.58.2; as to Prayagyu, V.55.1.

अनुवाद - एवयामरुत ऋषि महान विष्णु के साथ उत्पन्न होने वाले एवं यज्ञगान के स्वयं ज्ञाता मरुतों की स्तुति करते हैं । हे मरुतों ! तुम्हारा बल कर्मफल देने वाला एवं अपराजेय है । तुम पर्वतों के समान स्थिर हो ।

क्रत्वा दानामह्ना - मैक्स० - by wisdom (that) power of theirs (can xxxxx- not be approached) by gift or might.

ग्रिफिथ - through their gifts's greatness.

एवयामरुत - सा०भा० एवयामरुत । इसका व्याकरण मंत्र 4 पर है । विल्सन सायण के मत का अनुसरण करते हैं । may the voice born praises of एवयामरुत reach you, Vishnu, attend by the Maruts and observes that the name of the Rsi, Evayamarut, remains unaltered in its case-termination, whateven may be its syntactical connextion with the rest of the sentence. This is manifestly impossible and the word is certainly not a proper name. Evaya, in 1.156.1, going they wonted way.' is an epithet of Vishnu, and Prof. Roth thinks that Evayamarut' is an exclamation meaning, O Vishnu and Marut ! or O Marut who speed around ! but in both these cases it would be necessary to change the accent, both in this hymn and in the Samaveda where stanza I occurs again. Prof. Grassmann - suggests 'speeding (like Vishnu) is the Marut host' or The speeding Vishnu is the true. Marut or lord of the Marut as the probable meaning of the word. I find Evayamarut unintelligble and as, Prof. Ludwig has done, leave it untranslated as a mere sacrificial exclamation.

See. Vedic Hymns. Sacred books of the East. P.I. P.365.

प्र ये दिवो बृहत शृण्विरे गिरा सुशुक्वान सुभ्व एवयामरुत ।

न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आं अग्नयो न स्वविद्युत: प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ 3 ॥

अन्वय - एवमामरुत ये ॥मरुत:॥ बृहत: दिव: प्र शृण्विरे गिरा, शुशुक्वान सुभ्व:, येषां सधस्थे इरो न ईष्टे आ, अग्नयो न स्वविद्युत: धुनीनां स्पन्द्रास: ।

अनुवाद - एवयामरुत् ने स्तुतियों द्वारा उन मरुतों की स्तुतियां की जो विस्तृत स्वर्ग से उपासकों की पुकार सुनते हैं । दीप्त एवं शोभन हैं । जिन्हें अपने स्थान से निकालने में कोई समर्थ नहीं है तथा स्वयं प्रकाशित होने वाली नदियों को जो प्रवाहशील बनाते हैं ।

इरी - √ईर् गतौ कम्पने च ॥अदा0॥ धातो: कर्त्तरि बाहुलकादौणादिको यक् । √ऋ गतौ ॥भ्वा0॥ धातो: 'अर्तो:' 'किदिच्च' उ0 2.5। सूत्रेण 'इनन्' प्रत्यय: किच्च । धातोश्चेकारादेश: । सा0भा0 ईरिता प्रेरिता । मैक्स0 - Tyrant ; ग्रि0 - by the Psalm.

स्पन्द्रास: -√स्पदि किंचिच्चलने ॥भ्वा0॥ सा0भा0 वर्षेण चालयितारश्च । ग्रि0 - to move (them whose lightnings are as fires who urege the roaring rivers.)

स चक्रमे महतो निरुरुक्रम: समानस्मात् सदस एवयामरुत ।

यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर् विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभि: ॥ 4 ॥

अन्वय - मरुत: स: ॥मरुत:॥ उरुक्रम: सदस: समानस्मात् नि चक्रमे । एवयामरुत यदा स्वात् अधि । त्मना स्नुभि: नृभि: अयुक्त विस्पर्धस: विमहस: शेवृध: जिगाति ।

अनुवाद - विशालगति वाले मरुद्गण विस्तृत एवं साधारण अन्तरिक्ष से निकले हैं। एवयामरुत उनसे आगे की प्रार्थना करते हैं। मरुत जब स्वयं चलने वाले घोड़े रथ में जोतते हैं तब वे अप्रतिम, विशिष्ट बलयुक्त एवं सुख बढ़ाने वाले जान पड़ते हैं।

विष्पर्धसो - वि +√स्पर्ध् (भ्वा0) धातोरौणा0 असुन्। सा0भा0 - विविध स्पर्धा अनेक प्रकार की स्पर्धा, ग्रि0 - of the mighty stride forth strode (Evayamarut) ; मैक्स0 - striving mighty (Maruts).

जिगाति - सा0 ने इसकी गणना जौहोत्यादिक √गा स्तुतौ' का (लिट् प्र0पु0 रूप माना है किन्तु साथ ही निघं0 2.14.113 से 'जिगाति गतिकर्मणः' के आधार पर इसे गत्यर्थक भी स्वीकार किया गया है। मैक्डानेल ने 'गा' धातु (गमन करना) से निष्पन्न किया है। यहाँ यह से र्थ है।

स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वयुधास इष्मिणः ॥ 5 ॥

अन्वय - त्वेषः स्थारश्मानः हिरण्ययाः स्वायुधासः इष्मिणः वः (मरुतः) अमवान् वृषा ययिः स्वनः तविषा सहन्त एवयामरुत न रेजयत।

अनुवाद - हे स्वाधीन कान्तियुक्त, स्थिर रश्मियों वाले, सोने के गहनों वाले, शोभन आयुधकारी एवं अन्नस्वामी मरुतों! तुम्हारा शक्तिशाली, जल बरसाने वाला, तेजस्वी, गतिशील, बढ़ा हुआ एवं शत्रुओं को पराजित करने वाला शब्द एवयामरुत को कंपित न करें।

ययिः - √या प्रापणे (अदा0) धातोः 'आदृगमहन0' इति किलिंटवच्च। सा0भा0 - गन्ता। जाने वाला। ग्रि0 - self luminious with victorious (ye) ; मैक्स0 - the wonderer.

स्वयुधास: - स्वयु: = स्वोपपदे √धा धृपणे ‹अदा०› धातो: 'भृगयुवादयश्च' उ० 1.37 इति कु: । युधा = √युध् संप्रहारे ‹दिवा०› धातो. क्विप् । सा०भु० स्वायत्तायुधा । ग्रि० - well weaponed; मैक्स० - well armed; वि० - well weaponed.

हिरण्ययाः - स्वर्णाभूषण के साथ । मैक्स० - golden coloured; ग्रि० - decked with gold.

अपारो वो महिमा वृद्धशवसा त्वेषं शवो त्वेवयामरुत ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निद. शुशुक्वांसो नाग्नय: ॥ ६ ॥

अन्वय - अपार: महिमा व: वृद्धशवस: त्वेषं शव: स्वयामरुत अवतु । प्रसितौ संदृशि स्थातारो हि, ते न. निद: अग्नय: न शुशुक्वांस. उरुष्यता ।

अनुवाद - हे अपार महिमा वाले एवं अतिशय शक्तिशाली मरुतो ! तुम्हारा कांतियुक्त बल स्वयामरुत की रक्षा करे । नियमबद्ध यज्ञ का ज्ञान कराने में तुम्हीं समर्थ हो एवं अग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो । तुम शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ।

प्रसितौ - सा०भु० प्रबलबन्धने नियमनवति यज्ञे । वि० - for you are regulators for overseeing (what is fit for) the limits of the sacrifice.
मैक्स० - endowed with full power or in your raid.[1]

---

1. लुडविग - fang schnur, a nose, but hardly man noth, Grassmann - fang schour (suggests) I take it here in the sense of shouting forth, onslaught, raid Cf. VII. 46.4; Geldner, Ved.Stud. I. P. 139, takes it for a trap. Lanmann P. 386, is right in considering the locative before consonants a sure sign of the modern origin of this hymns. See Vedic Hymns P. 367.

ग्रि० - For (ye) are visible helpers (in the time of trouble).

अग्नय न शुशुक्वांस: उरुष्यत - मैक्स० - deliver us therefore from the enemy like shining ~~fox~~ fires ;

ग्रि० - like fires, a glow with light, save us from shame and insult.

ते रुद्रास: सुमखा अग्नयो यथा तु विद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।

दीर्घ पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा मह: शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ 7 ॥

अन्वय - ते रुद्रास: अग्नयो यथा सुमखा: एवयामरुत् अवन्तु येषाम् तुविद्युम्ना । पार्थिवम् दीर्घम् पृथु सद्म पप्रथे । अद्भुतैनसाम् अज्मेषु मह. शर्धांसि आ ।

अनुवाद - हे रुद्रपुत्र एवं अग्नि के समान शोभन यज्ञों वाले मरुत् एवयामरुत की रक्षा करें, जिनके कारण अन्तरिक्ष रूपी दीर्घ एवं विस्तृत गृह प्रसिद्ध हुआ है एवं जिन पापरहित मरुतों की गति में महान बल है ।

अज्मेषु - सा०मु० - गमनेषु । गमन (काल) में । मैक्स० - came quickly to the races ; ग्रि० - with splendid brilliancy.

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन् श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।

ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतस: स्यात दुर्धर्तवो निद: ॥ 8 ॥

अन्वय - अद्वेषो मरुत: न: गातुं जरितु: एवयामरुत् हवं श्रोत एतन । विष्णो: मह: समन्यव: स्मत् । रथ्यो न दंसना सनुत: द्वेषांसि अप युयोतन ।

अनुवाद - हे द्वेषरहित मरुतों । तुम स्तोता एवं एवयामरुत के गतिशील स्तोत्र को सुनने हेतु आओ और उसे सुनो । हे विष्णु के साथ यज्ञभाग पाने वाले मरुतों । योद्धा जिस प्रकार शत्रुओं को भगाता है उसी प्रकार तुम हमारे पापों को दूर करो ।

जरितृ -√जरते अर्चतिकर्मा निघं० 3.14, धातोः कर्तरि तृच् प्रत्ययः । यजमानो जरिता ऐ० 3.38, मैक्स० - Praises(you) ग्रि० - (who) Praises (You).

गातुं - गायति षड्जादिस्वरान् आनायतीति विग्रहे √गा स्तुतौ [जुहो०] धातोः 'कमिमनिजनि०' उ० 1.73 सूत्रेण तुः प्रत्ययः । गातु पृथिवीनाम् 1.1; गातुं गमनम् नि० 4.22, सा०भु० - गमन-स्वभावं स्तोत्रं प्रति । मैक्स० - came kindly ; ग्रि० - came in friendly spirit.

द्वेषांसि अप युयोतन - द्वेषों [पापों] को [हमसे] दूर करो । मैक्स० - Keep all hateful things (for your wonderfull skill) ; ग्रि० - Keep enmity for (from us with your deeds of wonder).

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥7॥

अन्वय - यज्ञियाः ~~एवयामरुत~~ नः यज्ञं सुशमि गन्ता, ~~[illegible]~~ श्रोता हवमरक्ष, प्रचेतसः यूयं ज्येष्ठासः न पर्वतासः व्योमनि दुर्धर्तवो निदः स्यात ।

अनुवाद - हे यज्ञपात्र मरुतों ! तुम हमारे यज्ञ को पूर्ण करने हेतु यहाँ आओ । हे विघ्नरहित मरुतों ! तुम एवयामरुत को पुकार सुनो । हे उत्तम धनसम्पन्न मरुतों ! तुम अत्यन्त विशाल पर्वत के समान अन्तरिक्ष में रहकर निंदकों को वश में करो।

सुशमि - सु - शमिन् पदयोः समासः । शमिन् √शमु उपशमने [दिवा०] धातोः 'शमित्यष्टाभ्यो घिनुण्' अ० 3.2.141 सूत्रेण घिनुण् । 'नोदात्तोपदेशस्यमान्तस्य' इति वृद्धि-प्रतिषेधः । [शमीति] कर्मनाम निघं० 2.1; मैक्स० - (came) zealously.[1]
ग्रि० - (Came to our) sacrifice.

1. सुशमि Susami giverlly explained as a shortened instrumental, for Susami = susamya, used in an adverbial sense. sugam has a short i here, because it stands at the end of pade, otherwise the i is long; see 7.16.2; 10.28.12 even before a vowel.

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानाम् ।

मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

अन्वय - तत् चिकितुषे वपुः समानम् नाम प्रीणयितृ पत्यमानां नु चित् अस्तु । (सः) मर्त्येषु अन्यत् दोहसे पीपाय । सकृत् पृश्निः शुक्रम् ऊधः दुदुहे ।

अनुवाद - विद्वान् स्तोता के सामने मरुतों का परस्पर समान, अतिशय स्थिर, प्रसन्न करने वाला एवं सर्वथा गतिशील रूप शीघ्र प्रकट हो । वह रूप मर्त्यलोक में वनस्पति के रूप में अभिलाषा पूरी करने को प्रकट होता है एवं वर्ष में एक बार आकाश से सफेद रंग का जल टपकाता है ।

The meaning seems to be ~~that it~~ strange that two things, namely, a real cow and the cloud, i.e. Prishni. the mother of the Maruts should both be called dhenu, cow; that the one should always yield milk to men, while the other has her bright udder milked but once. This may mean that dhenu, a cow, yields her milk always, that dhenu, a cloud, yields a rain but once or that Prishni gave birth but once to the Maruts See also Vi 48-zz; Gaedicke, Accusativ, p.19. Delburck, Tempuslehre, p. 102. Dhenu must be taken as the neuter form, and as a nominative, as is shown by 1.32.2 dadih yah nama patyate.

By Max.M. Vedic Hymns. P. 370, Vol. IV.

पत्यमानम् - √पप्लृ गतौ (भ्वा०) धातोः कर्मणि शानच् अथवा पति-पदादाचारे 'उपमानादाचारे' सूत्रेण क्यङ्. ततः शानच् । सा०भा० - सर्वदा गच्छत् ।

दुदुहे - टपकता है । √दुह् प्रपूरणे (अदा०) धातोर्लिटरूपाणि । लिट् च छन्दसि । सा०भा० क्षरति । मैक्डा० - Yielding ; मो०वि० - hariv ; Pur. granting mfn. id. ife.

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।

अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ 2 ॥

अन्वय - ये मरुतः इधानाः अग्नयो न शोशुचन् । यत् हि द्विः त्रिः ववृधन्त । एषाम्
अरेणवः हिरण्यासः । नृम्णैः पौंस्येभिः च साकं भूवन् ।

अनुवाद - जो मरुत जलती हुई अग्नियों के समान प्रकाशित होते हैं, जो स्वेच्छानुसार दूने तिगुने बढ़ते हैं, उनके रथ धूलरहित एवं सोने के अलंकारों वाले हैं । वे धनों एवं बलों के साथ प्रकट होते हैं ।

अरेणवो - √री गतिरेषणयोः ॥क्रया० धातोर्णु प्रत्ययः । नञ्समासः । अविद्यमाना रेणवो धूल्यंशा इव विघ्ना येषु ते ॥पन्थाः॥ पृ० - 'अजिविरी०' उ० 3.37 इति रीधातोर्णुः प्रत्ययः 1.35.11. मैक्स० - dustless (chariots) विल्सन० - unsoiled (unsoiled) by dust (the golden) chariots ; ग्रिफिथ - dustless were there cars. मो०वि० mfn. not dusty (said of the goods and their cars and ) मैक्डानेल - dustless ; आप्टे० - not solied with dust.

वावृधन्त - √वृधु वृद्धौ ॥भ्वा०॥ धातोर्लुगान्वाळ । अत्र 'तुजादीनाम्०' इत्यभ्यास-दैर्घ्यम् । सा० - भृशं वर्धन्ते ।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।

विदे हि माता महो-मही षा सेत् पृश्निः सुभ्वे ङ गर्भमाधात् ॥ 3 ॥

अन्वय - ये मीळ्हुषः रुद्रस्य पुत्रा सन्ति दाधृविः यांश्चो नु भरध्यै । विदे हि महः माता सा मही सा पृश्निः सुभ्वे गर्भम् आधात् ।

अनुवाद - जो ॥मरुद्गण॥ कामवर्षी रुद्र के पुत्र हैं एवं धारण करने वाला अन्तरिक्ष जिन्हें भरण करने में समर्थ है, उन मरुतों की परम प्रसिद्ध एवं महती माता पृश्नि ने मानवों के शोभन जन्म के लिए गर्भ धारण किया ।

गर्भमाधात् - गर्भम् - गिरतिगृणातीति विग्रहे √गृ निगरणे ॥तुदा०॥ धातो: अर्तिगृभ्यां भन् उ० 3.152 सूत्रेण भन् प्रत्यय: । येष वै गर्भो देवानां ॥यजु: 37.14॥; वायव्या गर्भा: तै० 3.9.17.5; गर्भ: रामित् श० 6.6.2.15; आधात् - आङ् + डुधा_धारणपोषणयो: ॥जु०॥ धातोर्लङ् । गतिस्थाघु०' सूत्रेण सिचो लुक् । मैक्स० - (Prisini) conceived the germ.

मैक्स० - (Prisini) conceived the germ.विल्सन - has received the germ. ~~germ~~ ; ग्रिफिथ - is known to have received.

The relative pronouns may be supposed to carry on the subject, viz. Marutah, from the preceding verse unless we supply esham matu. I am doubt ful about maho-mahi, c.f. 1.102.1; 2.33.8 Grassmann proposes to read maham gen. plur; Ludwig thinks of garbha. It may also be a compound as in mohamaha mahamahivrata, or an adverb, but the construction remains difficult throughout. Oldenberg suggests that the second Pada may have been yan. ko nu Prishnih dadhrivih. bharddhyai. See M.M. P.370, V.H.

न य ईषन्ते जनुषो या न्व _न्व: सन्तो वद्यानि पुनाना ।
निर्यद् दुहे शुचयो नु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणा ॥ 4 ॥

अन्वय - ये ॥मरुता:॥ जनुष: अया न ईषन्ते । अन्त: सन्त: अवद्यानि पुनाना: । शुचय: ॥मरुत:॥ यत् जोषमनु नि दुहे श्रिया अनु तन्वम् उक्षमाणा: ।

अनुवाद - जो मरुद्गण अपने स्तोता के पास सवारी से नहीं जाते प्रत्युत सबके अन्त:करण में रहकर पापों को नष्ट करते हैं । दीप्तिशाली मरुद्गण जब स्तोताओं की इच्छानुसार जल दुहते हैं तब शोभायुक्त होकर अपने शरीर को प्रकट करते एवं पृथिवी को सींचते हैं ।

जनुषो या - √जनी प्रादुर्भावे ॥दिवा०॥ धातो: 'जनेरुसि:' उ० 2.115 सूत्रेण उसी प्रत्यय: । जनुषम् जन्म निघं० 9.3; स्तोता के पास साधन के द्वारा । सा०मु० - जनान् स्तोतॄन प्रति अयेन गमनसाधनेन । मैक्स० - in this way ; विल्सन - being already in their hearts; ग्रिफिथ - in the same manner.

A translative rendering and no more. I take aga for aga as an adverb in the sense of thus in this way see 1.87.4. Grassmann seems to take it as an instr. fem. dependent on ganushon (Ganushah) which is possible but without analogy. Lanman P. 358 takes it for ayah nom. plur. of of aya wonderer, and translates, 'aslong as the ones now wonderers quit not their birth. Grassmann. 'Die nicht verleugnen die geburt aus jener. But is gan with instrumental ever used of a woman giving birth to a child ? Ludwig 7 'Die sich nicht weigern der geburt.

See. Vedva. p. 371.

पुनाना - पुनानप्राप्ति० स्त्रियां टाप् । √पूञ् पवने ॥क्र्या०॥ धातो: शानच् । सा०मु०- शोधयन्त: । मैक्स० - from all impurity ; विल्सन - purifying their defects . ग्रिफिथ - Pure away reproaches.

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधाना: ।

न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ 5 ॥

अन्वय - येषु धृष्णु मारुतं नाम आ दधाना: अया: मक्षु दोहसे । ये स्तौना अयास: मह्ना उग्रान् सुदानु: अव यासत् न ।

अनुवाद - ॥जिन मरुतों के प्रति॥ प्रभावशाली मारुत स्तोत्र का उच्चारण करके स्तोता शीघ्र ही अभिलाषायें पूर्ण कर लेते हैं । जो तिरोहित, गतिशील एवं महान्

हैं, उन्हीं उग्र मरुतों को शोभन हवि धारण करने वाला यजमान क्रोधरहित करता है ।

स्तौना - तिरोहित ; अत्र वर्णव्यत्ययेनैकार स्थाने औकार: । स्तेनः कस्मात् संस्त्यानमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ता: निघं० 3.19; सुरंगं दत्वा परपदार्थापहारिण: भा० दस्यवादयो जना: 1.1; सा०भु० - स्तेनास्तिरोहिता वा स्तोतृधनानामपहर्तार:। मैक्स० - (who) are not unkind ; विल्सन - (who) are otherwise ; ग्रि० - (who) are light and agile.

अयासो - √अय् गतौ भ्वा० धातोरच् । तत: प्रथमबहुवचने सुगागमे रूपम् । अयास अयना: निघं० 2.7; सा०भु० - गन्तारो भवन्ति । मैक्स० - tirring in strength ; ग्रि० - are light and agile in their greatness. वि० - in their might the resisters, plunderers (of wealth).

त इदुग्रा: शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।

अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोक: ॥ 6 ॥

अन्वय - ते उग्रा: शवस: धृष्णुषेणा: सुमेके उभे रोदसी युजन्त । अध स्म एषु रोदसी स्वशोचि: अमवत्सु रोक: न आ तस्थौ ।

अनुवाद - उग्र एवं शक्तिशाली मरुद्गण शक्तिशाली सेना को शोभनरूपवाले धरती-आकाश से मिलाते हैं । रुद्र पत्नी मध्यमा वाक् मरुतों में अपनी दीप्ति के साथ रहती है । शक्तिशाली मरुतों का कोई भी बाधक नहीं है ।

~~रोदसी - देखें - सुमेकपदयोस्समास: । मेक: = √डुमिञ् प्रक्षेपणे स्वा० धातोर्बाहु० औणा० कन् ।~~

सुमेके - देखें - सुमेकपदयोस्समास: । मेक: = √डुमिञ् प्रक्षेपणे स्वा० धातोर्बाहु० औणा० कन् । √मेङ् प्रणिदाने भ्वा० धातोर्वा कन् । सुमेक: संवत्सर: स्वेको ह नामैतद् यत् सुमेक इति श० 1,7.2.26; सा०भु० - सुरूपेद्यावापृथिव्यौ । मैक्स० - firmly established ; ग्रि० - united well formed. वि० - unite by their strength.

on Sumeke see Geldner, K.Z. XXIV 145; and Windisch Festgruss an Bothlingk, p. 114.

न रोकः - √रुच् दीप्तावभिप्रीतौ च (भ्वा0) धातोरौणा0 बहुलवचनात् कः । सा0भु0- दीप्तिं बाधको वा । मैक्स0 - (the imepetuous Maruts) like (a light) ; ग्रि0 - Furus Herols like splendlour shining; वि0 - in them the self radiant.

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्व नश्वाश्चिद् यमजत्यरथीः ।

अनवसो अनभीशू रजस्तू वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ 7 ॥

अन्वय - मरुतः वः याम अनेनः अस्तु । यं अरथीः अजति, अनश्वश्चित् अनवसः अनभीशुः रजस्तूः साधन् , रोदसी पथ्याः वि याति ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारा रथ पापरहित हो । स्तोता सारथि न होने पर भी जिस रथ को चलाता है, वह बिना घोड़ों वाला, भोजन शून्य एवं पाशरहित होकर भी जल का प्रेरक एवं स्तोताओं की अभिलाषा पूर्ण करने वाला बनकर स्वर्ग, धरती एवं आकाश में चलता है ।

याम अनेनो - √इण् गतौ (अदा0) धातोः 'इण् आगसि' उ0 4.198 सूत्रेण असुन् नुडागमश्च न बहुव्रीहिः एन एतेः नि0 11.24, सा0भु0 - रथः पापरहितं यथा भवति । मैक्स0 - be without(your) deer.ग्रि0 - draw your ear. वि0 - (which) impel.

अनवसो - अविद्यमानमवोऽन्नं यस्य सः (वीरजनः) । पु0 अव इत्यन्ननाम निघं0 2.7; सा0भु0 - पथ्यदनरहितः । मैक्स0 - (Crossing)the air वि0 - accomplishing. ग्रि0 - through the air.

रेजस्तूः - रजस् इत्युपपदे √तुर् त्वरणे (जु0) धातोः क्विप् । सा0भु0 - उदकस्य प्रेरकः । मैक्स0 - (crossing) the air, वि0 - accomplishing (desires), traverses ; ग्रि0 - through the air.

रजस्तूः according to Ludwig den staub auf wirbelnd. which seems to much opposed to arenu dustless. Ragas + for means to pass through the air, and in that sense only conquering the air. Geldner, Ved. Stud. P. 123, ignores the various shades of meaning in turat the end of compounds."

V.H. P. 372. by M.M.

नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।

तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ 8 ॥

अन्वय - मरुतः वाजसातौ यम अवथ अस्य वर्ता न अस्ति । तरुता नु न अध तोके तनये गोषु वा अप्सु यम् सः द्योः व्रजं दर्ता ।

अनुवाद - हे मरुतों ! युद्ध में तुम जिसकी रक्षा करते हो उसका न कोई प्रेरक होता है और न कोई हिंसक । तुम जिसके पुत्रों, पौत्रों, गायों एवं जल की रक्षा करते हो वह युद्ध में तेजस्वी शत्रु की भी गायें को नष्ट करता है ।

पार्ये द्योः - √पार कर्मसमाप्तौ (चुरा०) धातोर्णिजन्ताद् यत् अथवा √पृ पालनपूरणयोः (जु०) धातोः 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत् प्रत्ययः । विल्सन - the despoiler of the herds (of his ardent).[1] ग्रिफिथ - (cow-stall) on the day of trail. मैक्स० -at the close of the day.

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।

ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ 9 ॥

अन्वय - अग्ने गृणते तुराय स्वतवसे मारुताय चित्रम् अर्कम् प्रभरध्वम् । ये सहसा सहन्ते मखेभ्यः पृथिवी रेजते ।

अनुवाद - हे अग्नि । शब्द करने वाले, शीघ्रगति वाले एवं अपनी शक्ति वाले मरुतों को दर्शनीय हवि दो । वे अपने बल से शत्रुओं का बल पराजित करते हैं । महनीय मरुतों से पृथ्वी कांपती है ।

स्वतवसे - स्व-तवस्पदयोः समासः । तवः बलनाम निघं० 2.9; सा० - स्वभूतबलाय । मैक्स० - the strong, (who resist violence) ग्रिफिथ - strong in native vigour ; विल्सन - self in vigorating.

गृणते - √गॄ शब्दे (क्या०) धातोर्लट् शतृ । गृणात्यर्चतिकर्मसु पठितम् निघं० 3.14; सा०मु० - शब्दं कुर्वते स्तूयमानाय वा । मैक्स० - offer a beautiful strong ; वि० - offer to the loudsounding ; ग्रिफिथ - to praise (Bring a bright hymn) to praise.

त्विषीमन्तो अध्वरस्यैव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो ३ नाग्नेः ।

अर्चत्रयो धुनयो: न वीराः भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ 10 ॥

अन्वय - अध्वरस्येव दिद्युत तृषुच्यवसः अग्ने जुह्वो न त्विषीमन्तः अर्चत्रयः धुनयो व वीराः भ्राजज्जन्मानः अधृष्टाः ।

अनुवाद - यज्ञ के समान प्रकाश वाले शीघ्रगामी, अग्नि की लपटों के समान दीप्तिशाली एवं शत्रुओं को कंपाने वाले वीरों के समान आदरणीय मरुद्गण तेजस्वी शरीरवाले तथा अपराजेय हैं ।

भ्राजदृष्टिम् - भ्राजद् - ऋष्टिपदयोः समासः । भ्राजत् √भ्राजृ दीप्तौ (भ्वा०) धातोः शतृ । ऋष्टीः = √ऋषी गतौ (तुदा०) धातोः क्तिन् । मैक्स० - Blazing like the flame of the sacrifices ; वि० - resplendent as if illuminators of the sacrifices ; ग्रिफिथ - Bright like the flashing flames of sacrifices.

तं वृधन्तं मारुत भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।

दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृधन् ॥ 11 ॥

अन्वय - तं वृधन्तं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं मारुतं हवसा आ विवासे । दिव: शुचय: मनीषा: उग्रा:शर्धाय ।

अनुवाद - मैं उन वृद्धिशाली व तेजस्वी खड्ग वाले रुद्रपुत्रों की सेवा स्तोत्रों द्वारा करता हूँ । स्तोता की पवित्र स्तुतियाँ उग्र बनकर मरुतों के बल की उसी प्रकार समानता करती हैं जिस प्रकार बादल करते हैं ।

अस्पृधन् - √स्पर्द्ध संघर्षे ‡भ्वा0‡ धातोर्लङ्. छान्दसंरूपम् । सा0 - अस्पर्धन्त ।

गिरयो न - √गॄ निगरणे ‡तुदा0‡ धातो: √गॄ शब्दे ‡क्र्या0‡ धातोर्वा 'कॄ गॄ शॄ0' उ0 4.14.3 सूत्रेण इ प्रत्यय: किच्च । गिरि: मेघनाम निघं0 1.40; सा0मु0 - मेघा इव । मैक्स0 - from the mountain.[1] विल्सन - as the clouds (vie in the emmission of the rain) ; ग्रिफिथ - like mountains.

---

1. Girayah may have been meant for girjah, a possible ablative of giri; see Lanman, P. 383. Ugrah would then refer to apoh unless we break the sentence into two, viz., 'my bright thoughts tend to the host of heaven', and 'the ~~firee~~ fierce Maruts strive like waters from the mountain'. If we compare however, Ix.95.3 apam iva id urmayah tarturanah pra manishah irate somam akkha. We see that the whole verse forms one sentence. All world be might if we could change giragh into giribhya but is not this a conjucture, nimis facilis ?

See Vedic Hymns P. 372. Vol. IV.

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य,

मर्या अधा स्वश्वाः ॥ 1 ॥

अन्वय - व्यक्ताः नरः अधा रुद्रस्य सनीळा मर्याः स्वश्वाः ईं कः ।

अनुवाद - कांतियुक्त नेता, एक घर में रहने वाले, रुद्र के पुत्र, मानव हितकारी एवं शोभन अश्वों वाले मरुद्गण कौन है ?

अधा - अस्मिन्नहनि अद्य । इदमोऽश्भावो द्यश्च प्रत्ययो हनि । √अद् भक्षतो धातोः क्यप् प्रत्ययश्छान्दसः । अस्मिन् द्यवि नि0 1.6; विल्सन - at present.

ग्रिफिथ - at present.

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ 2 ॥

अन्वय - एषां जनूंषि न किः वेद । मिथः जनित्रं ते अंग विद्रे ।

अनुवाद - इनके जन्मों को कोई नहीं जानता । अपने जन्म की बात संभवतः वे मरुत् ही परस्पर जानते हैं ।

विद्रे - √विद्लृ लाभे [तुदो0] धातोर्लिटि, प्रथम बहुवचनम् । द्वित्वं न भवति छान्दसत्वात् । 'इरयो रे' इति रे-आदेशः ।

जनित्रम् - √जनी प्रादुर्भावे [दिवा0] धातोः 'अशित्रादिभ्यः इत्रोत्रौ' उ0 4.173; सूत्रेण इत्रः प्रत्ययः । विड् वै जनित्रम् श0ब्रा0 8.4.2.5; मैक्स0 - knows their birth विल्सन - know their birth; ग्रि0 - know each others birth; वें0 - परस्परस्य जानन्ति ।

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृधन् ॥ 3 ॥

अन्वय - स्व-पूभिः मिथः अभिवपन्त । वातस्वनसः श्येनाः अस्पृधन् ।

अनुवाद - मरुत् अपने संचरणों के द्वारा परस्पर मिलते हैं । ये हवा के समान तेज उड़ने वाले हैं तथा वाजों के समान परस्पर स्पर्धा करते हैं ।

स्वपुभि: मिथो॥ - √ष्टिवप् शये ॥अदा०॥ धातोर्बाहु: औणा० उ: । अथवा स्वोपपदे √पूञ् पवने ॥क्रया०॥ धातो: क्विप् । सा० - स्वकीयै: पवित्राचरणै: सह । मैक्स० - They pludeed each other with their beaks ?
विल्सन - They go together by their ग्रिफिथ - They strew each other with their blasts; ग्रासमन - They bestrew each other with light; राथ - They scatterdust over each other with basoms.
वें० - स्वभूतैरुदकै: ।

Sva-pu is explained by Roth as possibly a broom, raising the dust; Grassman translateit by light, Ludwig by blowing. I suggest to take it for vapu in the sense of beak or claw, fran vap, which follows immediately. See nato to 1.88.4. I do not see how the other meanings assinged to svapu give any sense. Oldenburg therefore suggests pavanta, sie stranten hell.auf. einander zu mit ihren svapus.' By Max.Mullur.Vedic Hymns.P.376.

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ 4 ॥

अन्वय - धीर: एतानि निण्या चिकेत । यत् मही पृश्नि: ऊध: जभार ।

अनुवाद - धीर व्यक्ति इन स्वाङ्गश्वेत मरुतों को जानता है । पृश्नि ने उन्हें अन्तरिक्ष में धारण किया था ।

निण्या - निण्यम् = निर्णीतान्तर्हितनाम निघं० 3.25 तत: 'शेश्छन्दसि' ति शेर्लोप: । वें० - प्राज्ञ: । मैक्स० - secrets. विल्सन - white complexioned.
मो०वि० - secrets. ग्रिफिथ - (these) mysteries.

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥ 5 ॥

अन्वय - सा विद् मरुद्भिः सुवीरा सनात् सहन्ती नृम्णम् पुष्यन्ती अस्तु ।

अनुवाद - वह प्रजा मरुतों के कारण चिरकाल से शत्रुओं को हराती हुई धन को पुष्ट करने वाली एवं शोभन पुत्रों वाली हो ।

पुष्यन्ती - पुष् पुष्टौ [दिवा0] धातोः शत्रन्तात् ङीप् । सा0 - पुष्टं कारयित्री । वें0 - धनम् । मैक्स0 - be rich; विल्सन - in the enjoyment of wealth ; मो0वि0 - be rich; ग्रि0 - nurshing manly strength.

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ 6 ॥

अन्वय - यामं येष्ठाः शुभाः शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्लाः ओजोभिः उग्राः ।

अनुवाद - मरुत गमन योग्य स्थानों को सर्वाधिक जाते हैं । अलंकारों से बहुत अधिक सुशोभित हैं, शोभायुक्त एव ओजस्विता के कारण उग्र हैं ।

श्रिया: संमिश्ला: - श्रिया: श्रीशब्दस्य रूपाणि । श्रीः √श्रिञ् सेवायाम् [भ्वा0] धातोः 'क्विब् वचिप्रच्छिश्रि0' उ0 2.57 सूत्रेण क्विप् । शुभ-गुणाचरणोज्ज्वलया चक्रवर्तिराज्यसेवमानया प्रकृष्टया लक्ष्म्या - ऋ0भू0 101, अथर्व0 12.5.1; संमिश्लाः - सम् मिश्रपदयोः समासः । रेफस्य लत्वम् कपिलकादित्वात् । सम्यक् मित्रत्वेन मिश्रिताः । सा0मु0, मैक्स0 - endowed with beauty ; विल्सन - invested with beauty ; मो0वि0 - arrayed with beauty; ग्रिफिथ - most bright in splendour ; वें0 - अत्यन्तं शोभितारः अलंकारैर्वा ।

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ 7 ॥

अन्वय - वः ओजः उग्रं शवांसि स्थिराः अध मरुद्भिः गणः तुविष्मान् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारा तेज और बल स्थिर हो । मरुतों के कारण [तुम्हारा] संघ बलवान् हुआ है ।

तुविष्मान् - तुविष्मुपाति० मतुप् । तुविष् =√तु गतिवृद्धिहिंसासु ।अदा०। धातोरौणादिक इति: प्रत्यय: । वें० - बुद्धिमान् । मैक्स० - strong (is your strength) विल्सन -(Terrible your strength ; ग्रिफिथ - firm your strength.

शुभ्रो व: शुष्म: क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णो ॥ 8 ॥

अन्वय - व: शुष्म: शुभ्र:, मनांसि क्रुध्मी, धृष्णो: शर्धस्य धुनि: मुनि: इव ।

अनुवाद - हे मरुतों तुम्हारा बल निष्कलंक एवं तुमारे मन क्रोधपूर्ण हैं । शत्रु पराभवकारी एवं शक्तिशाली मरुद्गण का वेग स्तोता के समान अनेक प्रकार का शब्द करता है ।

धृष्णो: -√ञिधृषा प्रागल्भ्ये ।स्वा०। धातो: 'त्रसिगृधिधृषि क्षिपे: क्नु:' इति विहित: क्नु: 'कृतो बहुलम्' इति भावे प्रत्यय: । वें० - ध्रुवस्य स्थावरादे: । मैक्स० - of the wild host ; विल्सन - of your irresistible force ; ग्रिफिथ - your bold troops minstrel. लेनमैन Clear is your whistiling Your hearts are wrathful as the wild onward.

सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणक् ॥ 9 ॥

अन्वय - सनेमि दिद्युं अस्मत् युयोत । व: दुर्मति: इह न: मा प्रणक् ।

अनुवाद - हे मरुतों । पुराने आयुध हमारे पास से अलग करो । तुम्हारी क्रूरमति हमें व्याप्त न करे ।

युयोत् - √यु मिश्रणेऽमिश्रणे च ।अदा०। धातोर्लोटि, शप: श्लौ: च श्लुम् । विल्सन - with hold from us ; मैक्स० - keep from us entirely (your flame) ग्रिफिथ ।

प्रिया वो नाम हुवे तुराणा मा यत् तृपन्मरुतो वावशाना: ॥ 10 ॥

अन्वय - हे तुराणां मरुत: - व प्रिया नाम आहुवे यत् वावशाना: आतृपत् ।

अनुवाद - हे शीघ्रगामी मरुतों । तुम्हारे प्रिय नाम हम पुकारते हैं । अभिलाषापूरक मरुद्गण इससे तृप्त होते हैं ।

अतृपत् - √तृप् तृप्तौ (तुदा०) धातोर्लेट् । गत् । तृप् प्रीणने (दिवा०) धातोर्वा संश्चत्तृपद्वेहत्' उ० 2.85. सूत्रेणातिः प्रत्ययः । वें० - तर्पयति । विल्सन- may be satisfied ; मो०वि० - be satisfied ; ग्रिफिथ - (we) are satisfied; Max. be satisfied;

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥ 11 ॥

अन्वय - सुआयुधाः इष्मिणः सुनिष्काः स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ।

अनुवाद - शोभन आयुधों वाले, गतिशील एवं सुन्दर अलंकारों वाले मरुद्गण अपने शरीरों को सजाते हैं ।

इष्मिणः - √इषु इच्छायाम् (तु०) धातोः । 'इषि युधीन्धि' उ० 1.145. सूत्रेण मक् प्रत्यये 'इष्मः' । ततो मत्वर्थे इनिः । ईर्षिणिन् इति वा एषणेन इति वा, अर्षिणिन् इति वा नि० 4.16; इष्मिणः पदनाम निघं० 4.1; वें० - एषणशीलाः। मैक्स० - the swift, decked. विल्सन - (rapid are they) in motion. ग्रिफिथ - (They) deck themselves.

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ 12 ॥

अन्वय - मरुतः वः शुचीनां शुची हव्या, शुचिभ्यः शुचिं अध्वरं हिनोमि, ऋत-सापः शुचि-जन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यम् आयन् ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम शुद्धों के लिए शुद्ध हव्य हो । तुम शुद्धों (पवि) के लिए मैं शुद्ध यज्ञ करता हूँ । सत्य की उपासना करने वाले शुद्ध कुल में जन्मे, शुद्ध और पवित्र करने वाले शुद्ध जन (ऋत-सत्य) से सत्य को प्राप्त करते हैं ।

हिनोमि - √हि गतौ वृद्धौ च (स्वा0) धातोर्लट् । हिनु धेहि निघं0 13.10, वेंकट - (शुचिम् प्रेरयामि) । ग्रिफिथ - Pure sacrifice.

असेष्वा मरुत: खादयो वो वक्ष:सु रुक्मा उपशिश्रियाणा: ।

वि विद्युतो न वृष्टिभीरुचाना अनु स्वधामा युधैर्यच्छमाना: ।। 12 ।।

अन्वय - मरुत: व: अंसेषु उ खादय: आ । वक्ष: सु रुक्मा., उपशिश्रियाणा:, विद्युत: न रुचाना:, वृष्टिभि: आयुधै: स्वधाम् अनु यच्छमाना: ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे कंधों पर खादि नामक अलंकार तथा वक्षस्थल पर उत्तम हार विराजमान है । जैसे वर्षा करने वाले मेघों के साथ विजली शोभा देती है उसी प्रकार जल प्रदान के समय तुम भी अपने आयुधों से सुशोभित होते हो ।

यच्छमाना: - √यमु उपरमे (भ्वा0) धातोस्ताच्छील्ये चानश् । वे0 - अनु नियच्छन्ति । ग्रि0 - are twined upon (your bosoms) ; मैक्स0 - for shining ; वि0 - glittering.

प्र बुन्ध्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।

सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ।। 14 ।।

अन्वय - प्रयज्यव: मरुत: बुध्नया व: महांसि प्र ईरते, नामानि प्रतिरध्वं, एनं सहस्रियं दम्यं गृहमेधिनं भागं जुषध्वम् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले तुम्हारे तेज विशेषरूप से गति करते हैं । हे विशेष यज्ञपात्र मरुतों ! तुम जलों को बढ़ाओ । हे मरुतों ! गृहस्वामियों द्वारा दिये गये घर में उत्पन्न एवं सहस्र संख्या वाले यज्ञ का एक भाग सेवन करें ।

बुन्ध्या - बुध्न प्राति0 भवार्थे यत् । यो हि: स बुध्न्य: बुध्नमन्तरिक्षं तन्निवासात् नि0 10.44.। बुध्ने जलसम्बन्धेऽन्तरिक्षे भवा: सूर्यचन्द्रपृथिवीतारकादयो

लोका: । वें0 - अन्तरिक्षभवानि । मैक्स0 - (your) hidden. ग्रिफिथ - wide in the depth of air spreadforthविल्सन - spread wide (object of worship).

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।

मक्षू राय: सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा ।। 15 ।।

अन्वय - मरुत: वाजिन: विप्रस्य हवीमन् स्तुतस्य यदि इत्था अधीथ । सुवीर्यस्य राय: मक्षू दात, अन्य: अरावा नु चित् यम् आदभत् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम अन्नयुक्त मेधावी स्तोता के हव्य सहित स्तोत्र को जानते हो । इसलिए उस शोभन पुत्र वाले को शीघ्र धन दो । शत्रु उस धन को नष्ट न करे ।

आदभत् - √अद् भक्षणे लङ्. व्यत्ययेन शप् । दभ्नोति वधकर्मा निघं0 2. 19; वेंकट - अदाता । मै0 - (shall be able to hurt) विल्सन - (no unfriendly man) can take away ; ग्रिफिथ - (us) may injure.

अत्यासो न ये मरुत: स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या: ।

ते हर्म्येष्ठा: शिशवो न शुभ्रा: वत्सासो न प्रक्रीळिन: पयोधा: ।। 16 ।।

अन्वय - ये मरुत: अयास: न सु - अ व: यक्षदृश: मर्या: न शुभयन्त ते हर्म्येष्ठा: शिशव: न शुभ्रा:, पयोधा: वत्सास: न प्रक्रीडन्त ।

अनुवाद - जो मरुद्गण सतत गतिशील घोड़े सदृश शोभन गतिवाले, उत्सव देखने वाले, मनुष्यों के समान शोभाशाली एवं घर में रहने वाले बच्चों के समान शोभित हैं । दूध पीने वाले बछड़ों के समान खेलते रहते हैं अथवा दुधमुँहे बालकों के समान जल धारणकर्ता है ।

यक्षदृशो: यक्षोपपदे √दृशिर् प्रेक्षणे ॥भ्वा0॥ धातो: क्विप् । वें0 यक्षा इव दृश्यमाना ।

मैक्स0 - shown like yakshas.

"यक्षदृशो" is explained as washing to see a sacrifice or feast. Ludwig retains this meaning. Grassmann translates, 'wie feurige Blitze funkeln. Yaksha may mean a shooting star or any meteor literally what whoots or hastens along; see vii 61.5 na yasu kitram .

न यासु: ददृशे न यक्षम् ; also note to 5.55.1. But dris is not saddris. If we follow the later Sanskrit, Yaksha would mean class of spirits, followers of kuvera, also ghosts in general. If this is not too modern a conception for the Rigveda, we might translate yakshadris, 'appeering as ghosts' (see Kaus. Sutra 85 in B.R.) or considering the expression atyah na yamasat yakshabrit viketah, 1.190.4 take it for a name of horses.'

By Max.M. Vedic Hymns Vol. IV, P. 377.

दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।

आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥ 17 ॥

अन्वय - दशस्यन्त: सुमेके रोदसी वरिवस्यन्त: मरुत: न: मृळयन्तु, वसव: गोहा नृहा व: वध: आरे अस्तु । सुम्नेभि: अस्ये नमध्वम् ।

अनुवाद - सम्पत्तियाँ देते हुए एवं अपनी महिमा से सुन्दर द्यावापृथिवी को पूर्ण करते हुए मरुद्गण हमें सुखी करें । हे मरुतों । मानवनाशक एवं गोनाशक तुम्हारा आयुध हमसे दूर रहें । हे वासदाता मरुतों । तुम सुखों के साथ हमारे सामने आओ ।

मृळन्तु - √मृड् सुखने ।तुदा0। धातोर्लेट् । सुखी करें । वेंकट - सुखयन्तु । मैक्स0 - d m be gracious (to us). वि0 - with their glory ;

ग्रि0 - be gracious.

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।

य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥ 18 ॥

अन्वय - मरुतः सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः होता वः आ जोहवीति, वृषणः (मरुतः) यः ईवतः गोपाः अस्ति स अद्वयावी उक्थैः व हवते ।

अनुवाद - हे मरुतों यज्ञशाला में बैठा हुआ होता तुम्हारे, सब जगह जाने वाले दान की प्रशंसा करता हुआ तुम्हें बार-बार बुलाता है । हे कामनासेचक मरुतों ! जो यज्ञकर्ता यजमान का रक्षक है वह होता मायारहित होकर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी प्रशंसा करता है ।

हवते - √हु दानादनयोः (जु0) धातोर्लट् । बहुलं छन्दसि' सूत्रेण शपः श्लुर्न भवति ।
वें0 - आह्वयति । मैक्स0 - Praising your common gift ;
वि0 - Praising you universal liberatity; ग्रि0 - Praising in song your universal bounty.

इमे तुरं मरुतो रामयन्ती मे सहः सहस आ नमन्ति ।

इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरू द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ 19 ॥

अन्वय - इमे मरुतः तुरं रमयन्ति । इमे सहः सहसः आनमन्ति । इमे शंसं वनुष्यतः निपान्ति, अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति ।

अनुवाद - ये मरुद्गण शीघ्रतापूर्वक यज्ञ करने वाले यजमान को प्रसन्न करते हैं एवं शक्तिशाली लोगों को शक्ति द्वारा झुकाते हैं । ये स्तोता को हिंसकों से बचाते हैं, पर हव्य न देने वाले मनुष्य के प्रति बहुत द्वेष रखते हैं ।

सहस् - √षह् मर्षणे (भ्वा0) धातोरौणादिकोऽसुन् सहसः बलस्य निघं0 5.25; सहस् - प्राति0 मत्वर्थे 'लुगकारेकाराश्च वक्तव्याः' । अ0 4.4.128 वा सूत्रेण यत्
वें0 - बलवताम् । मैक्स0 - strength ; वि0- humble the strong;
ग्रि0 - strength with might, strength.

निपान्ति - नि + √पा रक्षणे (अदा०) धातोर्लट् । वें० - परिरक्षन्ति । मैक्स० - ward of the (curse of the plotter) ; वि०- protect; ग्रि० - guard.

दधान्ति - √डुधाञ् धारणपोषणयो: (जु०) धातोर्लट् । वेंक० - विधेयीकुर्वन्ति । मैक्स- turn ; वि० - towards the withholder of offerings ; ग्रि० - lay their sore.

इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद् यथा वसवोजुषन्त ।

अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥ 20 ॥

अन्वय - इमे वसव: मरुत: यथा रध्रं चित् जुनन्ति, भृमिं चित् जुषन्त, वृषण: (मरुत:) तमांसि अप बाधध्वं अस्मे विश्वं तनयं तोकं धत्त ।

अनुवाद - हे मरुद्गण जिस प्रकार धनी को प्रेरणा देते हैं उसी प्रकार निर्धन को भी प्रेरित करते हैं तथा वसुओं के समान भृमिसंज्ञक आयुध धारण करते हैं । हे कामनासेचक मरुतों । देवों की इच्छानुसार अंधकार मिटाओ तथा हमें प्रभूत पुत्र एवं पौत्र प्रदान करो ।

वसवोजुषन्त - वसव: - √वस् आच्छादने (अदा०) धातोर्वा शानचि छान्दसं रूपम् । अन्यत्र √वसु आनपदयो: समासे छान्दसं रूपम् ।

जुषन्त - √जुषी प्रीतिसेवनयो: (तुदा०) धातोर्लोट् । व्यत्ययेन परस्मैपदम् । √जुषती कान्तिकर्मा निघं० 2. 6, मैक्स० - encourage the prosperous man (as vasus are pleased) ; विल्सन - as the goods pleased ; ग्रिफिथ - the vasus love (him (as an active champion).

मा वो दात्रान्मरुते निरराम मा पश्चाद् दध्म रथ्यो विभागे ।

आ न: स्पार्हे भजतना वसव्ये इ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥ 21 ॥

अन्वय - मरुत: व: दात्रात् मा नि: अराम । रथ्य: मरुत: विभागे पश्चात् मा दध्य न: स्पार्हे वसव्ये, वृषण: व: सुजातं यत् ईं अस्ति स्पार्हे वसव्ये न: आभजतना ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हम तुम्हारे दान की सीमा से बाहर न रहें । हे रथस्वामी-मरुतों ! धन विभाजन के समय हमें पीछे मत रखना । हे अभिलाषापूरक मरु तुम्हारा उच्चकोटि का जो भी धन है ꞉उस꞉ स्पृहणीय धन में हमें अंशभागी करो । ꞉बनाओ꞉ ।

꞉नि꞉꞉ अराम - अलग करें । √ऋ गति प्रापणयो: ꞉भ्वा0꞉ धातोर्लोट् । छन्दसि सर्व-विधीनां विकल्पाद् ऋच्छादेशो न । अत्र प्रापणार्थे प्रयोग: । वें0 - निर्गमाम् । मैक्स0 - (not) fall away; वि0 - (never) may (we) be excluded. ग्रि0 - never may (we) lose.

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनास: शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।

अध स्मा नो मरुतो रुद्रियास स्त्रातारो भूत पृतनास्वर्य: ॥ 22 ॥

अन्वय - रुद्रियास: अर्य: मरुत: यत् शूरा: जनास: यह्वीषु ओषधीषु विक्षु मन्युभि: संहनन् अध पृतनासु न: त्रातार: भूतस्म ।

अनुवाद - हे रुद्रपुत्र मरुतों ! जिस समय शूर लोग युद्ध में अनेक ओषधियों एवं प्रजा को विजित करने के लिए क्रोधयुक्त होते हैं, उस समय तुम शत्रुओं से हमारी रक्षा करना ।

मन्युभि: - √मन् ज्ञाने ꞉दिवा0꞉ धातो: 'यजिमनिशुन्धि' उ0 3.20 सूत्रेण युच् । मन्युरिति क्रोधनाम निघं0 2.13, मनधातोर्दीप्त्यर्थाद्वा युच् । मन्यते कान्तिकर्मा निघं0 2.6, पशूनां वा एष मन्युर्यद्वराह: तै0 1.7.9.4; वें0 - क्रोधै: । मै0 fiercly light together ; वि0 - filled with wrath; ग्रि0 - in fury rush together.

भूरि चक्र मरुत: पित्र्याण्युक्थानि या व: शस्यन्ते पुरा चित् ।

मरुद्भिरुग्र: पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा ॥ 23 ॥

अन्वय - मरुत: पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र, व: य: पुरा चित् शस्यन्ते उग्र: मरुद्भि: पृतनासु साळहा मरुद्भि: अर्वा वाजं सनिता ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम ने हमारे पितरों के कल्याण के लिये बहुत से काम किये थे, तुम्हारे जिन प्राचीन कार्यों की प्रशंसा की जाती है, उन्हें भी तुम्हीं ने किया था । तुम्हारी सहायता से तेजस्वी लोग युद्ध में शत्रुओं को हराते हैं एवं स्तोता अन्न प्राप्त करता है ।

भूरिचक्र - भूरि बहु+√भू सत्तायाम् (भ्वा0) धातो: 'आदिशदिभूशुभिभ्य: क्रिन्' उ0 उ0 4.65 सूत्रेण क्रिन् । वें0 - सभा0 अहं कृतवान् । मैक्स0 - have valued ; ग्रि0 - full many a deed; वि0 - (have been celebrated) in former times.

शस्यन्ते - √शंसु स्तुतौ (भ्वा0) धातो: कर्मणि । लट् । वें0 - गतेऽपि काले । मै0- (have formerly) recited (to you) ; ग्रि0 - song (you) ; वि0 - praise worthy.

अस्मे वीरो मरुत: शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।

अपो येन सुक्षितये तरेमा ध स्वमोको अभि व: स्याम ॥ 24 ॥

अन्वय - मरुत. (अस्मे वीरा शुष्मी अस्तु) य: असु-र: जनानां विधर्ता (स:), येन सुक्षितये अप: तरेम । व: स्वं ओक: अभिस्याम ।

अनुवाद - हे मरुतों ! हमारा पुत्र शक्तिशाली हो । वह बुद्धिमान् एवं शत्रुओं को सहन करने वाला हो । हम शोभन निवास पाने के लिए उसकी सहायता से शत्रुओं को वश में करें एवम् तुम्हारे आत्मीय बनें ।

अभिष्याम - अभि + अस् भुवि ॥अदा०॥ धातोर्विधिलिङ् । वें० - अभिभवेम ॥यज्ञगृह-
प्राप्यनुयामेति ॥ मैक्स० - obtain our own home for you ;
वि० - dwell in our own abode; ग्रि० - dwell in our own home with
you (beside us).

तत्र इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ 25 ॥

अन्वय - इन्द्रः वरुणः मित्रः अग्नि आपः ओषधिः वनिनः नः तत् जुषन्त, मरुतः उपस्थे
शर्मन् स्याम । यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात ।

अनुवाद - इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, जल, ओषधियाँ एवं वृक्ष हमारे स्तोत्र को सुनें ।
मरुतों के समीप रहकर हम सुखी रहें । हे देवों ! तुम कल्याण साधनों द्वारा
हमारी सदा रक्षा करो ।

स्याम् - √अस् भुवि ॥अदा०॥ धातोर्लिङ् । 4.51.10 क्रि० 'हो जायँ' उ०नु०ब०ब०
तिनि । वें० - स्याम । मैक्स० - Protect (us always with
your favours) . वि० - cherish (us with blessings) ग्रि० - Preserve
us with ~~her~~ blessings.

7.57

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्रा प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्रा: ॥ 1 ॥

अन्वय - यजत्रा: व: मारुतं नाम मध्व:, ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति, उत्सं पिन्वन्ति, यज्ञेषु शवसा प्रमदन्ति यत् उग्रा: अयासु: ।

अनुवाद - हे यजनीय मरुतों ! प्रमुदित स्तोता यज्ञ में तुम्हारी शक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं । वे मरुद्गण विस्तृत द्युलोक को कंपित करते हैं, बादलों से जल बरसाते हैं एवं उग्र बनकर सर्वत्र गमन करते हैं ।

प्र-मदन्ति - प्र + उप √मदी हर्षे §दिवा0§ धातोर्लट् । विकरण व्यत्ययेन शप् । मदति: अर्चतिकर्मा निघं0 3.14; ग्रिफिथ - The Marut host is glad at sacrifices ; मैक्स0 - delight in (their strength at the sacrifice) ; वि0 - (Vigorously) celebrate (at sacrifice) ; लेनमैन - to make glad.

उत्सं पिन्वन्ति - बादलों से जल बरसाते हैं । ग्रिफिथ - They make the spring flow.

This hymn has been translated by geldner and Kaegi. The first verse is most difficult. G.K. aboid all difficulties by translating, 'Beem fest sussen Trankes weiss man tuchtig euch zu begeistern, hehre Schaar der Marut' Ludwig grapples with them by Translating. 'An eures madhu kraft, o zu vererende, freut beiden opfern sich der Marut geschlecht' I doubt, however, whether 'savas' is ever ascribed to madhu, though it is ascribed to Soma. Oldenberg suggests, 'The sweet ones' is your Marut name, O. worshipful, they who rejoice in their strength at the sacrifice'. Here the difficulty would be that Marutam nawa is the recognised

term for the name, i.e. the kin of the Maruts. Still, unless we venture on a conjecture this would seem to be the best rendering. Could we change madhvah voh nama marutam into madhvad vah nama marutam ? Madhvad is a vedic word, though it occurs once only, in 1.164.22 and as trisyllabic. Its very rarity would help to account for the change. The meaning would then be, 'Your Marut kin eats honey, is fond of honey.'

It has been proved that the present madati is always neutral, meaning to rejoice, while √mand (Par) is transitive, to make rejoice. Otherwise might possibly have been taken in the sense of sweet things, as in 1.180.4; 9.89.3 and and construed with madanti. by M.M. Vedic Hymns. Vol. IV. p. 380.

रेजयन्ति - √रेजृ कम्पने लट् लकार प्र०पु०ब०व० । ग्रिफिथ - They cause even spacious heaven and earth to tremble.

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हि रा वीतये सदत पिप्रियाणा: ॥ 2 ॥

अन्वय - मरुत: गृणन्तं निचेतार: हि, यजमानस्य मन्म प्र-नेतार:, पिप्रियाणा: अद्य अस्माकं विदथेषु वीतये बर्हि: आ सदत ।

अनुवाद - मरुद्गण स्तुतिकर्ता मनुष्य को खोजते हैं एवं यजमान की कामना पूर्ण करते हैं । हे मरुतों । तुम लोग प्रसन्न होकर सोमरस का पान करने के लिए हमारे यज्ञ में कुशों पर बैठो ।

बर्हिष: √बृंहि वृद्धौ ।भ्वा०। धातो: 'बृंहेर्नलोपश्च' उ० 2.109. सूत्रेण इसि: प्र० नलोपश्च । बर्हि: अन्तरिक्षनाम 1.12; मैक्स० - On the altar.

ग्रि० - seat you on sacred gross. वि० - sit-down (to-day) upon the gross. लेनमैन - high place of sacrifice.

निचेतारः - नि + √चिञ् चयने (स्वा०) धातोः कर्त्तरि तृच् प्रत्ययः । सा० - ये निचयं समूहं कुर्वन्ति ते (मरुतः = वायवः) मैक्स० - Truly find out (the men); वि० - verily are the benefactors (of him) ; ग्रि० - watch (the man).

विदथेषु - यज्ञों में - ग्रिफिथ - In our assembly.

नैतावदन्यो मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ 3 ॥

अन्वय - इमे मरुतः रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते न एतावत अन्ये, विश्वपिशः रोदसी पिशानाः शुभे समानं अञ्जि ।

अनुवाद - ये मरुद्गण ~~उतना दूसरे लोग नहीं~~ अपने हारों, आयुधों एवं शरीरों से जितना सुशोभित हैं उतना कोई दूसरा नहीं । व्याप्त दीप्ति वाले मरुद्गण द्युलोक एवं पृथ्वीलोक को प्रकाशित करते हुए शोभा के लिए समान आभूषण धारण करते हैं।

भ्राजन्ते - मु०सा० प्रकाशन्ते - मै० shine चमकते हैं । वि० - shine चमकते हैं । ग्रि० - gleam (so brightly) मैक्स० - shine चमकते हैं । लेनमैन to beam ; मो०वि० - shine.

अधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् वः आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ 4 ॥

अन्वय - मरुतः वः सा दिद्युत् अधक् अस्तु (यजत्राः यत् वः आगः पुरुषता कराम वः तस्याम् अपि मा भूम, अस्मे वः चनिष्ठा सुमतिः अस्तु ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे वह आयुध (हमसे) दूर रहें । हे यज्ञपाल मरुतों ! यद्यपि मनुष्य होने के कारण हम बहुत सी भूलें करते हैं पर हम तुम्हारे आयुध के लक्ष्य न हों । हमें तुम्हारी अधिक अन्न देने वाली कृपा प्राप्त हो ।

चनिष्ठा - 'चायतेरन्ने ह्रस्वश्च' उ० 4.200; √चायृ पूजानिशामनयोः (भ्वा०) धातोः 'चायतेरन्ने ह्रस्वश्च' उ० 4.200; सूत्रेणा सुन् प्रत्ययस्य नुडागमे सति यलोपो ह्रस्वश्च । चनः अन्ननाम नि० 6.15; मैक्स० - Let your best favour rest on us. वि० - (may your favour) the source of abundance. ग्रि० - (may your) most loving favour still attend us.

कृते चिदत्र मरुतो रणन्ता नवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णो वत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ 5 ॥

अन्वय - मरुतः अत्र कृते चित् रणन्त, अनवद्यासः शुचयः पावकाः यजत्राः न सुमतिभिः न प्र अवत, आवेभिः पुष्यसे प्र तिरत ।

अनुवाद - मरुद्गण हमारे यज्ञकर्म से प्रसन्न हो । (मरुद्गण) निन्दारहित, शुद्ध एवं दूसरों को पवित्र करने वाले हैं । हे यजनीय मरुतों ! हमारी स्तुतियों के कारण हमारी रक्षा विशेष रूप से करो । (एवं हमें) अन्न के द्वारा पुष्ट होने के लिए बढ़ाओ ।

रणन्त - √रण् शब्दे (भ्वा०) धातोर्लेट् । √रण् शब्दाद्व्यापारे णिच् ततो लुङि 'रणन्त' इति रूपम् । सा० - रमध्वम् । मैक्स० - be pleased. वि० - to(delight in this our ceremonyग्रि० - have done delight; लेनमैन - to gralify मो०वि० - a glad.

पुष्यसे - √पुष् पुष्टौ (दिवा०) धातोर्लेट् । पुष्टोः भवे: प्र अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्, लेट् प्रयोगोऽयम् । मैक्स० - Lead (as to prosperity through booty. वि० - to sustain (us with food). ग्रि०- advance us mightly. लेनमैन - to maintain. मो०वि० - to support.

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत: राय: सूनृता मघानि ॥ 6 ॥

अन्वय - न: उत् विश्वेभि: नामभि: स्तुतास: उत हवींषि व्यन्तु, मरुत: प्रजायै अमृतस्य ददात, सूनृता राय: मघानि जिगृत ।

अनुवाद - ﴾हे मरुद्गण﴿ । हमारी स्तुति सुनकर हवि भक्षण करें । नेता मरुद्गण जलों के साथ वर्तमान हैं । हे मरुतों । हमारी प्रजा के लिए ﴾अमृत﴿ उदक दो तथा हव्यदाता यजमान को सत्त्व एवं धन-दान करो ।

अमृतस्य ददात - मैक्स० - Our of spring may not die. ग्रि० - give as Amrta (for the sake of offspring. The secret essence which pervades the world and nourishes and sustains all must naturally also be the element that promotes reproduction" Ludwig. Von Roth explains the passage differently; Add us to (the number of) the people of eternity, i.e. to the blessed'. 'Vouchsafe our children long life'-Grassmann. Bestow water upon our progeny - Wilson.

आ स्तुतासो मरुतो विश्वऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभि: सदा न: ॥ 7 ॥

अन्वय - स्तुतास: मरुत: विश्वे सर्व ताता सूरीन् अच्छ ऊती आ जिगात, ये त्मना शतिन: न वर्धयन्ति, यूयं न: सदा स्वस्तिभि: पात ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम स्तुति सुनकर समस्त रक्षा साधनों के साथ यज्ञ में आओ तथा अपने स्तोताओं को अपने आप सैकड़ों सुखों से युक्त करो । तुम अपने कल्याण - साधनों द्वारा हमारी सदा रक्षा करो ।

वर्धयन्ति -√वृधु वृद्धौ ﴾भ्वा०﴿ धातोर्णिजन्ताल् लट् । वर्धयन्ति - अथर्व० 14.1.54.
ग्रिफिथ - Increase us.

7.58

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।

उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात्॥ 1 ॥

अन्वय - साकं उक्षे गणाय प्र अर्चत, यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान् उत् अवंशात निर्ऋते क्षोदन्ति, महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते ।

अनुवाद - हे स्तोताओं । तुम सदा वर्षा करने वाले मरुद्गण की पूजा करो । वे देवस्थान स्वर्ग में सबसे अधिक बुद्धिमान् है । वे अपनी महिमा से द्युलोक एवं पृथ्वीलोक को भी भग्न कर देते हैं । वे स्वर्ग को धरती और अन्तरिक्ष की अपेक्षा अधिक व्याप्त बना देते हैं ।

क्षोदन्ति - √क्षुदिर् संपेषणे (रुधा0) धातोर्लट् । विकरणव्यत्ययेन शप् । सा0 - संपिशन्ति ।

जनूश्चिद वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवो यासः ।

प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ॥ 2 ॥

अन्वय - भीमासः तुविमन्यवः अयासः मरुतः वः जनूः त्वेष्येण चित् उत् ये महोभिः ओजसा प्रसन्ति, वः यामन् स्वर्दृक विश्वः भयते ।

अनुवाद - हे भयानक तीव्र बुद्धिवाले एवं गतिशील मरुतों । तुम्हारा जन्म तेज युक्त मरुतों से हुआ है । तुम तेज एवं बल से प्रभावशाली हुए हो । तुम्हारे गमन में सूर्य को देखने वाले सब लोग डरते हैं ।

भीमासः तुविमन्यवः - √ञिभी भये (जु0) धातोः 'भियः - षुग् वा' उ0 1.148 सूत्रेण मक् । भीमादयोऽपादाने अ0 3.4.74 सूत्रेणापादाने निपात्यते तुविमन्युपदयोः समासः । मन्यु क्रोधनाम निघं0 2.13,

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात् जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।

गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ 3 ॥

अन्वय - मरुत: मघवद्भय: बृहत् वय. दधात न: सुष्टुतिं जुजोषन् अत् गत: अध्वा जन्तुं न तिराति न: स्पर्हाभि: ऊतिभि: प्रतिरेत ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम हव्य धारण करने वाले को बहुत सा अन्न दो एवं हमारी शोभन स्तुति को अवश्य सुनो । जिस मार्ग से मरुद्गण गमन करते हैं, वह प्राणियों को कभी नष्ट नहीं करता । वे अपने चाहने योग्य रक्षा साधनों से हमें बढ़ावें ।

युष्मे तो विप्रो मरुत: शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरि: सहस्री ।
युष्मोत: सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥ 4 ॥

अन्वय - हे मरुत: युष्मा ऊत: विप्र: शतस्वी सहस्री, युष्मा - ऊत: अर्वा सहुरि:, युष्मा-ऊत: सम्राट् वृत्रं हन्ति, धूतय: व: तत् देष्णं प्र अस्तु ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारे द्वारा रक्षित स्तोता सैकड़ों धनों का स्वामी होता है । तुम्हारी रक्षा पाकर वह आक्रमण करने वाला, शत्रुपराजयकारी, साहसी एवं हजारों धनों का स्वामी बनता है । तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर वह सम्राट् एवं शत्रु-हन्ता बनता है । हे कंपनशील मरुतों । तुम्हारा दिया हुआ धन बढ़े ।

तॉं आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुत: पुनर्न: ।
यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदावि रद् तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ 5 ॥

अन्वय - मीळ्हुष: रुद्रस्य तान आ विवासे, मरुत: न: कुवित पुन: संसन्ते, यत् सस्वर्ता यत् आवि: जिहीळिरे तुराणां एन: अव ईमहे ।

अनुवाद - मैं कामनासेचक रुद्रों की सेवा करता हूँ । वे कई बार हमारे सामने आयें । जिस महान पाप से मरुद्गण नाराज होते हैं, वह पाप हम अपने स्तोत्र द्वारा नष्ट कर देंगे ।

प्र स वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।

आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ 6 ॥

अन्वय - मघोना सुस्तुतिः सा वाचि प्र मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त, वृषणः द्वेष. आरात् चित् , युयोत यूयं नः सदा स्वस्तिभि. पात ।

अनुवाद - हमने धनस्वामी मरुतों की शोभन स्तुति इस मंत्र में गायी है, वे उसे स्वीकार करें । कामनासेचक मरुतों । तुम शत्रुओं को दूर से ही अलग कर ो तुम अपने कल्याण-साधनों द्वारा हमारी सदा रक्षा करो ।

8.7

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।

वि पर्वतेषु राजथ ॥ 1 ॥

अन्वय - मरुत: । यत् विप्र: व: त्रिष्टुभम् इषम् प्र अक्षरत्, पर्वतेषु विराजथ ।

अनुवाद - हे मरुतों । जब मेधावी ब्राह्मण तीनों सवनों में प्रशंसनीय अन्न डालते हैं, तब तुम पर्वतों में प्रकाशित होते हो ।

त्रिष्टुभम् - इषम् का विशेषण । मैक्स० - the three fold (refering probably to the morning, noon and evening sacrifice. The sacrifice is often called trivrit, x.52.4; 124.1.

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।

नि पर्वता अहासत ॥ 2 ॥

अन्वय - तविषीयव: शुभ्रा: यत् अङ्ग यामम् अचिध्वं पर्वता नि अहासत ।

अनुवाद - हे शक्ति इच्छुक एवं शोभन मरुतों । जब तुम रथ में घोड़े जोतते हो तब तुम्हारे भय से पर्वत भी कांप जाते हैं ।

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रास: पृश्निमातर: ।

धुक्षन्ते पिप्युषीमिषम् ॥ 3 ॥

अन्वय - वाश्रास: पृश्निमातर: वायुभि: उदीरयन्त पिप्युषीम् इषम् धुक्षन्त ।

अनुवाद - शब्द करने वाले एवं पृश्नि संज्ञक माता वाले मरुद्गण हवाओं द्वारा बादल को ऊपर उठाते हैं एवं वृद्धि बढ़ाने वाला अन्न दान करते हैं ।

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।

यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥ 4 ॥

अन्वय - मरुतः यत् वायुभिः यामं यान्ति । मिहं वपन्ति, पर्वतान प्रवेपयान्त ।

अनुवाद - मरुद्गण जब हवाओं के साथ चलते हैं तब वर्षा को विखेरते हैं एवं पहाड़ों को कम्पित करते हैं ।

नियद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे ।

महे शुष्माय येमिरे ॥ 5 ॥

अन्वय - वः यामाय गिरिः यत् नि येमिरे सिन्धवः विधर्मणे महे शुष्माय नि ﴾येमिरे﴿।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारे ﴾रथ﴿ के गमन के हेतु पर्वतों का मार्ग नियत है । नदियाँ रक्षा एवं महान बल पाने के लिए निश्चित मार्गवाली हैं ।

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे ।

युष्मान्प्रयत्यध्वरं ॥ 6 ॥

अन्वय - ﴾वयम्﴿ युष्मान् उ नक्तं ऊतये दिवा अध्वरे प्रयति ﴾च﴿ हवामहे ।

अनुवाद - हे मरुतों । हम तुम्हें अपनी रक्षा के लिए रात में दिन में एवं यज्ञ के आरम्भ बुलाते हैं ।

उदुत्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते ।

वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ॥ 7 ॥

अन्वय - ते अरुणप्सवः चित्राः वाश्राः यामेभिः दिवः अधि स्नुना उत ईरते उ ।

अनुवाद - वे ही लाल रंग वाले, विचित्र एवं शब्द करने वाले मरुद्गण अपने रथ द्वारा द्युलोक के ऊँचे भाग से आते हैं ।

<u>अरुणप्सव.</u> - मैक्स0 - Of reddish hue, Arunapsu perhaps reddish coloured, an epithet of the dawn, here applied to the Maruts. The Maruts are sometimes called [illegible]apsu, [illegible]-tapsu, 1.52.4; 8.20.7.

सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्था सूर्याय यातवे ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ 8 ॥

<u>अन्वय</u> - सूर्याय यातवे रश्मिं पन्था ओजसा सृजन्ति । ते (मरुतः) भानुभिः वि तस्थिरे ।

<u>अनुवाद</u> - जो मरुद्गण सूर्य के चलने के लिए किरणरूपी मार्ग बनाते हैं वे अपने तेजों द्वारा स्थित रहते हैं ।

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः ।
इमं मे वनता हवम् ॥ 9 ॥

<u>अन्वय</u> - मरुतः इमां मे गिरं वनत (ऋभुक्षणः), इमं स्तोमं मे इमं हवम् (वनत) ।

<u>अनुवाद</u> - हे मरुतों ! मेरे इस स्तुतिवचन को मानो, हे महान मरुतों ! मेरे इस स्तोत्र को स्वीकार करो । मेरी इस पुकार को पूर्ण करो ।

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
उत्सं कबन्धमुद्रिणम् ॥ 10 ॥

<u>अन्वय</u> - पृश्नयः वज्रिणे मधु त्रीणि सरांसि उत्सम् कबन्धम् उद्रिणम् ।

<u>अनुवाद</u> - पृश्नियों ने वज्रधारी इन्द्र के लिए सोमरस को तीन झरनों, जल और मेघ से दुहा था ।

<u>पृश्नय.</u> - मरुतों की माता । (ग्रिफिथ)

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥ 1 ॥

अन्वय - मरुतः यत् वः सुम्नायन्तः दिवः हवामहे आ तु नः उप गन्तन ।

अनुवाद - हे मरुतों ! अपने सुख की इच्छा करते हुए हम तुम्हें स्वर्ग से जिस समय बुलाते हैं, उस समय हमारे पास जल्दी आओ ।

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।
उत प्रचेतसो मदे ॥ 2 ॥

अन्वय - उत सुदानवः रुद्राः ऋभुक्षणः यूयं हि दमे मदे प्रचेतसः स्थ ।

अनुवाद - हे शोभन दान वाले रुद्रपुत्र एवं महान मरुतों ! तुम यज्ञशाला में नशीला सोम-रस पीकर शोभन ज्ञान वाले बन जाते हो ।

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् ।
इयर्ता मरुतो दिवः ॥ 3 ॥

अन्वय - मरुतः नः रयिः दिवः आ इयर्त मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् ।

अनुवाद - हे शुभ्रमरुतों ! हमारे लिए स्वर्ग से नशा टपकाने वाला, बहुत से लोगों द्वारा प्रशंसित एवं सबको भरण करने वाला अन्न लाओ ।

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥ 4 ॥

अन्वय - शुभ्राः गिरीणां अधीव यत् यामं अचिध्वं सुवानैः इन्दुभिः मन्दध्वे ।

अनुवाद - हे शुभ्र मरुतों ! जब तुम पहाड़ के ऊपर अपना रथ ले जाते हो तब तुम निचोड़े हुए सोमरस के कारण मतवाले होते हो ।

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।

अदाभ्यस्य मन्मभि ॥ 15 ॥

अन्वय - मर्त्यः मन्मभिः सुम्नं एषां भिक्षेत, एतावतश्चित् अदाभ्यस्य ।

अनुवाद - स्तोता अपने स्तोत्रों द्वारा अपराजेय मरुतों से अपना सुख माँगता है ।

ये द्रप्साइव रोदसी धमन्त्यनु ।

उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ 16 ॥

अन्वय - ये आक्षितम् उत्सं दुहन्तः द्रप्साइव रोदसी वृष्टिभिः अनुधमन्ति ।

अनुवाद - मरुद्गण सम्पूर्ण मेघ को दुहते हैं और पानी की बूँदों के समान वर्षा के द्वारा द्युलोक एवं पृथिवीलोक को ठीक से घेर लेते हैं ।

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः ।

उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ 17 ॥

अन्वय - पृश्निमातरः स्वनेभिः उ रथैः, वायुभिः, उत्स्तोमैः उत् रिते ।

अनुवाद - पृश्निपुत्र मरुत् शब्द करते हुए अपने रथों द्वारा हवाओं द्वारा एवं मंत्रों द्वारा ऊपर जाते हैं ।

येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् ।

राये सु तस्य धीमहि ॥ 18 ॥

अन्वय - येन तुर्वशम् यदुम् आव येन धनस्पृतं कण्वम् तस्य राये सुधीमहि ।

अनुवाद - हे मरुतों ! जिस साधन से तुमने तुर्वश एवं यदु की रक्षा की तथा धनाभिलाषी कण्व को रक्षा की थी, हम धन पाने के लिए उसी रक्षा-साधन का ध्यान करते हैं ।

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः ।
वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥ 19 ॥

अन्वय - सुदानवः घृतं न पिप्युषीः इमाः इषः काण्वस्य मन्मभिः वः वर्धान् उ ।

अनुवाद - हे शोभन दान वाले मरुतों ! घी की तरह शरीर को पुष्ट करने वाले इस अन्न की वृद्धि कण्व की स्तुतियों की भाँति करो ।

क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तवर्हिषः ।
ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ 20 ॥

अन्वय - सुदानवः वृक्तवर्हिषः क्व नूनं मदथ, कः ब्रह्मा वः सपर्यति ।

अनुवाद - हे शोभन दान वाले मरुतों ! तुम्हारे लिए कुश उखाड़े गये हैं, तुम इस समय किस स्थान पर प्रसन्न हो । कौन स्तोता तुम्हारी सेवा कर रहा है ?

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।
शर्धां ऋतस्य जिन्वथ ॥ 21 ॥

अन्वय - बृक्तबर्हिष नहि ष्म वः पुरा ऋतस्य शर्धान् जिन्वथ यद्ध ।

अनुवाद - हे यज्ञ में संलग्न मरुतों ! तुम हमारे स्तोत्र सुनने से पहले ही दूसरों की स्तुतियों से अपना यज्ञ सम्बन्धी बल बढ़ाते हो, यह बात उचित नहीं है ।

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ 22 ॥

अन्वय - ~~स~~ त्ये महती अपः समु दधुः क्षोणी सं (दधुः) सूर्यं सं (दधुः); वज्रमपर्वशः सं (दधुः) ।

अनुवाद - मरुतों ने विस्तृत ओषधियों में जलों का संयोग किया था, द्यावापृथिवी को

यथास्थान अवस्थित किया था सूर्य को अपने स्थान पर रखा एवं वृत्र को टुकड़े टुकड़े करने के लिए वज्र धारण किया ।

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वतां अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ 23 ॥

अन्वय - अराजिनः वृष्णि पौंस्यम् चक्राणाः वृत्रम् पर्वशः ययुः पर्वतान् (वि ययुः) ।

अनुवाद - स्वामीरहित एवं शक्तिशाली उत्साह का प्रदर्शन करते हुए मरुतों ने पर्वत के समान वृत्र के टुकड़े टुकड़े कर दिये थे ।

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् ।
अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ 24 ॥

अन्वय - त्रितस्य युध्यतः शुष्मं अनु आवन् ; उत क्रतुं वृत्रतूर्ये इन्द्रम् अनु ।

अनुवाद - मरुद्गण ने युद्ध करते हुए त्रित की शक्ति तथा यज्ञ कर्म का रक्षा की थी । उन्होंने वृत्र हनन के समय इन्द्र की रक्षा की थी ।

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ 25 ॥

अन्वय - विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शुभ्रा शीर्षन् हिरण्यीः शिप्राः श्रिये व्यञ्जत ।

अनुवाद - चमकते हुए आयुध को हाथ में धारण करने वाले दीप्तिशाली एवं शोभायुक्त मरुतों ने सुन्दरता बढ़ाने के लिए अपने सिर पर उष्णीष धारण किया ।

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥ 26 ॥

अन्वय - उशना: उक्षण: रन्ध्रं परावत. यत् अयातन् , द्यौर्न भिया चक्रदत् ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम उशना ऋषि की स्तुति सुनकर अपने वर्षा करने वाले रथ द्वारा दूर स्थान से आये थे, उस समय पृथिवी द्युलोक के समान भय से कांपने लगी थी ।

अयातन - अगच्छत् । यातेर्लङि मध्यम बहुवचनस्य तप्तनप्तनथनाश्च ' इति तनादेश: ।

आ नो मखस्य दानवेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभि: ।
देवास उप गन्तन ।। 27 ।।

अन्वय - देवास: न: मखस्य दावने हिरण्यपाणिभि: अश्वै: आ उप गन्तन ।

अनुवाद - मरुत् देव हमारे यज्ञ का फल देने के लिए स्वर्णपादों (पैरों) वाले घोड़ों की सहायता से आये थे ।

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित: ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नप: ।। 28 ।।

अन्वय - एषां रथे पृषती: यत् प्रष्टि: रोहित: वहति शुभ्रा: यान्ति अप: रिणन् ।

अनुवाद - इन मरुतों के रथ को जिस समय चितकबरी हिरणियाँ खींचती हैं एवं रोहित मृग वहन करता है, उस समय सुन्दर मरुत जाते हैं और जल बहता है ।

सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति ।
ययुर्निचक्रया नर: ।। 29 ।।

अन्वय - नर: आर्जीके शर्यणावति पस्त्यावति सुषोमे निचक्रया ययु: ।

अनुवाद - नेता मरुद्गण ऋजीक देश में वर्तमान शर्यणावत स्थान के तालाब के पास बनी सोमरसयुक्त यज्ञशाला में अपने रथ के पहिए नीचे की ओर करके जाते हैं ।

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।

मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ 30 ॥

अन्वय - मरुतः इत्था हवमानम् माधमानं विप्रं कदा मार्डीकेभिः गच्छाथ ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम इस प्रकार पुकारने वाले, याचना करते हुए एवं बुद्धिमान् स्तोता के पास सुख का कारण धन लेकरकब आओगे ।

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।

को वः सखित्व ओहते ॥ 31 ॥

अन्वय - कधप्रियः नूनं अजहातन यत् कद्ध, वः सखित्वे कः ओहते ।

अनुवाद - हे स्तुति द्वारा प्रसन्न होने वाले मरुतों ! तुमने इन्द्र को कब छोड़ा ? तुम्हारी मित्रता किसने चाही थी ?

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः ।

स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ 32 ॥

अनुवाद - हे कण्वगोत्रीय ऋषियों ! हाथ में वज्र धारण करने वाले एवं सोने से निर्मित काठ खोदने के आयुध से युक्त मरुतों के साथ-साथ अग्नि की स्तुति करो ।

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय ।

ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ 33 ॥

अन्वय - वृष्णः प्रयज्यून् चित्रवाजान् सु ओ ववृत्यां नव्यसे सु विताय आ (ववृत्याम्) ।

अनुवाद - हे अभिलाषापूरक, विशिष्टरूप से यज्ञपात्र व विचित्रगति वाले मरुतों को भली प्रकार प्राप्त होने वाले नवीन धन के लिए दयालु बनाता है ।

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमाना: ।
पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ 34 ॥

अन्वय - गिरयश्चित् पर्शानास: मन्यमाना: नि जिहते पर्वताश्चित् नि येमिरे ।

अनुवाद - मरुतों द्वारा पीड़ा एवं बाधा पहुँचाए जाने पर भी पर्वत अपने स्थान से हटते नहीं हैं, पर्वत स्थिर रहते हैं ।

आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पतत: ।
धातार: स्तुवते वय: ॥ 35 ॥

अन्वय - अक्ष्णयावान: अन्तरिक्षेण पतत: आ वहन्ति, स्तुवते वय: धातार: ।

अनुवाद - सुदूरगामी अश्व आकाश मार्ग से चलकर मरुतों को लाते हैं एवं स्तुति करने वाले को अन्न देते हैं ।

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ 36 ॥

अन्वय - अग्निर्हि अर्चिषा पूर्व्य: जानि, छन्द: सूर. न: ते भानुभि: वि तस्थिरे ।

अनुवाद - अग्नि ने अपने तेज से सर्वप्रमुख बनकर प्रशंसनीय सूर्य के समान जन्म लिया है । मरुद्गण अपनी दीप्तियों के द्वारा भिन्न भिन्न स्थानों में स्थित हैं ।

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यव. ।

स्थिरा चिन्नमयिष्णव. ॥ । ॥

अन्वय - प्रस्थावान: आ गन्त, मा रिषण्यत, समन्यव. स्थिरा चित् नमयिष्णव: माप स्थात ।

अनुवाद - वेगगामी प्रस्थान करने वाले मरुतों । आओ, (तुम हमें) मत मारो, (तुम) क्रोधित होने पर दृढ़ पर्वतों को भी कंपा देते हो (तुम हमसे) दूर मत रहो ।

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रास: सुदीतिभि: ।

इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयव: ॥ 2 ॥

अन्वय - ऋभुक्षण: रुद्रास: पुरुस्पृह: सोभरीयव: मरुत: अद्य न: यज्ञम् सुदीतिभि: वीळुपविभि. आगत ।न: यज्ञम् इषा ।

अनुवाद - दीप्तिशाली निवास स्थान वाले रुद्रपुत्र मरुतों । शोभन दीप्तिवाली पहियों की नेमि वाले रथ द्वारा आओ, हे बहुतों द्वारा अभिलषित मरुतों । मुझ सौभरि के प्रति मन में दयालु बनकर एवं अन्न लेकर आज यज्ञ में आओ ।

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।

विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ 3 ॥

अन्वय - रुद्रियाणां शिमीवतां विष्णो: एषस्य मीळ्हुषां मरुताम् उग्रम् शुष्मं विद्म हि ।

अनुवाद - हम कर्म वाले एवं कृपा जल से सींचने वाले इनके रुद्रपुत्र मरुतों एवं विष्णु के उग्र बल को जानते हैं ।

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।

प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानव: ॥ 4 ॥

अन्वय - शुभ्रखादयः स्वभानवः यत् एजथ, द्वीपानि वि पापतन् तिष्ठत् दुच्छुना उभे रोदसी युजन्त, धन्वानि प्र ऐरत, ।

अनुवाद - हे शोभन आयुधों वाले एव विशिष्ट दीप्ति वाले मरुतों ! तुम्हारे आने से जो कम्पन होता है, उससे सारे द्वीप गिर पड़ते हैं, वृक्षादि स्थावर दुःखी होते हैं, एवं द्युलोक एवं पृथ्वीलोक दोनों कांप उठते हैं एवं गमनशील जल बहने लगता है ।

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ 5 ॥

अन्वय - वः यामेषु अज्मन् अच्युता चित् पर्वतासः वनस्पतिः आ नानदति, यामेषु भूमिः रेजते ।

अनुवाद - हे मरुतों ! जिस समय तुम युद्ध में गमन करते हो, उस समय अच्युत पर्वत एवं वनस्पतियाँ बार-बार शब्द करती हैं तथा पृथ्वी काँपती है ।

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत् ।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुतः वः अमाय यातवे द्यौः बृहत उत्तरा जिहीते यत्र बाह्वोजसः नरः त्वक्षांसि तनूषु आ देदिशते ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम्हारे बलपूर्वक गमन को स्थान देने के विचार से द्युलोक विशाल अन्तरिक्ष से ऊपर चला गया है । जहाँ (उस) अन्तरिक्ष में बहुशक्ति सम्पन्न एवं नेता मरुद्गण अपने शरीरों में दीप्त आभरण धारण करते हैं ।

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।
वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥ 7 ॥

अन्वय - नर: त्वेषा अमवन्त: वृषप्सव: अह्रुतप्सव: मरुत: स्वधामनु श्रियं महि वहन्ते ।

अनुवाद - नेता, दीप्त, शक्तिशाली, वर्षारूप एवं कुटिलता रहित मरुद्गण अपने नाम की हव्य अन्न पाने के लिए महती शोभा धारण करते हैं ।

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।

गोबन्धव: सुजातास: इषे भुजे महान्तो न. स्परसे नु ॥ 8 ॥

अन्वय - सोभरीणाम् गोभि: हिरण्यये रथे कोशे वाण: अज्यते, गोबन्धव: सुजातास: महान्त: [मरुत:] न: इषे भुजे स्परसे नु ।

अनुवाद - सौभरि आदि ऋषियों की स्तुतियों से बने रथ के मध्यभाग में मरुतों की वीणा प्रकट हो रही है, गायें जिनकी माता हैं, शोभन जन्मवाले एवं महानुभाव मरुद्गण हमारे अन्न, भोग एवं प्रसन्नता के लिए दयालु हों ।

प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।

हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ 9 ॥

अन्वय - वृषदञ्जय: व: वृष्णे मारुताय शर्धाय हव्या प्रति भरध्वम् , वृषप्रयाव्णे ।

अनुवाद - हे सोम की वर्षा से सींचने वाले अध्वर्युगण । वर्षा करने वाले मरुतों की शक्ति बढ़ाने के लिए हव्य अर्पित करो, इस हव्य के द्वारा मरुद्गण वर्षाकारक एवं उत्तम गति वाले बनेते हैं ।

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।

आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो ~~आगत वृथा~~। वीतये ॥ 10॥

अन्वय: नर: मरुत: वृषणश्वेन । वृषप्सुना वृषनाभिना रथेन हव्या न: आगत, वृथा ~~॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥॥~~
वीतये, श्येनासो न पक्षिण: ।

~~हे नेता मरुतों~~

अनुवाद - हे नेता मरुतों। सेचन समर्थ अश्वों से युक्त वर्षाकारकरूपसे युक्त एवं वर्ष

के नाभियुक्त रथ पर चढ़कर हव्य के समीप इस प्रकार शीघ्र आओ जिस प्रकार बाज पक्षी आता है ।

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधिबाहुषु ।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥ 1 ॥

अन्वय - एषाम् अञ्जि समानम् रुक्मासः विभ्राजन्ते, बाहुषु अधि ऋष्टयः दविद्युतति ।

अनुवाद - इन मरुतों का रूप प्रकट करने वाला आभरण के समान द्योतित होता है । (इनकी) भुजाओं में तेजस्वी सुनहरे हार विराजते हैं (इनके) हाथों में आयुध चमकते हैं ।

त उग्रासो वृषण: उग्रबाहवो न किष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वो नीकेष्वधि श्रियः ॥ 2 ॥

अन्वय - उग्रासः वृषणः उग्रबाहवः ते तनूषु नकिः येतिरे, वः रथेषु धन्वानि स्थिरा अनीकेष्वधि श्रियः ।

अनुवाद - उग्र, वर्षाकारक एवं शक्तिशाली भुजाओं वाले मरुद्गण अपने शरीर की रक्षा का कोई यत्न नहीं करते । हे मरुतों ! तुम्हारे रथों पर धनुष एवं वाण स्थिर है, सेना के अग्रभाग में तुम्हारी ही विजय होती है ।

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे ।
वयो न पित्र्यं सहः ॥ 3 ॥

अन्वय - अर्णो न सप्रथः त्वेषं शश्वतां येषां नाम एकमित् भुजे, सहः पित्र्यं वयो न ।

अनुवाद - जल के समान सब ओर विस्तृत एवं दीप्तिशाली मरुतों का नाम एक है फिर भी स्तोताओं के भोग के लिए पिता से मिले अन्न की भाँति यथेष्ट है ।

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उपस्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ ।4 ॥

अन्वय - तान् मरुत: वन्दस्व, तान् स्तुहि, हि धुनीनां तेषाम् अराणां चरम:, तत् एषां दाना मह्ना तदेषाम् ।

अनुवाद - हे अन्तरात्मा । उन मरुतों की वन्दना करो, एवं उनकी स्तुति करो, महान् मरुतों की अपेक्षा हम उसी प्रकार छोटे हैं जिस प्रकार किसी महान् स्वामी का हीन सेवक होता है । इनका (मरुतों) का दान महिमा युक्त है ।

सुभग: स व: ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु ।
यो वा नूनमुतासति ॥ ।5 ॥

अन्वय - मरुत: व: ऊतिषु स: सुभग: आस, पूर्वासु व्युष्टिषु उत य: नूनम् असति ।

अनुवाद - हे मरुतों । तुम्हारी रक्षा प्राप्त करके स्तोता प्राचीनकाल में शोभन धन वाला बना था, जो स्तोता है, वह अवश्य तुम्हारा भक्त बनता है ।

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभि: सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥ ।6 ॥

अन्वय - नर: धूतय: यूयं यस्य वा हव्या प्रति वीतये आ गथ, स: द्युम्नै: उत वाजसातिभि: व: सुम्ना अभि नशत् ।

अनुवाद - हे नेता एवं सबको कंपित करने वाले मरुतों । जिस हव्यधारी यजमान का हव्य भोग करने के लिए तुम आते हो, वह तुम्हारे दीप्तिशाली अवनों एवं अन्न के भोगों द्वारा तुम्हारे सुखों को चारों ओर विस्तृत करता है ।

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधस: ।
युवानस्तथेदसत् ॥ ।7 ॥

अन्वय - रुद्रस्य सूनवः असुरस्य वेधसः युवानः दिवः यथा वशन्ति तथेत् असत् ।

अनुवाद - रुद्रपुत्र एवं जल के कर्ता (असुरवेधक) एवं सदा युवा मरुद्गण द्युलोक से आकर हमें चाहें, हमारी स्तुति में इतना प्रभाव हो ।

ते चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीलहुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥ 18 ॥

अन्वय - सुदानवः ये च मरुतः अर्हन्ति, ये मीलहुषः स्मत् चरन्ति, उतः नः आ वस्यसा हृदा युवानः उप आ ववृध्वम् ।

अनुवाद - जो शोभनदान वाले यजमान मरुतों की पूजा करते हैं एवं जो वर्षाकारक मरुतों की हव्य द्वारा सेवा करते हैं हम उन दोनों प्रकार के हैं । हे युवा मरुतों ! हमें धन देने का निश्चय मन में करके हमसे मिलो ।

यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा ।
गाय गाइव चर्कृषत् ॥ 19 ॥

अन्वय - सोभरे यूनः वृष्णः पावकान् नविष्ठया गिरा सु अभि गाय चर्कृषत् गाइव ।

अनुवाद - हे सोभरि ऋषि ! तुम नित्य तरुण वर्षाकारक एवं पवित्रकर्ता मरुतों की स्तुति अतिशय नवीन वाक्यों द्वारा उसी सुन्दर रूप से करो जिस प्रकार किसान अपने बैलों की प्रशंसा करता है ।

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥ 20 ॥

अन्वय - विश्वासु पृत्सु होतृषु ये सहाः सन्ति हव्यः मुष्टिहेव, न वृष्णः चन्द्रान् सुश्रवस्तमान् मरुतः अह गिरा वन्दस्व ।

अनुवाद - मरुद्गण समस्त योद्धाओं द्वारा आह्वान करने पर शत्रुओं को हराते हैं।
हे सौभरि ! इस समय बुलाने योग्य, महल के समान, वर्षाकारक, सब को प्रसन्न करने वाले एवं परम यशस्वी मरुतों की स्तुति शोभन वचनों द्वारा करो।

गावश्चिद्घा समन्यव: सजात्येन मरुत: सबन्धव: ।
रिहते ककुभो मिथ: ॥ 21 ॥

अन्वय - समन्यव: मरुत: गावश्चित् सजात्येन सबन्धव: ककुभ: मिथ: रिहते ।

अनुवाद - हे समान क्रोध वाले मरुतों ! तुम्हारी माता गायें भी समान जाति एवं समान बन्धु वाली होने के कारण दिशाओं के रूप में एक दूसरे को चाटती है।

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस: उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुत: सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥ 22 ॥

अन्वय - नृतव: रुक्मवक्षस: मरुत: मर्तश्चित् व: भ्रातृत्वं आ उप आयति, न: अधि गात, हि व: आपित्वं निध्रुवि सदा अस्ति ।

अनुवाद - हे नृत्य करने वालों एवं वक्षस्थल पर स्वर्णाभूषण धारण करने वाले मरुतों ! मनुष्य भी तुम्हारी मित्रता पाने के लिए तुम्हारे पास आता है। इसलिए तुम हमारे पक्ष के बनकर बोलो। अत्यन्त धारण करने योग्य यज्ञ में तुम्हारा बन्धुत्व सदा वर्तमान रहता है।

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानव: ।
यूयं सखाय: सप्तय: ॥ 23 ॥

अन्वय - सुदानव: सखाय: सप्तय: मरुत: यूयं मारुतस्य भेषजस्य न: आ वहत ।

अनुवाद - हे शोभनदान वाले सखा एवं [सर्पणशील] गतिशील मरुतों ! तुम मरुतों की [अपनी] औषधि को हमारे समीप लाओ।

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥ 24 ॥

अन्वय - याभिः सिन्धुं अवथ, याभिः तूर्वथ, याभिः क्रिविं दशस्यथ । मयोभुवः असच-
द्विषः शिवाभिः ऊतिभिः नः मयः भूत ।

अनुवाद - जिन रक्षा साधनों द्वारा समुद्र की रक्षा करते हो, जिनके द्वारा स्तोताओं के
शत्रुओं को नष्ट करते हो, जिनसे तुमने गोतम को कुआँ दिया था - ऐसे
सुखदायी एवं शत्रुशून्य मरुतों ! सब प्रकार का कल्याण करने वाले उन्हीं रक्षासाधनों द्वारा
हमें सुरक्षा प्रदान करो ।

भूत - √भू प्राप्तौ (प्रापयत् । भावयत, उत्पादयत ।

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ 25 ॥

अन्वय - सुबर्हिषः मरुतः सिन्धौ यत् असिक्न्यां यत् समुद्रेषु यत् पर्वतेषु च भेषजम् अस्ति ।

अनुवाद - हे शोभन कुशवाले मरुतों (शुभकुशासीन मरुतों) सिन्धु में, असिक्नी नदी में,
समुद्रों में तथा पहाड़ों में जो ओषधियाँ हैं -

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ 26 ॥

अन्वय - विश्वं पश्यन्तः तनूषु आ विभृथ, तेन नः अधिवोचत, मरुतः नः आतुरस्य
रपः, क्षमा विहुतं पुन इष्कर्त ।

अनुवाद - वे सब ओषधियाँ पहचानकर हमारे शरीर की चिकित्सा के लिए ले आओ ।
हे मरुतों ! हम लोगों के बाधा वाले अंग को इस प्रकार पुनः ठीक करो
जिससे रोगी का रोग दूर हो जाए ।

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।
युक्ता बह्नी रथानाम् ॥ 1 ॥

अन्वय - मघोनां मरुतां श्रवस्यः माता गौः । रथानाम् बह्नी युक्ता ।

अनुवाद - धनवान् मरुतों की ऐश्वर्य की इच्छा करने वाली माता गाय अपना दूध प्रस्तुत करती है, दो घोड़े रथ में जोते गये हैं ।

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् ॥ 2 ॥

अन्वय - यस्याः उपस्थे विश्वे देवाः व्रता धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् ।

अनुवाद - देवता जिसकी गोद में आरूढ़ होकर सभी देव अपने कर्तव्य पूरे करते हैं । सूर्य और चन्द्रमा भी तदाश्रित रहकर ही क्रियाशील होते हैं ताकि वे दर्शनीय हो सकें ।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
मरुतः सोमपीतये ॥ 3 ॥

अन्वय - तत् न अर्यः विश्वेकारवः सदा सोमपीतये मरुतः आगृणन्ति ।

अनुवाद - इसलिए हमारे सभी सम्माननीय स्तोता मित्र सोमपान के लिए मरुतों का आह्वान करते हैं ।

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥ 4 ॥

अन्वय - अयं सोमो सुतः अस्ति । स्वराजः मरुतः अश्विना अस्य पिबन्ति ।

अनुवाद - यहाँ (इस यज्ञ में) यह सोम तैयार किया गया है । मरुतों और अश्विनों इस राजासोम का पान करो ।

स्वराजः - सा०भ० - स्वयं दीप्यमानाः । स्वतेजसा नान्यदीयेनेत्यर्थः । ~~मैक्स०~~ - ~~has been prepared.~~

पिबन्ति - √पा०पाने, लट् ल० प्र०पु०ब०ब०, सा०भ० पिबतः । वि० - to drink.
अच् aff. पिवत् (वन-वन्त-वत्) drinking E. शतृ प्रत्ययः ।
मैक्स० - (also) drink of.

उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमत. ।
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥

अन्वय - उतो इन्द्रः प्रातः होता इव । अस्य सुतस्य गोमतः जोषम् आ मत्सति ।

अनुवाद - इन्द्र भी प्रातः सवन के समय सोम का आनन्द लेने वाले होता के समान
इस अभिषुत एवं दुग्धमिश्रित सोम का आतृप्ति आनन्द लें ।

जोषम् = सा०भ० पानरूपां सेवां + √जुष् प्रीति सेवनयोः । मैक्स० - to his satisfaction (in this passed juice)

मत्सति -√मदि स्तुत्यादिषु । आभिमुख्येन स्तौति । पद्म । सा०-सोमसेवां कामयते ।

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ७ ॥

अन्वय - मित्र अर्यमा वरुणः पूतस्य ~~त्रिसधस्य~~ त्रिषधस्थस्य जावत तना पिबन्ति ।

अनुवाद - मित्र, अर्यमा वरुण सतत अभिषवणीय, तीनों लोकों में विद्यमान सोम का
दशा-पवित्र से पान करें ।

तना - ततमूर्णास्तुकेनेति तनं दशापवित्रम् । सुपां सुलुक्० इति तृतीया आलादेशः ।
~~मैक्स० - is continually.~~

त्रिसधस्थस्य - सह तिष्ठन्त्यत्रेति सधस्थं स्थानम् । द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदा त्मानि त्रीणि स्थानानि यस्य ते । मैक्स० - dwelling in three abodes.

कदत्विषन्त: सूरयस्तिर आपइव स्त्रिध: ।
अर्षन्ति पूतदक्षस: ॥ 7 ॥

अन्वय - सूरय: आप इव तिर: कत् अत्विषन्त: पूतदक्षससूरय: तिर: आप: इव स्निग्ध: अर्षन्ति ।

अनुवाद - क्या तेजस्वी वीर मरूत् देदीप्यमान हो रहे हैं । सत्सामर्थ्ययुक्त वे शत्रुओं के मध्य जल के समान शीघ्र गमन करते हैं ।

पूतदक्षस: - पूत: दक्ष: यस्य स इति बहुब्रीहि: । सा०मु० शुद्ध बला: सन्त: । वि० - Purified strength; मैक्स० - Endowed with fare strength.

अर्षन्ति - सा०मु० - अस्मदीयं यज्ञं प्रत्यागच्छन्ति । मैक्स० - flare up.

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे ।
त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ 8 ॥

अन्वय - त्मना च महाना दस्मवर्चसां देवानां व: अव: कत् वृणे ।

अनुवाद - हे महान् देवों क्या मैं अब उत्कृष्ट रूप से स्वयं प्रकाशमान तुम्हारी कृपा का चयन करूँ ।

वृणे - √वृङ्. सम्भक्तौ' क्रैयादिक: । सा०मु० - संभजे । मैक्स० Choose (the favour of you)

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिव: ।
मरूत: सोमपीतये ॥ 9 ॥

<u>अन्वय</u> - ये विश्वा पार्थिवानि दिवः रोचना आ पप्रथन, [ते] मरुतः सोमपीतये आगच्छन्तु ।

<u>अनुवाद</u> - सोमपान के लिए जाते हुए मरुत् सम्पूर्ण पृथ्वी एवं द्युलोक के प्रकाश को बिखेरते हैं ।

<u>आ पप्रथन</u> - √प्रथ प्रख्याने' 'ल्युट्' ण्यन्तस्य चङि 'अत्स्मृतदृत्वरप्रथम्रदस्तृस्पशाम्' पा०सू० 7.4.95, इत्यभ्यासस्यादेशः । 'चङ्यन्यतरस्याम्' । इति स्वरेण मध्योदात्तः । वि० spreading मो०वि० - extension, मैक्डा० - scattering. मैक्स० - spread out.

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ 10 ॥

<u>अन्वय</u> - मरुतः पूतदक्षसः दिवः त्यान् वः नु अस्य सोमस्य पीतये हुवे ।

<u>अनुवाद</u> - मरुतों । सम्प्रति मैं सत्सामर्थ्यसम्पन्न तुम्हें द्युलोक से आह्वान करता हूँ ताकि तुम इस यज्ञ में सोमपान कर सको ।

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ 11 ॥

<u>अन्वय</u> - ये मरुतः रोदसी वि तस्तभुः त्यान् नु अस्य सोमस्य पीतये ।

<u>अनुवाद</u> - सम्प्रति मैं द्युलोक एवं पृथ्वीलोक को पूर्णतया धारण करने वाले मरुतों का आह्वान करता हूँ ताकि वे इस यज्ञ में सोमपान कर सकें ।

<u>वितस्तभुः</u> - सा०भा० स्वबलेनैवात्यर्थं स्तब्धौ चक्रुः ।

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ।2 ॥

अन्वय - त्यंनुगिरिष्ठां वृषणं मारुतं गणं । अस्य सोमस्य पीतये हुवे ।

अनुवाद - सम्प्रति मैं पर्वतों में निवास करने वाले पौरुषसम्पन्न मरुतसमूह का आह्वान करता हूँ ताकि वे इस यज्ञ में सोमपान कर सकें ।

अभ्रुप्रुशो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।

सुमारुतं न ब्राह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥ 1 ॥

अन्वय - अभ्रप्रुशो न वाचा वसु प्रुष हविष्मन्तो न यज्ञाः विजानुषः, एषां सुमारुतं ब्राह्माणं गणम् अर्हसे न अस्तोषि शोभसे न ।

अनुवाद - हव्ययुक्त यज्ञ के समान संसार को जन्म देने वाले मरुत् स्तुति से प्रसन्न होकर इस प्रकार धन देते हैं जिस प्रकार मेघ पानी की बूँदे बरसाते हैं । मैं मरुतों के महान् गुण की वास्तविक पूजा नहीं कर पाया हूँ, मैंने मरुतों की शोभा के लिए भी स्तुति नहीं की है ।

प्रुषा - सा० - सिंचन्ति । मैक्स० -(voice)shown; ग्रिफिथ - with their voice. विल्सन - shower (voice).

यज्ञा विजानुषः - वि० - they are the generators (of the world) like sacrifices abounding in libations;

मैक्स० - like sacrifices of a sage, rich in oblations;

ग्रि० - the wise man's liberal sacrifices.

अभ्रप्रुशो - सा० - मेघान्निर्गच्छन्त उदकबिन्दवः । मैक्स० - wealth like cloud-showers ; ग्रि० - from cloud (they) sprinkle treasure;

विल्सन - cloud - shower.

ब्राह्माणमर्हसे - सा० - महान्तं पूजार्थं । मैक्स० - may be worthy of a Brahaman. ग्रि० - merits worship as the god.

विल्सन - may be worthy of a Brahaman.

श्रिये मर्यासो अञ्जीरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।

दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥ 2 ॥

<u>अन्वय</u> - श्रिये मर्यास: अञ्जीन् अकृण्वत् श्रिये । सुमारुतं पूर्वी क्षप: न: अति दिव: पुत्रास: एता: न येतिरे, ते आदित्यास: अक्रा: न वावृधु: ।

<u>अनुवाद</u> - मरुद्‌गण पहले मनुष्य थे और बाद में पुण्य से देव बने । वे अपनी शोभा के लिए आभूषण धारण करते हैं । उन्हें अनेक सेनाएं भी नहीं हरा सकतीं। स्वर्ग के पुत्र ये मरुत् अब दिखाई नहीं देते एवं अदिति के पुत्र ये आक्रमणशील मरुत् नहीं बढ़ते ।

प्र ये दिव: पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्य: ।
पाजस्वन्तो न वीरा: पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यव: ॥ 3 ॥

<u>अन्वय</u> - ये मरुत: दिव: पृथिव्या न बर्हणा त्मना अभ्रान्न सूर्य: रिरिच्रे पाजस्वन्तो न वीरा: पनस्यव: रिशादसो न मर्या: अभिद्यव: ।

<u>अनुवाद</u> - मरुत् अपने शरीर से ही स्वर्ग और धरती की अपेक्षा इस प्रकार अतिरिक्त हो गए हैं, जिस प्रकार बादलों से सूर्य बड़ा है । मरुत् वीर पुरुषों के समान स्तुति चाहने वाले एवं शत्रुघातक मानवों के समान दीप्तियुक्त होते हैं ।

<u>रिरिच्रे</u> - सा० - रिरिचिरे अतिरिक्ता अभवन् स्वशरीरेण । मैक्स० - by their own might seem to have ग्रि० - extend beyond by their own mass . वि० - extend beyond by their strength.

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु व: प्रयस्वन्तो न सत्राच आगत ॥ 4 ॥

<u>अन्वय</u> - अपां न युष्माकं बुध्ने मही न विथुर्यति श्रथर्यति, विश्वप्सु: अयं यज्ञ: व: अर्वाक् सु, प्रयस्वन्तो न सत्राच: आगत ।

<u>अनुवाद</u> - (हे मरुतों) । विस्तृत जलों की धार के समान जिस समय तुम परस्पर टकराते हो, उस समय धरती न भयभीत होती है और न बिखरती है । यह अनेक रूपों वाला यह यज्ञसाधन (हवि) तुम्हारे समीप जाता है, तुम अन्नदाताओं

के समान एकत्र होकर आओ ।

श्रथर्यति - बिखरती है । लट् लकार प्र0पु0ए0ब0 का रूप । सा0 - न विशीर्णा भवति । शीघ्रगतयोऽपि यूयमेना न पीडयथ्वमित्यर्थः । मैक्स0 - to melt; ग्रि0 - shaken; वि0 - to melt.

see. Aurel Mayr, Beitrage aus dem Rigveda - P. 12. "The earth melted", see 11.6.6.

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥ 5 ॥

अन्वय - यूयं धूर्षु रश्मिभिः प्रयुजः परिप्रुषः ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु श्येनासो न स्वयशसः रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः ।

अनुवाद - हे मरुतों ! तुम रथ की रस्सियों से बँधे हुए घोड़ों के समान गतिशील हो, एवं प्रातःकालीन प्रकाश के समान तेजस्वी हो । तुम श्येन पक्षी के समान शत्रुओं का नाश करके यश प्राप्त करते हो तथा पथिकों के समान चारों ओर घूमघूमकर जल वृष्टि करते हो या प्रसिद्ध हो ।

प्रयुजो न - प्रयुक्त हुआ । बंधा हुआ, नियोजित किया हुआ । सा0 - प्रयुक्ता, बद्धा अश्वा इव । मैक्स0 - as drivers. ग्रि0 - like horses.

प्रवासो न प्रसितासः - सा0 - प्रवासिन इव पथिका इव । ग्रि0 - like hovering birds urged forward, scattering rain around.
मैक्स0 - like wells springing forth, you scatter moisture.

प्र यद् बहध्वे मरुतः पराकाद् यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो बसवो राध्यस्या राचिचद् द्वेषः सनुतुर्युयोत ॥ 6 ॥

अन्वय - मरुतः यत् यूयं पराकात् बहध्वे महः संवरणस्य राध्यस्य वस्वः विदानासः वसवः सनुतः द्वेषः आराच्चित् युयोत ।

आराच्चित् युयोत - पृथक्कुरुत । पृथक् कर देते हो । मैक्स0 - keep away also from afar; ग्रि0 - boon that should be granted even from afar.

य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत् स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥ 7 ॥

अन्वय - अध्वरेष्ठा यः मानुषाः यज्ञे उदृचि मरुद्भ्यो न ददाशत् । सः वयः रेवत् सुवीरं दधते, स देवानाम् अपि गोपीथे अस्तु ।

अनुवाद - यज्ञ में बैठने वाला जो यजमान यज्ञ की समाप्ति पर मरुतों को दान करता है, वह अन्न, धन और शोभन पुत्र आदि को प्राप्त (धारण) करता है वह देवों के साथ सोमरस पीता है ।

यज्ञेउदृचि - यज्ञे समाप्ते सति - यज्ञ के समाप्त होने पर, सा0 - ऋक् शब्देन स्तोत्रमुपलक्ष्यते । यज्ञे समाप्तस्तुति के सति संपूर्णे सति । मैक्स0 - to the end of the ceremony ; ग्रि0 - in the rites final duty.

गोपीथे - गो0 पीथम् इति षष्ठी तत्पुरुष तस्मिन् । सोमरस पीना । √पा पाने. मैक्स0 - shall also be in the keeping (of the gods). ग्रि0 - where gods drink soma; Wil. Drink Soma.

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥ 8 ॥

अन्वय - ते हि यज्ञेषु यज्ञियासः ऊमाः आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः रथतूः ते नः मनीषां, महः चकानाः अध्वरे यामन् ।

अनुवाद - यज्ञ के अधिकारी एवं रक्षक मरुत् आकाश के जल से सुख देते हैं । तीव्रगामी

रथ से आकर हमारी रक्षा करते हैं एवं महान् हवि की अभिलाषा करते हुए यज्ञ में आते हैं ।

रथप्रा: - Speeding on cars;

मनीषाम् अवन्तु - सा० - स्तुतिमवन्तु रक्षन्तु । मैक्स० - Protect our prayer.
ग्रिफिथ - Protect our praise.

अध्वरे यामन् - मैक्स० - quik even on their march delighting in our sacrifice ; वि० - speeding on cars delighting in our sacrifice and workship.

10.78

विप्रासो न मन्मभि: स्वाध्यो देवाव्यो 2 न यज्ञै: स्वप्नस: ।
राजानो न चित्रा: सुसंदृश: क्षितीनां न मर्या अरेपस: ॥ 1 ॥

अन्वय - [मरुत:] यागै: विप्रासो न मन्मभि: यज्ञै: देवाव्यो न स्वप्नस: । राजानो न चित्रा: सुसदृश: क्षितीनां मर्या: न अरेपस: [भवन्ति] ।

अनुवाद - [मरुद्गण] यज्ञ में स्तोत्र बोलने वाले मेधावी स्तोताओं के समान शोभन ध्यान वाले, यज्ञों द्वारा देवों को तृप्त करने वाले, यजमानों के समान शोभन कर्म वाले [हैं] व मूर्धाभिषिक्त क्षितिपति के समान पूजनीय, शोभन दर्शनीय निवासी स्वामी [राजा] मनुष्य की भाँति पापरहित होते हैं ।

अरेपस: - पापरहित [सा0 - अपापा: । मैक्स0 - without a blemish ; ग्रि0 - spotless ; विल्सन - stainless ; लैन0-markless; मो0वि0 - speckless.

अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुज: सद्यऊतय: ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठा: सुनीतय: सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥ 2 ॥

अन्वय - [मरुत:] अग्निर्न भ्राजसा रुक्मवक्षस: वातासो न स्वयुज: सद्यऊतय: प्रज्ञातारो न ज्येष्ठा: सुनीतय: सुशर्माणो न सोमा: ऋतं यते ।

अनुवाद - मरुद्गण अग्नि के समान तेज से सुशोभित, स्वर्णालंकारों से युक्त वक्षस्थल वाले, वायु के समान स्वयं मिलने वाले व शीघ्रगामी, उत्तम ज्ञानियों के समान पूज्य तथा शोभन नयन एवं मुख वाले सोम के समान यज्ञ में जाते हैं ।

ऋतं यते - सा0 - यज्ञं गच्छते [यजमानाय गच्छतेति ।

वातासो न स्वयुज: - वायु के समान स्वयं मिलने वाले । मैक्स0 - like self-harnessed winds ; ग्रिफिथ - like tempest blasts self-moving.

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥ 3 ॥

अन्वय - ये मरुतः वातासो न धुनयः जिगत्नवः अग्नीनां न जिह्वाः विरोकिणः
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ।

अनुवाद - जो मरुत् वायु के समान शत्रुओं को कंपित करने वाले व गतिशील अग्नि
की ज्वालाओं के समान सुन्दर मुख वाले, कवचधारी योद्धाओं के समान
शौर्य दिखाने वाले एवं पितरों के वचनों के समान शोभन दानी हैं ।

सुरातयः - शोभन दानी । वि०भ० - राति- उपहार देने वाला । सा० - सुदानाः
ग्रि० -most bounteous givers; मैक्स० - full of blessings;
विल्सन - bounteous; लैन० - givers.

विरोकिणः - वर्मण्वन्तो - वि+√रुच् अत्यन्त तेजस्वी ।

वर्मण्वन्तो - वि० - वर्मन् (कवच) पहनने वाला । मैक्स० - like the tongues
of fires powerful like mailed soldiers.

रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥ 4 ॥

अन्वय - ये (मरुतः) रथानां अराः न सनाभयः जिगीवांसो न शूराः अभिद्यवः वरेयवो
न मर्याः घृतप्रुषः अभिस्वर्तारः अर्कं न सुष्टुभः ।

अनुवाद - जो (मरुद्गण) रथ के पहियों के अरों के समान एक आश्रय से संबन्धित
विजयी शूरों के समान दीप्ति वाले, दानी मानवों के समान जल गिराने
वाले एवं शोभन स्तोत्र गायकों के समान उत्तम शब्द वाले हैं ।

घृतप्रुषो - सा० - उदकसेक्तारः । वृष्टयुदकप्रदा इत्यर्थः । मैक्स० -ghrita like
wooing youths ; ग्रासमन - felt spruhend, zluth aus-
theilend ; लुडविग -spruhend; गेल्डनर - felt spruhend.

अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्य: सुदानव: ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगन्तवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभि: ॥ 5 ॥

अन्वय - ये ॥मरुत:॥ अश्वासो न ज्येष्ठास: आशव: दिधिषवो न रथ्य: सुदानव:
आपो न निम्नै: उद्भि: जिगन्तव: विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभि: ।

अनुवाद - जो ॥मरुत्॥ अश्वों के समान प्रशंसनीय एवं शीघ्रगतिवाले, धन धारण करने
वाले रथस्वामियों के समान शोभनदानयुक्त, सरिताओं के समान जल लेकर
जाने वाले तथा अनेक रूपधारी अंगिरो गोत्रीय ऋषियों के समान सामगान करने वाले
हैं ।

विश्वरूपा - वि०व० सभी प्रकार के रूपों से युक्त, 4.33.8; 5.83.5, सा० -
नानारूपा: । अनेकरूपधारी । मैक्स० - are like the mani-
fold (more special and mythological sense).

ग्रावाणो न सूरय: सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीलय: सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुतत्विषा ॥ 6 ॥

अन्वय - ॥मरुत:॥ सूरय: ग्रावाणो न, सिन्धुमातर:, आदर्दिरासा: अद्रियो न विश्वहा
सुमातर: शिशूला न क्रीलय: उतमहाग्रामो न यामन् त्विषा ।

अनुवाद - ॥मरुद्गण॥ जल बरसाने वाले, मेघों के समान नदियों के निर्माता, ध्वंसक वज्र
के समान सदा शत्रु-नाशक, शोभनमाताओं वाले, शिशुओं के समान क्रीडाशील
एवं विशाल जनसमूह के समान गमन करते समय कांति से युक्त हैं ।

सिन्धुमातर: - सिन्धु माता वाले । सा० - नदी निर्मातार: । मैक्स०- noble
sons of Sindhu.

ग्रावाणो न - सा० - मेघा इव । मैक्स० - Soma-stones; ग्रि० - knowing
vasus ; वि० - Soma-stones.

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥ 7 ॥

अन्वय - [ये मरुतः] उषसां केतवः न, अध्वरश्रियः, शुभंयवो न अञ्जिभिः व्यश्वितन्
सिन्धवो न ययियः भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ।

अनुवाद - [जो मरुद्गण] उषाओं की किरणों के समान, यज्ञ का आश्रय लेने वाले कल्याण की कामना करने वाले वरों के समान, आभूषणों से सुशोभित दीप्ति वाले हैं । नदियों के समान गतिशील एवं चमकीले आयुधों वाले, तथा दूर जाने वाले पथिकों के समान दूर देश तक जाने वाले हैं ।

केतवो ऽध्वरश्रियः - सा० - रश्मयः यज्ञस्याश्रयितारो भवन्ति । ग्रि० - engaged in the rite's final duty ; वि० - engaged in the rite's final duty ; मैक्स० - firm in his sacrifice.

व्यश्वितन् - श्विता वर्णे लङि रूपम् । सा० - दीप्यन्ते । मैक्स० - delighting (in our sacrifice) ; ग्रि० - delighting (in our sacrifice).

ममिरे - लडर्थे लिट् 'छन्दसि लङ्-लुङ्-लिटः' सा० - परिच्छिन्दन्ति ।

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन् मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥ 8 ॥

अन्वय - देवाः मरुतः वावृधानाः स्तोतॄन् न सुभागान् सुरत्नान् कृणुत । सख्यस्य स्तोत्रस्य अधिगात वः सनाद्धि रत्नधेयानि सन्ति ।

अनुवाद - हे देव मरुतों । तुम स्तुतियों से बढ़कर हम स्तुति करने वाले को [हमें] शोभन धन रत्नों से युक्त करो । [हमारे] सखा रूप स्तोत्र को स्वीकार करो । तुम सदा से हमें रत्न दान करते आये हो ।

# चतुर्थ अध्याय



## व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ

अम: - √अम गत्यादिषु ।भ्वा0। धातोर्भावे घ् । नोदात्तोपदेश: सूत्र से वृद्धि प्रतिषेध, पु0पु0ए0व0, घर, गृह, आवास, 5.63.3

अमवती -√अम गत्यादिषु अम रोगे वाधातो हलश्चे: व्यधिकरणे घ् + मतुप् । ।स्त्री0। पु0पु0ए0व0 । ज्ञानयुक्त, 5.87.5

अमवन्त: - बलवान्, पुं0प्र0पु0ब0व0, 1.38.7

अमिता: - ।वि0पु0। √माङ् माने + क्त, न् , पुं0प्र0पु0ब0व0, 5.52.2

अमुग्ध्वम् -√मुच्लृ मोक्षणे ।तुदा0। लुङ् । "च्लेर्लुक्" आत्मने पद च व्यत्ययेन । मुक्त कर दिया, म0पु0 ब0व0 ।

अमृत- ।वि0। विनाश रहित, मृत्युरहित, प्र0पु0 ए0व0 । 1.38.4, 5.57.5, 1.35.2, 2.95.5, 5.57.5, 4.48.3, 10.90.3, 121.2, 1.35.6, 6.61.3, 10.139.6 [illegible handwritten note]

अमृतत्व - √मृङ् प्राणत्यागे क्त भाव से त्व प्रत्यय + न् समास अथवा "मतिबुद्धि" सूत्रेण चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् वर्तमाने क्त: । नाशरहित पदार्थ । नपुं0 स0ए0व0, 5.54.4

अमृतस्य - अमृत का । नपु0ष0ए0व, 5.58.1

अमृध्रम् - ।वि0पु0। अहिंस्य । न् + मृधु उन्दने + भ्वा0 रक् । न मर्धति नोनतितम् ।मेघम्।, द्वि0ए0व0, 1.37.11

अया -√इण् गतौ ।अदा0। एरच् + अच् + स्त्रियां टाप् । एति जानाति सर्वां विधा यया प्रज्ञया तया । ।वि0। इदम् ।अ0। इस प्रकार । ।सर्व0। स्त्री0 तृ0 ए0व0, 1.87.4, 1.143.6,√या प्रापणे ।अदा0। लङ् म0पु0 ए0व0 । प्राप्नुवन्त. स्तेना: = चौर: ।

अयास: -√अय् गतौ ।भ्वा0। + अच् प्र0ब0व0, असु आगम । थकानरहित, निश्चिन्त। अयास: अयना: निघं0 2.7, 6.66.5, 4.6.10, 7.58.2, 3.18.2

अयास: - √अय् गतौ ﴾भ्वा0﴿ + अच् पु0ब0व0; असु आगम । थकानरहित, निश्चिन्त, अयास: अयना: निघं0 2.7, 6.66.5, 4.6.10, 5.18.2, 1.154.6, 3.54.12, 1.64.11; 7.58.2,

अयासिष्ट - √या प्रापणे ﴾अदा0﴿ लुङ् । म0पु0ब0व0 5.58.6.

अयुग्ध्वम् ﴾क्रि0﴿ √युजिर् योगे ﴾रुधा0﴿ आ0प0 लुङि0 । नियोजित किया । म0पु0 ब0व0 5.57.3,

अयोदंष्ट्रान -√दंश दशने दाम्नीशस:, अ03.2.182 सूत्र से करणे ष्ट्रन् प्रत्यय से दंष्ट्रा= दशनम् । एनयो: समास: अयोदंष्ट्रायाँ दंशनानि येषु तान् । ﴾वि0पु0﴿ । लोहदन्तयुक्त । पु0द्वि0 ब0व0 1.88.5

अरक्ष: -√रक्ष् पालने - असुन् । नञ्समास । अरक्षणीय नपु0प्र0ए0व0 या द्वि0ए0व0 5.87.9.

अरथी: - न पूर्वक्रथशब्दात् 'छन्दसीवनियौ' अ0 5.2.109 वार्तिक से मत्वर्थे ई प्रत्यय। रथविहीन । पु0प्र0ए0व0 ।

अरमतिम् - ﴾स्त्री﴿ √रमु क्रीडायाम् ﴾भ्वा0﴿ + अति प्रत्यय । नञ्समास अरमणीय। ﴾वि0 अर + मति﴿ विपक्षण: प्रज्ञावान, द्वि0ए0व0 5.54.6, 5.43.6, 2.38.4,

अररुषे - अलम् + √रुष् हिंसार्थे + क्विप् । दुष्ट जनों पर रोष के लिए । ﴾पु0﴿ च0 ए0व0 । 7.56.19.

अराधस: - √राधू संसिद्धौ ﴾स्वा0﴿ असुन् । नञ्समास । अधनात् विनाधन द्वारा । नपुं0ष0ए0व0 व्यत्यय से तृतीया ए0व0 के लिए प्रयुक्त ।

अराम - √ऋ गतिप्रापणयो: ﴾भ्वा0﴿ जायें । लोट्उ0पु0ब0व0 7.56.15.

अरावा - न देने वाला, न बोलने वाला, नञ् + √रा दाने + वनिप् । अथवा नञ् + √रु शब्दे + घञ्, पु0प्र0ए0व0 ।

अरासत - रासन्ते - दे दिया । √रा दाने लङ् प्र०पु०ए०व० 1.166.3, रासति - 
दानकर्मा निघं० 3.20

अरिष्टग्रामा: - अहिंसक ग्राम हैं जो ꞉मरुत: =विद्वज्जना:꞉ । अरिष्ट = √रिष् 
हिंसार्थे + क्त + नञ् समास चारिष्ट । ग्रामशब्द समूह के अर्थ में ग्रस 
'ग्रेसेरा च' उ० 1.143 सूत्र से मन् प्रत्यय । पु०प्र०ब०व० । 1.166.6 ।

अरुणेभि: - रक्तवर्ण ꞉अश्वों꞉ के द्वारा । √ऋ गति प्रापणयो: उणादिक् उनच् प्रत्यय, 
पु०तृ०ब०व० 1.88.2.

अरुणाश्वा: - लालरंग के घोड़े । अश्व: = √अशूङ् व्याप्तौ स्वा० अशुप्रुषिल टि० ' 
उ० 1.151 सूत्र से क्वन्, पश्चात् समास । पु०प्र०ब०व० 5.57.4 ।

अरुष: - अहिंसक होवें । √रुष् हिंसार्थे कर्तरि क: । नञ् समास । ऋगतिप्रापणयो- 
र्धातोर्वा औणादिक उसि: । पु०प्र०ए०व० 5.56.7.

अरुषी: - ꞉वि० स० स्त्री०꞉ लाल रंग वाली, रक्तगुणविशिष्ट ज्वाला सदृश वड़वा 
꞉घोड़ियां ꞉वि꞉ ताम्र वर्ण, आरक्त । स्त्रियां ङीप् स्त्री० द्वि०ब०व० । 
5.56.6.

अरेजन्त - ꞉क्रि०꞉ कांप उठे । √रेजृ कम्पने; लट्यर्थे लङ्, प्र०पु०ब०व० 1.38.10 ।

अरेणव: - धूलरहित, √री गतिरोषणयो: ꞉क्या०꞉ धातोर्णु: प्रत्यय । नञ् समास । 
पु०प्र०ब०व० ।

अरेपस: - अनपराधिन: ꞉परमेश्वरभक्त꞉ : निर्दोष, निरपराध । वि० रेपस्, रिप् 
दुख देना; पुं०प्र०ब०व० 5.57.4, 5.61.14, 10.78.1.

असंप्रयुग्ध्वम् - ꞉क्रि०꞉ संयोजित किया, ꞉आ०प्र०प्र०पु०ब०व० 1.85.5, 5.55.6.

अर्कम् - चारण को, स्तोता को, सूक्त - स्तोत्र को, सूर्य को । √अर्च पूजायाम् ꞉भ्वा०꞉ 
कृदाधारार्चिकलिभ्य: क:', उणा० 3.40, सूत्र से क:, पु० ऋच् = अर्च - 
गाना, पु०द्वि०ए०व० 5.66.9.

अर्चत्रय: - अर्चका: = ॥मरुत: = सज्जना:॥ । √अर्च पूजायाम् ॥भ्वा0॥ अत्रिन् प्रत्यय ।
पु0पु0ब0व0 6.66.10.

अर्चिन: - सत्कमार्र: ॥सत्कारणीय मरूद्गण॥, पु0पु0ब0व0 2.34.1.

अर्णसम् -लहरदार जल ॥न0 अर्णस्॥ जल को । √ॠ गतिप्रापणयो: ॥भ्वा0॥ 'उदके नुट् च' उ0 4.196 सूत्र से असुन् होकर नु का आगम, सकार लोप । पुं0द्वि0 ए0व0 5.54.6.

अर्यमण: - यमराज प्रियाप्रिय को वे त्यागकर न्याय में वर्तमान ॥ईश्वर॥ आयाभि0 1.18. ॠ0 1.6.17.1; न्यायकारी दयालु ॥ईश्वर॥ सं0वि0 134. 10.84. 43, न्यायकर्ता ॥विद्वान्॥ /ॠ गति प्रापणयो: इस धातु से यत् प्रत्यय करने से अर्य्य शब्द सिद्ध होता है और अर्य पूर्वक /माङ् माने धातु से कनिन् प्रत्यय होने से अर्यमा शब्द सिद्ध होता है स0प्र0 20.36.9, 5.54.8.

अर्वन्तम् - प्राप्त करते हुए । /ॠगति-प्रापणयो: ॥भ्वा0॥ वनिप् प्रत्यय । अर्णवस्त्र-सावन :' सूत्र से तृ आदेश । 'अवद्यावमाद्यवार्वरेफा: कुत्सिते' उ0 5.54 सूत्र से वन् प्रत्यय, निपात पु0द्वि0ए0व0 ।

अर्हन्त: - योग्यता प्राप्त ॥ग्रहण॥ करते हुए । अर्ह पूजायाम् ॥भ्वा0॥ 'अर्ह: प्रशंसायाम्' अ0 3.2.133 सूत्र से पूजायां शतृ प्रत्यय; पु0प्र0ए0व0 5.52.5.

अवक्रन्दन्तु - बुलाओ, रुलाओ । अव + √क्रदि आह्वाने रोदने च ॥भ्वा0॥ लोट् प्र0पु0ब0व0 5.58.6.

अवतम् - कूप, कुंआ, अव रक्षणादिषु ॥भ्वा0॥ अच् प्रत्यय, रक्षा से युक्त निम्नदेशस्थम् ॥उत्सं = कूपम् = निम्न स्थान में स्थित - कुंआ, कूप, मेघ का मुख्य भाग - 2.24.4, पु0द्वि0ए0व0 1.85.10,11. अवत: कूपनाम निघं0 3.23 ।

अवद्यम् - निन्दितकर्म ॥न0॥ त्रुटि, दोष, बुराई । न ~~[illegible]~~ उपपद /वद् व्यक्तायां वाचि धातोर्गर्ह्यार्थे अवद्यपण्य' सूत्र से यत् । ॥नपुं0॥ प्र0ए0व0 । 5.53.14.

अवद्यानि - निन्दित कर्मों के द्वारा । नपुं० द्वि०ब०व० ।

अवनयः - पृथ्वी, भूमि, मही, √अव रक्षणादिषु 'अर्तिसृधृ' उ० 2.102 सूत्र से निः प्रत्यय । ‡स्त्री०‡ प्र०ब०व० ।

अवरम् - प्राचीन, कार्य को, समीपतर को, नीचतर को, पु०द्वि०ए०व० 1.168.6, 1.155.3.

अवसः - रक्षादेः - रक्षा देने के लिए । √अव रक्षणगतिकान्तिप्रीत्यादिषु ‡भ्वा०‡; अत्यविचमि०' उ० 3.117 सूत्र से अच् । नपुं०पं०ए०व० । 5.56.6.

अवस्थात - अवतिष्ठिति हुए ।√अव + ष्ठा गतिनिवृत्तौ ‡भ्वा०‡ लुङ् प्र०पु०ए० व० 5.53.8.

अवंशात् - विना संतान से । नञ् वंशयोः समासः । वंशः = टुवमु उद्गिरणे ‡भ्वा०‡ + शः प्रत्यय । पु० पं०ए०व० । 7.58.1.

अविथुराः - कम्पभयरहिताः कम्प व भय से रहित । √विथृ याचने ‡भ्वा०‡ बाहुलकात् कुरच् प्रत्यय, नञ् समास । पु०प्र०ब०व० 1.87.1

अवृण्वत - सवोकुर्वन्तु वरण करो । /वृञ् वरणे लोट म०पु०ब०व० 2.34.1.

अशात - प्राप्नुत प्राप्त करो ।√अशू इङ् व्याप्तौ संघाते च ‡स्वा०‡ पर०प० लोट० विकरणव्यत्ययेन श्म्, म०पु०ब०व० ।

अश्नुथ - प्राप्नुथ प्राप्त करो । लोट् म०पु०ब०व० 5.5*. 10. अश्नुते व्यतिकर्मा निघं० 2.18.

अश्वपर्णैः - अग्न्यादीनामश्वानां पवनैः सह वर्तमानैः ‡रथेभिः‡ बहुब्रीहि समास‡ अश्व √पा रक्षणे + क्त प्रत्यय, पर्ण -/पृ पालन पूरणयोः धावृवस्यज्यतिभ्यो न' उ० 3.6 सूत्र से न प्रत्यय । पु०तृ०ब०व० ।

अश्वैः - आशुकारिभिः ‡जनैः‡ घोड़ों के द्वारा ।√अशूङ् व्याप्तौ ‡स्वा०‡ अशु-पूषि०' उ० 1.151 सूत्र से क्वन् । पु०तृ०ए०व० 5.55.1, 1.88.2, 4.51.7, 7.71.3.

अश्वयुजः - जो घोड़े वेगपूर्वक चलते हैं। अश्वोपपदे √युजिर् योगे + क्विप् प्रत्यय।
पु०प्र०ब०व० 5.54.2

अश्वावत् - अनेक प्रकार के वेगवान अश्वों से युक्त, बहुत से अश्वों से युक्त। 'मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ' इति अश्वशब्दस्य मतौ दीर्घ, पु०प्र०ए०व० 5.57.7
1.48.12

अस्ति - है, विद्यमान है। √अस् भुवि ‹अदा०› लट् प्र०पु०ए०व०। ‹क्रि०› हो लट् म० पु०ए०व० तिनि।

असि - ‹क्रि०› हो लट् म०पु०ए०व० तिनि। 1.87.4, 2.12.15, 2.33.2.

असिंचन् - सिंचित किये। √षिंच् क्षरणे ‹तुदा०› लङ् प्र०पु०ब०व० 'शेमुचादीनाम्' इति नुमागमः 1.85.11

असृक्षत - √सृज् विसर्गे ‹तुदा०› लुङ् क्सः प्रत्यय, म०पु०ब०व०।

अस्तभायत् - बन्धयति - बाँधता है। √ष्टभु स्तम्भे ‹भ्वा०› धातोर्णिचि लङि. प्र०पु० ए०व०।

अस्पृध्रन् - √स्पर्द्ध संघर्षे ‹भ्वा०› लङ् प्र०पु०ब०व० 6,66.11, 7.56.3

अस्यथ - प्रक्षिपत, फेंको, फेंकते हो। √असु क्षेपणे ‹दिवा०› लोट् म०पु०ब०व० 1.172.2,
5.56.6

अस्वरन् - शब्द किये। √स्वृ शब्दोपतापयोः ‹भ्वा०› लङ् प्र०पु०ब०व० 5.54.8

अहन् - मारा - लङ् म०पु०ए०व० 1.85.9

अहम् - अस्मद् सर्व०प्र०ए०व० 1.171.1

अहिभानवः - अहिर्मेघवाची। अहेर्मेघस्य प्रकाशकाः ‹वायवः› भानुः √भा दीप्तौ ‹अदा०› 'दाभाभ्यां नुः' 3.3.32 से नुः प्रत्यय प्र०पु०ए०व०।

अहिमन्यवः - अहि = √अह् व्याप्तौ (स्वा०) बाहुलकाद् "इ" प्रत्यय अथवा 'आङि श्रिहनिभ्यां हृस्वश्च' उ० 4.138 सूत्र से आङ् पूर्वस्य हन्तेरिण् प्रत्ययः । मन्यु = √मन् ज्ञाने (दिवा०) 'यजिमनि०' उ० 3.20 सूत्र से युच् । तयोः समासः । पु० प्र०ए०व० 1.64.8

आ - सर्वतः, चारों ओर, उपमार्थे दृश्यते नि० 3.26, 1.86.5

आकीरिणः - (सं०श०) चारों ओर विक्षेपित करने वाले । आङ् +√कृ विक्षेपे (तुदा०) धातोर्बाहुलकाद् इनच् । समन्ताद् विक्षेपकाः प्र०पु०ब०व० 5.52.12

आक्षेति - आङ् +√क्षि निवासगत्योः लट् प्र०पु०ए०व० विकरणलुक् 1.64.13

आगन्तन - गये । √गम् गमने आ०प० लुङ् प्र०पु०ब०व० 2.34.5, 5.57.1

आजिगातन - आङ् +√गा स्तुतौ (जु०) लडर्थे लोट् प्र०पु०ब०व० 5.59.6

आदभत् -√अद् भक्षणे लङ् प्र०पु०ए०व० 7.56.15

आधृषे - आङ् +√ञिधृषा प्रागल्भ्ये (स्वा०) क्विप् । तुमुर्थे क्से प्रत्यय 1.39.4, 5.87.2

आनज्रे - √अच् गतिक्षेपणयोः । शत्रु पर फेंकते हैं । लिट् प्र०पु०ब०व० 1.87.1

आन्वसृक्षत - आङ् + अनु +√सृज् विसर्गे, च्लेः क्सादेशः । लुङ् म०पु०ब०व०, 5.52.6

आपथयः - आङ् + पथिन् पदयोः बहुव्रीहिः पु०प्र०ब०व० 5.52.10

आपथ्य : - पथि भवः पथ्यः, सर्वतः पथ्य आपथ्यः । आङ् पथ्य पदयोः समास । पु०प्र०ए०व० 1.64.11

आपपृथे - चारों ओर प्रख्यापित होता है । आङ् +√प्रथ् प्रख्याने (भ्वा०) लिट् प्र०पु० ए०व० 5.57.7

आपय: -√आप्लृ व्याप्तौ (स्वा०) 'इणजादिभ्यः' अ० 3.3.108, वार्तिक से इ प्रत्यय लोट् म०पु०ए०व० 5.53.2,

आपानम् - व्यापक, पु०द्वि०ए०व० 2.34.7, आपानम् व्याप्तिकर्म निघं० 2.18

आपृच्छ्यम् - चारों ओर पूँछना, जाँचना, ज्ञात करना । आङ्+√प्रच्छ ज्ञीप्सायाम् (तुदा०) + क्यप् । लङ् उ०पु०ए०व० 1.64.13

आभूषेण्यम् - अलङ्कृत होना । आङ् +√भूष् अलंकारे (भ्वा०) कृत्यार्थे 'तवैकेन्केन्यत्वन:' अ० 3.4.14 इति केन्य प्रत्यय । 5.55.4

आभृत: - सब प्रकार से पोषित । आङ् +√भृञ् भरणे (भ्वा०) + क्त । प्र०पु०ए०व० 5.58.11

आयन् - आङ् +√इण् गतौ लङ् प्र०पु०ब०व० 7.56.12, 6.7.4, 7.5.3, 1.163.9, 3.33.7

आयुयुज्रे - चतुर्दिक नियोजित करते हैं । आङ् + √युजिर् योगे (रुधा०) लिट् व्यत्यय से लट् के अर्थ में प्रयुक्त, प्र०पु०ब०व० 5.87.7.

आयुधा: - आयुध नपुं० प्र०ब०व० 1.39.2,

आर्चत् - सब प्रकार से अर्चना करना । अङ् + √अर्च पूजायाम् (भ्वा०) लङ् प्र०पु०ए० व० 5.33.9, 5.54.1,

आवत् - आङ् +√अव् रक्षणगतिकान्तिप्रात्यर्थे, लङ् प्र०पु०ए०व० 1.85.7,

आवदत - उपदेश करो । आङ् +√वद व्यक्तायां वाचि० लोट् म०पु०ब०व० 1.64.9,

आवृत: - आङ्+√वृञ्+क्त ~~उपसर्ग वृ आवाङ~~, आभिमुख्येन, 1.87.4,

आवावृधु: - चतुर्दिक बढ़ते हैं । आङ् +√वृधु वृद्धौ (भ्वा०) लिट् प्र०पु०ब०व० 5.53.3,

आविराविरासे - प्रकट रूप में चारों ओर से आवृत्त रखना । आविरूपपदे आङ् + √वस् आच्छादने (अदा०) लिट् प्र०पु०ए०व० 7.58.5,

आवीत - √अव् रक्षणगत्यादिषु (भ्वा०) धातोराङ् पूर्वात् लुङ् प्र०पु०ए०व० 7.20.2,

आवृणे - आङ्+ √वृञ् वरणे (क्रया०) लट् उ०पु०ए०व० 7.59.11,

आशस: - आङ् पूर्वात् √शंसु स्तुतौ ' कर्तरि क्विप्' आशंसन्ति ते (सज्जना:) पु०प्र०ब०व० 5.56.2,

आशुश्राव: - आङ् पूर्वात्/श्रु श्रवणे लिट् प्र0पु0ब0व0 5.53.2,

आश्वश्वा: - आशु - अश्वपदयोर्बहुब्रीहि: । तीव्रगति से गमनकरने वाले घोड़े हैं जो - पु0प्र0ब0व0 5.58.1,

आसीत् - ‡क्रि0‡ 'था' ./अस् भुवि, लङ् प्र0पु0ए0व0 तिनि, 1.165.6, 10.121.1, 90, 6, 12,14,

आसीदत् - आङ् +/षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु लङ् प्र0पु0ए0व0 शिरति श्री आदेश: ।

आह्लादनीवृत्त: - आह्लादनी = आङ् +/ह्लाद अव्यक्ते शब्दे ‡भ्वा0‡ बाहुलकाद् उनत् प्रत्यय । स्त्रियां ङीप् । वृत्त: -/वृञ् वरणे ‡स्वा0‡ + क्त तयो समास: ।

आहिहत्ये - शत्रु नाश के समय में या अवसर पर पु0स0ए0व0

अंसयो: - ‡पु0‡ भुजाओं का मूल, भुजदण्डमूलयो: प्र0द्वि0व0 ।./अम् गत्यादिषु ‡भ्वा0‡ 'अमे: सन्' उ0 5.21 सूत्र से सन् प्रत्यय, पु0 षष्ठी वा सप्तमी द्वि0व0 5.57.6,

अंसेषु - भुजाओं के मूल में, अधिकाधिक पराक्रम में । पु0स0ब0व0 5.54.11,

अंहयु: - अहमिति शब्दान्तरमहंकारे मैं जिसमें विद्यमान हूँ - वह मनुष्य, लोग । अहम् शब्द से 'अहंशुभमोर्युस्' अ0 5.5.140 सूत्र से मत्वर्थे युस् 1.156.7,

इत -/इण् गतौ ‡अदा0‡ लोट् म0पु0ब0व0 7.58.3,

इति - अनेन प्रकारेण, इस प्रकार, 1.37.10, 7.61.4, 10.34.6,

इत्थ - ‡क्रि0वि0‡ इस प्रकार से इदम् - इत्थ 1.39.1,

इत्था - इदम् सर्वनाम्न: प्रकार वचने 'थाल् हेतौ च' छन्दसि' अ0 5.3.36 सूत्र से 'था' प्रत्यय 'एतेतौ च रथो:' इति थकारादौ प्रत्यये परत इदम् 'इत्' आदेश: 8.94.15, 8.7.30.

इन्द्रम् - इन्द्र को । पु0द्वि0ए0व0, 1.87.5, 8.94.5, 8.7.24, 30,

इन्द्रवन्त: - परमैश्वर्ययुक्ता: ‡पितर:‡ पु0प्र0ब0व0 1.85.2, 4.33.3,

इन्द्रवन्तः - परमैश्वर्ययुक्ताः ॥पितरः॥ पु०प्र०ब०व० 1.85.2, 4.33.3,

इन्द्रियम् - सुशिक्षितम् मनः, चित्तम्, इन्द्रसम्बन्धी, इन्द्र का विशिष्ट सामर्थ्य 1.85.2,

इधाना - √इन्धी दीप्तौ ॥रुधा०॥ + शानच्, प्रदीप्त, प्रकाशमान, पु०प्र०ब०व० ।
6.66.2,

इन्धन्वभिः - 2 √इन्धी दीप्तौ ॥रुधा०॥ धातोर्वनिप् । प्रदीपिकाभिः ॥धेनुभिः = वाग्भिः॥ स्त्री०तृ०ब०व० 2.34.5,

इयानाः - प्राप्नुवन्तः । √इङ् गतौ ॥दिवा०॥ लिट कानच् । पु०प्र०ब०व० 2.34.14,

इरी - प्रेरकः ॥एवयामरुत = विज्ञानवान मनुष्य॥ पु०ए०व० 5.87.3,

इषतो - सं०पु० अन्न, इष् इद् = इष् = अद् अं इद् - इड् - इला 'अन्नम्, तु अली 'पक्षीपान्न सदृश' 1.39.8,

इषुम् - वाण को, प्राप्त साधन के √इष् गतौ 'इषे किच्च' उ० 1.13 सूत्र से उ प्रत्यय + किच्च 1.39.10, 5.87,3,

इषुमन्तः - वाणवन्त. पु०प्र०ब०व० 5.57.2,

ईयन्ते - प्राप्त करते हैं । √इण् गतौ आ०प० लट्० प्र०पु०ब०व० । 5.55.1,

ईम - जल, ईम उदकनाम निघं० 1.12, 7.56.1,

ईरते - प्राप्नुवन्ति - प्राप्त करते हैं । √ईर् गतौ कम्पने च, लट् प्र०पु०ब०व० 8.7.17, 1.187.5,

ईशानकृत् - जगदीश्वरः, वायवः, √ईश् ऐश्वर्ये + शानच् + क्विप् पु०ए०व० 1.64.5,

ईशिरे - ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं । √ईश् ऐश्वर्ये लट् प्र०पु०ब०व० 5.58.1,

ईषन्ते - हिन्सन्ति - हिंसित करते हैं । √ईष् गतिहिंसादर्शनेषु ॥भ्वा०॥ आ०प० लट्० प्र० पु०ब०व० 6.66.4,

उक्ष - ॥क्रि०॥ बढ़ना, फल सम्पन्न होना, 1.85.2, 5.57.8,

उक्षण: - √उक्ष् + ल्युट् , छिड़काव, छींटे देकर अभिमंत्रित करना, ‖पु0‖ द्वि0ब0व0 5.52.3, वशिष्ठमंत्रोक्षणजातप्रभावात् - रघु0 5.27, जल प्रदान करते हुए ‖सेचका:‖ उक्ष् सेचने + कनिन् ।

उक्षमाण: - सिंचित करते हुए ‖मेघ‖ √उक्ष् सेचने + शानच् ‖पु0‖ प्र0ए0व0 5.57.8, 58.8, 6.66.4,

उक्षन्ते - सेवा करते हैं । √उक्ष् सेचने । लट् प्र0पु0ब0व0 5.59.1,

उग्र: - तेजस्वी, प्रतापी, तीक्ष्ण स्वभाव, क्रूर स्वभाव, भीषण, हिंस्र, जंगली, भीषण, प्रचण्ड । √उच् समवाये + रन् । ‖पु0‖ प्र0ए0व0 5.57.3,

उग्रा: - ‖पु0‖ प्र0ब0व0 । ‖वि0 उच् + रन् गन्पान्तादेश:‖

उग्रान् - पु0द्वि0ब0व0 6.66.5,

उत्तमम् - सर्वोत्कृष्ट ‖सूर्य = ईश्वर‖ ‖35.14‖ उत् शब्दाद् अतिशायने तमप् 5.59.3,

उत्सम् - उन्नति जलेन √उन्द + स, किच्च नलोप, ‖पुं0‖ द्वि0ए0व0 झरना, फौव्वारा, जल को । 5.52.12, 8.7.16.

उद् - ‖क्रि0‖ भिगोना, गीला करना, 1.85.5, 5.83.8.

उदन्यु - ‖वि0‖ उदन्य - जल की इच्छा करना, उदन से नाम धातु, जल का याचक, तृषार्त, 5.57.1, पु0प्र0ए0व0 ।

उदश्नवत - उद् + √अश् फेंकना, उठाना, सीधा बड़ा करने के समान बाहर निकाल देना । लङ् म0पु0ब0व0 ।

उप - सामीप्ये 8.7.11, 27.

उपमास: - प्र0पु0ब0व0 5.58.5, उप इत्युपजनम् निघं0 1.3,

उब्ज् - ‖क्रि0‖ जोर से बाहर निकालना 1.85.9, 2.23.18,

उद्भिद: - उद्भिद् + क‖ फूटने वाला, उगने वाला ‖पु0‖ प्र0ब0व0 5.59.6.

उभे - ॥सर्व वि०॥ केवल द्वि०व० में प्रयुक्त ॥उ + भक्॥ दोनों । उभौ तौ न विजानीत:- भग० 2.19, कु० 4.43, मनु० 2.14, शि० 3.8,

उभये - ॥सर्व०वि०॥ ॥स्त्री०-यी॥ /उभ् + अयट् । यद्यपि अर्थ की दृष्टि से यह शब्द द्विवचनान्त है परन्तु इसका प्रयोग ए०व० और ब०व० में ही होता है । कुछ वैयाकरणों के मतानुसार द्वि०व० में 5.59.7.

उरु - ॥वि०॥ विस्तृत विस्तीर्ण 1.85.6, 5.1.11, 10.17.2.

उशना - सब प्रकार से हित कामना वाला = परमेश्वर । /वश् कान्तौ 'वशे कनसि' उ० 4.239 सूत्र से कनसि । पु०प्र०व० 8.7.26.

ऊर्मा: - पु०प्र०ब०व० 5.52.9,

ऊतये - व्यवहार सिद्धि में प्रवेश के लिए, विद्या प्राप्ति के लिए रक्षा के लिए । /अव रक्षणे 'ऊतियूति' अ० 3.3.97, + क्तिन् । ॥स्त्री०॥ च०ए०व० ।

ऊध: - पयोधिकरणम् , जलस्थानम् , एतमा धार, /वह् प्रापणे + औणा० + असुन् ॥न०॥ प्र०द्वि०ए०व० 5.66.1, 2.34.10, 7.56.4, 2.14.10.

ऋक्वभि: - प्रशंसनीय, स्तुतिपात्र । /ऋच् प्रातिOमत्वर्थे 'छन्दसीवनिपौ' अ० 5.2.109 सूत्र से वनिप् । पु० तृ०ब०व० 1.87.6, 5.52.1,

ऋक्षौ - सूर्य चन्द्रादि नक्षत्र लोक में । /ऋषि गतौ ॥तुदा०॥ 'ऋषेर्जातौ' उ० 3.67 सूत्र से स: प्रत्यय । स०ए०व० 5.56.3,

ऋजिप्यास: - ऋजि उपपदे./ओप्यायी वृद्धौ + क: । प्रज्ञावान् राजपुरुष: पु०प्र०ब०व० 2.34.4,

ऋतम् - ॥न०॥ जगत का आधारभूत तत्व, सत्य, यज्ञ । प्र०ए०व० ब्रह्म, 10.78.20 5.80.1, 9.69.3, 10.34.12, 5.59.1,

ऋतज्ञा: - जो ऋत को, सत्य को जानते हैं वे - ऋतज्ञा: विद्वान, ॥पु०॥ प्र०ब०व० 5.57.8, 58.8, ऋत + /ज्ञा [illegible handwritten note]

ऋभुक्षण: - महान्त, महान, ॥पु0॥ प्र0ब0व0 8.7.12,

ऋभ्वस: - ऋभूपपदे असगतिदीप्त्यादानेषु ॥भ्वा0॥ + कर्तरि + क: । ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.52.8,

ऋष्टय: - ज्ञानवन्त: ॥मरुत:॥ प्रापक, /ऋषि गतौ + क्तिन् पु0प्र0ब0व0 5.54.11, 5.57.6

ऋष्टिविद्युत: - मेधावीजन । ऋष्टि-विद्युत पदयोः समास0 ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.52.13,

ऋष्टिषु - प्राप्तिषु, /ऋषी गतौ + क्तिन् । ॥स्त्री0॥ स0ब0व0 1.166.4.

ऋष्वा: - वेधस - मेधावीजन, ऋषीगतौ + औणा0 + वन् + किच्च । ॥पु0॥ प्र0ब0व0। 5.52.6, 12.

ऋषे - /ऋषी गतौ 'इगुपधात् कित्' उ0 4.120 + इन् + किच्च ॥पु0॥ च0ए0व0 ।

एकस्य - 1.

एजाति - कम्पित करते हैं । /एजृ कम्पने, लट् प्र0पु0ए0व0 । 5.59.2,

एतत - हुआ । 5.58.3,

एतान - इनको पु0द्वि0ब0व0 5.53.2.

एति - लट् प्र0पु0ए0व0 5.56.3, 58.4,

एते - ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.59.6, 1.165.6, 7.1.3.9 में.

एतेभि: - ॥पु0॥ तृ0ब0व0 5.52.10.

एना - इदम् सर्वनाम्न: । 'द्वितीया टौस्वैन:' एनेन पूर्वोक्तेन अत्रा-कारादेश: तृ0ए0व0 2.34.14.

एमभि: - प्रापकैर्गुणै: । /इण् गतौ + मनिन् ॥पु0॥ तृ0ब0व0 5.59.2.

एवयामरुत् - एवयामरुतपदयोस्समास: । /इण् गतौ ॥अदा0॥ औणा0 + वन् , प्रतिष्ठा वा एवयामरुत् ऐ0 6.30 गो0पू0 6.8 ॥पु0॥ प्र0ए0व0 5.87.1, 3, 6, 7, 8, 9.

एषाम् - √इण् गतौ, तुमुर्थेसेसेन0 ॥पु0॥ ष0ब0व0 5.53.1, 1.85.3, 1.88.6, 56.5, 59, 1,6, 87.7, 8.7.15,28.

एष्ठु - ।पुं0। स0व0व0 6.66.6.

ओज: - वेगवान, जलवेग, प्रबलवेग, आत्मवलाय शरीर का तेज । ।नुपुं0। प्र0, द्वि0ए0व0 5.57.6.

ओजसा - स्वबलेन - अपने बल के द्वारा, अनन्त बल से, ।नपुं0। तृ0ए0व0 । 5.56.8.

ओहते - आवृत करते हैं । वह प्रापणे, लट् प्र0पु0ए0व0 अह् वितर्के ।भ्वा0। शत्रान्ताच्चतुर्थी 5.52.10, 11, 8.7.31.

अंतरिक्षात् - ।नपुं0 अंतरिक्ष से, पं0ए0व0 5.53.8.

अंतरिक्षेण - तृ0ए0व0 8.7.35.

अंसयो: - भुजाओं का मूल, भुजदण्डमूलयो: । /अम् गत्यादिषु ।भ्वा0। अमे: सन्' उ0 5.21 सूत्र से सन् प्रत्यय षष्ठी वा सप्तमी द्वि0ब0 5.57.6.

अंसयोरधि - कंधो पर । ।पुं0। स0द्वि0व0 5.57.6.

ककुभ: - सभी दिशाएं ।स्त्री0। प्र0ब0व0 8.20.21.

ककुहान - महत, ऋत्विज: ।पु0। द्वि0ब0व0 2.34.11.

कण्वम् - कण्व महर्षि, /कणति निमीलति चेष्टते, य इति विग्रहे कण निमीलने ।चुरा0। 'अशूप्रुषिलटिकणि0' उ0 1.151 सूत्र से क्वन् प्रत्यय । ।पु0। द्वि0ए0व0 8.7.18.

कण्वास: - शिल्पविद्याविद् ।पु0। प्र0ब0व0 8.7.32.

कत् - कदा, कब, 5.87.5, 7, 8, 8.7.31, 32.

कथम् - किस प्रकार से, किम् सर्वनाम्न: 'था' हेतौ च च्छन्दसि' अ0 5.3.26 सूत्र से हेतु प्रकार बचन 'था' प्रत्यय, 5.61.2.

कथा - कथा, कहानी, वृत्तांत, सन्दर्भ, उल्लेख, /कथ् + अङ् + टाप् 5.53.2, 61.2, 87.5.7.8.

कदा - ।अव्य0। कब, किस समय, कभी-कभी , किम् + दा, ।

कदा प्रिय: - ।पु0। प्र0ए0व0 8.7.31,32.

कम - चुरा0 अ0 कामयेते, कामित, कान्त, प्रेम करना, अनुरक्त होना, सुख को, कल्याण को, 7.57.3, 8.94.2.

करत - कुर्यात् - करना चाहिए लेट0 प्र0पु0ए0व0 5.56.7.

कराम - √डुकृञ् करणे ।तना0। लेप0 लेट + विकरण व्यत्ययेन शम् कुर्याम् उ0पु0ए0व0 7.57.4.

कवय: - प्रतिभाशाली ।वि0। ।कु0 + इ। सर्वज्ञ, भग0 8.9, मनु0 4.24 ।पु0। प्र0ब0व0 5.57.8.

कवयो: - स0द्वि0व0 5.58.8.

कस्मै - किसके लिए, च0ए0व0 5.53.2, 12.

काण्वस्य - पु0ष0ए0व0 8.7.19.

काम्या - कमनीयौ ।हरी=हयौ। √कमु कान्तौ + ण्यत् ।नपुं0। प्र0द्वि0ब0व0 5.61.16.

कारव: - कार्य करने वाले शिल्पी ।कारकरा:।√डुकृञ् करणे ।भ्वा0। 'कृवापाजि0' उ0 1.1 सूत्र से उण् । ।पु0। प्र0ब0व0 5.87.3.

कारवे - ।पु0। च0ए0व0 2.34.7.

कामिन: - कामायितार: ।मरुत: - मनुष्या:। √कमु कान्तौ + णिनि + इन् । पु0प्र0 ब0व0 5.53.16, 7.59.3.

क्रतुम् - 'कृञ क्रतु: ' उ0 1.76 कतु' प्रत्यय । क्रतु: = कर्मनाम् निघं0 2.1 ।पु0। द्वि0 ए0व0 8.7.24.

कृत्वा - करके 5.87.2

क्रन्दन्तु - √क्रदि आह्वाने रोदने च ।भ्वा0। लट0 प्र0पु0ब0व0 5.58.6.

किरणम् - ज्योति, दीप्ति,√कॄ विक्षेपे ।तुदा0। 'कृपृवृजि' उ0 2.81. सूत्र से क्यु: प्रत्यय ।पु0। द्वि0ए0व0 । 5.59.4, 4.38.6.

किलास्य - निश्चितमास्यं यस्य स: ॥विद्वज्जन॥ किल - आस्य - पदयो समास: 5.53.।

क्रिविम् - पु0द्वि0ए0व0 87.24.

कीरिण: -/कॄ विक्षेपे + इनि: प्रत्यय । विक्षेपक । पु0प्र0ब0व0 ।

क्रीलम् -/क्रीड् विहारे + घञ् + क: ।

क्रीलय: - खेलने वाले । /क्रीड़् विहारे + इ प्रत्यय + जस् । ॥पु0॥ प्र0ब0व0 ।

कुभन्यव: - आत्मन: कुभनमुन्दनमिच्छव: ॥आप्तापुरुषा:॥ । कुभनपदाद् आत्मन इच्छा-
यामर्थे क्यच् । 'क्याच्छन्दसी' ति उ प्रत्यय: ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.52.12.

कुभा - कुत्सित प्रकाश ॥रसा = पृथिवी॥ । कु + /भा दीप्तौ ॥अदा0॥ + क:, स्त्रियां
टाप् । ॥स्त्री0॥ प्र0ए0व0 5.53.9.

कुरुत - कीजिए, करो । /डुकृञ् करणे ॥तना0॥ लोट् म0पु0ब0व0 5.57.7.

कुवित - महान, कुवित बहुनाम् निघं0 3.।

कृणुत - स्वीकुरुत, करो । /कृवि हिंसाकरणयोश्च लोट म0पु0ब0व0 10.78.8.

कृते - कलादिभि:, कर्षिते, योगाङ्गैर्निष्पादिते ।/डुकृञ् करणे ॥तना0॥ + क्त 7.56.5.

के - नपु0, प्र0ब0व0 7.56.1, 5.52.12.

केतव: - पुं0 चित् ज्ञापक, किरणे, विचार, अभिप्राय । पु0 प्र0ब0व0 10.78.6.

कोपयथ - धन समुदाय । /कुप् लट् म0पु0ब0व0 5.57.3.

कोशम् - कोश ॥पु0॥ द्वि0ए0व0 5.53.1, 6, 59.8, 8.20.8.

क्षम: - ॥भ्वा0॥ ते क्षमति, उपवास करना, संयमी होना मनु0 5.69, प्रेर0 या चुरा0
उभ0 - क्षमयति - ते क्षिप्त, फेंकना, भेजना, डालना, चूक जाना 10.77.2

क्षमा - धैर्य, सहिष्णुता, माफी, क्षमा/क्षम + अड् + टाप् , स्त्री प्र0ए0व0 5.52.3,
8.7.27.

क्षरति - पिघलता है बूँद बूँद रसने या गिरने की क्रिया, ॥वि0॥/क्षर् + अच् लट् प्र0पु0
ए0व0 5.59.2

क्षितीनाम् - क्षि + क्तिन् , पृथ्वी को, गृह को, घर को । स्त्री० क्षि ष०ब०व० - 10.78.1.

क्षिप्रम् - क्षमीयस, उ०अ० क्षेपिष्ठ, सजीव, आशुगामी, अविलम्बी, ॥वि०॥ क्षिप् + रक् ॥म०अ०॥ 5.87.2,

क्षोणी - पृथ्वी, एक ॥गणित में॥ स्वपरभूमी । ॥स्त्री०॥ क्षै + डोनि क्षोणि + ङीष् द्वि०ब०व० 8.7.22,

क्षोणीभिः - ॥स्त्री०॥ तृ०ब०व० 2.34.13.

क्षोदन्ति - √क्षुद् + घ ॥ /क्षुदिर् संपेषणे ॥रुधा०॥ विकरण व्यत्ययेन शप् । लट् , प्र०पु० ब०व०, 7.58.1.

क्षोदन्ते - क्षरन्ति, क्षरते हैं, बरसते हैं, आ०प० लट्० प्र०पु०ब०व० 5.58.6.

क्षोदसा - चूरा करने से, पीसने से, धूल कण कोई छोटा या सूक्ष्मकण ॥उत्तर० 3.2॥ प्रवाह के द्वारा, ॥क्षुद्+ घञ्॥√क्षुदिर् संपेषणे । नपुं० तृ०ए०व० 5.53.7.

खादिनः - ॥वि०॥ खाद् नामक अलंकार धारण करने वाला ॥पु०॥ प्र०ब०व० 2.34.2.

खादिषु - भक्षणादिषु √खाद् भक्षणे ॥भ्वा०॥ + इन् पु०स०ब०व० ॥वि०॥ खाद नामक अलंकार धारण करने में ।

खादिहस्तम् - खादि है हाथ में जिसके ॥मरुत्॥ पुं०द्वि०ए०व० खादिहस्त पदयोः समासः ॥बहुव्रीहि॥ । खादिहस्तयोर्यस्य तम् 5.58.2.

गच्छथ - जाते हो ।√गम्लृ गतौ , लट्० म०पु०ब०व० 8.7.30.

गणः - समूह√गण् संख्याने +अच् पु०प्र०ए०व० 5.61.13, 2.87.3,12.

गणम् - चुरा० उभ० गणयति ते गणित, गिनती करना, गणना करना, पु०द्वि०ए०व० । 5.52.13, 53.10.11, 87.2,9. 8.94.12, 10.77

गणाय - √गण् + अच् । पुं० च०ए०व० झुंड, समूह, दल, संग्रह ॥के लिए॥ 7.58.1.

गत - गच्छत, √गम्लृ गतौ लोट् म०पु०ब०व० ति शपो लुक् 7.58.3, 8.20.1C.

गन्त - जाते हैं । √गम्लृ गतौ + शमोलुड़् ।

गन्तन - जाओ, 8.7.11, 27, 5.57.1.

गवाम् - गौ, गायों को ॥स्त्री0॥ ब0ब0व0 5.56.5, 5.59.3.

गर्भम् - बीजम् , ग्रहण करना, मूल प्रधान । √गृ निगरणे + भन् । पु0 द्वि0ए0व0 5.58.7, 6.66.3.

गोइव - पृथिव्या इव 8.20.9.

गात - प्राप्त करते हो √इण् गतौ लुड्. प्र0पु0ब0व0 8.20.22.

गातुम् - मार्ग को यज्ञ को । गा + तुन् ॥पु0॥ द्वि0ए0व0 5.87.8.

गाव: - रश्मियाँ, किरणें, धेनु, गायें । √गम्लृ गतौ, 'गमेर्डो:' उ0 2.67 सूत्र से डो प्रत्यय ॥स्त्री0॥ प्र0ब0व0 8.20.21, 5.52.16.

गिरय: - जो जल बरसाते हैं वे मेघ ॥पहाड़॥। √गृ निगरणे + इ + किच्च ॥पु0॥ प्र0ब0व0 6.66.11, 8.7.34

गिरा - वेदवाणी, विद्या, √गृ निगरणे ॥तुदा0॥√गृ शब्दे ॥क्र्या0॥ + क्विप् ॥स्त्री0॥ तृ0 ए0व0 5.52.13, 16. 87.2, 8.20.21.

गिरिजा: - गिर्युपपदे √जनी प्रादुर्भावे ॥दिवा0॥ 'सप्तभ्यां जनेर्ड:' अ0 3.2.97 से ड प्रत्यय । ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.87.1

गिरिष्ठा - गिरौ तिष्ठतीति ॥मृग: - सिंह॥ √गृ निगरणे तदुपपदेष्ठा गति निवृत्तौ + क्विप् । पु0प्र0ए0व0 8.94.12.

गोपीथे - गवां पेये दुग्धा दौ 5.65.6 । गौ इत्युपपदे √पा रक्षणे ॥अदा0॥ पा पाने ॥अदा0॥ निशीथ, गोपीथावगथ' उ0 2.9 सूत्र से थक् प्रत्यय ।

गोबन्धव: - पृथ्वी है बन्धु जिनकी, पृथ्वी सम्बद्ध । पु0प्र0ब0व0 8.20.8

गोहा - गो इत्युपपदे √हन् हिंसा गत्यो: + क्विप् । 'सौ चे' ति दीर्घ: । यो गौ हन्ति ॥दुर्जन:॥ ॥पु0॥ प्र0ए0व0 7.56.17.

गोपा: - रक्षका:, 'गो' उपपदे √पा रक्षणे + क: । पु०प्र०ब०व० 7.56.18.

गोभि: - सुशिक्षितवाणियों के द्वारा, पृथ्वी और धेनु, विद्या से युक्त पशु के द्वारा ।स्त्री०। तृ०ब०व० 8.20.8.

गोमत: - प्रशस्त वाणी युक्त, गोमान् गोभि. नि० 5.3, पु०द्वि०ब०व० 5.87.6, 8.94.5.

गौ: - गाय, ।स्त्री०। प्र०ए०व० 8.94.1.

गृणत: - स्तुति करते हुए का, स्तुति करने वालों को । √गृ शब्दे ।क्रया०। शतरिरूपम् । ।पु०। ष०ए०व०, द्वि०ए०व० ।

गृणन्तम् - ।पु०। द्वि०ए०व० 7.57.2

गृणन्ति - अर्चना, शब्द, वन्दना करते हैं । √गृ शब्दे ।क्रया०। लट्०प्र०पु०ब०व० ।

गृणाना - स्तुतवन्तौ, उपदिशन्तौ । √गृ शब्दे क्रया + शानच् ।पु०। प्र०ब०व०, 5.57.8, 7.56.18, 8.7.10.

गृणीमसि - स्तुमः, अर्चाम: । लट् उ०पु०ब०व०, 'इदन्तो मसि:' इति मस इदन्तत्वम् ।

गृहमेधीयम् - गृहमेधि गृहस्थ शुद्धे व्यवहारे भवम् ।प्रजाजनम्। गृहमेधप्राति० 'द्यावापृथिवीशुना-सीर०' अ० 4.2.32 सूत्र से सास्य देवता विषये पि विहितश्छो भावार्थे पि छान्द सत्वात् । ।नपुं०। तृ०ए०व० 7.56.14.

घ - ।वि०। √हन् + टक्, टिलोप:, घत्वं च ।यह केवल समास में उत्तर पद में प्रयुक्त होता है। प्रहार करने वाला, मारने वाला, नाश करने वाला जैसा कि पाणिघ और राजघ आदि में -घ - घंटी, घड़खड़ाना, गरगराहट, टिनटिनाना ।

घृतम् - घी, ~~[illegible]~~ तपाया हुआ मक्खन ।सर्पिर्विलीनमाज्यं स्यात् घनीभूतं घृतं भवेत् - सा०। मक्खन, जल । √घृ क्षरणदीप्तयो: + क्त । ।नपुं०। द्वि०ए०व० । 87.19.

घृतप्रुष: - घृत ।जल। का सिंचित करने वाले । घृतोपपदे √प्रुष् स्नेहने ~~= सेचन पूरणेषु~~ ।क्रया०। + क्विप् ।पु०। प्र०ब०व० 10.78.4.

चक्षुः - आँख ॥नपुं0॥ चक्ष् + उसि॥ कृष्णसारे ददच्चक्षुः श0 1.6. दृष्टि, नजर, देखने की शक्ति । तु0 घ्राणचक्षुस ज्ञानचक्षुस, नयचक्षुस, चारचक्षुस । नपुं0 प्र0ए0व0 5.59.3

चक्षुणम् - ॥नपुं0॥ चक्ष् + उसि॥ आँख को । द्वि0ए0व0 5.53.4

चक्रः - गाड़ी, रथ का पहिया, कुम्हार का चाक, एक तीक्ष्ण गोल अस्त्र, चक्र ॥विष्णु का॥ वृत्त, मण्डल, कलापचक्रेषु निवेशिताननम् क्र0 2.14 । क्रियते अनेन कृ घञर्थे कवि0 द्वित्वम् - तारा0 ॥पु0॥ प्र0ए0व0 7.56.23.

चक्रवत - क्रमते, √क्रमुपाद विक्षेपे लिट्, प्र0पु0ए0व0 । 5.87.4.

चक्रमे - क्रमते, √क्रमुपाद-विक्षेपे लिट्, प्र0पु0ए0व0 5.87.4.

चक्राणाः -√डुकृञ्करणे ॥तना0॥ लिट् + कानच् । पु0प्र0ब0व0 8.7.23.

चक्रिया - गाड़ी में बैठकर यात्रा करने वाले, यात्रा करने वाला, ॥वि0॥ ॥चक्र + घ॥ 2.34.14.

चक्रिरे - किये ।√डुकृञ् करणे । किद् प्र0पु0ब0व0 5.58.7

चनिष्ठा - चायपूजानिशामनयोः ॥भ्वा0॥ + चायतेरन्ने ह्रस्वश्च' उ0 4.200 + असुन् + नुडागम 7.57.4.

चन्द्रम् - चन्द्रमा, चन्द्र, ग्रह, मयूरपंखों में आँख का चिन्ह, जल, सोना । जब 'चन्' शब्द समास के अन्त में प्रयुक्त होता है तो इसका अर्थ श्रेष्ठ, प्रमुख यदा पुरुषचन्द्रः चन्द + णिच् + रक् 2.34.13.

चन्द्रवत - ॥वि0॥ सुवर्णयुक्त, आनन्दयुक्त 5.57.7.

चन्द्रान -√चदि आह्लादने दीप्तौ च + रक् । आह्लादकों को ॥पु0॥ द्वि0ब0व0 8.20.20

चरमः - अन्तिम, उत्कृष्ट । √चर्गतौ ॥भ्वा0॥ 'चरेश्च' उ0 5.69 से अमच् प्रत्यय ॥पु0॥ प्र0ए0व0 8.20.14.

चरन्ति - प्रवृत्त हो रहे हैं, वर्तमान हैं, व्यवहार कर रहे हैं, आचरण कर रहे हैं ।√चर् गतौ लट् प्र0पु0ब0व0 8.20.18.

चर्कृषत् - बार-बार भूमि को जोतना । भृशं कर्षन् भृशं भूमिं विलिखन् ॥वृक्षा = कृषक:॥ √कृष् विलेखने, लेट् प्र0पु0ए0व0 8.20.19.

चिकितुषे - ज्ञानवान को, जानने वाले को, जानने या ज्ञान के लिए, √चिती किती संज्ञाने लिट् + क्वसु 6.66.1.

चिकेत - जानना चाहिए । लेट् प्र0पु0ए0व0 6.56.4.

चित् - विचार, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रज्ञा, बुद्धि, समझ, भर्तृ0 2.1, 3.1, हृदय मन आत्मा, जीव, ब्रह्म । ॥स्त्री0॥ चित् + क्विप् 5.52.12, 56.1, 58.6,7, 7.66.1, 4.5.10, 7.56.2, 7.57.1, 8.7.15,34.

चितयत - √चिति संज्ञाने लोट् म0पु0ब0व0 । गुणभावश्छान्दस: संज्ञापयेत, जानो, ज्ञात करो 2.34.7.

चितयन्ते -√चिती संज्ञाने, लट् ज्ञापित करते हैं, संज्ञापित करते हैं । लट् ॥आ0प0॥ प्र0 पु0ब0व0 जानन्ति, जान लेते हैं 5.59.2.

चित्रम् - उज्ज्वल, स्पष्ट, चितकबरा, धब्बेदार, शक्लीकृत, तस्वीर, चित्रकारी, आलेखन 'चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा' अभि0शा0 2.9, विविध, भाँति-भाँति का, पंच0 1.136, मनु0 9.248, याज्ञ0 1.288. ॥वि0॥ चित्र + अच् , चि + ष्ट्रन् वा॥ 2.34.10.

चित्रा - चाँदमास का चौदहवाँ नक्षत्र । चित्र + अच् + टाप् ॥नपुं0॥ प्र0ब0व0 5.52.11, 10.78.1,

चित्रभानु: ॥वि ब0॥ सुन्दर तेज से युक्त 1.35.4, 1.85.11, 5.26.2.

चिरम् - ॥वि0॥ चि + रक् , दीर्घकाल, 'चिर्' शब्द का अप्रधानकारकों में ए0व0 क्रिया वि0 की भाँति प्रयुक्त होता है और निम्नांकित अर्थ प्रकट करता है - 'दीर्घकाल दीर्घकाल तक, दीर्घकाल के पश्चात्, दीर्घकाल से, आखिरकार, अन्त में आदि - न चिरं पर्वते वसेत् - मनु0 4.60, 5.56.7.

चेकिते - ज्ञानियों में, जानकार में, वि0 √कित् संज्ञाने 2.34.10.

छन्दः - कामना, इच्छा, कल्पना, चाह, अभिलाषा, वृत्त पद्य ।
    प्र०ए०व० 8.7.36.

छन्दस्तुभः - छन्दः+√स्तुभ्+क्विप्पु०प्र०ब०व० 5.52.12, 10.14.16, 29.9

जग्मिः - वि० √गम् जाने वाला 1.85.8, 2.23.11,
    पु० प्र०ए०व० ।

जग्मुः - गये √गम् + कि + द्वित्वम् । लिट् प्र०पु०ब०व० ।

जघने - जांघ, पुट्ठा, कूल्हा घटय जघने काञ्चीम् च स्रजा कबरी भरम् - गीत० 12,
    स्त्रियों का पेडू । हन् + अच् + द्वित्वम् नपुं० स०ए०व० ।

जज्झतीरिव - शब्दकारी शीघ्रगमन करने वाले पक्षी की भांति जज्झतीरापो भवन्ति-
    शब्दकारिण्यः निघं० 6.16 स्त्री० प्र०द्वि०व० का रूप किन्तु व्यत्यय से प्र०ब०
    व० के लिए प्रयुक्त ।

जनयः - साधारण लोग, मनुष्य स्त्री० प्र०ब०व० 5.61.3.

जनानाम् - लोगों को पु० ष०ब०व० 7.56.24.

जनाय - मनुष्य के लिए पु० च०ए०व० 2.34.8, 5.58.4.

जनासः - जन प्रातिपदिकात् प्रथमा बहुबचने जसो सुक् आगमः । योद्धागण लोग, वीर, सैनिक ।

जनिः - स्त्री० औरत, पत्नी, महिला, 1.85.1, 8.7.36, 10.18.7.

जनित्रीम् - माता को जनितृ + ङीप् नपु० द्वि०ए०व० 7.56.1

जनुषः - जन्म, घटित होना, उत्पन्न होना, जन्तु, प्राणी, नपु० √जन् + उसि सं०
    नपुं० पं०ब०ए०व० ।

जनुषा - तृ०ए०व० 5.57.5, 59.6.

जभार - हरण करता है । √हृ हरणे + लिट् प्र०पु०ए०व० 'हृग्रहोर्भश्छन्दसि' से 'हृ' का
    'भ' आदेश ।

जराय - ॥√जॄ + अङ् + टाप्॥ जरा शब्द के स्थान पर कर्म0 द्वि0व0 के आगे अजादि विभक्ति परे होने पर विकल्प से 'जरस्' आदेश हो जाता है । बुढ़ापे के लिए पु0च0ए0व0 ।

जरितुः - ॥वि0॥ जरा + इतच् बूढ़ा, वयोवृद्ध, क्षीण, निर्बल 5.87.8.

जरित्रे - स्तोता के लिए, स्तुति करने वाले के लिए, ॥पु0॥ च0ए0व0 2.34.6.

जाताः - √जनी प्रादुर्भावे + क्त । जातौ ॥अश्विनौ - अध्यापकोपदेशकौ॥ 1.181.4 ॥स्त्री0॥ प्र0ब0व0 2.34.6.

जायन्ते - √जनी प्रादुर्भावे लट् प्र0पु0ब0व0 । उत्पन्न होते हैं 5.58.5.

जिगत्नव- ॥वि0॥ √गम् = जाने वाले, 10.78.3,5.

जिह्य - ॥स्त्री0॥ जीभ 10.68.6, जिह्वा ।

जिगातन - √गा स्तुतौ, प्रशंसन्ति प्रशंसा करते हैं 5.57.6, 5.59.6.

जिगाति - स्तौति, स्तुति करते हैं । √गा स्तुतौ, लट् प्र0पु0ए0व0 5.87.4.

जिन्वथ - ॥क्रि0वि0॥ प्रवृत्त करने वाला, उत्तेजित करने वाला लट् म0पु0ब0व0 8.7.21

"जिहते - प्राप्त करते हैं, जाते हैं, प्राप्नुवन्ति । √ओहाङ् गतौ ॥जु0॥ लट् ॥आ0प0॥ प्र0पु0ए0व0 5.57.3, 87.3.

जिहीळिरे - क्रोधयेयुः - क्रोध होना चाहिए । √हेड़ अनादरे + शानच् । लिट् प्र0पु0 ब0व0, 7.58.5.

जीर दानवः - ॥बि0ब0 दानु॥ √दा दाने, प्रभूत दान देने वाले । ॥पु0॥ प्र0ब0व0 । 2.34.4, 5.53.5.

जुजोषन् - सेवित करते हैं । सेवा करते हैं - सेवन्ते । √जुषीप्रीतिसेवनयोः लिट् + क्वसु 7.58.3.

जुनन्ति - जाते हैं, प्राप्त होते हैं, प्रेरित करते हैं । √जुन् ॥गतौ॥ लट् प्र0पु0ब0व0 7.56.20.

जुरताम् - ‡वि0 जू‡ जरठ, वृद्ध, बूढ़ों को, पु0ष0ब0व0 2.34.10.

जुषस्वम् - सेवित करो, पसंद करो, सन्तोष से स्वीकार करो । ‡क्रि0वि0‡ 5.58.3, 7.56.14.

जुषन्त - ‡क्रि0‡ सन्तोष हो स्वीकार करना जुष् लट् म0पु0ब0व0 7.56.20, 25, 58.6, 3.33.8, 5.86.2.

जुहू - 6.66.10.

जोहवीति - जोषन/जुष् प्रीतिसेवनयो: ‡तुदा0‡ 8.94.6, /हु दानादानयो: ‡जु0‡ लट् प्र0पु0ए0व0 बारम्बार बुलाता है 7.56.18.

ज्येष्ठा: - ‡वि0 पु0‡ आयु में0 सबसे बड़ा जेठा, श्रेष्ठतम , प्रमुख, मुख्य, वरिष्ठ, 4.33.5, 10.78.2.

ज्येष्ठास: - ज्येष्ठ + असुक् + जस् पु0 प्र0ब0व0 सबसे बड़ा ।

ज्योतिषा - ‡न0‡ प्रकाश से, तेज से ‡न0‡ तृ0ए0व0 2.34.12, 10.68.11, 4.51.1,

ज्योतिष्मन्त - प्रकाश से मण्डित, प्रकाशमान, तेजोमय तेजवान प्र0प्र0ब0व0 ।

तत - ‡भू0क0कृ0‡ तन् + क्त, फैलाया हुआ, विस्तरित, घेरा हुआ 5.55.7.

ततृदाना: - दे0/तन् /तृदि हिंसायाम् लिट् + कानच् हिंसा करते हुए 5.53.7.

तथा - ‡अव्य0‡ वैसे, इस प्रकार, उस रीति से, सच, ठीक, इसी प्रकार सचमुच वैसा ही । तद् प्रकारे थाल-विभक्तित्वात् 8.20.17, यदात्थ राजन्यकुमार तत्तथा रघु0 3.48, मनु0 1.42.

तदिति - वि0 2.23.9,

तनयम् - पुत्र को, वत्स को, पुत्र को ‡पु0‡ द्वि0ए0व0 7.56.2, 1.184.5, 2.23.19, 33, 7.82.9.

तनये - फैलने के लिए, प्रसृत के लिए। /तनु विस्तारे + क्यन् प्रत्यय ‡पु0‡ च0ए0व0, 6.66.9.

तन्व: - तन्वान: 10.2 (स्त्री0) पु0ए0व0 7.50.11

तना - सकर्मक, अकर्मक, (प0) √तनु विस्तारे + अच् । 8.94.5

तनूषु - विस्तृत बलयुक्त शरीरों में । तनु विस्तारे (स्त्री0) स0ए0व0 5.57.6, 8.20.
6, 12, 27.

तमांसि - अन्धकार तमु कांक्षायाम् (दिवा0) + असुन् । नपुं0प्र0ब0व0 17.50.20.

तरुषन्ते - शीघ्र चले जाते हैं सद्य प्लवन्ते । √तृ प्लवनसन्तरणयो. लट् (आ0प0) प्र0पु0
ब0व0 ।

तवसम् - (वि0 तु) पराक्रमी, सुदृढ, बलशाली,
पु0द्वि0ए0व0 5.58.2, 2.33.3, 3.32.9, 5.83.1.

तविष: - बलवान, बलयुक्त बल से (पु0) प्र0ए0व0 । तविष: महन्नाम निघं0 3.3

तविषीम् - (स्त्री0) तु) सामर्थ्य बल, (स्त्री0) द्वि0ए0व0 1.35.4, 3.32.2, 5.53.

तविषीमन्तम् - तवतिसौत्रो धातु:। 'तवतेर्णिद्वा' उ0सू0 1.48, इति टिषच् । टित्वात्
टिड्ढाणञ् इत्यादिना ङीप् । व्यत्ययेन धृषा दित्वात् द्रष्टव्यम् । प्रकाशमान
को देदीप्यमान को । पु0द्वि0ए0व0 ।

तविषीयव: - तेजोवान्, तेजयुक्त, तेजोवन्त:, तेज की इच्छा करने वाले (पु0) प्र0ब0व0
8.7.2.

तस्थिरे - स्थित हुए । √स्था, लिट् प्र0पु0ब0व0 ।

तस्थुष: - स्थावर काठ सदृश पदार्थ से । √ष्ठा गतिनिवृत्तौ लिट् + क्वसु द्वि0ब0व0
5.32.2

तस्थौ - √ष्ठा गतिनिवृत्तौ लिट् , बैठे हो, बैठना चाहिए । स्थित हुआ प्र0पु0ए0व0
5.56.8, 6.66.6, 9.58.2

तिरतु - (क्रि0) पार करे । √तृ प्लवनसन्तरणयो:, लोट0 प्र0पु0ए0व0 7.57.5.

तिरेत - पार करना चाहिए । विधिलिङ् प्रoपुoएoवo 7.58.3

तिष्ठत - स्थिर होता है ।√ष्ठा गति निवृत्तौ । लोट् मoपुoबoवo 8.20.4

त्रित - ‡पुं0‡ पुoएoवo 2.34.14

त्रायध्वे - रक्षा करते हो । पालन करते हो ।√त्रैङ् पालने लट् मoपुoबoवo 7.59.1, 5.53.15

त्रित - पुoप्रoएoवo 2.34.14.

त्रितस्य - पुoषoएoवo 8.7.24

त्रिधस्य - तीनों ‡भू, जल, वायु ‡आकाश‡ का‡ त्रिसधोपपदे√ष्ठा गतिनिवृत्तौ + क: 8.94.5.

त्रिष्टुभ: - तीनों प्रकार के सुख ‡मानसिक, वाचिक, शारीरिक‡ प्रoबoवo । त्र्युपपदे स्तोभति अर्चतिकर्मा ‡निघं0 2.1‡ + क्विप् ।

तुरयन्ते - वेगपूर्वक गमन करते हैं, शीघ्रता से गमन करते हैं ।√तुर् त्वरणे ‡जु0‡ लट् प्र0 पुoबoवo ।

तुराणाम् - तुर्, कर्मठ, सफल, ‡पुं0‡ षoबoवo 5.56.10, 19. 58.5, 7.2.11, 22.5, 41.2, 51.1, 60.8.

तुराय - शीघ्र गति वाले, √तुर् त्वरणे प्रoचoएoवo ।

तुर्वशम् - उत्तम मनुष्य, हिंसक को वश में करना । तुरोपपदे√वश् कान्तौ + क: प्रत्यय । ‡पु0‡ द्विoएoवo ।

तुविद्युम्ना - तुविष् = तुवि तु = शक्तिपूर्वक बढ़ना, प्रकाशमान धनवाले ‡पु0‡ प्रoबoवo 5.87.6, 7.87.6, 7.58.1, 7.56.7.

तुविमन्यव: - तुविमन्यु पदयो: समास: । अधिकाधिक क्रोध ‡पु0‡ प्रoबoवo 7.58.2

तुविराधस: - तुवि-राधस पदयो: समास: । बहुत प्रकार के ऐश्वर्य वाले, अनेक प्रकार के धन वाले । ‡पु0‡ प्रoबoवo 5.58.2

तुविष्मान - तु गतिवृद्धि हिंसासु + इसि प्रत्यय । बहुबलाकर्षणयुक्त ॥इन्द्र = सूर्यलोक॥ आत्मबलयुक्त शरीर । ॥पु०॥ प्र०ए०व० 7.56.7, 58.।

तुविष्वाणि - जोर से शब्द करने वाले । पु०प्र०ए०व० 5.56.7

तोकम् - शीघ्र उत्पन्न, सद्योजातमपत्यम्, पु०द्वि०ए०व० 5.56.20.

तोके - तुज् हिंसाबलादाननिकेतनेषु ॥चुरा०॥ संज्ञायां घ प्रत्यय । ह्रस्वे तनये पं० वि० अल्पे ॥व्यवहारे॥ पुं० सं०ए०व० 6.66.8

त्मना - सातत्यगमने, ॥भ्वा०॥ सातिभ्यां मनिन-मनिणौ ' 304, 153 + मणिन् । आत्मना, अपने से 5.87.4, 7.56.6, 8.94.8, 5.21.2,6, 10.77.3

त्वक्षांसि - √त्वक्ष् तनूकरणे + असुन्, सूक्ष्मीकरण, 'शत्रुओं' के बल का छेदक बल, भेदक । ॥नपुं०॥ प्र०ब०व० 8.20.6

त्विषा: - √त्विष् दीप्तौ + क्विप् । प्रताप से, तेज, से, प्रदीप्त बल से, ॥पुं०॥ तृ० ए०व० 10.78.6.

त्विषमन्त: - विद्याविनयप्रकाशयुक्त त्विष् दीप्तौ + इन् । पु०प्र०ब०व० 6.66.10

त्विषे - स्वशरीर के प्रकाश युक्त बल के लिए । स्त्री० च०ए०व० 5.52.12

त्वेषा: - प्रदीप्ति, कांतियुक्त, √त्विष् दीप्तौ + घञ् अथवा अच् । ॥पु०॥ प्र०ब०व० 1.168,7, 8.20.7.

त्वेषरथ: - प्रकाशवान रथ है जिनका ॥मरुद्गण॥ त्वेषरथ पदयोसमास: । पु० प्र०ए०व० 1.85.8, 5.57.5

त्वेषसंदृश: - तीक्ष्णदृष्टि से सर्वत्र देखने वाले । त्वेषोपपदे सम्पूर्वाद् दृशिर् प्रेक्षणे + क्विन् ॥पु०॥ प्र०ब०व० 1.85.8, 5.57.5

त्वेष्येण - अपनी कांति से प्रदीप्त पुं० तृ०ए०व० 7.58.2

दद् - देना -प्रदान करना √दा-शृ दाने ॥दा + शा॥ लोट म०पु०ए०व० ।

ददातु - दो, देता है सं०वि० 137, अथर्व० 14.1.9, लोट्, म०पु०ब०व० । छान्दसमिदं रूपम् ।

दृदाशुषे - देने वाले, देने के लिए, दाता के लिए, ‹पु०› च०ए०व० 5.53.6

दधन्ति - धारण करते हैं। √डुधाञ् धारणपोषणयोः। छान्दसिरूपम् लट् प्र०पु०ब०व० 7.56.19

दधम - धारण करो। छान्दस लोट उ०पु० ब०व० व्यत्यय से लेट् म०पु०ब०व० के लिए प्रयुक्त। 7.56.21

दधात - धारण करो। लोट् म०पु०ब०व०। 7.58.3

दधातन - धारण करो। लोट् म०पु०ब०व०। 7.55.4

दधानाः - √डुधाञ् धारणपोषणयोः + शानच्। धारण करने वाले। पु०प्र०ब०व० 6.66.5

दधिध्वे - धरत, धारण करते हो, धारण करो। √दध् धारणे अत्र लोडर्थे लिट् + म०पु० ब०व०। 5.52.2

दधिरे - धारण करते हैं, धारण करो, धारण करता है। √दध् धारणे लिट् प्र०पु०ब०व०। 2.34.13, 5.53.1, 55.1, 161.11

दधे - √दध् धारणे। धारण किये। लिट् प्र०पु०ए०व०। 2.34.9, 5.53.5

द्याः - द्युलोक, द्यौ, स्त्री० द्वि०ए०व०, 2.34.9, 5.53.5

द्यावः - स्त्री०, प्र०ब०व०, 5.53.5

द्यावापृथिवी - द्युलोक एवं पृथ्वीलोक ‹स्त्री०› प्रथा द्वि०द्वि०व०। 5.57.7

द्वीपानि - ‹नपुं०› प्र०ब०व०, द्वीपसमूह 8.20.3

द्युम्नैः - ‹नपुं०› तृ०ए०व०, 8.20.16

द्यौः - स्त्री० प्र०ब०व०, 5.59.8

दृशे - देखने के लिए, अव्ययपद 8.94.2

दविद्युतानि - प्रकाशित होता है, चमकता है, द्योतित होता है। √द्युत् दीप्तौ क्रिया समभिहारे यङ्., लोट्, उ०पु०ए०व०, 8.20.11

दशग्वा - जो दसों इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं ऐसे (विद्वज्जन) दश=गो-पदयोः समास: । पु0प्र0ब0व0, 2.34.12

दशायथ - बाँटते हो, विभाजित करते हो । लट्, म0पु0ब0व0, 8.20.24.

दशस्यन्त - विस्तृत होते हुए । √दंश् दंशने + असुन् + क्विप्, 7.56.17

दस्रा: - शत्रुनाशक (पु0), प्र0ब0व0, 5.55.5

दस्यन्ति - √दसु उपक्षये (दिवा0) लट्, प्र0पु0ब0व0, नाश होते हैं, क्षीण होते हैं, विभाजित करें, 5.54.7, 55.5

दात - 2.34.7

दाना - देने वाला दा + ल्युट्, 5.87.2, 8.2.14

दावने - दान में, दान के क्षेत्र में, नपुं0, स0ए0व0, 5.59.4, 5.87.2

दाशुषे - दान के लिए । √दा + ल्युट् + क्वसु । पु0च0ए0व0, 5.57.3

दिद्युम् - पुराने आयुध को, पु0द्वि0ए0व0, 7.56.9.

दिधिष्व - धन धारण करने वाले, पु0प्र0ए0व0, 10.78.5

दिव: - स्वर्ग, द्युलोक, 8.94.9, 10, 5.87.3, 5.57.5, 59.9, 8.20.17, 8.7.7, 11, 13, 17, 5.52, 4, 6, 56.1, 10.77.2, 3

दिव:पुत्रास: - स्वर्ग के पुत्र, पु0प्र0ब0व0, 10.77.2, 3

दिवा - अव्यय0 (दिव् + का) दिन में दिन के समय, 8.7.6

दिवि - दिव् + इन् । चाष पक्षी, नीलकण्ठ, द्युलोक में, (स्त्री0) स0ए0व0 । 5.52.3 61.12

दिवे - द्युलोक के लिए, (स्त्री0) च0ए0व0, 2.34.7, 5.59.1

दिव्यम् - (दिव् + यत्) दैवी, स्वर्गीय, आकाशीय, अलौकिक (नपुं0) प्र0ए0व0, 5.58.8

दिद्युत् - चमकते हुए, देदीप्यमान, प्रकाशमान √द्युत् + यङ् + शतृ0 । प्र0ब0व0, द्वि0ब0व0 6.66.10

दुच्छुना - दुर्बुद्धि (स्त्री०) प्र०ए०व० । 8.20.4

दुर्धर्तम् - वश में करने वाले । (पु०) द्वि०ए०व० । 5.87.9

दुह: - (अदा०उभ०) दोग्धि दुग्धे, दुग्ध, दुहना, निचोड़ना, उद्धृत करना, द्विक के साथ ।

दुहन्त - √दुह् + लुङ् - प्र०पु०ब०व०, 8.7.16

दुहु: - 2.34.10

दुहे - 6.66.4

दूधते - धारण करने वाले को । √धा + शतृ । पु०च०ए०व०, 10.77.7

दूरे दृश: - दूर से दिखाई देने वाले, चमकने वाले, परिलक्षित होने वाले (पु०) प्र०ब०व० 5.59.2

देदिशते - बारम्बार दिखाई पड़ता है । √दृश् + यङ् + लट् प्र०पु०ए०व० ।

देवानाम् - (वि०) (दिव् + अच्) दिव्य, स्वर्गीय भग० 9.11, मनु० 12.117, (पु०) ष०ब०व०, 8.94.8, 10.77.7

देवास: - (पुं०) प्र०ब०व०, 8.7.27

देवाव्य: - देवों को प्रसन्न करने वाले, (पुं०) प्र०ब०व०, 10.78.1

द्वेष - द्वेष, ईर्ष्या, पु०प्र०ए०व०, 10.77.6

देष्णम् - देने योग्य । √दा + इष्णुच् । नपुं०प्र०ए०व०, 7.58.4

द्वेषांसि - नपुं० प्र०ब०व०, 5.87.5

दैव्यस्य - देव का । देव+ष्यञ् । नपुं० ष०ए०व०, 5.57.7

दोहसे - दोहन करते हो । √दुह् + छान्दस + लट् म०पु०ए०व०, 6.66.1,5

दंसना - दंसन । नपुं०प्र०ब०व०, 5.87.8

धत्तन - धारण करो । √धा लोट् + छान्दस् (म०पु०ब०व०, 5.53.13

धनस्पृतम् - पुं० द्वि०ए०व०, 8.7.18

धन्वना - मरुस्थलों को । नपुं०प्र०ए०व०, 5.53.6

धन्वानि - नपुं०प्र०ब०व०, 8.20.4, 12

धयति - पालन करता है । पालयति √धय् + लट् प्र०पु०ए०व०, 8.94.1

धातार: - धारण करने वाले । √धा + तृच् । प्र०पु०ब०व०, 8.7.35

धान्यम् - धान्य को । नपुं०प्र०ए०व०, 5.53.13

धाम्न: - तेजस:, तेज का, नपुं०ष०ए०व०, 7.58.1

धापि - धारण किया । √धा + लुङ् + कर्मवाच्य, प्र०पु०ए०व०, 5.56.7

धारयन्ते - धारण करते हैं । √धृ + णिच् । लट् छान्दस् । आ०प०, प्र०पु०ब०व०,
5.61.14, 8.94.2

धिया - बुद्धि से, बुद्धि द्वारा । धी प्रातिपदिक से तृ०ए०व० का रूप, 5.61.15

धीतिभि: - स्तुतियों से । स्त्री०तृ०ब०व०, 5.53.13

धीमहि - ध्यान करते हैं । √ध्यै + लट् उ०पु०ब०व० 8.7.18

धुनय: - कंपाने वाले, प्रकंपयितार: । √धूञ् कम्पने + इनि पु०प्र०ब०व०, 5.60.10,
10.78.3

धुनि: - पु०प्र०ए०व० ।

धुनिव्रताय - प्रकम्पन कार्य वाले । पु०च०ए०व०, 5.87.1

धुनीनाम् - कंपाने वालों के । पु०ष०ब०व०, 5.87.3, 8.20.14

धुरि - धुरी पर, धुरी में, धूः प्रातिपदिक के स०ए०व० का रूप ।

धूतय: - प्रकम्पयितार:, √धूञ् कम्पने (पुं०) प्र०ब०व०, 5.61.14, 7.58.4, 8.20.16 -

धूरसद: - पु०प्र०ब०व०, 2.34.4

धूर्षद् - 'धुर' षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु ‹भ्वा0› + क्विप् । धुरि सीदन्ति । राथ के अनुसार धूर्षद का अर्थ है धुर् के नीचे भार वहन करने वाला, आगे बढ़ने वाला, फड़ पर बैठने वाला अर्थात् सारथि ।

धृष्णु - धारण करने वाला । धृष् + नु । नपुं0प्र0ए0व0, 6.66.4

धृष्णुया - नपुं0, तृ0ए0व0 ।

धृष्ण सेना - धर्षक सेनाओं वाले, पु0प्र0ब0व0, 6.66 6

धृष्णा: - धर्षक का, आक्रामक का, पु0ष0ए0व0, 7.56.8

धृषद्विन: - ‹पुं0› प्र0द्वि0व0, 5.52.2

धेनु: - दुग्धदात्री गौ । धयन्ति पिबन्ति यस्या: सेति विग्रहे √ धेट् पाने ‹भ्वा0› धातो:, धेट् इच्च उ03.34 सूत्र से नु-प्रत्यय । दूध देने वाली गाय, ‹स्त्री0› प्र0ए0व0, 2.34.6,8, 6.66.1, 1.66.1, 1.32.9, अवे0 4.38.8, 'कामदुधो:, श0ब्रा0 18.82.23 तै0सं0 2.6.2.3, 4.8.8, वा0सं0 18.27

धेनुभि: - ‹स्त्री0› तृ0ब0व0 दोग्ध्री गायों के द्वारा, 2.34.5

धेनव: - दूध देने वाली गायें, दुग्धदात्र्यो गाव: ।√ धेट् पाने + नु । ‹स्त्री0› प्र0ब0 व0, 5.53.7, 55.5

न - 2.34.6,7, 5.58.8, 59.7,8,55.9, 8.20.8,10,26, 6.58.3, 10.77.1, 3.4.5.7.8, निषेधे, प्रतिषेधे, निवारणे, मत, स0प्र0, 282, 10.129.7 उपमार्थे । उपमायां नि0 1.4, 1.24.4, जैसे ।

नकि: - या न शब्दयन्ति सा ‹उषा:› 1.48.6, नहि 1.69.4, नैव 1.52.13, आकांक्षायाम् 33.79, निषेधे 1.165,5 कोई भी नहीं 2.34.3, ‹पु0› प्र0ए0 व0 ।

नक्तम् - रात्रि को । अव्ययपद । नक्तमिति रात्रिनाम निघं0 1.7, ए0व0 8.7.7

नक्षन्ते - व्याप्नुवन्ति - व्याप्त होते हैं । √णक्ष गतौ ‹भ्वा0› लट्प्र0पु0ब0व0, 7.58.1

<u>नदस्य</u> - नदी का, जलाशय के मध्य का । जलेन पूर्णस्य जलाशयस्य मध्ये णद् शब्दे + अच् । पु०ष०ए०व०, 2.34.3.

<u>नमध्वम्</u> - √नम् + छान्दस् । लोट् म०पु०ब०व० ।

<u>नमन्ति</u> - √णम् प्रह्वत्वे शब्दे लट् प्र०पु०ब०व० नमन करते हैं, 7.56.19.

<u>नमसः</u> - नमस्कार का, प्रणाम का, ष०ए०व०, 12.34.14.

<u>नमस्य</u> - सत्कुरु, सत्कार के योग्य, नमस्कार के योग्य । नमस् शब्दाप्ता 5.52.13

<u>नमयिष्यवः</u> - नमस् शब्दाप्ता पूजायामर्थे नमोवरिवशूचित्रङ् क्यच्, 3.1.19, नमस्कार करने की इच्छा वाले, 8.20.1

<u>नयत्</u> - ले जाओ । प्रापयत/नय लोट्, म०पु०ब०व०, 5.55.10

<u>नरः</u> - धर्म विद्या नेता (सज्जनः) नायक, मनुष्य । नृ नये पचाद्यच् प्रत्ययः । कर्तरि 5.52.6,7,8.11, 53.15, 55.3, 57.8, 59.3, 8.20.6,7,10,16.

<u>नराम्</u> - नायकानां विदुषाम् नराणाम् मनुष्यों का, नरों का । √णीञ् प्रापणे (भ्वा०) नयतेर्डिच्च टेर्लोपः' 30.2.100 सूत्र से ऋ प्रत्यय डित्वाच्च टेर्लोपः । (पु०) ष०ब०व० 2,34.6

<u>नरे</u> - नायक के लिए मनुष्य के लिए । णीञ् प्रापणे (पु०) च०ए०व० 5.52.5

<u>नवमानस्य</u> - स्तोतुमर्हस्य, स्तुति को । √णु स्तुतौ (अदा०) शानच् ।
नव प्रातिपदिकात्

<u>नव्यसीनां</u> - अतिशय नवीन प्रजाओं के । ~~नवप्राति~~अतिशायने ईयसुन् प्रत्यये स्त्रियां ङीप् (स्त्री०) ष०ब०व० 5.58.1

पदिकात्

<u>नविष्ठया</u> - अतिशयेन नूतनया, अतिशयनूतन के द्वारा । नवप्राति अतिशायने + इष्ठन् + स्त्रियां टाप् (स्त्री०) तृ०ए०व० 18,20.19.

<u>नवेदसः</u> - नञ् वेदस्पदयोः समासे कृते 'नभ्राण्नपात्०' अ० 6.3.75 सूत्र से नञ् प्रकृतिभाव वेदस् = विद् सत्तायाम् (दिवा०) √विद्लृ लाभे (तुदा०) + असुन् । न जानने वाले, न प्राप्त करने वाले, 8.7.8

नशात - √णश् अदर्शने ॥दिवा॥ + शप् । लोट् म0पु0ब0व0 8.2.16

नसन्ते - प्राप्त करते हैं । लट् , प्र0पु0ब0व0, 7.58.5, नसतेर्गतिकर्मा निघं0 2.14

नसो - नासिका में । ॥पुं0॥ स0ए0व0, 5.61.2, नासिकास्थाने यद्दम्नोमास्0 अ0 6.1.63 सूत्र से 'नस्' आदेश ।

नाकम् - न कम = अकम् । न ् अक् पदयो: समासे 'नभ्राणनपात्0' अ0 6.3.65 सूत्र से न ् प्रकृतिभाव: । सुख विशेष स्वर्ग जहाँ दु:ख नहीं है ॥पुं0॥ द्वि0ए0व0 7.58.1

नानदति - बारम्बार शब्द करते हैं । √णद् शब्दे लट् प्र0पु0ए0व0, 8.20.5

नामानि - उदकानि । नुप0प्र0ब0व0 7.56.14

नामभि: - आख्याभि: आख्या के द्वारा । तृ0ए0व0 7.57.6

नाम्ना - नाम के द्वारा, प्रसिद्धि के द्वारा, तृ0ए0व0, 10.77.8

नि - नीचै:, नीचे से, नितराम 1.56.5, नित्य, सदैव, 8.7.5

निचेपर: - चुनने वाले । नि +√चिञ् चयने ॥स्वा0॥ कर्तरि + तृच् । चयन करने वाले ॥पुं0॥ प्र0ब0व0 7.57.2

निष्या - अन्तर्हित ॥जीव॥, अधोवर्तमान । नपुं0 प्र0ब0व0 7.56.4, निर्णीतान्तर्हित नाम् निघं0 3.25

निद: - निन्दक ॥मनुष्य॥ √णिदि कुत्सायाम् + क्विप् । पु0प्र0ब0व0 2.34.15, 5.87.6,9, 5.53.14

निदे - दुर्जन के लिए । ॥पुं0॥ च0ए0व0 2.34.10

निनयत - अच्छी प्रकार से ले जाओ । नि +√णी लोट् म0पु0ब0व0 8.7.10

निम्नै: - अध:स्थान के द्वारा । नि +√म्ना अभ्यासे + क: प्रत्यय । तृ0ब0व0 10.77.5

नियुतः - नियुक्त, सदैव शुभ गुणों से युक्त, नि + यु + क्त प्रत्यय । पशवो वै नियुतः तै0 4.6.11, नि + यु मिश्रणेऽमिश्रणे च + क्त । पु0प्र0ए0व0 5.52.11

निरिणन्ति - नित्यप्रति युद्धाचरण करते हैं । नि = √रण् गतौ लट् प्र0पु0ब0व0 5.64.4

निषङ्गिणः - बहुत प्रकार के शस्त्र विशेष विद्यमान हैं जिनके रिपुगण - शत्रुगण । नि + √षञ्ज् गतौ ॥भ्वा0॥ + घञ् । ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.57.2

नूतनम् - ॥वि0॥ नया, नवीन, नवप्राति0 स्वार्थे 'नवस्य नू आदेशस्त्नप्तनप्खाश्च' अ0 5.4.25 वा0 सूत्रेणतनप् प्रत्यय - नू।आदेश ।

नूनम् - ॥अव्ययपद॥ निश्चय, निश्चित । 5.56.4, 58.1, 8.20.15

नून् - नायकों में श्रेष्ठ पुरुष, विद्या, शिक्षा च धर्मयुक्त मनुष्य । णी प्रापणे पु0द्वि0 ब0व0 5.61.2

नृभिः - नेतृभिः ॥जनैः॥ लोगों के द्वारा, नरों के द्वारा । पुं0 तृ0ब0व0 5.87.4

नृम्णम् - धन को, बल को, नृ इत्युपपदे 'म्ना'अभ्यासे ॥भ्वा0॥ घञर्थे कः प्रत्यय । 7.56.5, नृम्णम् निघं0 2.9

नृम्णैः - तृ0ब0व0 । धनों के द्वारा ।

पक्षिणः - पणायति स्तौति व्यवहरति वा येन तत्र वा स पक्षः विहङ्गमान् ॥पु0॥ प्र0 ब0व0 8.20.10 √पत्लृ

पततः - पतनशील का । गतौ + शतृ । ॥पु0॥ ष0ए0व0

पतयः - स्वामी, ॥जनाः॥ पालक, ॥पु0॥ प्र0ब0व0 5.55.10

पत्यमानाम् - गिराई जाती हुई को । √पत् + णिच् + मुक् + शानच् + टाप् । ॥स्त्री॥ द्वि0ए0व0 6.66.1

पविभिः - सुमार्गः - अच्छे मार्गों से । √पत्लृ गतौ ॥भ्वा0॥ 'पतः स्थः च' उ0 4.12 से इनि प्रत्यय । ॥पु0॥ तृ0ब0व0 2.34.5

पथ्या - पथ का साथी ॥स्त्री०॥ पू०ए०व० 6.66.7

पनस्यव: - स्तुति करने वालों । √पन् व्यवहारे स्तुतौ च + असुन् ॥पु०॥ पू०ब०व० 10.77.3

पनस्युम् - पनस् - प्राति आत्मन् इच्छा के अर्थ में क्यच् । 'क्याच्छन्दसि' सूत्र से 'उ' प्रत्यय । ॥पु०॥ द्वि०ए०व० 5.56.9

पन्थाम् - धर्म के मार्ग को । 'पथिन्' प्रातिपदिकस्य नलोपश्छान्दस: । पु०द्वि०ए०व० 8.7.8

पपृथे - विस्तीर्ण हुआ √पृथ् प्रख्याने लिट् प्र०पु०ए०व० 8.7.8

परमस्या: - अतिश्रेष्ठ, उत्तम गुण रूप, शीलयुक्त ॥स्त्री०॥ ब०ए०व० 5.61.1

पराकात् - दूर देश से । पं०ए०व० 10.77.6, पराके दूरनाम् निघं० 3.26

परावत: - दूर देश से, दूर से । पं०ए०व० 5.61.1, 8.7.26, 10.78.7, परशब्दाद्-
- मतुप् पूर्वस्य च दीर्घश्छान्दस: ।

पराहता - सुदूर प्राप्त । परा +√हन् हिंसागत्यो: + क्त:, स्त्रियां टाप् प्र०ए०व० 5.56.3

परिपप्तु: - सर्व पीड़ाओं, उपद्रवों से पृथक रखो । परि + √पा रक्षणे प्र०पु०ब०व०, 5.59.6

परियाथन - चारों ओर जाते हो, चतुर्दिक् फैल जाते हो । परि +√या प्रापणे लोट् म०पु०ब०व० 5.57.7

परुष्ण्याम् - पृथ्वी में, पालनकर्त्री में ।√पृ पालनपूरणयो: ॥जु०॥ + उसि प्रत्यय । स्त्री स०ए०व० 5.52.9

पर्जन्य - पर्षति सिंचतीति निग्रहे √पृषु सेचने = 'पर्जन्य' उ० 3.103 सूत्र से अन्य प्रत्ययो निपात्यते, निपात से षकार को जकार । पालक, जनक = मेघ, राजपुरुष ॥पु०॥ प्र०ए०व० 5.53.4

पर्वतम् - पर्वताकार मेघ /पूर्व पूरणे भमृदृशियजिपर्वि' उ० 3.110 से आतच् प्रत्यय: । ॥पु०॥ प्र०ए०व० 5.64.4

पर्वतस्य - शैल या मेघ का । पु0ष0ए0व0 5.59.7 पर्वत इति मेघनाम् निघं0 1.10.

पर्वतान् - मेघों से, शैलों से ॥ पु0॥ द्वि0ब0व0 5.56.3, 57.3, 8.7.4, 23.

पर्वतासः - मेघाः, शैलाः, पर्वताकार मेघ पु0प्र0ब0व0 8.20.5

पर्वतेषु - अभ्रेषु, मेघों में, पु0स0ब0व0 8.20.5, 8.7.1

पर्व शः - सन्धित = शरीर के अंगों के जोड़, । अङ्गमङ्गम् । पर्वन्प्रातिO वीप्सायां शस् प्रत्यय । 1.57.6, 8.7.22,23.

पव्या - वज्र के समान चक्र की अरें । √पूञ् पवने ॥क्र्या0॥ + इ प्रत्यय 5.52.9

पश्यन्त - देखते हो । √दृशिर् प्रेक्षणे + क्षिति पश्यादेशः । लट् प्र0पु0ब0व0 8.20.26

पाजसा - बल के द्वारा । √पा रक्षणे ॥अदा0॥ पातेर्बले जुट् च' उ0 4.20.3 से असुन् प्रत्यय । नपुं0 तृ0ए0व0 2.34.13

पाजस्वन्तः - रक्षा करते हुए । पु0प्र0ए0व0 10.77.3

पात - रक्षा करो ।√पा रक्षणे, लोट् म0पु0ब0व0, 17.56.25

पाति - रक्षा करता है, प्राप्त करता है, पालन करता है । लट् प्र0पु0ए0व0, 5.52.2,4.

पारयथ - पार करते हो ।√॥पार कर्मसमाप्तौ॥ ॥चुरा0॥ लट् म0पु0ब0व0, 2.34.15

पारावताः - जो सुदूर स्थित हो । परप्रातिO मतुपप्रत्यये परवत् । छान्दसः पूर्वस्य दीर्घः 5.53.8 ॥पु0॥ प्र0ब0व0 ।

पार्थिवम् - पृथ्वी सम्बन्धि ॥रजः = लोक संसार॥ ॥पु0॥ द्वि0ए0व0 5.87.7

पार्थिवा - पार्थिव - पृथिव्यां विदितानि ॥वसूनि = द्रव्याणि॥ पु0प्र0व0व0 5.52.6

पार्ये - पालन के लिए, पूरण के लिए,√पृ पालन-पूरणयोः ॥जु0॥ 'ऋहलोर्ण्यत्' से 'ण्यत्' प्रत्यय । नपुं0 स0ए0व0 6.66.8

पावकान् - पवित्रकारिका ।√पूङ् पवने + घञ् + कः प्रत्यय । पु०द्वि०ब०व० 8.20.19

पावकाः - पवित्रकर्त्री, अग्नि, जल, बह्नि ।√पूञ् पवने ॥भ्वा०॥ कर्तरि ण्वुल + स्त्रियां टाप् ।

पिन्वते - सेवा करने के लिए ।√पिवि सेवने सेवने च + शतृ । पु०प्र०ए०व० 2,34.8

पिन्वन्ति - सेवा करते हैं । लट् प्र०पु०ब०व०, सींचते हैं ।

पिपिशे - विराजमान है ।√पिश् अवयवे ॥तुदा०॥ लिट् छान्दसि लुङ् तदर्थे प्रयुक्त 5.57.6.

पिप्यत - प्राप्त करते हो । ओप्यायी वृद्धौ लोट् पी०भाव: । 2.34.6

पिप्युषीम् - प्रवृद्ध होते हैं । बढ़ावा को प्राप्त करते हो ।√पीङ् पाने ॥दिवा०॥ + क्वसु - स्त्रियां ङीप् । लिट् म०पु०ब०व० ।

पिप्रियाणाः - प्रियमाणा,√प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च लिट् + कानच् । पु०प्र०ब०व०, 7.56.2

पिशङ्गश्वाः - प्रियमाणा,√प्रीङ् आपीतवर्णअश्व हैं जिनके = मरुद्गण । पिशङ् अश्व पदयोः समास: । पु०प्र०ब०व० 5.57.4

पिशाना: - सम्पूर्ण करते हुए शूरवीर, पु०प्र०ब०व० √पिश् अवयवे + शानच् ।

पिष्टम् - अवयवीभूत ॥गव - समूह॥ √पिश् अवयवे + क्त । पु०द्वि०ए०व० 5.56.1

पित्र्याणि - पितरों के आगमन पर । पित्राति आगतप्रार्थे 'पितुर्यच्च' अ० 4.3.79 से यत् । नपुं० प्र०ब०व० 7.56.23

पीतये - पीने के लिए ।√पा पाने ॥भ्वा०॥ √पा रक्षणे + क्तिच् । 8.94.10-12.

पीपाय - प्रकट हुआ, प्रकट होता है । ओप्यायी वृद्धौ लिटि पी-भाव: । 6.66.1, 6.44.21.

पुत्राः - आज्ञापालक सन्तान, पुत्र ।√पूञ् पवने ॥क्र्या०॥ पु०प्र०ब०व०, 6.66.3

पुत्रास - पुत्र + असुक् + जस् । पु०प्र०ब०व० 10.77.2

पुत्रकृथे - ॥अव्ययपद॥ पुत्र के लिए च०ए०व० 5.61.3

पुनः - पश्चात्, आगे, बार-बार, पुनः-पुनः, मुहुर्मुहुः ।

पुनाना - पवित्रकारिका । पुनातिप्राति० स्त्रियां टाप् । स्त्री०प्र०ए०व०, 6.66.4

पुरा - कार्यात् प्राक्काले । सम्मुख, पूर्व, प्राक् , प्रथम । पुरा इति चादिषु पाठात् निपातः 8,7.21

पुरीषिणः - पहले से ही बहुत प्रकार से पोषण विद्यमान है जिनमें ‡वे मरुतः = मानवः √पॄ पालनपूरणयोः ‡जु०‡ 'शॄपॄभ्यां किच्च' उ० 4.27, पु०प्र०ब०व०, 5.55.5

पुरीषिणी - पुरू इषिणी ‡नदी‡ पुरीषिण प्रातिस्त्रियां ङीप् । स्त्री०द्वि०ब०व०, 5.53.9

पुरुक्षुम् - बहुधनधान्ययुक्त । पुरु - क्षुम पदयो समासः 1,68.5, 8.7.13

पुरुतमम् - अनेकों द्वारा अभिकांक्षित । कांक्षायाम् । पु०द्वि०ए०व० 5.56.5

पुरुद्रप्सा - अधिक जलयुक्त । पुरुद्रप्स पदयोः समासः, 5.57.5

पुरुप्सता - अनेक, खूब वर्षा करने वाले ‡पु०‡ प्र०ब०व०, 7.57.4

पुरुस्पृहः - बहु प्रकार से स्पृहणीय । पुरुपदे √स्पृह् ईप्सायाम् घञ्+ कः प्रत्यय, 8.20.1

पुष्यन्ती - पुष्टं कारयित्री, पुष्ट करती हुई, पोषण करती हुई । √पुष् पुष्टौ शत्रन्तात् ङीप् । ‡स्त्री०‡ प्र०ए०व० 7.56.5

पुष्यसे - पुष्ट किये जाते हो ।√पुष् + यक् + लट् म०पु०ए०व० 7.56.5

पूर्व्यः - सबसे पूर्व, पु०प्र०ए०व० 8.7.36

पूर्व्यम् - पूर्वी प्राति० प्रथमा द्विवचनस्यपूर्वसवर्ण दीर्घः, नपुं०प्र०ए०व०, 5.55.8

पूर्वासु - प्राचीन सनातन प्रजा । सर्वप्राति० स्त्रियां टाप् । 8.20.15

पूतदक्षस - पवित्र, बलयुक्त, पूञ् ‡स्त्री० पवने ‡क्र्या०‡ + क्त । ‡पु०‡ प्र०ब०व०, 8.94. 7-10.

पृक्षम् - सुख से सेवनीय, संपृक्तारम्, अन्न, सेचनीय ‡क्षेत्र‡ पृचीसम्पर्के ‡रुधा०‡ औणा०+ क्स०: प्रत्यय । √पृषु सेचने ‡भ्वा०‡ + क्स प्रत्यय ।

पृक्षे - सम्पर्क में, जलादि के द्वारा सिंचित, जलादिभिः सिक्ते ॥पृथ्वीमण्डले॥ नपुं० स०ए० व० 2.34.4

पृतनासु - युद्धों में, पृतनाः मनुष्यनाम् निघं० 2.3, ॥स्त्री०॥ स०ब०व० 7.56.22

पृत्सु - संग्राम में स्पर्द्धा में, वीर मनुष्यों की टोली में ॥सेना॥ । ॥स्त्री०॥ स०ब०व०, 8.20.20, पृत्सुरति संग्रामनाम निघं० 2.17

पृथु - विस्तीर्ण, अनेक विधाओं में विस्तीर्ण, विशाल, √प्रथ् प्रख्याने + कु प्रत्यय ॥श्रयः = तेज॥, नपुं० प्र०ए०व०, 5.87.7

पृथिवी - भूमि, अन्तरिक्ष, विस्तीर्ण, भूमि, अवनिरिव ॥माता॥ पृथुसुखदात्री विद्या, √प्रथ प्रख्याने, 'प्रथेः षिवन्षवन्ष्वनः सम्प्रसारणं न्य' उ० 1.150 सूत्र से षिवन् प्रत्यय 5.57.3, 87.7, 56.3, 6.66.9

पृथिव्याः - भूगर्भविद्या, भूमि के साथ ॥स्त्री०॥ ष०ए०व० 10.77.3

पृथिव्यै - पृथ्वी के लिए, भूमिराज्य के लिए, विस्तृत भूमि के लिए, पञ्चम्यार्थे चतुर्थी 5.59.1

पृषतः - स्थूलपदार्थ, मृगविशेष । √पृषु सेचने ॥भ्वा०॥ 'वर्तमाने पृषद्बृहन्०' उ० 284 सूत्र से अति प्रत्यय शतृवच्च कार्यम् । चितकबरा ।

पृषतीः - चितकबरी घोड़ियों के द्वारा । स्त्री० द्वि०ब०व० 5.57.3, 8.7.28

पृषतीभिः - चितकबरी हिरणियों के साथ ॥वर्षा॥ ॥स्त्री०॥ तृ०ब०व० 2.34.3, 5.58.6

पृष्ठे - उपरि, पृष्ठोपरि, पर भाग में, पश्चात्भाग में, पीठ में, तल में । √पृषु सेचने । नपुं० स०ए०व० 5.61.2

पृश्निः - विचित्रवर्णा भूमि, विचित्रवर्ण सूर्य, जल के सहित सूर्य ॥स्त्री०॥ प्र०ए०व० 6.66.3

पृश्नेः - ॥स्त्री०॥ ष०ए०व० 5.58.2

पृश्निमातरः - पृश्निसंज्ञकमाता वाले ॥मरुतः - वायवः॥ विचित्रवर्णा भूमि से उत्पन्न होने वाले । पृश्निमातृ-पदयोः समासः 5.57.2, 8.7.17

पृश्न्याः - भूरे रंग के मेघों से उत्पन्न होने वाले, पु०प्र०ब०व०, पृश्निप्राति० भवार्थे यत् अन्तरिक्ष के मध्य में। स्त्री०ष०ए०व० 2.34.10

पेशसम् - रूप, सुरूप, सुन्दररूप। पेशं इति रूपनाम्, पिंशतेर्विपिंशितं भवति निघं08.11, 2.34.13

पौंस्यम् - पुंसु साधु ॥बल॥, पुरुषार्थं, पुरुषार्थयुक्त बल। पुंसुप्राति० भावे कर्मणि वा ष्यञ् प्रत्यय। नपुं० प्र०द्वि०ए०व०, 8.7.23

पौंस्या - पुरुषार्थ। पुंभ्यो हितानि बलानि। नपुं०प्र०ब०व०, 5.59.4

पौंस्येभिः - उत्कृष्ट शरीर का आत्मबल, पुरुषार्थ के द्वारा।

प्रचित्रम् - प्र + चि + बल, पु०द्वि०ए०व०, 6.66.9

प्रचेतसः - प्रकृष्ट ज्ञानी, उत्कृष्ट ज्ञानी। प्रचेतसपदयोः समासः। √चितीसंज्ञाने + असुन् 5.87.7, 8.7.12

प्रच्यावयन्ति - प्रकृष्ट रूप से हिला गिरा देते हैं, प्र + √च्युङ् + शतृ लट् प्र०पु०ब०व०, 1.64.3, 5.56.4

प्रजायै - प्रजा सुख के लिए। प्र + √जनी प्रादुर्भावे + ड: + टाप्। पु०च०ए०व० 7.57.6

प्रजायन्ते - प्रकृष्टतया उत्पन्न होते हो। लट् प्र०पु०ब०व०, 5.58.4

प्रतिमिमाति - प्रतिगच्छति। √प्रति माङ् माने ॥जु०॥ लट् प्र०पु०ए०व० 1.164.29

प्रतिमिमीते - प्रत्यक्षतया रचयति। आ०प० लट् प्र०पु०ए०व० 1.164.24

प्रतिरत - निष्पादयत, निष्पादित करो, वितरित करो, पार करो। प्र + √तृ प्लवन-सन्तरणयोः लोट् म०पु०ब०व० 5.57.5

प्रतिहर्यति - प्रत्यक्ष रूप से कामना करता है। प्रति + हर्य लट् प्र०पु०ए०व० 5.57.1

प्रभर्ति - प्र + √भृञ् भरणे लट् प्र०पु०ए०व० 1.173.6

प्रयज्यवः - वेगपूर्वक साथ गमन करने वाले, प्रकृष्ट यज्ञ का सम्पादन करने वाले। प्र + यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु + युच्। पु०प्र०ए०व० 5.55.1, 7.56.14

प्रयज्यवे - यज्ञ सम्पादयिता के लिए, प्रयजन्ति येन तस्मै ॥धीमते जनाय॥ पु०च०ए०व०, ॥पु०॥ च०ए०व०, 5.87.1,6.

प्रयज्यून - ॥पु०॥ प्र०ब०व०, 8.7.33

प्रयन्तु - प्रकृष्ट रूप से गमन करो । प्र + √इण् गतौ लोट् प्र०पु०ब०व० 5.87.1

प्रयस्वन्तः - प्रयतमाना ॥जनाः॥ बहुप्रयत्नशील । प्रातिo प्रशंसायां मतुप् । प्र + यसु प्रयत्ने ॥दिवा०॥ + क्विप् । ॥पुं०॥ प्र०ब०व०, 10.77.4, 3.52.6, 1.130.1

प्रसितौ: - प्रकृष्ट रूप से बन्धन के द्वारा । प्र - सितिपदयोसमासः । √षिञ् बन्धने ॥क्र्या०॥ स्त्रियां क्तिन् ॥स्त्री०॥ स०ए०व० 5.87.6

प्रसितासः - चतुर्दिक् वर्षा करने वाले । पु०प्र०ब०व० 10.77.5

प्रस्थावान - अच्छी प्रकार होते हुए । प्र + √अस् भुवि ॥पु०॥ प्र०ए०व० 8.7.1

प्रुषा - सिंचित करने वाली ।√प्रुष् दाहे ॥भ्वा०॥ + क्विप् प्रुष् स्नेहसेवनपूरणेषु ॥क्र्या०॥ ॥स्त्री०॥ तृ०ए०व० 10.77.1

बलम् - √डुभृञ् धारणपोषणयोः + अच् या बल प्राणने + अच् । सामर्थ्य, शक्ति, ताकत, वीर्य, ओज, नपुं० द्वि०ए०व०, 5.57.6

बर्हि - बर्धकौ, बर्धक । √बृह् वृद्धौ ॥भ्वा०॥ + कर्तरि + युच् । ॥पु०॥ प्र०ब०व० 10.77.3

बहुलम् - ॥वि०॥ वंह् + कुलच् , नलोपः ॥म०अ०॥ वंहीयस् ॥ उ०अ० बंहिष्ठ, घिनका, सघन, सटा हुआ, विस्तृत, विशाल, भरापूरा, समृद्ध, प्रचुर, यथेष्ट । बहूपपदे ला आदाने ॥अदा०॥ + कः प्रत्यय, पुष्कल 5.55.1

बाहु ओजसा - भुजबलस्य = भुजबल के द्वारा । बाहु ओजस पदयोः समासः । नपुं०, तृ०ए०व० 8.7.6

बाहूजूतः - बाहुओं से बलवान वीर पुरुष । बाहूपपदे जु ॥सौत्रोधातु॥ वेगितायां गतौ + क्त ॥पु०॥ प्र०ए०व० 5.58.4

बाहुषु.- प्रचण्ड दोर्दण्डों में ।√बाधृ विलोडने , ॥पु०॥ स०ब०व० 1.166.10, 8.7.11

बाहृवौ - भुजाओं पर, भुजाओं में । पु०स०द्वि०व०, 5.57.6

विमहस: - ‡वि + नपुं०‡ उत्सव, त्योहार का अवसर, उपहार, आहुति, यज्ञ प्रकाश, आभा, 5.87.4

बीजम् - ‡वि + जन् + ड उपसर्गस्य दीर्घः बवयोरभेदः‡ बीज ‡आलं से भी‡ बीज का दाना, अनाज, वीज प्रकृति, श० 1.1 नपुं० द्वि०ए०व० 5.53.1

बुध्ने √बन्ध बन्धने ‡क्या०‡ + नक् । 'बन्धेर्ब्रधिबुधी च' उ० 3.5 सूत्र से नक् ‡नपुं०‡ स० ए०व०, 10.77.4

ब्रुवते - स्तुति करने को, बोलने वाले को, ब्रु + शतृ ‡पु०‡ च०ए०व० 5.87.2

बृधन्तम् - 2.34.11

बृषण: - बलवान का, वर्षा करने वाले का । पुं०ष०ए०व० 7.56.21

बृहत् - ‡वि०‡ ‡स्त्री०‡ ती. /बृह् वृद्धौ ‡बृह् + अति‡ विस्तृत, महान, विशाल, बड़ा, स्थूल मा० 9/5/ 'दिलीप सूनो स बृहद् भुजान्तरम्' रघु 3.54, नपुं० प्र०ए०व० 5.55.1

ब्रह्म - परमात्मा । √बृंह् + मनिन् नकारस्याकारे उः रत्वम्, ये नान्ताः ते अकारान्ताः अपि इत्युक्तेः अकारान्तोऽयं शब्दः नपुं० प्र०ए०व० 2.34.7

ब्रह्मा - ‡वि०‡ ब्रह्मा से सम्बद्ध, ब्रह्मा या प्रजापति, पवित्र, पावन, पुनीत ज्ञान के पोषक । पु०प्र०ए०व० 8.7.20

ब्रह्मण्यन्तः - ‡वि०‡ ‡ब्रह्मन् + यत्‡ वेदों में निष्णात् व्यक्ति - महावीर 3.26, 2.34.11

ब्रह्मणि - ब्राह्मण सभा में, √बृंहि वृद्धौ + मनिन् । प्र०पु०ए०व० 2.34.6

ब्रह्माणम् - ब्राह्मण को, वेदेश्वर को, उपासक को, ब्रह्मविद को, विद्वान ‡पु०‡ द्वि० ए०व० 10.77.1

भक्षीय - सेवा या भजन करना चाहिए । √भज् सेवायाम् ‡भ्वा०‡ लिङ् । बहुलंछन्दसी- तिशपोलुक् 5.57.7

भजतन - सेवध्वम् = सेवा करो भज् सेवायाम् लोट् म०पु०ब० 7.56.11

भद्रजानय: - जो भद्र (कल्याण) जानते हैं वे विद्वद्गण = भद्रा: जायाः येषां ते जायायाः निङ् से निङ् का आदेश। पु०प्र०ए०व० 5.61.4, 9.

भन्ददिष्टये - कल्याण सुख की संगति के लिए। भन्दद्-इष्टि पदयोः समास:। भन्दत - भदि कल्याणे सुखे च + अति इष्टि = यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु + क्तिन्।
(पु०) च०ए०व० 5.87.1

भयते - भय करता है, डरता है। √ञिभी भये (जु०) लट् प्र०पु०ए०व०, 7.58.2

भरध्यै - √डुभृञ् धारणपोषणयो: (जु०) तुमर्थे अध्यै प्रत्यय विधिलिङ्। उ०पु०ए०व०, 6.66.3

भरध्वे - धरत, धारण करते हो, भरते हो। √भृञ् धारण पोषणयो:। लट् म०पु०ब०व० 5.59.4

भरध्वम् - भरण किया, पालन किया, धारण किया। लोट् म०पु०ब०व० 6.66.9, 8.7.9

भवथ - होते हो। √भू सत्तायाम् लट् म०पु०ब०व० 5.55.8

भानु: - किरणयुक्त सूर्य, दीप्ति, प्रकाशमान (अ० - सूर्य) प्रभाकर, दीप्तिमान (अर्णव:= समुद्र:) 3.22.2 (पु०) प्र०ए०व० 5.52.6

भानुम् - कान्ति (पेश: = रूपम्) सूर्य, सूर्य प्रकाश, प्रकाश (सूर्य का) प्रकाशयुक्त (राजा) किरण (पु०) द्वि०ए०व० 5.59.1

भानुभि: - दिवसै:, दिन से, विद्या प्रकाशक गुणों के द्वारा, किरणै: प्रकाशकै:, पु०तृ०, ब०व०

भ्रातृत्वम् - भ्रातृ + त्वत्; भाईचारा, नपुं०प्र०ए०व० 8.7.22

भिक्षेत - याचेत = याचना करनी चाहिए। √भिक्ष् भिक्षायाम् अलाभे लाभे च। विधिलिङ्, प्र०पु०ए०व० 8,7.15

भिन्दन्ति - विदीर्ण करते हैं। √भिदिर् विदारणे (रुधा०)। लट् प्र०पु०ब०व० । 5.53.14.

भियसा - भय से, डर से, दुःख के डर से ।√ञिभी भये + असुन् । नपुं० तृ०ए०व०, 5.56.2

भिया - भय से, या भय के द्वारा ।√ञिभी भये + क्विप् ॥स्त्री०॥ तृ०ए०व० 5.57.3, 8.7.26

भीमयु: - जो भीम = भयंकर योद्धा है वह वीर पुरुष । भीमोपपदे √या प्रापणे ॥अदा०॥ + कु 'मृगय्यादयश्च' उ० 1.37 सूत्र से कुः । ॥पु०॥ प्र०ए०व० 5.56.3

भीमसंदृश: - जिनका दर्शन भयंकर है वे लोग । भीम + असुक् + जस् । भीमसंदृशमदयोहे- समासः । संदृश् = सम् + √दृशिर् प्रेक्षणे + क्विन् । ॥पु०॥ प्र०ए०व० 5.56.2

भीमास: - जिनसे लोग डरते हैं दुर्जन, बिभ्यति येभ्यस्ते ॥दुर्जना:॥ पु० प्र०ब०व० 7.58.2

भुजे - भोग के लिए, पालन के लिए, सुख के लिए ।√भुजपालनाभ्यवहारयोः ॥रुधा०॥ + क्विप् । ॥पु०॥ च०ए०व० 8.7.8, 13.

भुवना - संसार, लोक और प्राणी ।√भू सत्तायाम् ॥नपुं०॥ प्र०ए०व० 2.34.4

भूत - होना चाहिए ।√भू सत्तायाम् + आङ् + अङ् ल थें लुङ् 1.38.5, 8.20.24

भूमि: - पृथ्वी, √भू सत्तायाम् + मिः । जिसमें सब भूत ॥प्राणी॥ होते हों वह परमात्मा स०प्र० 15.13.18, 5.59.2, 4, 8.7.5

भूम - ॥क्रि०वि०॥ अत्यधिकम् अतीव, अत्यधिक, 5.57.4

भूरि - अतीव, पुनः पुनः ।√भू सत्तायाम् + क्रिन् । 7.56.23

अ भूवन् - अभूवन्, भवन्तु होवें ।√भू सत्तायाम् ॥भ्वा०॥ लुङ् अडभावः ॥पु०॥ प्र०ब०व० 6.66.2

भ्रमिम् - भ्रमणशील, अनवस्थान् ।√भ्रमु चलने + इन् ॥पु०॥ तृ०ए०व० 7.56.20

भेजिरे - सेवा करते हुए, सेवा करते हैं ।√भज् सेवायाम् ॥भ्वा०॥ लिट् ॥पु०॥ प्र०ब०व०, 5.57.3

भेषजम् - औषधि, रोगनिवारक, रोगनाशक, पथ्यौषधि, ब्रह्मचार्य सेवन, जल, भिषज् चिकित्सायाम् (कण्ड्वा०) + अच् नपुं० प्र०द्वि०ए०व० 5.53.14, 8.20.25

भेषजस्य - (नपुं०) ष०ए०व० 8.20.23

भोजान् - पालक (लोग) पालकान् (जनान्), √भुज् पालनाभ्यवहारयोः + अच् वा अन्, (पु०) द्वि०ब०व० 5.53.19

भ्राजज्जन्मानः - देदीप्यमान जन्म है जिनका = मरूद्गण । भ्राजत् - जन्मन् पदयोः समासः भ्राजत् = भ्राजृदीप्तौ + शतृ, (पुं०) प्र०ब०व० 6.66.10

भ्राजन्ते - चमकते हैं, दमकते हैं, प्रकाशित होते हैं ।√भ्राजृ दीप्तौ लट् प्र०पु०ब०व० 1.85.4, 7.56.3

भ्राजदृष्टयः - चमकते हुए आयुध वाले, प्रदीप्त आयुधा (भालों) वाले । भ्राजद् - ऋष्टि पदयोसमासः ।√भ्राजत् भ्राजृ दीप्तौ + शतृ ऋष्टिः = ऋषिगतौ + क्तिन् 1.168.4, 1.64.11, 5.55.1, 1.164.11, 1.21.1, 2.34.5, 10.78.7

मक्षु - शीघ्र, सद्य, त्वरित गति द्वारा ।√मक्ष् शब्दे (भ्वा०) औणा०सः । 6.66.4, 7.56.15

मखस्य - यज्ञ का । मख इति यज्ञनाम् निघं० 3.17 (पु०) ष०ए०व० 8.7.27

मखेभ्यः - यज्ञों से पु०च०ब०व०, 6.66.9

मघोना - प्रशस्त धन युक्त का । (पु०) तृ०ए०व० 7.56.15, 8.94.1

मतयः - मननशीलमनुष्य, प्रज्ञायुक्त मनुष्य,√मनु अवबोधने (तना०) स्त्रियां क्तिन् । (स्त्री) प्र०ब०व० 5.87.1

मत्या - बुद्धि के द्वारा, ज्ञान के द्वारा (स्त्री०) तृ०ए०व०, 5.58.4

मत्सति - आनन्द प्राप्त होता है ।√मदी हर्षे लट् प्र०पु०ए०व० 8.94.5-6

मदच्युतम् - मद से च्युत (पुं०) द्वि०ए०व० 8.7.13

मदति - आनन्दित होता है, हर्षित होता है ।√मदी हर्षे लट् प्र०पु०ए०व० 5.55.1

मदथ - आनन्द प्राप्त करते हो, √मदी हर्षे म0पु0ब0व0 8.7.20

मदाय - आनन्द के लिए, √मदी हर्षे ‡पु0‡ च0ए0व0 2.34.5

मदे - आनन्द, हर्ष प्राप्त करते हैं। लट् प्र0पु0ब0व0 7.57.1

मनांसि - मन, हृदय, चित्त, ‡स्त्री0‡ प्र0ब0व0 7.56.8

मन्दध्वम् - स्तुति करते हो, मदिस्तुति। हर्षित होते हो, √मदी हर्षे 8.7.14

मन्मभि - स्तोत्रैः, मन्त्रैः, ज्ञान विशेष के द्वारा। √मन् ज्ञाने + मनिन् ‡नपुं0‡ तृ0ब0व0
8.7.15

मन्मते - ‡नपुं0‡ तृ0ए0व0 5.52.3

मन्हा - महिमा से, तृ0ए0व0 6.66.5, 8.7.14

मन्म - मन्तव्य, विज्ञान, ज्ञान, ज्ञानोत्पादक कारण, विज्ञानजनक शास्त्र, मन्तव्य‡अनेकों प्रकार के सुख‡√मनु ज्ञाने ‡दिवा0‡ + मनिन् ‡नपुं0‡ प्र0ए0व0 7.57.2

मनीषा - ‡स्त्री0‡ योग्य, गुणी, विद्वान्। मनस् ईषापदयोः समासे शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्। ईषा,√ईष् गति हिंसा दर्शनेषु' ‡भ्वा0‡ 'गुरोश्चहलः' इत्यङ् स्त्रियाम् + टाप्। ‡स्त्री0‡ प्र0ए0व0 6.66.11

मनीषिणः - मेधावी विद्वान्, धीरपुरुष, सबके मन का दमन करने वाले‡परमात्मा‡ प्र0 पु0ब0व0, 5.57.2

मयोभुवः - सुखकारी मानव, सुखस्य भावीय, सुख को चाहने वाला, मनस् उपपदे√भू सत्तायाम् + क्विप्। 5.58.2, 8.20.26

मरुतः - वायवः, मरणधर्मा, मर्याः, विद्वान् मनुष्य, मननशील, महाबलिष्ठ, वायववेगबलयुक्त, मरुत्, √मृङ् प्राणत्यागे ‡तुदा0‡ धातोः 'मृग्रोरुतिः' 1.94 से उतिः। 2.34.2, 6.66.10, 10.77.6

मरुद्भिः - दिव्यगुणी देवों के साथ ‡पु0‡ तृ0ब0व0, 5.52.1, 3.47.4, 1.136.7, 1.19.6

मरुत्वान् - पु0प्र0ए0व0, 2.34.6, 6.47.5

मदिरम् - आनन्दप्रद, मादक द्रव्य, आनन्दकर, √मदी हर्षे + किच्च ॥नपुं0॥ द्वि0ए0व0, 5.61.11

मधु - मधुर गुण से युक्त, माधुर्य, विज्ञान, मन्तव्य, मधुर, √मन् ज्ञाने, 5.61.12.

मह: - विशाल, महान, पुष्कल, बड़ा, वृद्धतम् ॥परमेश्वर॥ नपुं0॥ प्र0ए0व0 किन्तु परा-कात् का विशेषण होने के कारण पं0ए0व0 के अर्थ में प्रयुक्त ।

महान्त: - परिमाण से अधिक, महागुणविशिष्टजन: 5.55.2, 8.7.8

महि - ॥वि0॥ महान, बड़ा, अत्यधिक । ॥नपुं0॥ प्र0ए0व0 2.34.4, 8.7.5.6, 5.53.8, 1.116.6

महित्वनम् - महित्व, महिमान, महिमा, सामर्थ्य, महत्वम्, ॥नपुं0॥ प्र0ए0व0 1.85.7, 2.34.4, 5.55.7.

महे - विशालय, महते ।√ महँ पूजायाम् + क्विप् च0ए0व0 5.59.2, 8.7.5

महिना - दे, महिमन् 7.95.1, महिमन् प्राति + टा प्रत्यय, महत्व के द्वारा 'मकार-लोपश्चछान्दस:' ॥पु0॥ तृ0ए0व0, 5.57.4, 87.2

मन्मभि: - ज्ञान विशेष के साथ ।√मन् ज्ञाने ॥दिवा0॥ + मनिन् ॥नपुं0॥ तृ0ब0व0 10.78.1

मन्यव: - क्रोधादि, क्रोध आक्रोश । पुं0प्र0ए0व0 2.34.6

महसा - ओजसा, तेजसा, महत्ता के द्वारा । बड़े प्रेम से सं0वि0 140, अथर्व0 14.2.43, √मह् पूजायाम् + असुन् । नपुं0 तृ0ए0व0 10.77.6

महित्वा - महत्वप्राय, प्रशंसित, पूजित होकर, सत्कार की प्राप्त होकर सं0वि0 139, 5.58.2

महिमा - महान् भाव, महती प्रशंसा, प्रशंसा समूह, पु0प्र0ए0व0 5.87.5

मही - बलवती, सर्वपूज्या वाङ्मयी, ॥स्त्री0॥ प्र0ए0व0 7.56.4, 10.77.4, ॥क्रि0॥ बड़ा होना ।

महीयते - ॥क्रि0॥ बड़ा होता है। अपने को बड़ा मानने वाले, महत्वपूर्ण हो जाता है।
लट् ॥परस्मैपदी॥ प्र0पु0ए0व0 5.56.9

मर्या: - मरणधर्मा ॥वायव॥, मरणधर्मशील मनुष्य। पु0प्र0ब0व0 5.59.3, 7.56.1,
10.78.4

मर्यास: - मर्य प्राति पदिकात् जसोऽसुक्। मनुष्य, मानव, पु0प्र0ब0व0। 5.61.4, 10.77.2

महती - ॥वि0॥ विशाल, प्रबल, पूजनीय, वृहत ॥स्त्री0॥ द्वि0ब0व0, 8.7.22

ममिरे - व्याप्त होते हैं। √माङ् माने शब्दे च लिट् प्र0पु0ब0व0, लडर्थे प्रयुक्त 10.78.7

मध्व: - मधुरगुणयुक्त, मधूनि, मधुरगुणवाला। नपुं0 ब0ए0व0, छान्दस रूप, 5.57.1

मदन्ति - आनन्दित होते हैं, प्रसन्न होते हैं।√मदी हर्षे प्र0पु0ब0व0।

मर्तेषु - मरणशील, नाशवान पदार्थों में ॥पुं0॥ स0ब0व0 6.66.1

मर्त्य: - सुशिक्षित, धार्मिक, मनुष्य, पुं0 प्र0ए0ब0, 5.52.4

मा - ॥क्रि0॥ मापना, पैमाइश करना, √माङ् माने + क्विप् 7.56.9, 7.57.4, 10.
78.7, 3.32.7, 3.29.11

माता - ॥स्त्री0॥ माता, उत्पादिका, जननी, धर्मार्थ-काम-मोक्षसिद्धिदात्री ॥पृथिवी-
विद्या॥ मान्यप्रदा ॥गायें॥ ॥स्त्री0॥ प्र0ए0ब0 6.66.3

मानुष: - ॥वि0पु0॥ मनुष्य, मनुष्य के अनुकूल, प्र0ए0व0 10.77.7, 5.52.4, 3.9.6,
1.48.11, 1.50.5, 10.125.5, अ0सू0 वै0 33.

मायिनम् - छल-कपट और दुष्कर्मकारी मनुष्य ॥पुं0॥ द्वि0ए0व0, 5.58.2 ॥वि0॥ अद्भुत
सामर्थ्यवान् 1.32.4, 7.28.4

मारुतम् - मरुत् सम्बन्धी, मरुद्गणों को, द्वि0ए0व0, 5.52.6, 56.8, 6.66.5, 11.

मारुताय - मरुद्गणों के लिए, च0ए0व0 8.7.9

मित्र: - ॥पुं0॥ सूर्य देवता का अन्य नाम, सौहार्द, मित्रत्व, सुहृद, 8.94.6, 3.59.1,
7.63.6, 1.143.7, 10.68.2, 4.33.10,

मित्राय - ॥पु0॥ मित्र के लिए, सुहृद के लिए, स्वजन के लिए । च0ए0व0, 2.34.4

मिथः - ॥क्रि0॥ विरोध करना, 7.56.3, 8.7.22, परस्परम् ।

मिमाति - चिल्लाते हुए, √माङ् माने शब्दे च लट् प्र0पु0ए0व0, 5.59.8

मिमातु - जनन करती हो, आवाज करती हो, उत्पन्न करती हो । लोट् प्र0प्र0ए0व0, 5.59.8

मिमिक्षुः - सिंचित किये । √मिह् सेचने लिट् प्र0पु0ब0व0 5.58.2

मीढुषः - वीर्यसेचक, वीर्यवत, √मिह् सेचने + क्वसु + ङीप् लिट्, 6.66.3, 8.7.18,

मीढुष्मती - सिञ्चित करने वाली, अत्यधिक वीर्य का सेचक या सेचन करने वाली ॥स्त्री0॥ प्र0ए0व0 5.56.3

मुदासे - आनन्द होने के लिए, च0ए0व0 5.52.2

मुनि इव - मुनिइवपदयो समासः । मननशील विद्वान् की भाँति । 7.56.8

मुष्टिहाइव - मुष्टि से मारने वाले - वीरपुरुष = इन्द्र । मुष्टि +√हन् हिंसागत्योः + क्विप् । पु0प्र0ए0व0, 5.58.4, 8.7.20

मुंचथ - ॥क्रि0॥ छोड़ दिया, मुक्त किया, निवारण किया, लट् म0पु0ब0व0 2.34.15, 2.28.6, 1.25.11

मृड् - ॥क्रि0॥ कृपा करना, 5.57.8, 7.89.1, 10.108.6

मृळत - दया करो, सुखी करो, लोट् म0पु0ब0व0 5.55.9,

मेघमाना - सिञ्चित करते हुए √मिह् + मुक् + शानच् ॥पु0॥ प्र0ब0व0, 2.34.13

मेघाः - मेघ, बादल ॥पु0॥ प्र0ब0व0 2.34.7

यः - जो ॥पु0॥ प्र0ए0व0

यक्षदृशः - यक्षसदृशपूजनीय = मरुत् । यक्षोपपदे √दृशिर् प्रेक्षणे + क्विप् ॥पु0॥ प्र0ब0व0 7.56.15

यच्छमाना: - विगृहीतार:, युद्ध करने वाले, योधृजना: । √यम् उपरमे + चानश् पु०प्र० ब०व० 7.56.13

यजत्रा: - पूज्य, पवित्र, वि० √यज् + अत्रन् + जस् । 5.55.10, 58.4, 7.57.1,4, 5.7, 88.1

यज्ञमानस्य - यज्ञनिष्ठ पुरुष का, यजमान का । √यज् देवपूजादिषु + शानच्, ‡पुं०‡ ष० ए०व० 7.57.2

यज्ञ: - यज्ञ, 'यजोनङ्' सूत्र से √यज् + नङ् + सु । पु०प्र०ए०व० 7.57.1, 10.77.4

यज्ञा: - √यज् + नङ् + जस् । ‡पु०‡प्र०ब०व० 10.77.2

यज्ञम् - √यज् + नङ् + अम् । ‡पुं०‡ द्वि०ए०व०

यज्ञिक - ‡विन्यज्ञ‡ यज्ञार्ह, यज्ञयोग्य, तृ०ए०व० 5.57.9, 1.142.3, 3.59.4

यज्ञियास: - पूज्या:, पूजनीया:, अर्चनीया: यज्ञ + घ + असुक् + जस् ‡पुं०‡ प्र०ब०व०, 5.61.16, 10.77.8

यज्ञे - √यज् + नङ् + ङि ‡पुं०‡ स०ए०व० 10.77.7

यत: - ‡क्रि०‡ क्रिया प्रवण होना । √इण् गतौ + शतृ पुं० द्वि०ब०व०, 5.58.5, 7.57.4, 10.77.6, 8.7.1,2,4,5,11,14,21,23,20,25.

यती - विदुषी स्त्री, जाती हुई, सन्यासिनी । √इण् गतौ + शतृ + ङीप् ‡स्त्री०‡ प्र० ए०व० 5.59.2

यते - √इण् + शतृ । च०ए०व०, 10.78.2

यत्र - यत् सर्वनाम्न: 'सप्तम्यास्त्रल्' इति 'त्रल्' जिस परमात्मा के सामर्थ्य से, 5.57.7, 8.20.6, जहाँ ।

यथा - जिस प्रकार से, √यत् + थाल् । 'प्रकारवचने थाल्' अ० 5.3.23 से थाल् । 5.55.2, 5.59.7, 5.61.4, 7.57.3

यद्रुम् - यत्नशील मनुष्य । √यती प्रयत्ने ‡पुं०‡ द्वि०ए०व० 8.7.18

यपि - ॥वि० या॥ नित्य गमन करने वाला । ॥पुं०॥ प्र०ए०व० 5.57.5, जाने वाला

ययियः - ॥वि०॥ प्रवास करने वाले । ॥पुं०॥ प्र०ब०व० 10.78.7

ययी - ॥वि० या॥ = ययि नित्य प्रवासी, यात्रिक, ॥पुं०॥ प्र०ए०व० 10.78.1

ययुः - √या प्रापणे, जाते हैं । लिट् लडर्थे प्रयुक्त, प्र०पु०ब०व० 8.7.29,23

यस्याः - यत् सर्वनाम् पद का ॥स्त्री०॥ ष०ए०व० का रूप । 8.94.2

यस्मिन् - ॥नपुं०॥ ॥पुं०॥ स०ए०व० 5.56.8

यागम् - यज्ञ को, √यज् + घञ् + अम् पुं० द्वि०ए०व० 7.56.6

यातवे - ॥अ०॥ यात्-तात् जिस समय के लिए, उस समय के लिए, पुं० च०ए०व० 8.7.68

याताम् - जल के ॥स्त्री०॥ द्वि०ए०व० 5555.1

याथन् - प्राप्नुत् = प्राप्त करो, √या प्रापणे लोट्० म०पु०ब०व०, छान्दस् 5.57.2

यान्ति - गमन करते हैं । √या प्रापणे । लट्० प्र०पु०ब०व० 8.7.4,28

याभिः - स्त्री० तृ०ब०व० 8.20.24

यामन् - ॥न० या०॥ गमन संचार स०ए०व०॥ 'यामनिर्ऋतिप्राप्ते' सुपां सुलुक् -------- से विभक्ति का लोप, 5.57.3, 58.7, 10.78.6, 8.7.4, 1.25.20, 10.127.4

यामम् - ॥पुं० या॥ गमन, संचार, द्वि०ए०व० 8.7.14, 1.48.4, 4.51.4, 5.73.7

यामहूतिषु - मार्गों में ॥रक्षा के लिए॥, निमन्त्रणों में, ॥त० याम + हूति हू॥ स्त्री० स० ब०व० 5.61.15, 10.117.3

यामाय - गमन करने के लिए ॥पुं०॥ च०ए०व० 8.7.5

यामेभिः ॥पुं०॥ तृ०ब०व० 8.7.7

यामेषु - गमन करने में, संचार में, गमनकाल में ॥पुं०॥ स०ब०व० 8.20.5

युजन्त - लट्० प्र०पु०व०व० छान्दस् । 6.66.6, 8.20.24

युध्यत: - युद्ध करते हो । √युध् सम्प्रहारे + शतृ लट्० प्र०पु०द्वि०व० 8.7.24

युयोत - विसंयोजित करो, पृथक् करो, प्राप्त करो, √यु मिश्रणे अमिश्रणे च लोट्० म०पु० ब०व०, 7.58.6, 10.77.6

युवान: - पुं० तरुणपुरुष, नौजवान, प्र०ब०व० 8.20.17, 18.

यून: - पुं० द्वि०ब०व०, पं०, ष०ए०व० 8.20.19

यूयम् - अस्मद् 5.55.7, 10.87.9, 61.15, 58.4, 7.57.7, 58.6, 8.7.12, 20.16, 10.77.5, 6, प्र०ब०व० ।

युष्माकम् - सर्व० युष्मत्प्राति० अनुकम्पायामर्थे + अच् प्राक्दे । टे ।

युवा - पुं०प्र०ए०व० 5.61.13

युष्माऊत: - पुं० प्र०ए०व० 7.58.4

युष्मत् - पुं० पं०ए०व० 5.58.4

युवान: - पुं० प्र०ब०व० 5.58.3, 8. 5.57.8

ये - पुं० प्र०ब०व० 5.58.2, 3, 59.7, 10.77.3, 78.2, 4.5, 7.57.1, 8.7.16

येमिरे - नियमबद्ध रहते हैं, स्थिति को प्राप्त करते हैं । क्रि०√यमु उपरमे । संयम करते हैं । लिट्० प्र०पु०ब०व० 8.7.5, 34.

येषाम् - सर्व० √यसु प्रयत्ने ।

योजनानि - नपुं० लम्बाई की माप, कोश, युजिर् योगे ल्युट्० द्वि०ब०व० 10.78.7 1.35.8

योध: - पुं० योद्धा, वीर सिपाही, प्रहर्त्ता, √युध् सम्प्रहारे दिवा० उपधा लक्षण ‡ क: कर्तरि पुं० प्र०ए०व० 10.78.3

रघुयत्वन् - शीघ्र गमन करने वाला, जल्द दौड़ने वाला, वि० तपत्वन् यत् 1.85.6

रघुष्यद् - वि०त०स्यद् शीघ्रगामी 1.85.6, 5.73.7

रणन्त - [क्रि०] रमण करते हो, रमध्वम् /रण् शब्दे, लोट् म०पु०ब०व० 7.57.5

रत्न धेयानि - [क०धा०] सुन्दरदान, श्रेष्ठ उपहार, 10.78.8

रथवत् - रथयुक्त, 5.57.7, 7.77.5, [क्रि०वि०] रथ के समान, रथ + वति प्रत्यय।

रथ तुः - रथ से शीघ्र आने वाले, पु०प्र०ए०व०, व्यत्यय से बहुवचन के लिए प्रयुक्त 10.77.8

रथः - नपुं० रथ, सवारी का साधन, लड़ाई का वाहन पु० प्र०ब०व० 5.55.1

रथानाम् - रथ का, लड़ाई के वाहन का, [पुं०] ष०ब०व० 10.78.4

रथे - [पुं०] स०ए०व० 8.7.28, 20.8

रथे शुभम् - रथे सप्तम्यन्त, पद से √शुभ् दीप्तौ, शुभ शोभार्थे + कः [पुं०] द्वि०ए०व०, 5.56.9

रथेषु - रथ में, सवारी गाड़ी में [पुं०] स०ब०व० 8.20.12

रथैः - रथ के द्वारा [पुं०] तृ०ब०व० 8.7.17

रन्ध्रम् - छिद्र को [पुं०] द्वि०ए०व० 8.7.26

रपः - [नपुं०] हानि, पीड़ा, प्र०द्वि०ए०व० 8.7.26

रमयन्ति [क्रि०] स्तब्ध होना, आनन्दित होना, आनन्दयति, √रम् उपरमे लट्०प्र०पु०ब०व० 7.56.19

रश्मयः [पुं०] रज्जु, किरण, रश्मि, √अशूङ् व्याप्तौ, + मि, अकारस्य रकारादेशः 5.53.3

रश्मिम् - [पुं०] किरण को, रस्सी को द्वि०ए०व० 8.7.8

रश्मिभिः [पुं०] किरणों के द्वारा, रस्सियों के द्वारा, तृ०ब०व० 10.77.5.

रसः - [पुं०] मधुर, पेय, प्र०ए०व० 10.77.5, 9.85.1

राजथ - ~~प्रकाशित~~ प्रकाशध्वम् कांतियुक्त होते हैं। √राज् दीप्तौ, लट्०म०पु०ब०व० 8.7.1

राजानः - [पुं०] क्षत्रिय, क्षात्रधर्मयुक्तवीरपुरुष, प्र०ब०व० 10.78.1

राध्यस्य - [वि० राध्य] सम्मान योग्य का। नपुं० ष०ए०व०।

राय: - धन का, रूप का, रै प्रातिपदिक के ब०ए०व० का रूप ।

राये - धन के लिए ॥पुं०॥ च०ए०व० 8.7.18

रिणन् - ॥क्रि०॥ रिणतिर्गतिकर्मा - पु०पु०ए०व० √रिण् + शतृ । गच्छन् जाते हुए ।

रिरिर्च्रे - भिन्न हो गये हैं । पृथक् हो गये हैं । लिट् प्र०पु०ब०व० 10.77.3

रिशादस: - शत्रुनिवारक, हिंसकों का हिंसक, दुष्टों का संहार करने वाले मरुत् रिशोप-
पदे √दसु उपक्षये + क्विप् 10.77.3,5

रिषण्यत् - ॥क्रि०॥ क्षति पहुँचाओं, हानि पहुँचाओ, नष्ट होना, लोट्० म०पु०ब०व०
8.20.1

रुक्मवक्षस: ॥वि०ब०॥ वक्षस्थल पर, सुवर्णालंकार ॥पुं०॥ प्र०ब०व० 5.57.5, 5.55.1,
8.20.22, 10.78.2

रुक्मा - ॥पुं०॥ रूच्॥ सुवर्ण प्र०ब०व० 7.56.13

रुक्मास: - सुवर्णालंकारों से युक्त, ॥वि०॥√ रूच् दीप्तावभिप्रीतौ पुं०प्र०ब०व० 8.20.21

रुक्मै: - ॥पु० रूच्॥ सुवर्ण के द्वारा, तृ०ब०व० 7.56.3

रुचाना: - ॥पुं०॥ प्रकाशित होते हुए । प्रकाशमाना:,देदीप्यमाना: । √रूच् + शानच्
7.56.13

रुद्रस्य - ॥पुं०॥ देवता - ॥विशेष॥ को, ब०ए०व० 7.56.1, 58.5, 8.20.17

रुद्रा: - रूद्र मध्यमस्थ, मरुतों के जनक पुं०प्र०ब०व० 8.7.12

रुद्रियाणाम् - ॥पुं०॥ रूद्रपुत्रों को, रूद्रसम्बन्धी को, 8.20.2, पुं०ष०ब०व० ।

रेजते - 8.20.5, √ रेजृ कम्पने लट् प्र०पु०ए०व०, कांपना, कंपित होना, हिलना, डुलना
चलना, लड़खड़ाना, भय से कांपना । परस्मैपदी, प्रकम्पते ।

रेजयन्ति - 7.57.1, प्र०पु०ब०व०, लट् आत्म०, √ रेज् + लट् । प्रकम्पयन्ति । कंपाते
हैं ।

रेवत् - 10.77.7 ॥रयि0॥ धनी, ॥क्रि0वि0॥ प्रसन्नता से पूर्ण, 1.116.18, 2.35.4,
नपुं0 द्वि0ए0व0,√ रेवत् दधते ।

रोदसी - 7.57.1,3, 8.20.4, ॥स्त्री0द्वि0॥ पृथ्वी और आकाश ।√ रुद् + असुन् +
ङीप् ॥स्त्री0॥ द्वि0द्वि0व0 ।

रोहिता: - 8.7.28 ॥स्त्री0॥ प्र0ब0व, घोड़ियाँ, अथवा: रलयोरभेद: ।

व: - 7.56.17, 57.4, 8.7.5, 31. तुम सब का ।

वक्ष:सुसु - 7.56.13, √वच् परिभाषणे ॥अदा0॥ + असुन् + सुट् । हृदय में, वक्षस्थलों
पर, स0ब0व0, नपुं0 ।

वन्दस्व - 8.20.14,20. वन्दन करो, स्तवन करो । लोट्0 मु0पु0ए0व0 ।

व्यजत - 8.7.25 ॥वि +√अञ्ज् + क्त॥ साफ किया गया, प्रकट किया गया, संकेत किया
गया ।

ववृधतम - 8.20.18 ॥क्रि0॥ बढ़ना, 1.85.7, √वृध ॥वि0॥ बढ़ाने वाला, बार बार
बढ़ाओ ।

ववृधु: - 10.77.2 ॥क्रि0॥ √वृधु वृद्धौ ॥भ्वा0॥ बढ़ो, लिट् प्र0पु0ब0व0, बढ़ाये बढ़े ।

वशन्ति - 8.20.17 ॥क्रि0॥ वश में करते हैं, लट् प्र0पु0ब0व0,

वस्व: - 10.77.6 ॥सं0॥ धन, वसु, द्रव्य नपुं0 प्र0ब0ए0व0 ।

वज्रम् - 8.7.22 ॥पु0॥ इन्द्र के शस्त्र का नाम, 1.32.2, 8.100.9, पुं0 द्वि0ए0व0 ।

वज्रहस्तै: 8.7.32, हाथ में वज्र धारण किये हुए । 1.32.15, 5.12.12,13,33.3,
3.33.6, पुं0 तृ0ए0व0 ।

वध: - 7.56.17, मारना, वधी, 7.46.4, ॥पुं0॥ वधु हथियार, 5.56.17, 104.
4, 16,20,25√हन् + अप् । हन.वधादेश: 'हनश्च बध:' इति सूत्रेण ।

वनस्पति: - 8.20.5, ॥पुं0॥ जंगली वृक्ष, 4.142.11, प्र0ए0व0, ॥क्रि0 आ0प0॥

वध: - 7.58.3, ॥क्रि0॥ फेंकना, बढ़ाना, गिरा देना, पक्षिण: √विगतिक्षेपणयो: ।

वपन्ति - 8.7.4, ‡भ्वा0‡ वपति बोते हैं, बिखेरते हैं ।√ वप् बीज सन्ताने लट्0 प्र0पु0 ब0व0 ‡क्रि0‡ ।

वरेण्व: - 10.78.4, ‡वि0‡ ‡वृ0 + एन्य‡ अभिलषणीय, वा ञनीय पात्र, वरणीयपुं0 पु0ब0व0 ।

ववृत्याम - 8.7.33, ‡क्रि0‡√वृतुवर्तने वर्त्तेम । विधिलिङ् उ0पु0ब0व0 ।

ववृधाना: - 10.78.7 ‡वि0‡√वृधु वर्धने + यङ् + शानच् । वृद्धि को प्राप्त करते हुए ।

वसव: - 10.77.6, 7.56.20 उच्च प्रकाशमान, पुं0प्र0ब0व0 ।

वसु - 10.77.1, पुं0, भगवान, धन, धनी, पुं0प्र0ए0व0 ।

वर्मण्वन्त: - 10.78.3 ‡वि0 + वर्मन्‡ कवच पहनने वाला । वर्मन् + वतुप् + पु0प्र0बव0

वर्धान् - 8.7.19 ‡वि0‡√वृधु‡ बलवान बनाने वाले को, पुं0 द्वि0ब0व0 ।

वह्नि: - 8.94.1 ‡सं0‡√वह् प्रापणे, अग्नि, अग्नि:, तीक्ष्ण ज्वाला, पुं0प्र0ए0व0 ।

वहन्ति - 8.7.35 ‡क्रि0‡ ले जाते हैं । लोट, प्र0पु0ब0व0 ।

वस्यस: - 8.20.18 ‡सं0‡ जो बहु प्रकार से रहते हों । सुखपूर्वक रहने वाले ।

वहन्ते - 8.20.7 ‡क्रि0‡ ‡आ0‡ ले जाते हैं । लट् प्र0पु0ब0व0 ।

वहध्वे - 10.77.6, 5.60.7, 5.53.13, ‡क्रि0‡√वह् प्रापणे, प्राप्त करते हो । प्राप्त होते हैं, वहते हैं । लट् , म0पु0ब0व0 ।

वाचा - 10.77.1 ‡स्त्री0‡ वाणी, स्तुतिवाणी, ध्वनि, तृ0ए0व0 ।

वाजम् - 7.56.23 ‡पुं0‡ ऋभु देवता का नाम, युद्ध को, उपहार को नपुं0 द्वि0ए0व0, 1.48.11, 1.85.5, 1.116.19, 2.23.13, 4.33.3.9, द्वि0ए0व0 ।

वाजसातिभि: - 8.20.16, ‡स्त्री0 साति‡ सन् उपहारों के द्वारा । तृ0ब0व0 ।

वाजिन: - 7.56.15, 8.20.16 ‡नपुं0‡ वाग्स्पर्धा 10.71.5, ‡वि0पु0‡ समर्थ, अश्व: 3.29.6, 10.34.5 प्र0ब0व0 ।

वाजेभिः - 7.57.5, ‖वि0पु0‖ घोड़ों के द्वारा, तृ0ब0व0 ।

वाणः - 8.20.8 दे0 'वाण' । √वण् शब्दार्थे, हलश्च संज्ञायां घञ्च । प्र0ए0व0 ।

वायुभिः - 8.7.17, 8.7.3.4. ‖वि0पुं0‖ वायु के द्वारा, तृ0ब0व0 ।

वाश्रासः - 8.7.3 ‖वि0 बाबूर‖ रंभाती हुयी । चिल्लाती हुई ।

वाशीमत् - ‖वि0‖ कुठार धारण करने वाला, 5.57.2, वाशी अस्ति अस्य इति ।

व्रातम्व्रातम् - 5.53.11, वर्तमानं वर्तमानम्, गणं गणं समूहं समूहम् ।

वातस्वनसः - 7.56.3 ‖सं0‖ वातस्वनसपदयोः समासः । स्वनस् -√स्वन् शब्दे + औणादिक् असुन् । गृहस्थ, प्र0ए0व0 ।

वि उष्टिषु - 10.77.5 ‖स्त्री0‖ सप्त0ब0व0 ।

विक्षु - 7.56.22 ‖सं0‖ प्रजाओं में, स0ए0व0 ।

वि जानुषः - 1077.1 ‖वि0 +√ज्ञा अवबोधने ‖क्र्या0‖ + शतृ0 विशेष ज्ञानी, प्र0ए0व0।

विद् = 5.55.2 ‖क्रि0‖ प्राप्त कर लेना 8.91.1, 10.34.3, 10.129.4, जानना ।

वि धर्मणे : 8.7.5, वि - धर्मन् पदयोः समासः । धर्मन् =√धृ धारणे + मनिन् । विशेष धर्म के साथ, नपुं0 चतु0ए0व0 ।

वि तस्थिरे - 8.7.36 ‖क्रि0‖ अनेक प्रकार से बैठते हैं । वि0 +√ष्ठा गतिनिवृत्तौ ‖भ्वा0‖ लिट् । आ0प0 ।

विथुर्यति - 8.7.4, व्यथा व्यक्त करता है । √व्यथ् भयचलनयोः + व्यथे सम्प्रसारणम् धः किच्च' उ0.1.39 उश्च् ।

विद्मन - 8.20.2 ‖सं0‖ विज्ञ, ज्ञान के द्वारा जाना गया, ज्ञानी, ज्ञानवान्, √विद् ज्ञाने ‖अदा0‖ औणा0 + मनिन् ।

विद्युत् हस्ता - 8.7.25 ‖स्त्री0‖ वि द्युत‖ बिजली हाथ में धारण किये हुए । √विद + अथ, सप्त0ब0व0 ।

विदथेषु - 7.57.2, ॥न0 विद॥ √विद् + अथ सप्त0ब0व0, यज्ञसभाओं में, विद्वत्सभाओं में, 2.12.15, 2.23.19, 5.63.2, 1.143.7

विदानास: - 8.7.6, √विद् + शानच् + असुक् + जस् ॥पुं0॥

विद्रे - 7.56.2, ॥व्यध् + रक्॥ दान्तादेश:, सम्प्रसारणम् । फाड़ना, खण्ड-खण्ड करना, छेद करना, दरार, छिद्र, विवर ।

वि धर्ता - 7.56.24, पु0पु0ए0व0 ।

विप्रम् - 8.7.30 ॥वि0॥ उत्स्फूर्त कवि, प्रतिभासम्पन्न कवि 2.33.4, 9.85.7

विप्र: - 8.7.1, वाप् +√रन् वृषो0 अत इत्त्वम् । ब्राह्मण, उद्धरण, पुं0पु0ए0व0 ।

विभ्राजन्ते - 8.20.11, वि +√भ्राज् दीप्तौ शोभित होते हैं । लट् प्र0पु0ब0व0 ।

विष्णो - 8.20.2, ॥पुं0॥ विष्णु नामक देव का नाम । सम्बोधन ए0व0 ।

विश्व धायसम् - 8.7.13, ॥सं0 वि0॥ विश्व को धारण करने में समर्थ, सभी के व्यवहार को धन की भाँति रखने वाला ॥गृहपति॥ ॥परमेश्वर॥ विश्व +√डुधाञ् धारण-पोषणयो: ॥नपुं0॥ औणा0 असुन् ।

विश्वम् - 7.56.20, 8.7.26, 7.77.1 ॥वि0॥ सर्व, सब जगत 5.83.2.

विश्वेभि: - 7.56.5 ॥वि0॥ सब के द्वारा, जगत के द्वारा ।

विश्व प्सु: - 10.77.4, ॥सं0॥ तृ0ब0व0 विविध रूप ॥ब्रह्म = धनम्॥ विश्वाप्सुपदयो: ॥सं0॥ समास: ।

विश्ववेदस: - 5.60.7, सकलविद्यावेत्तार:, समग्रैश्वर्य, विश्व +√विद् विचारणे ॥रुधा0॥ √विद् ज्ञाने॥ अदा0॥, √विद् सत्तायाम् दिवा0 √विद् चेतनाख्याननिवासेषु ॥चुरा0॥ + असुन् । पु0प्र0ब0व0 ।

विश्वरूपा - 10.78.5 ॥वि0ब0॥ सभी प्रकार के रूपों से युक्त, प्र0ब0व0 ॥वि0स्त्री0॥ विविध सुन्दर रूप को धारण करने वाली, विश्वरूपपदयो: समासे स्त्रियां टाप् पु0ए0व0 ।

विश्वहा - 10.78.5, [अ0] 1.160.5, 10 सर्वदा ।

विश्वासु - 8.20.20 [विश् + व] सारे में, सम्पूर्ण में । स्त्री0 सप्त0ब0व0 ।

विश्व पिशः - 7.57.3 [वि0त0 पिश्] समूचे जगत को अलंकृत करने वाला ।

विराजथ - 5.55.2 [स्त्री0] एक देवता का नाम । विशेष प्रकार से प्रकाशित होते हो, वि + √राज् दीप्तौ [भ्वा0] लट् ।

विरोकिणः - 5.55.3 [वि+ रूच्] अत्यन्त तेजस्वी ।

विह्रुतम् - 8.20.26, विशेषरूप से कुटिल । वि + √ह्वृ कौटिल्ये [भ्वा0] + क्त । द्वि0ए0व0 ।

वीतये - 8.20.10, 16, 7.56.2 [पुं0] विज्ञानादि प्राप्ति के लिए, ज्ञान के लिए, √वी गतिव्याप्ति प्रजननकान्त्यसनखादनेषु [भ्वा0] + क्तिन् [स्त्री0] च0ए0व0

वीरः - 7.56.24 [पुं0] शूर पुरूष, 2.33.1, 10.68.12, अजगति क्षेपणयोः + रक् । पुं0प्र0ए0व0 ।

वीराः - 10.77.3, [पुं0] प्र0ब0व0 । धात्रधर्मयुक्त पुरूष ।

वीळ्यविभिः - 8.20.2, 5.58.6 [नपुं0] दृढ़ चक्रों के द्वारा [रथों के] वीळुपविपदयोः समासः । तृ0ब0व0 ।

बृध्न्याः - 7.56.14 [पुं0]

वृक्तबर्हिषः - 8.7.20,21 [वि0ब0वृक्त, वृज्] कुशासन बिछाने वाला 3.59.9, प्र0पु0 ब0व0 ।

वृत्रम् - 8,7.23 [पुं0 वृ0] एक दास का नाम, इन्द्र का विरोधी, 1.32.7, 8.100.2 [वृत + रक्] बादल, अन्धकार, शत्रु, ध्वनि, पर्वत ।

वृत्रतुर्यः - 8.7.24, [सं0] वृध का वध करने वाला । वृत्रतूर्य पदयोः समासः, प्र0पु0 ए0व0 ।

वृथा - 8.20.10 [अ0] व्यर्थ, मिथ्या, निष्प्रयोजन, √वृञ् वरणे, था प्रत्यय ।

शस्यन्ते - 7.56.23 (क्रि0) स्तुति करते हैं ।√ शंसुस्तुतौ लट् आ0प0, प्र0पु0ब0व0 ।

शा तिन - 7.56.7

शिप्रा: - 8.7.25 (स्त्री0) गाल, ओष्ठ, 3.32.।

शिमीवत - (वि0) त्वेषयुक्त, प्रचण्डकर्मा 10.78.3

शवांसि - 7.56.7 (नपुं0) सामर्थ्य, बल प्र0ब0व0 ।

शम मनिष्ण: - 10.77.1, क्रि0 कर्म करना, सुख से ।

शीर्षन - (नपुं0) मस्तक 5.57.6, 1.116.12, (पुं0) सप्त0ए0व0 'सुपां सुलुक् -----
इत्यनेन ड.लोप: ।

शंस - (पुं0 शंस्) स्तुति 10.78.3, पुं0 द्वि0ए0व0 ।

श्येनास: - 10.77.5, 8.20.10 (पुं0) श्येन पक्षी । प्र0ब0व0 ।

शर्धस्य - 7.56.8 (नपुं0) उद्धत सामर्थ्य का, दर्पयुक्त बल का, ष0ए0व0 ।

शर्धान् - 8,7.21 (वि0/शृध्) घमण्डी को, उद्धत को, धृष्ट को । पुं0 द्वि0ब0व0 ।

शर्मन् - 7.56.25 (न0 शृ) सुरक्षा, 1.85.12, 5.83.5, स0ए0व0 ।

शर्यणा वति - 8.7.29 (सं0) हिंसनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में शर्यणप्राति0 अदूरभवार्थे
मतुप्छान्दस: । पूर्वस्य च दीर्घ: सप्त0ए0व0 ।

शंप्तम - 7.56.19 (वि0) अतीव सुखकर, 2.33.13, 5.73.7

शिशूला: - 10.78.6 (पुं0) छोटे बच्चे । प्र0ब0व0 ।

शिवा भि: - 8.20.24 (वि0) कल्याणप्रद के द्वारा, तृ0ब0व0, शिव के द्वारा ।

शिशव: - 7.56.16 (पुं0) वत्स, बालकगण, प्र0ब0व0 ।

शिमीवताम् - 8.20.2 (वि0) त्वेषयुक्तों का, प्रचण्डकर्म करने वालों का ।

श्रिय: - 8.20.12, सं0 स्त्री0, सौन्दर्य, लक्ष्मी, श्रयते नया इति श्री:, √श्रि श्रयणे,
क्विप् श्रि + क्विप् , प्र0ब0व0 ।

श्रियम् - 8.20.7, √श्रि + क्विप् पु0ब0व0, स्त्री0 द्वि0ए0व0 ।

श्रिया - 7.56.6, √श्रि + क्विप् , स्त्री0 तृ0, ए0व0 ।

श्रिये - 5.55.3, 8.7.25, √श्रि + क्विप् , च0ए0व0 ।

श्री - ‖स्त्री0 श्री - पकाना‖ शोभा, सौन्दर्य, तेजस्विता, 1.85.2, 5.57.6, 10.
127.1

शुभ्र - 7.56.8 ‖वि0 √शुभ्‖ सुशोभित, सुन्दर, 8.80.5, 1.85.3

शुभ्रखादय: - 8.20.4 ‖वि0‖ ‖शुभ् + रक्‖ देदीप्यमान आभूषण चमकीले, उज्ज्वल आभू-
षण वाले ।

शुभ्रा: - 8.7.2, 14, 25, 28. सुशोभित, सुन्दर ।

शुम्भमाना: - 7.56.11, ‖स्त्री0‖ ‖क्रि0‖ शोभायमान शोभायुक्त √शुम्भ शोभार्थे ‖तुदा0‖
शानच् । स्त्रियां टाप् ।

शुचय: - 7.56.12, 57.5 ‖पुं0‖ प्रकाशित, प्र0ब0व0 ।

शुचि - ‖वि0‖ शुच् ‖ उज्ज्वल, 1.142.9, 7.49.2

शुची - 7.56.12 ‖वि0 शुच्‖ द्वि0द्वि0व0, उज्ज्वल को ।

शुचीनाम् - 7.56.12, सं0ब0ब0 का रूप ।

शुष्मम् - 8.7.24 ‖पुं0‖ श्वस्‖ सामर्थ्य, 10.97.8, द्वि0ए0व0 ।

शुष्माय - 8.7.5, पुं0 श्वस् सामर्थ्य के लिए, च0ए0व0 ।

शुष्मी - 7.56.24 ‖पुं0‖ ‖शुष् + मन् , किच्च‖ पराक्रम, सामर्थ्य, प्रकाश, कान्ति,
प्र0ए0व0 ।

शूर: - 10.78.4, ‖वि0पुं0‖ शौर्यशाली, 1.32.12,

शोभसे - 10.77.1, ‖क्रि0‖ 'शोभित होते हो' √शुभ दीप्तौ आ0प0, लट् + म0पु0ए0व0 ।

शोभिष्ठा - 7.56.6, ‖भू0क0कृ0‖ ‖शुभ + इनि + इष्ठन् ।

सखित्वे - 8.7.31, सचते इति (प्राख्या), मित्रता, मैत्री ।

सख्यस्य - 10.78.8 (न0 सरित) मित्र का 3.9.2

सखाय - 8.20.23 (न0 सखि) मित्र के लिए ।

सखात्वेन - 8.20.21 (नं0) बन्धुता के द्वारा ।

सत्यश्रुत् (त0) अमोघ श्रोता 5.57.8

सजोषस् - (वि0 जुष्) साथ रहने वाला, 3.32.2, 5.57.1

सत्यम् - 7.56.12 (वि0 सत्) विश्वासयोग्य, नित्य, सत्य ।

सद् - (क्रि0) बैठना, 1.85.6, 8.48.9

सन्ति - 8.20.20, 10 78.8 होते हैं । पु0पु0ब0व0 ।

सदत - 7.57.2 /

सदा - 8.20.22, 7.57.7 /

सपर्यति - 8.7.20 (क्रि0) सप् सपर् सपर्य) पूजा करना ।

स प्रथः - 8.20.13 (वि0./प्रथ्) प्रख्याते, विस्तीर्ण 3.59.7, 7.77.2, 9.85.8

सबन्धवः - 8.20.21, सम्बन्धी, एक परिवार का ।

सप्तयः - 8.20.23, सर्पणशील, पुं0प्र0ब0व0 ।

सद्य ऊतयः - 10.78.2, पु0प्र0ब0व0, त्वरित कृपा दिखाने वाले ।

सनात् - 10.78.8, 7.56.5 (वि0) चिरकाल से, पं0ए0व0 ।

सनाभयः - 10.78.4 (वि0-नाभि) एक नाभि से सम्बद्ध, सोदर,

सनुतः - 10.77.6 /

समुद्रेषु - 8.20.25, (पुं0 सम् उद्) सागर में, स0ब0व0 ।

सनिता - 7.56.23

सत्राच: - 10.77.4

सनेमि - 7.56.9. ‡वि0‡ निम सहित, सारा, 1.72.1, सनेमि सख्यम् पुराणम्' मि या पूर्णत: ।

सन - ‡वि0‡ पुराना, 10.78.8, 4.33.3

सहस: - 7.56.9, ‡न0 सह‡ श्रेष्ठ, सामर्थ्य, 1.50.13

सहन्ती - 7.56.5, परास्त करते हैं ‡पर0‡ प्र0पु0ब0व0 ।

सह: - 8.20.13, 7.56.19 ‡क्रि0‡ परास्त करना, 3.29.9, 10.34.9, षाट् ‡वि0‡ विजेता, 1.73.3

सहा: - 8.20.20, बलवान ।

सहो - 8.7.32 बल द्वारा, बल से, निन्दा स्तुति और स्वा पराधियों को सहन करने वाला ।√षह् मर्षणे ‡भ्वा0‡ + असुन् ।

सहस्रियम् - 7.56.14, सहस्रों में हो ‡प्रजाजनम्‡

साल्हा - 7.56.23, सहस्प्राति0 भवार्थे समुद्राभ्राद् घ: अ0 44.118, सूत्र से घ: ।

स्तुहि - 8.20.14, प्रशंस, प्रकाशय,√ष्टुञ् स्तुतौ ‡अदा0‡ लट् ।

स्तुना - 8.7.7

स्तुवते - 8.7.35 प्रशंसा करते वाले के लिए, √ष्टुञ् स्तुतौ + शतृ ।

स्तुषे - 8.7.32 स्तोत्र से√ष्टुञ् स्तुतौ ‡अदा0‡ स0ए0व0,

स्तोमेभि: - 8.7.21 ‡पु0‡ स्तुतिगीतों के द्वारा । पुं0 तृ0ब0व0 ।

स्तोमै: - 8.7.17 ‡पुं0‡ स्तुतिगीत के द्वारा, पुं0 तृ0ब0व0, 'अतो भिस ऐस्' इत्यनेन सूत्रेण भिस: ऐसादेश. ।

स्तोतृ - 1.38.4, स्तोता, 1.38.4, प्रशंसित, विद्या, इच्छुक ।

स्तोतृन - 10.78.8

स्तुतस्य, 5.56.15, अदा० उभ० स्तौति - स्तवति, स्तुते - स्तुवीते, स्तुत, इच्छा० तुष्टूषति - ते, इकारान्त या उकारान्त उपसर्ग के पश्चात् स्तु के स् को ष् हो जाता है। प्रशंसित मानव का। √ष्टुञ्+ क्त, पु०ष०ए०व०।

स्तुतास: - 7.56.6, 7, 1.171.3, प्राप्त प्रशंसा {मनुष्य} प्रशंसित विद्वान् √ष्टुञ् स्तुतौ {अदा०} + क्त। पुं० प्र०ब०व०, स्तुत + असुक् + जस्।

स्थ - 8.7.12, 5.61.1, 5.57.2, स्थाता, हो। √ष्ठा गतिनिवृत्तौ लट्, म०पु० ब०व०।

स्थरसे - 8.20.8, पालन करने के लिए, √'स्थृ प्रीतिपालनयो:' लङ्. व्यत्ययेन शप्।

स्पार्हाभि: - 7.58.3, {स्त्री०} स्पृहणीय के द्वारा।

स्पार्हे - 7.56.21, अभीप्स के लिए। √स्पृह ईप्सायाम् {चुरा०} स्त्रियामङ्. तत: टाप्।

स्म - 8.7.21, आनन्द के लिए, सुख के लिए, अत्र निपातस्य च इति दीर्घ: षत्व च छान्दसं दृश्यते।

स्मत - 8.20.17, ही, श्रेष्ठ के लिए, प्रशंसा के लिए।

स्याम - 7.56.24, 25, 6.50.9 होवें, होना चाहिए, विधिलिङ्, उ०पु०ब०व०।

स्व दृक् - 7.58.2, पुं० प्र०ए०व०।

स्वमोक: - 7.56.24, {नपुं०} प्र०ए०व०।

स्वभावनव: - पुं० प्र०ब०व०, स्वयम्प्रकाशमाना:। स्वयम्प्रकाश वाले।

स्वधाम् - 8.20.7, 7.56.13, 1.88.6 {सं०} अपनी, धारण शक्ति, सूदकम्। स्वो- √डुधाञ् धारणपोषणयो: + क्विप्।

स्व पूभि: - 7.56.3, अथवा ष्वद् आस्वादने + आ: प्रत्यय {सं०} अपने पवित्र आचरण के द्वारा + √क्षिप् शपे {अदा०} औणा० ऊ० तृ०ब०व०।

स्वानेभि: - 8.7.17, {सं०} समाध्यक्ष के द्वारा, शब्दों के द्वारा, √स्वन् शब्दे {भ्वा०} तृ०ब०व०।

स्वायुजः - 10.78.2 ॥स्त्री0॥ सं0 जो भली प्रकार चारों ओर प्रसरित होती हैं ॥भानवा = सूर्यकिरणाः॥ सु + आङ् +√युजिर् योगे ॥धा0॥ + क्विप् ।

स्वायुधः - ॥वि0 आयुध॥ प्रखर आयुधों से सुसज्जित 5.57.2, सु + आयुध पदयोः समासः आङ् +√युध् सम्प्रहारे - कः ।

सा - 7.56.5 ॥क्रि0॥ खण्डन करना, अव-सा - समाप्त करना, 7.28.4

साकम् - 5.55.3 ॥अ0॥ साथ-साथ 9.69.6, 10.97.13, साकम् इति स्वरादिषु पाठादव्ययम् ।

सिन्धुम् - 8.20.24 ॥पु0 स्त्री0॥ नदी 3.32.16, 4.30.12 द्वि0ए0व0 ।

सिन्धवः - 8.7.5 ॥सं0पुं0॥ समुद्र, नदियाँ, समुद्र प्रवाहरूप √स्यन्द् प्रस्रवणे ।

सिन्धु मातरः - 10.78.6 ॥बि0ब0॥ सिन्धु माता वाले सिन्धुमातृपदयोः समासः ।

सिन्धौ - 8.20.25, नदी, सिन्धु के समीप ।

स्थिराः - 7.56.7, 8.20.1, 12 ॥स्त्री0॥ निश्चल, दृढ़, स्थिर, √ष्ठा गतिनिवृत्तौ + स्त्रियां टाप् ।

सु अप्नस - 10.78.1, ॥स्वप्नसः॥ निद्रा, नींद ञिष्वप् शये ॥अदा0॥ स्वपोनन्' इति नन् ।

सु - 10.77.4, शोभा के लिए क्रिया योग में, सुष्ठु, सर्वथा ।

सुआध्यः - 10.78.1, भली प्रकार से चिन्तन किये हुए, विद्वान् सज्जन॥ सु + आङ् + √ध्यै चिन्तायाम् ।

सुअच्यः - 7.56.16

सु आयुधासः - 7.56.11 ॥सं0॥ स्वयं के आयुध हैं जिनके या शोभन आयुध हैं जिनके ।

सुक्षितये - 7.56.24 ॥स्त्री0॥ क्षिति क्षि॥ उत्तम घर के लिए, सुन्दर निवास के लिए च0ए0व0 ।

सु_जातास: - 8.20.8, 7.56.21 स्वात्म जनिता, स्वोपदे √जनी प्रादुर्भावे ।

सुदानव: - 8.20.12, 17, 23, 10.78.5 ॥वि0ब0॥ शोभन दान वाले उत्तम दानी, अत्यन्त उदार सु + √डुदाञ दाने ।

सुदंसस् - ॥ब0 दस्॥ श्रेष्ठ या अद्भुत कर्मों का कर्ता 1.85.1, 3.32.8

सुदीतिभि: - 8.20.2 ॥वि0ब0॥ उत्तम प्रकाश के द्वारा, अत्यन्त तेज के द्वारा । तृ0ब0व0 ।

सुधन्वन् ॥बि0ब0॥ उत्तम धनुष्य से युक्त, 5.57.2, सु + धनुष् पदयो समास: ।

सुनिष्का - 7.56.11, शोभन सुवर्णमयी आभूषण ॥निष्क॥ है जिनके सु + निष्क: = √षद्लृ विशरणगत्यसादनेषु + कन् ।

सुनीति - ॥स्त्री0॥ नी॥ उत्तम मार्गदर्शन 10.78.2, 2.23.4, शोभन न्यायनीतिमार्ग, सुनीतिपदयो समास: ।

सु_नीकय: - 10.78.2, शोभना: नीका: येषां ते, पु0प्र0ब0व0, शोभन नीड वाले ।

सुपेशस् ॥ब0 पेशस् पिश्॥ सुन्दर रूप वाला, 5.57.4, 1.142.7 सुरूप, सु-पेशस् पदयो समास: ।

सुबर्हिष: - 8.20.25, शोभन बर्हिष् वाले, सु-बर्हिष पदयोः समास: । पुं0 प्र0ब0व0 ।

सु_भागान् - 10.78.8 ॥ब0 भाग॥ उत्तम भाग्यशाली, श्रेष्ठ अंश पाने वाला द्वि0ब0व0 सुष्ठु ऐश्वर्य प्रदा: ।

सुभगा - 8.20.15, ॥ब0 भाग॥ भाग्यवान्, सुन्दर ।

सुभ्व: - 5.55.3, जो लोग सुष्ठु सुख प्राप्त किये हैं । सूपपदे √भू सत्तायाम + क्विप् ।

सु_मतिभि: - 7.56.4, शोभन, सुन्दर पत्नियों के द्वारा, तृ0ब0व0 ।

सु_मातर: - 10.78.6, शोभना: मातर: येषां ते, पुं0 प्र0ब0व0, शोभन माताओं वाले ।

सुमारुतम् - 10.77.1,2, नपुं प्रथमा अथवा द्वि0ए0व0 ।

सुमुके - 7.56.17, 6.66.2, नियमरूप में निक्षिप्त । सु + मेक =√डुमिञ् प्रक्षेपणे ॥स्वा0॥ कम् अथवा √मिह्. प्रणिदाने ॥भ्वा0॥ + कन् स0ए0व0 ।

सुम्नायन्तः - 8.7.11, सुम्नं धनम् आत्मन. इच्छन्तः सुम्न + क्यच् + शतृ + जस् ॥पुं0॥

सुम्नम् - 8.7.17

सुम्ना - 8.20.16, प्र0ब0व0 ।

सुम्ने - 7.56.17, च0ए0व0 ।

सुवानै - 8.7.19, प्रेरणा के द्वारा, ॥सविता=जगदीश्वर॥ षु अभिषवे ॥स्वा0॥ अथवा षु प्रसवैश्वर्ययोः ॥भ्वा0॥ + क्वनिप् ।

सुरत्न - ॥विब0॥ रत्न॥ उत्तम उपहारों से युक्त, 10.78.8, 10.18.7

सुरत्नान् - 10.78.8 ॥वि0॥ शोभन रत्नों से द्वि0ब0व0 ।

सुरातयः - 10.78.3, ॥पुं0॥ उत्तम दान वाले, सु + राति -√रा दाने ॥अदा0॥ + क्तिन् 2 शोभना रातिः येषां ते, बहुव्रीहिः, सु + √रा दाने + क्तिन् + जस् ।

सुरातिः ॥विब0॥ राति॥ उत्तम उपहार देने वाला 10.78.3, पु0प्र0ए0व0 ।

सुविताय - 8.7.33, ॥सं0वि0॥ ऐश्वर्य के लिए, प्रेरणा के लिए अभिषव के लिए, च0ए0 व0 ।

सुवीर्यस्य - 7.56.15 ॥सं0॥ उत्तम पराक्रम का, शोभन पराक्रम का नपुं0 ष0ए0व0 । सु + वीर्य पदवोसमासः ।

सुशर्मन् ॥वि0ब0 शर्मन्॥ उत्तम रक्षा करने वाला 10.78.2

सुशर्माणः - 10.78.2, ॥सं0॥ प्रशंसित गृह, सु + शर्मन् =√शृ हिंसायाम् ॥क्र्या0॥ + मनिन् । पुं0 प्र0ब0व0 ।

सुषामे - 8.7.29, निष्पादन करते हैं । √षुञ् अभिषवे, लट्, आ0प0उ0पु0ब0व0 ।

सुष्टुभ् - ॥ब0॥ उत्तम स्तोभों का प्रणेता 10.78.4, शोभनस्तोता सु + √स्तुभ् + क्विप्

सुश्रवस्तमान् - 8.20.20, उत्तम यश वालों को, उत्तम अन्न वालों को । पुं० द्वि०ब०
व० ।

सुश्वा: - 7.56.1, शोभना: अश्वा: येषां ते, बहुव्रीहि:, पुं०प्र०ब०व० । शोभन अश्वों
वाले ।

सुसंदृश् [वि०ब०] संदृश् शोभन दर्श‍न वाला, 10.78.1, 1.143.3, पुं० प्र०ब० व० ।

सूनव: - 8.7.17 [सं०] पुत्रगण, विद्यार्थीगण, सन्तान, √षूङ् प्राणिगर्भ विमोचने [अदा०]
+ किच्च । पुं०प्र०ब०व० ।

सूनृतां - 7.57.6, 7, [स्त्री०] प्रिय, सत्य प्रकाशिता वाक् [वाणी] ।

सूर्यस्य - 5.55.3,4 [पुं०सं०] सूर्य का, ष०ए०व० ।

सूर: - 8.7.36, प्रेरक, सविता, सरति, प्राप्नोति स: सूर्य:, वीर, कोमलभाषी जन
√षू प्रेरणे [तुदा०]

सूरय: - 10.78.6, वीर, कोमभाषी जन √षू प्रेरणे [तुदा०] या षूङ् प्राणिप्रसवे [दिवा०]
+ क्रन् पुं०प्र०ब०व० ।

सूर्य: - 10.77.3, 8.7.22, सूर्य, ज्ञानप्रकाश, मार्तण्ड, सविता, √सृगतौ [भ्वा०] अथवा
√षू प्रेरणे [तुदा०] क्यप् ।

सूर्याय - 8.7.8, च०ए०व० ।

सृजन्ति - 8.7.8 [क्रि०] सृजन करते हैं, निष्पादन करते हैं । लट् प्र०बु०ब०व० ।

सो - [क्रि०] बांधना, वि सो, अव सो खोलना, मुक्त करना, 1.25.4, 1.85.5,
1.142.10, 7,28.4

सोभरीणाम् - 8.20.8

सोभरीयवः - 8.20.2

सोभरे - 8.20.19

सोमा - 10.78.2, ऐश्वर्यप्रापक, ऐश्वर्यवान, सम्पन्न लोग [मनुष्य] √षुञ् अभिषवे [स्वा०]
या √षू प्रेरणे [तुदा०] या √षु प्रसवैश्वर्ययो: [भ्वा०] मन् ।

स्तुषे - 8.7.32, प्रशंससि प्रशंसित होते हैं, √ष्टुञ् स्तुतौ ॥अदा0॥ लट्0 म0पु0ए0व0 ।

स्तोत्रम् - ॥न0 स्तु॥ स्तुति 10.78.8, स्तवन, ष्टुञ् स्तुतौ ॥भ्वा0॥ ष्ट्रन् ।

स्वभानव: - 8.20.4, अपनी दीप्ति ॥कांति॥ से प्रकाशित होने वाले, ॥मरूद्गण॥ स्व भानु = √भा दीप्तौ 'दाभाग्यां नु:' इति पु0प्र0ब0व0 ।

हनन्त - 7.56.22,

हन्ति - 7.58.4, शोभार्थक निपात ।

हर्म्येष्ठा: 7.56.16 ॥न0॥ घर में स्थित ॥बलिष्ठ मरूत॥ हर्म्योपपदे √ष्ठा गतिनिवृत्तौ ॥भ्वा0॥ + क: + जस् ।

हर्य् - ॥क्रि0॥ प्रेम से स्वीकार करना, 5.57.1, प्रेम पूर्वक कामना से वार्ता करो सं वि0 लोट् म0पु0ब0व0 ।

हवते - 7.56.18, पुं0 √हू आह्वाने बुलाते हैं । निमन्त्रित करता है ॥आ0प0॥ लट् प्र0पु0ए0व0 ।

हवमानम् - 8.7.30, स्पर्द्धमान ॥मेधावी जन॥ √ह्वेञ् स्पर्द्धायां + शानच् ।

हवामहे - 8.7.6, 11, आह्वान करते हैं लेट् प्र0पु0ब0व0 ।

हव्या - 8.20.20 ॥न0 हु॥ हवन करने योग्य पदार्थ 3.59.1, 7.86.2

हव्या - 8.20.10, 16, 7.56.12 ॥सं0॥ आहूत योग्य, आह्वनीय, प्र0ब0व0, √हु दानादानयो: + यत् , या √ह्वेञ् स्पर्द्धायां + यत् ।

हविष्मन्त: - 10.77.1 ॥वि0॥ हवि धारण करने योग्य, यजमान हविष् + डुकृञ् धारणे + मतुप् + जस् ॥पुं0॥

हवीमन - 7.56.15 ॥पुं0 हू॥ पुकार 2.33.5, 7.83.4, √हु दानादानयो: ॥जु0॥ + मनिन् ।

हि - 8.7.12, 10.77.8, 7.56.2 वाक्यपूरणे, अलंकारार्थे निपातं 1.25.4, 4.51.5, ॥क्रि0॥ प्रेरणा देना, प्रवृत्त करना, 1.143.4

हिनोमि - 7.56.12, प्राप्त करता हूँ, वृद्धि करता हूँ, गमन करता हूँ, √हि गतौ वृद्धौ च लट् पु०पु०ए०व० ।

हिरण्यपाणिभिः - 8.7.27 [न०] सुवर्णमय हाथों के द्वारा, तृ०ब०व० [सविता] हिरण्य-पाणि पदयो समासः ।

हिरण्ययी - 8.7.25 [न०] सुवर्णमय ।

हिरण्यये - 8.20.8 [वि०] सुवर्णमय में, स०ए०व० ।

हिरण्यवाशिभिः - 8.7.32 सुवर्णमय कुठारों के द्वारा, तृ०ब०व० ।

हुवे - 7.56.10, ग्रहण करता हूँ, आहूत करता हूँ, √हु-दाना दानयोः लट् आ०प०, पु०पु०ए०व० ।

हृदा - 8.20.18, [न०] हृदय के द्वारा, 8.100.5, 10.119.5, अन्तःकरण के द्वारा, हृदयप्राति० शसप्रभृतिषु विभक्तिषु 'पद्दन्नोमास् हृद०' अ० 6.1.63 सूत्र से हृदादेशः ।

होता - 7.56.18, दाता अथवा यजमान, यज्ञकर्ता हवन कर्ता, यज्ञसाधक, यज्ञसम्पादक: √हु दानादानयोः [जु०]

होतृषु - 8.20.20 [पुं०] होताओं में, √हु + तृच् + सुप् । होताओं में, सप्तमी, ब० व० ।

# पंचम अध्याय

## समाहार

पूर्व अध्यायों में वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं पाश्चात्य मनीषियों द्वारा विश्लेषित विभिन्न ग्रन्थों की समस्त तथ्यसामग्री की पर्यालोचना से मरुतों के उभरने वाले संश्लिष्ट स्वरूप पर विचार करना अपेक्षित है।

मरुद्गण के सम्बन्ध में प्रमुख विशेषताओं में है उनका देदीप्यमान, जाज्वल्यमान, भास्वर रूप। वे सूर्य की रश्मियों से चमकते हैं। सूर्यस्येव रश्मय: (ऋ0 5.55.3), तारों से चमकते आकाश से प्रतीत होते हैं (ऋ0 2.34.2) अग्निभ्राजस: (ऋ05.55 1) विद्युत से दीप्त (विद्युन्महस: ऋ0 5.54.3) प्रभृति विशेषणों से अलंकृत होते हैं। इनके नाम से जुड़े ये विशेषण मरुतों का सूर्य, विद्युत् वायु, वृष्टि आदि के घनिष्ठ सम्बन्ध का परिचायक है। अपने यजमानों के लिए मरुतों का सबसे बड़ा दान वृष्टि ही है। मरुतों का स्वरूप उपर्युक्त विशेषताओं से ही पर्यवसित नहीं हो जाता प्रत्युत् इससे भिन्न दूसरा पक्ष विशेष महत्वपूर्ण है। यह है उनका अग्नि समन्धन करने वाला स्तोता पितरों वाला रूप। मैक्डोनेल का संकेत इस ओर है परन्तु विशेष महत्व नहीं। प्रो0 ए0 बर्गे ने अवश्य इस पर सविस्तार प्रकाश डाला है।[1]

मरुतों की उपमा सूर्य से तथा उषस् किरणों से की गयी है।[2] अग्नि से भी मरुतों का सम्बन्ध द्योतित होता है। ऋषि कण्व के शब्दों में अग्नि प्रथमत सूर्य की द्युति के समान उत्पन्न हुआ और तब वे (मरुद्गण) द्युतियों से प्रसरित हुए।[3] अग्नि

---

1. ए0 बर्गे के मूलग्रन्थ "रिलीजन वैदिक", पी0जी0 परांजपे द्वारा अनुवादित वैदिक रिलीजन का भाग 2, पृ0 389 और आगे।

2. उषसां न केतव:, ऋ0 10.78.7

3. अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा।
   ते भानुभिर्वितस्थिरे ॥ ऋ0सं0 8.7.37

और सूर्य से सम्बद्ध होने के साथ-साथ ये सोम के परिशोधक अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातर: । चारुप्रियतमं हवि: ॥ ऋ० 4.34.5ऋ तथा "स्तुति" से भी घनिष्ठ सम्बन्ध के द्योतक हैं ।

मरुतों के सम्बन्ध में विभिन्न मत

यास्क ने देवगण का विभाजन द्युस्थानीय, मध्यस्थानीय और पृथिवीस्थानीय, इन तीन विभागों में किया है और मरुतों को मध्यस्थानीय कहा है ।[1] परवर्ती भारतीय परम्परा में मरुत् शब्द वायु का ही पर्याय हो गया है ।

अवेस्ता में वायु की कल्पना में भी उसे स्वर्ण मुकुट सुनहरे वस्त्र धारण करने वाला तथा स्वर्ण-रथ पर सवार बताया है और अपनी उग्रता आदि के कारण उसका सम्बन्ध योद्धा-वर्ग से जोड़ा गया है ।[2] अवेस्ता में प्राचीन ईरानी काल के जरथुश्त्र के सुधार आन्दोलन के पूर्ववर्ती कुछ ही यजत ऋपूज्यऋ अवशिष्ट रहे हैं और वे भी पर्याप्त परिवर्तित रूप में । इसलिये संभवत: अवेस्ता में वायु के रूप में हमें मरुतों की भी कुछ झलक मिल जाती है । परन्तु हम पिछले अध्याय मे ही वायु-मरुत सम्बन्ध पर विचार करते हुये स्पष्ट कर चुके हैं कि मरुत: वायु से भिन्न देवता हैं और वायु उनके स्वरूप का एक अंशमात्र है । इस प्रसंग में यह भी द्रष्टव्य है कि सोमयाग में वायु को प्रात.सवन में स्मरण किया जाता है, जबकि मरुतों को माध्यन्दिन और तृतीय सवन में । दूसरा मत कुह्न बेन्फे, इ०एच० मेयर, ओदर तथा हिलेब्राण्डट् द्वारा प्रस्तुत किया गया है जिसके अनुसार मरुत् उत्पातकारी प्रेतात्मा है और इस मत की पुष्टि में कहा गया है कि कभी-कभी मरुतों के साथ रुद्रों या पितरों जैसा व्यवहार किया गया है । इस प्रकार एक अवसर पर इन्द्र को आहुति देने के बाद उनके लिए एक भिन्न आहुति दी गयी है और इसका

------------------

1. द्रष्टव्य, निरुक्त 11.13,
   "अथातो मध्यस्थाना देवगणा: ।
   तेषां मरुत: प्रथमागामिनो भवन्ति ।"

2. यश्त, 15/43-57.

कारण यह बताया गया है कि वास्तविक देवों के समान वे हविर्भोक्ता नहीं हैं, इनके लिये गर्भ की भी बलि दी जाती है, जो साधारणतया यज्ञ में शुभ नहीं है। वे अपत्य-हिंसक, यज्ञ-नाशक और उनके लोक में से प्रगति करने वाले मनुष्यों के रोधक बनकर उभरते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें पक्षिरूप भी माना गया है और पक्षी प्राय. मृतात्मा होते हैं।"[1]

विचार करने पर उपर्युक्त मत निराधार ही लगता है। यज्ञ के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध मरुद्गण न केवल इन्द्र के साथ ही अपितु स्वतन्त्र रूप से भी हविष् के अधिकारी हैं,। इस प्रकार मरुतों के आयुध को एक स्थल पर नृघ्न, गोघ्न अवश्य कहा गया है।[2] परन्तु इस प्रकार के छिटपुट उल्लेख तो किसी भी देवता के विषय में मिल सकते हैं। इसके विपरीत कहा गया है कि मरुद्गण जिसके निवास में है, वह जन तो सुगोपातम हैं।[3] इसी प्रकार हे मरुतों। जिस किसी ऋषि या राजा का तुम मार्ग दर्शन करते हो, वह न जीता जाता है, न मारा जाता है, न विफल होता है, न काँपता है और न गिरता है, न उसके धन या रक्षायें ही समाप्त होती हैं।[4] पक्षिरूप में तो सूर्य, इन्द्र आदि को भी माना गया है। वे अनिष्टकारक मृतात्माओं के रूप में नहीं माने जा सकते और कीथ तथा मैक्डोनेल ने इस मत को सर्वथा अस्वीकार्य ठीक ही कहा है - मरुतों के विषय मे अधुनातन मत वैदिक वाङ्मय के गम्भीर चिन्तक डॉ0 आर0 एन0 दाण्डेकर ने प्रस्तुत किया है। अपने विस्तृत अनुसन्धानपूर्ण लेख वृत्रह इन्द्र[5] में उन्होंने इन्द्र के विषय में बहुत सारगर्भित विवेचन किया है जिसमें इन्द्र-मरुत्-सम्बन्ध की व्याख्या

---

1. ए0बी0 कीथ, द रिलीजन एण्ड फिलासफी ऑव द वेद एण्ड उपनिषद्, अनुवादक डा0 सूर्यकान्तकृत अनुवाद वैदिक धर्म और दर्शन", पृ0 189.
2. ऋ0सं0 7.56.17
3. मरुतो यस्यहि क्षये पाथा दिवो विमहस: । स सुगोपातमो जन: ॥ ऋ0सं0 1.86.1
4. न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
   नास्य राय उपदस्यन्ति नोतय ऋषिवायं राजानं सुषूदथ ॥ ऋ0सं0 5.54.7
5. एबोरी, वाल्यूम 31, 1950, पृ0 1-55.

भी प्रस्तुत की है । प्रो० दांडेकर के मत का यहाँ सविस्तार उद्धरण अविकल अनुवाद के रूप में प्रस्तुत है .-

"मरुद्गण की पुराकथा से सम्बद्ध विभिन्न पहलुओं की संतोषजनक व्याख्या के लिये एकमात्र अधोलिखित परिकल्पना प्रस्तुत की जा सकती है । ऋग्वेद में रुद्र मूलत: मृत्यु के देवता प्रतीत होते हैं और मरुद्गण मूलरूपेण उन्हीं के गण से सम्बद्ध थे । व्युत्पत्ति की दृष्टि से मरुत् शब्द को मरणार्थक मर धातु से निष्पन्न माना जा सकता है । यह संभव प्रतीत होता है कि मरुद्गण प्रथमत: मृतात्माओं के मूर्तरूप थे और फिर मृत्यु देवता के संदेशवाहक मृत्यु के संदेशवाहक के रूप में मरुद्गण एक समान सुनियोजित एवम् सजातीय समूह बनाये हुए प्रतीत होते हैं । एक दूसरे प्रसंग में यह संकेत किया गया है कि वैदिक पुराकथा के विकास में रुद्र शनै: शनै: ही अपने मृत्यु देवता के स्वरूप से विलग हो गये और शीघ्र ही यम ने उसका स्थान ले लिया, जो कि संयोगवश मूलत: मृत्यु के देवता नहीं थे । केवल इतना ही नहीं प्रत्युत इस एवम् अन्य कारणों से रुद्र शीघ्र ही वैदिक धर्म में अनुचर के स्तर पर पहुँचे हुये प्रतीत होते हैं । यह अवश्य ही रुद्र एवम् मरुतों के मौलिक सम्बन्ध के विघटन में परिणमित हुआ होगा तथा ऋग्वेद में उनके इस सम्बन्ध से सम्बद्ध जो भी थोड़े प्रसंग हैं क्रमश: कम ग्राह्य होते गये होंगे । परिणामस्वरूप वैदिक कवियों ने मरुतों की पुराकथात्मक विचारधारा को सर्वथा नवीन महत्व प्रदान किया । ऐसा करते हुये, उन्होंने उनके मौलिक एक स्वरूप को विशिष्ट स्थिति, एवम् उनके एक समान एवम् सुनियोजित समूह है, के रूप मे उपस्थित होने के तथ्य पर अतिशय बल दिया। मरुत भाइयों जैसे हैं, जिनमे न कोई ज्येष्ठ है और न कनिष्ठ ॥5.56.6, 60.5॥ वे अवस्था में समान हैं ॥1.165.1॥ और समान विचार वाले हैं ॥8.20.1, 21॥ । वे अपने सुनहले ॥5.55.6॥ सुनहले रुक्म ॥5.54.11॥ एवम् बाजूबन्द ॥2.34.2॥ में एक जैसे परिलक्षित होते हैं । वे सदैव एक निश्चित संख्या वाले समूह में विचरण करते हैं -साठ का तिगुना ॥8.58.8॥ अथवा सात का तिगुना ॥1.133.6॥ । मरुतों की इन विशेषताओं ने वैदिक कवियों के समक्ष अवश्य ही सैनिकवस्त्रों में सजे सुनियोजित वीरों का चित्र प्रस्तुत कर दिया होगा । अत: मरुतों के मौलिक स्वरूप की स्मृतियों के विलुप्त हो जाने पर वैदिक कवियों ने स्वाभाविक रूप से उन्हें यथासंभव युद्ध के देवता इन्द्र से सम्बद्ध

करने की बात सोची होगी । यह तथ्य कि रुद्र एवम् मरुतों का सम्बन्ध मरुत सम्बन्धी पुराकथा का पूर्वतर रूप है, ऋग्वेद के उनके सम्बन्ध से सम्बद्ध बहुत थोड़े एवम् लगभग अस्पष्ट उद्धरणो में स्पष्टतया संकेतित है । दूसरी ओर इन्द्र एवम् मरुतों के सम्बन्ध में अनेक सर्वथा स्पष्ट उद्धरण हैं । साथ ही मरुतों का रुद्र से हटकर इन्द्र से सम्बद्ध होना अपेक्षाकृत अधिक तार्किक प्रतिभात होता है । मरुत इन्द्र जैसे प्रमुख देवता से दूर हटकर ऋग्वेद में पहले से ही अनुचर की स्थिति में मै पहुँचे हुए रुद्र के साथ सम्बद्ध हो गये होंगे सचमुच अविचारणीय लगता है तथा मरुत् रुद्र एवम् इन्द्र से एक ही साथ सम्बद्ध रहे होंगे । यह भी अविचारणीय प्रतीत होता है । जैसा कि ऊपर उल्लिखित है मरुद्गण इन्द्र की शक्ति एवम् उत्साह सम्बर्धित करते हुये दिखाये गये हैं ‹3 35.9, 5.17.11› वे सामान्यतया उसकी युद्ध मे सहायता करते थे ‹3.47.3-4, 8.65.2.3, 10.113.3› मरुत् कभी कभी युद्धगीतों के गायक के रूप में भी वर्णित हैं ‹2.19.4› ऋग्वेद के कतिपय ऐसे उद्धरणों की ओर पहले ही ध्यान आकृष्ट किया गया है जो यह उद्भासित करते हुये प्रतीत होते हैं कि इन्द्र एवम् मरुत् के पौराणिक सम्बन्ध की कतिपय स्थितियाँ एक युद्ध स्वामी एवम् उसके सेनापतियों के मध्य वास्तविक ऐतिहासिक परिवर्तनों के प्रतिबिम्ब हैं । ऋग्वेद ‹2.165.6› और ‹8.7.31› में मरुत् अपने नेता इन्द्र का साथ छोड़े हुये वर्णित हैं । ऋग्वेद ‹1.170.2, 171.6› में इन्द्र एवम् मरुतों के वैमनस्य का स्पष्ट संकेत है । फिर भी यह स्मरणीय रहना चाहिये कि ऐसी घटनायें अवश्य ही बहुत कम घटती रही होंगी और वे शायद केवल इन्द्र के मौलिक व्यक्तित्व की ऐतिहासिकता को ही प्रमाणित करती हैं ।

जब वैदिक पुराकथा के विकास-सोपान मे राष्ट्रीय युद्ध-देव इन्द्र के व्यक्तित्व पर एक सार्वभौम स्वरूप आरोपित हुआ और परिणामतः इन्द्र वर्षा के देवता बन गये, मरुतों के स्वरूप में भी तदनुकूल परिवर्तन हुआ । युद्ध-देवता के विश्वस्त सेनापति अब वर्षा के देवता के सहायक बन गये । दूसरे शब्दों में मरुत् झंझावात से सम्बद्ध देव समझे जाने लगे । यह ऋग्वेद में प्रस्तुत मरुतों के स्वरूप-विकास की अन्तिम दशा है और यही कारण है कि बाद की पुराकथा में मरुद्गण अधिकांशतः आँधी-तूफान के देव के रूप में चित्रित किये गये हैं ।"

खेद है कि हमारा प्रस्तुत अध्ययन उपर्युक्त मत का समर्थन करता नहीं दीखता । मरुद्गण, जैसा कि हम पिछले अध्याय में विस्तार से दिखा चुके हैं और ऊपर भी संकेत कर चुके हैं "रुद्र" के साथ उसके मारकत्व के कारण नहीं, अपितु रुद्र के अग्निरूप होने के कारण ही सम्बद्ध हुये । मरुतों का अनिष्टकारी, मारक रूप ऋक्संहिता में दिखायी नहीं पड़ता, परन्तु "जलाषभेषज" वाले रुद्र का आगे चलकर इसी रूप में विकास हुआ और इसलिये रुद्र के साथ मरुद्गण का सम्बन्ध भी धुंधला-सा पड़ गया । पिछले अध्याय में इन्द्र मरुत्-सम्बन्धों पर विचार करते हुये, अगस्त्य सूक्तों के हवाले से स्पष्ट किया जा चुका है कि इन्द्र के साथ प्रथमत: मरुतों की प्रतिद्वन्द्विता भी चली है और काफी संघर्ष के बाद ही मरुद्गण पहले इन्द्र के सखा और फिर अनुचर बन गये ।

निष्कर्ष

पिछले सारे विवेचन को ध्यान में रखते हुये मरुतों के स्वरूप-विकास के बारे में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मरुद्गण प्रेतात्मा नहीं है अपितु अग्नि को समिद्ध करने वाले, सोम का परिशोधन करने वाले, यज्ञ के प्रवर्तक स्तोता के रूप में सौम्य पितरों के रूप में कल्पित हुये । ध्यान देने योग्य है कि ऐसे पितरों की कल्पना बहुवचन में ही की गयी है - दशग्वा:, नवग्वा:, अङ्गिरस:, भृगव:, आथव: आदि इसके अनुरूप वे हुए मरुत: । वैदिक विचारधारा से परिचितों को अग्नि का प्रथमत: समिन्धन करने वालों का अग्नि से तादात्म्य अपरिचित वस्तु नहीं है और इस प्रकार मरुतों का अग्नि से और अग्नि के ही एक रूप रुद्र से घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ । हम ऊपर विवेचन कर चुके हैं कि अग्नि या सूर्य मुख्यत: अग्नि के विद्युत् रूप का झंझावात से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इस प्रकार मरुद्गण झंझावात के देवता भी बने । मरुतों की कल्पना का यह विकास सभी ऋषि-परिवारों में परिलक्षित नहीं होता । चतुर्थ मंडल में कोई मरुत्सूक्त नहीं है, तीसरे मंडल में भी कोई स्वतन्त्र मरुत्सूक्त नहीं है, परन्तु सूक्त 26 में उन्हें अग्नि के साथ स्मरण किया गया है और उन्हें अग्नय: कहा गया है । परन्तु कालान्तर में इन्द्र समस्त आर्य-जनों के श्रेष्ठ देव बन गये । परिणामत: मरुतों को उनका अनुचर बनना पड़ा ।

मरुतों की संख्या का बहुत्व भी इनके किसी न किसी देवता के अनुगामी बनकर

रहने में एक बड़ा कारण प्रतीत होता है और इसलिए वे रुद्र अग्नि और इन्द्र के अनुगामी बने । इसी कारण आगे वे देवविश: कहे गये और क्योंकि विश: हविर्भोक्ता नहीं हो सकते थे, इसलिये एकाध प्रसंग में वे "अहुताद:" भी बने ।

परन्तु इतना होने पर भी ध्यान देने की बात यह है कि भारतीय मानस मरुतों को त्रित आप्त्य, अहिर्बुध्न्य, ऋभव: आदि की तरह कभी भी सर्वथा विस्मृत न कर पाया । महाभारत, रामायण और पुराणों में मरुत्सम्बन्धी आख्यान आये हैं । इन आख्यानों की सम्यक् व्याख्या इस अध्ययन में प्रस्तुत सामग्री के आधार पर संभव है। मारुति के स्वरूप-विकास को समझने में भी यह अध्ययन सहायक होगा ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मरुत् पद की मर् न मरणार्थक है और न कुचलने अर्थ वाली, अपितु वह चमकना, दीप्त होना इसी अर्थ की द्योतक है और इसी अर्थ से "मरीचि" जैसे शब्द सम्बद्ध हैं ।

# अधीत पुस्तकों की सूची

## संहिताएँ

1. ऋग्वेद संहिता, वैदिक संशोधन मण्डलेन प्रकाशिता श्रीमत्सायणाचार्य विरचितभाष्य समेता प्रथम भाग 1972, द्वितीय भाग 1936, तृतीय भाग 1941, चतुर्थ भाग । 1946 पंचम भाग ।

2. ऋग्वेद, वेङ्कट, स्कन्दस्वामी, मुद्गल, उद्गीथ भाष्यसहित 8 भाग सं0 विश्वबन्धुः विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्, प्0सं0 1954.

3. काठक संहिता, श्रोदर लिपविंग सन् 1910.

4. तैत्तिरीय संहिता - सायण भाष्य सहित, आनन्दाश्रम, संस्कृत ग्रन्थावली, पूना - 1956.

5. तैत्तिरीय संहिता मूलपाठ स्वाध्याय मंडल, पारडी ।

6. मैत्रायणी संहिता, मूलपाठ, स्वाध्यायमंडल, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, बाम्बे, सम्वत् 2013.

7. वाजसनेयि माध्यन्दिन शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता, उव्वट महीधर भाष्य सहित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।

8. सामवेद संहिता, सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद, 1927.

9. अथर्ववेद संहिता-सायण भाष्य 4 भाग, सम्पा0 विश्वबन्धु विश्वेश्वरानन्द शास्त्रीः वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, 1960-62.

*2.

## ब्राह्मण ग्रन्थ

1. अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण (अनुवादक) डॉ0 सूर्यकान्त, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1964.

2. ऐतरेय ब्राह्मण-सायणभाष्यसहित आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज, पूना 1896.

3. ऐतरेय ब्राह्मण सायणभाष्यसहित, हिन्दी अनुवाद, डा0 सुधाकर मालवीय, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1964.

4. कौषीतकि ब्राह्मण मूलपाठ आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज-पूना ।

5. गोपथ ब्राह्मण मूलपाठ - डा० विजयपालो विद्यावारिधि प्रकाशक-सावित्री देवी वागड़िया ट्रस्ट, 2 नं० चौरंगी एप्रोच, कलकत्ता, प्र०सं० 1980.

6. जैमिनीय ब्राह्मण, आचार्य-रघुवीरेण च श्री व लोकेशचन्द्रेण च परिष्कृतम् , सरस्वती विहार नागपुर, विक्रमाब्दा: 2011, सन् 1954.

7. ताण्ड्य ब्राह्मण-भाष्य सहित, जयकृष्णदास, हरिदासगुप्त, चौखम्भा सीरीज कार्यालय सं० 2008.

8. तैत्तिरीय ब्राह्मण : आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज ग्रन्थाङ्क 37, आनन्दाश्रम प्रेस, 1934.

9. शतपथ ब्राह्मण : सायण भाष्य सहित 5 भाग, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस 1940-41, बम्बई ।

10. शतपथ ब्राह्मण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, श्रीमती उर्मिलादेवी शर्मा, मेहरचन्द, लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1982, प्रथम संस्करण ।

## आरण्यक एवं उपनिषद्

1. तैत्तिरीय आरण्यक : आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज 90, आनन्दाश्रम 1922.

2. वृहदारण्यक - गीता धर्म प्रेस, बनारस, 1950.

3. शांखायन आरण्यक आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज - 90, आनन्दाश्रम 1922.

4. ईशोपनिषद, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी, जिला-बलसाड़, सं० 2025.

5. उपनिषत्संग्रह:, जगदीशशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी 1970.

6. केनोपनिषद् अनुवादक व संग्रहकर्ता अहिताग्नि यमुना प्रसाद त्रिपाठी, प्रकाशक - मोतीलाल, दिल्ली, प्र०सं० 1963.

7. कठोपनिषद् सानुवाद शांकरभाष्यसहित, घनश्याम जालान, गीता प्रेस गोरखपुर, सं० 2008.

8. श्रीमच्छंकराचार्यकृतं तैत्तिरीयोपनिषद् भाष्यम् दिनकर विष्णु गोखले मुंबय्यां कोट सातुना विल्डिंग नं० 8, मणिलाल, इच्छाराम देशाई इत्यनेन स्वीये गुजराती सं०1970.

9. बृहदारण्यकोपनिषद्, पं0 सखारामात्मज पं0 रामचन्द्र शास्त्रिणा, वाणी विलास पुस्तकालय, कचौड़ी गली, काशी, वि0सं0 2011.

10. श्वेताश्वतरोपनिषद् दार्शनिक अध्ययन, डा0 वेदवती, वैदिक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र0सं0 1984.

11. श्रीमद् बाल्मीकीय रामायण, महर्षि बाल्मीकि प्रणीत, प्रो0 गीता प्रेस, मोती लाल जालान गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2033.

12. महाभारत 18 पर्वों का, डा0 पं0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड, गुजरात, सन् 1968-1978.

13. अग्निपुराण-12 खण्ड, श्रीरामशर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब वेदनगर, बरेली, प्र0सं0 1968.

14. आचार्य गुणभद्रकृत-उत्तर पुराण, भाग 1, 2 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 1963-1965.

15. कालिका पुराण प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, विश्वनाथ शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, आफिस, वाराणसी, सं0 2029.

16. गरूणपुराण, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान, बरेली, 1968.

17. पद्मपुराण ।3 भाग। पं0 पन्नालाल जैन साहित्याचार्य भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1958.

18. भविष्य महापुराण, खेमराज श्रीकृष्णदास, खेतवाड़ी बम्बई, सं0 1967.

19. मत्स्यपुराण, श्रीमन् महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास, नन्दलाल, कलकत्ता, 1954.

20. मार्कण्डेय पुराण, प्रथम एव द्वितीय खण्ड, श्रीराम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बेरेली, 1968.

21. वायुपुराण, मनसुखराय मोर/कलकत्ता-1959.

22xxवैदिकxxxxxx

## निघण्टु तथा निरुक्त

1. निघण्टु तथा निरुक्त, डॉ० लक्ष्मणस्वरूप (आक्सफोर्ड द्वारा) सम्पादित, प्रथम बार भाष्यन्तरीकृत-हिन्दी भावान्तर सत्यभूषण योगी तथा शशिकुमार, मोतीलाल, बनारसीदास, प्रथम संस्करण, 1967.

2. निघण्टु तथा निरुक्त (मूल हिन्दी अनुवाद) श्री छज्जूराम तथा पं० देव शर्मा शास्त्री, भारत भारती प्रेस, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1963.

3. बृहद्देवता-दो भाग, ए०ए० मैक्डोनेल, हा०ओ०सी०, जिल्द 5-6, 1904.

4. शौनकीय बृहद्देवता (अनुवादक) रामकुमार राय, चौखम्भा संस्कृत सिरीज आफिस, वाराणसी, सं० 1963.

5. अमरकोश, डा० सत्यदेव मिश्रा, सं० 1972.

6. पाणिनीय सूत्रपाठस्य तत्परिशिष्टग्रन्थाना च ।

7. शब्दकोशाः, महामहोपाध्यायवेदान्तवागीश-पाठकोपाह्वश्रीधरशास्त्रिणा तथा च विद्यानिधिचित्रावोपाह्व सिद्धेश्वरशास्त्रिणा संगृहीता, भाण्डारप्राच्यविद्यासंशोधन मंदिराधिकृतैः, 1935.

8. भाषा-विज्ञान-डॉ० भोलानाथ तिवारी, किताबमहल, 15 थार्नहिल रोड, इलाहाबाद, 1986.

9. वैदिक इण्डेक्स आफ नेम्स एण्ड सब्जेक्टस (हिन्दी अनुवाद) रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962.

10. वैदिक कोश, डॉ० सूर्यकान्त, वैदिक रिसर्च समिति, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, 1963.

11. वैदिक पादानुक्रमकोश, वी०वी०आर०आई० (इन्स्टीट्यूट) होशियारपुर, 1979.

12. शब्दकल्पद्रुमः, स्यार-राजा-राधाकान्तदेव-बहादुरेण विरचित, (1-5 भाग) चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-1961.

13. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।

14. सैंट पीटर्सबर्ग संस्कृत जर्मन कोश राथ तथा बाथलिंग सेन्ट पीटर्सबर्ग, 1961.

15. हलायुधकोशः (अभिधानरत्नमाला) सम्पा०-जयशंकर जोशी, (हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, द्वि०सं० 1967.

अन्य सहायक ग्रन्था :

1. आनन्द वेद, अरविन्द, अरविन्दो आश्रम, पाण्डिचेरी, 1964.

2. उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति - एक अध्ययन, डॉ0 विजय बहादुर राय, भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 1966.

3. ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि-पं0 विश्वेश्वरानन्द, मोतीलाल-बनारसीदास।

4. ऋग्वेद प्रातिशाख्यम् - डॉ0 वीरेन्द्र कुमार शर्मा, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्र0सं0 1970.

5. ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी-शौनक कृता नुवाकानुक्रमणीच . उमेश चन्द्र शर्मा, वीणा शर्मा, विवेक, पब्लिकेशन्स, संसदरोड, अलीगढ़, प्र0सं0 1977.

6. ऋक्-सूक्त रत्नाकर., डॉ0 रामकृष्ण आचार्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, हास्पिटल रोड, आगरा, प्र0सं0 1963.

7. ऋक् सूक्त संग्रह, डॉ0 हरिदत्त शास्त्री, डॉ0 कृष्ण कुमार साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1980.

8. ऋग्वेदप्रातिशाख्य-डॉ0 वीरेन्द्र कुमार वर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्र0सं0 1970.

9. ऋग्र्थदीपिका, श्री लक्ष्मणस्वरूप, काशीय संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्षै: मोतीलाल बनारसी दास, 1919.

10. ओरिजिनल सस्कृत टेक्सट ॥पाँचवां भाग॥ जे0म्योर अनुवादक रामकुमार राय, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी, 1970.

11. द ऋग्वेद, ए0वेंगी, अमरको बुक एजेन्सी, बी0 42, अमर कालोनी, नई दिल्ली, दि0सं0 1975.

12. द यास्क, एटिमालाजी आफ यास्क, सिद्धेश्वर वर्मा, विश्वेश्वरानन्द, वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1953, (द वेदास, मैक्समूलर, वाराणसी, 1969..)

13. धर्मशास्त्र का इतिहास, मूल लेखक वी0पी0 काणे, अनुवादक अर्जुन चौबे, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला 132, प्र0सं0 1966.

14. पाणिनि सूत्राज, धातुपाठ, दपाणिनि आफिस बहादुरगंज इलाहाबाद 1909.,

15. अनुस्मृति - सम्पादक - ज0ह0 दवे, भारतीय विद्याभवन, मुम्बई 1972.

16. वेदचयनम्-विश्वम्भरनाथ शास्त्री, सं0 गुरुप्रसाद शास्त्री विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी-1980.

17. वेदरहस्य-श्री अरविन्द (अनुवादक एवं सम्पादक) आचार्य अभयदेव विद्यालंकार, श्री अरविन्दाश्रम प्रेस पाण्डिचेरी।

18. वेदमीमांसा, सूत्रकार एवं भाष्यकार, (मा0) लक्ष्मीदत्त दीक्षित ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, भारत, प्र0सं0 1980.

19. वेद मीमांसा, डॉ0 हरिशंकर त्रिपाठी, वेदपाठ प्रकाशन, इलाहाबाद।

20. वेद रश्मि, डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल, वसन्त श्रीपादसातवलेकर स्वाध्याय मण्डल, पारडी.

21. वेदलावण्यम्, डॉ0 सुधीर कुमार गुप्त, भारतीय मंदिर, गोरखपुर।

22. वेदार्थविचार, म0 श्री सीताराम शास्त्री द प्रिंसिपल संस्कृत कालेज बंकिम चन्द्र चटर्जी, कलकत्ता, 12.

23. वैदिक देवता उद्भव और विकास-प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, डॉ0 गयाचरण त्रिपाठी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, वाराणसी, प्र0सं0 1982.

24. वैदिक देवशास्त्र, डा0 सूर्यकान्त, श्री भारत भारती, प्राइवेट लिमिटेड, अन्सारी रोड, नया दरियागंज, दिल्ली 1961.

25. वैदिक ग्रामर-डॉ0 उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 1964.

26. वैदिक माइथालोजी, वैदिक पुराकथाशास्त्र, अनुवादक रामकुमार राय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1961.

27. वैदिक माइथालाजिकल टेक्सट, आर0एन0 दण्डेकर, एस0 बलवन्त।

28. वैदिक व्याकरण-डॉ0 राम गोपाल, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, प्र0सं0 1965.

29. वैदिक व्याकरण (मूल, लेखक, आर्थर अन्थोनी) अनुवादक सत्यव्रत शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, प्र0सं0 1971.

30. वैदिक व्याख्या विवेचन, डॉ0 रामगोपाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नई दिल्ली, 1976.

31. भारतीय साहित्य एवं संस्कृति, आ० बलदेव उपाध्याय शारदा संस्थान, 37 बी रवीन्द्र पुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, 1980.

32. वैदिक साहित्य की रूपरेखा, प्रो० सत्यनारायण पाण्डेय तथा रसिक विहारी जोशी, साहित्य निकेतन कानपुर ।

33. वैदिक सिद्धान्त कौमुदी-श्री भट्टोजिदीक्षित, प्रणीता पं० श्री गोपाल शास्त्री, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला-11, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1977.

34. वैदिक सिद्धान्तमीमांसा, युधिष्ठिर मीमांसक, युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा ।

35. व्याकरण चन्द्रोदय-श्री चारुदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण 1970.

ENGLISH GRANTH

1. Rigved Samhita First Astaka Vol. II, English Translation by M.M. Dutt, Parimal Publication, Delhi.

2. Vedic Religion, Translation of Religion Vedique by A Bergaine, Tr. V.G. Paranjpe, Aryasamskriti Publication, Poona, 1971.

3. Vedic Mythology By A.A. Macdonell, Reprint by Motilal Banarasi Das, Varanasi.

4. Religion in Vedic literature, by P.S. Deshmukh Oxford University Press London, 1933.